Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक योग-यात्री

आचार्य अभयदेव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

97304

यह आत्मकथा है कि इसलिए यही वह वस्तु है जो कि मैं पाठकों को दे सकता हूँ। यह अपने अनुभवों की कहानी है अत: यह ऐसी वस्तु है जो कि सर्वथा मेरी है और अतएव यह मेरी बहुमूल्य भेंट है। यदि मैं वेद पर व्याख्या लिखूँ या अन्य विषय पर लिखूँ तो उन्हें मैं ऐसा अपना नहीं कह सकता। यह तो सदा मेरे साथ है। मेरी समझ में मनुष्य के पास सबसे बहुमूल्य वस्तु उसके अपने अनुभव होते हैं।

यह कहानी उन्हीं लोगों के काम की है जिनकी कि प्रवृत्ति बाह्य स्थूल जगत् की अपेक्षा मनोजगत् की लीलाएँ, गति तथा सत्य देखने की तरफ होती है। इसलिए मैंने कहा है कि यह योग जिज्ञासुओं के लिए है।

सजिल्द : अस्सी रुपये
पेपर बैक : साठ रुपये

कांगड़ी विश्वविद्यालय
द्वार 97304
आगत नं०
अभयदेव
शर्मा

	दिनांक	सदस्य संख्या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९७३०५

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ५६३ / ३४६:३ आगत संख्या ९७३०५

पुस्तक— वितरण की तिथि नीचे अंकित है । इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब—दण्ड लगेगा ।

10 FEB 1993
F-25/3/93/57

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

97307

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

97304

एक योग-यात्री

आचार्य अभयदेव

पुस्तकालय
हरिद्वार

आशिर प्रकाशन, सहारनपुर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० सुरेश चन्द्र त्यागी
द्वारा सम्पादित

श्री अरविन्द निकेतन, चरथावल
के निमित्त

आशिर प्रकाशन
रामजीवन नगर, चिलकाना रोड,
सहारनपुर-247001
द्वारा प्रकाशित

43
3408:3

नवयुगान्तर प्रेस
शारदा रोड, मेरठ
द्वारा मुद्रित

प्रथम संस्करण 1990

मूल्य : सजिल्द 80·00
पेपर बैक 60·00

EK YOG YATRI (Autobiography)
Acharya Abhaya Dev
1990

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

43,349:3
97304

संकेत

योग-जिज्ञासा की कहानी

योग-प्राप्ति की कहानी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग-साधना की कहानी (गुरुकुल कांगड़ी की सेवा)

योग-साधना की कहानी (स्वाधीनता-संग्राम में भाग)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

43,349:3
97304

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५:६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा से पूर्व

आचार्य अभयदेव (सन् 1896–1970) की पूर्व-प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं के संकलन का यह अन्तिम खंड 'एक योग यात्री' के रूप में प्रस्तुत है। आचार्य जी ने अपने बाह्य एवं आंतरिक रूप में सक्रिय जीवन को छह खंडों में लिपि-बद्ध करने की योजना बनाई थी लेकिन दुर्भाग्यवश वह केवल चार खंड ही लिख सके। जो दो खंड अलिखित रहे, वे थे—श्री अरविन्द–योग में प्रवेश और श्री अरविन्द–योग की साधना। उनकी योग-यात्रा के ये लक्ष्य-बिन्दु थे लेकिन वह यह कहते हुए ही चले गये—अभी उनकी जल्दी भी क्या है ?

इस खंड में चार विभाग किये गये हैं—एक योग-यात्री, पत्राचार, विशिष्ट सन्दर्भ और अन्तर्यात्रा।

प्रत्येक आत्मकथा अनिवार्यतः इतिहास भी होती है। आत्मकथा का लेखक अपने तथा अपने युग के प्रति कितना ईमानदार रहा है, इसे नापने का कोई पैमाना नहीं हो सकता। आत्म-विश्लेषण बहुत कठिन कार्य है—तलवार की धार पर चलने की तरह। दृष्टि का तनिक सा असंतुलन आत्मकथा के सौन्दर्य को भ्रष्ट और ध्वस्त कर सकता है। आत्मकथा में लेखक के लिए आत्म-प्रशंसा और पर-निन्दा के प्रवाह में बह जाने और डूब जाने का खतरा निरन्तर बना रहता है। पर जिसकी दृष्टि कभी अपने आपको प्रतिष्ठित या स्थापित करने की ही न रही हो, उसकी आत्मकथा केवल प्रेरक ही नहीं, प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेज भी बन जाती है। 'एक योग-यात्री' ऐसी ही आत्मकथा है। इस आत्मकथा का प्रथम खंड 'योग-जिज्ञासा की कहानी' स्वाध्याय मंडल, औंध से श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के संपादन में प्रकाशित 'वैदिक धर्म' में सन् 1926–27 में छपा था। उस समय भूमिका में आचार्य जी ने लिखा था, "यह अपने अनुभवों की कहानी है अतः यह ऐसी वस्तु है जो कि सर्वथा मेरी है और अतएव यह बहुमूल्य भेंट है। यदि मैं वेद पर व्याख्या लिखूं या अन्य विषय पर लिखूं तो उन्हें मैं ऐसा 'अपना' नहीं कह सकता। यह तो सदा मेरे साथ है। मेरी समझ में मनुष्य के पास सबसे बहुमूल्य उसके अनुभव ही होते हैं। यह कहानी उन्हीं लोगों के काम की है जिनकी कि प्रवृत्ति बाह्य स्थूल जगत की अपेक्षा मनोजगत् की लीलाएँ, गति तथा सत्य देखने की तरफ होती है।" लम्बे अन्तराल बाद जब आचार्य जी ने श्री अरबिन्द निकेतन, चरथावल से 'वेदसुधा' का सम्पादन (सन् 1967 में) शुरू किया तो उन्होंने 'एक योगयात्री' की पांडुलिपि नये सिरे से तैयार की और इसे 'वेदसुधा' में धारावाहिक छापा। इस ग्रन्थ में प्रकाशित 'एक योगयात्री' उसी की पुस्तकाकार प्रस्तुति है। मूल योजना के अनुसार इसमें चार खंड

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—योग-जिज्ञासा की कहानी, योग-प्राप्ति की कहानी, योग-साधना की कहानी, (गुरुकुल कांगड़ी की सेवा) तथा योग-साधना की कहानी (स्वाधीनता-संग्राम में भाग)। यह ध्यान देने लायक बात है कि गुरुकुल कांगड़ी की सेवा और स्वाधीनता-संग्राम में भाग —ये दोनों बाह्य व्यस्तताओं के कार्य भी आचार्य जी के लिए यौगिक चेतना के विकास एवं सक्रियता के अंग थे। योग के अर्थ की यह व्याप्ति श्री अरविन्द के मंत्र 'सारा जीवन ही योग है' की व्यावहारिकता का प्रमाण है। गुरुकुल कांगड़ी का आज जो भी स्वरूप हो, आचार्य अभयदेव के आचार्यत्व में यह संस्था राष्ट्रीयता का प्रेरक केन्द्र थी। स्वाधीनता-संग्राम का राष्ट्रीय फलक पर संचालन इसलिए संभव हो सका कि छोटे-छोटे क्षेत्रों में स्वाधीनता के लक्ष्य को लेकर एक निष्काम युद्ध लड़ा जा रहा था। क्षेत्रीय इतिहासों को जोड़े बिना राष्ट्रीय इतिहास लिखा जाना संभव नहीं है। आचार्य अभयदेव की आत्मकथा का यह अंश हमारे स्वाधीनता-संग्राम की पश्चिमी उत्तर प्रदेश में लड़ी गई लड़ाई का दस्तावेज है।

'पत्राचार' में श्री अरविन्द और श्रीमां के साथ आचार्य जी का पत्र-व्यवहार संकलित है। आचार्य जी के कागजों को टटोलते हुए मुझे ये पत्र मिले थे और मैंने 1975 में श्री अरविन्द सोसाइटी उ० प्र० की स्मारिका 'अभीप्सा' में इन्हें पहली बार प्रकाशित किया था।

'विशिष्ट सन्दर्भ' के अन्तर्गत वे लेख हैं जिनका उल्लेख आचार्य जी ने आत्म-कथा में किया है। ये लेख 'गुरुकुल' तथा दूसरी पत्र-पत्रिकाओं में छपे थे और कुछ उनके कागजों में हस्तलिखित मिले हैं। ये लेख जहाँ एक ओर गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की स्पष्ट एवं रोचक व्याख्या के कारण महत्त्वपूर्ण हैं, वहीं आचार्य जी के व्यक्तित्व को समझने के लिए अनिवार्य भी हैं।

'अन्तर्यात्रा' में आचार्य जी की व्यक्तिगत डायरी के अंश हैं। योग-साधना की दृष्टि से उन्हें जिस दिन कोई विशेष अनुभूति हुई, उन्होंने उसे अंकित कर लिया। ये अनुभूतियां पांडिचेरी में श्री अरविन्द आश्रम में लिखी गई थीं। इनका प्रकाशन यहाँ पहली बार हो रहा है।

मैंने कई वर्ष पूर्व आचार्य अभयदेव जी समस्त रचनाओं के सम्पादन का जो संकल्प किया था, वह इस खंड के साथ सम्पन्न हो रहा है। यह मेरे लिए आंतरिक उल्लास की घड़ी है। उल्लास के इन क्षणों में पाठकों को एक यात्रा पर चलने का सादर निमंत्रण देता हुआ मैं उन सबके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जो इस कार्य-सिद्धि में निमित्त बने हैं। अब भी आचार्य जी की पर्याप्त सामग्री शेष है जो अन्य किसी ग्रन्थ में संकलित करने का प्रयास करूंगा।

1 अप्रैल 1990
सहारनपुर

सुरेश चन्द्र त्यागी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक की ओर से

यात्रा तो न जाने कब से प्रारम्भ है और न जाने कब तक चलेगी ? शायद शाश्वत है और शाश्वत तक चलेगी। पर यहाँ तो उस शाश्वत काल के चक्र में ये थोड़े से ही वर्षों (कहिये सन् 1896 से सन् 1960–61 तक) की एक कहानी कही गई है, एक शाश्वत जीव की तरफ से उसके अत्यन्त छोटे से काल खण्ड की 'आत्म-कथा' कही गई है।

आत्मकथा बेशक बड़े लोग लिखते हैं। पर मुझे तो अपनी कथा सुनाना ही अत्यन्त स्वाभाविक लगता है। अपने अनुभव, अपनी आपबीती ही वह चीज है जिसे हम अपनी कह सकते हैं। यदि मैं वेद पर व्याख्या लिखूँ या किसी अन्य विषय पर लिखूँ तो वह वैसी अपनी नहीं होगी क्योंकि यही स्वाभाविक है। अतएव मैंने तो क्षुद्र पुरुषों (बालकों, गंवारों आदि) को ही अपनी बीती बड़े शौक से दूसरों को सुनाते और उसमें बड़ा रस लेते देखा है, बस सुनने वाले चाहियें। मुझे भी जब पता लगा कि कुछ लोग मेरी कहानी सुनना चाहते हैं, कुछ ने बार-बार इसके लिए आग्रह से कहा, कुछ ने इसे छपाने को पैसे की भी सहायता प्रदान की तो यह लिखना या सुनना प्रारम्भ हो गया। सचमुच बहुत पहले, आज से सैंतीस वर्ष पहले सन् 1924 में गुरुकुल के बड़े ब्रह्मचारियों को भी मैंने अपनी तब तक की कहानी सुनाई थी। एक बार गुरुकुल सूपा के विद्यार्थियों को भी कही थी। इसके कुछ भाग तो फुटकर तौर पर अनेकों सुनना चाहने वाले मित्रों को सहज भाव से सुनाये हैं।

इसके पढ़ने व सुनने से किसी को कुछ लाभ होगा, ऐसा सोचना तो मैंने अब छोड़ दिया है। 'मैं' (**'मैं' का अर्थ है अनंतों केन्द्रों में से एक**) तो इसके सुनाने में एक रस प्राप्त करता हूँ (जब कि सुनाने का मुझे अवसर दिया जाता है), इसी रस के लिए सुनाता हूँ। फिर भी किसी को लाभ की दृष्टि रखने के कारण यदि लाभ भी मिल जाए—एक यात्री होने के कारण, बल्कि योगयात्री होने के कारण—तो और भी अच्छा है। यात्री तो प्रत्येक जीव है, योग के यात्री भी बहुत हैं, शायद उनमें से कुछ को एक सहयात्री की यह कहानी सुनने में भी रस आवे लाभ मिले, यह भी कहा जा सकता है) तो वहाँ यह सुनाना खूब आनन्ददायक ('सार्थक' भी कहा जा सकता है) हो जायगा। बेशक इस कहानी में सतत 'मैं' 'मेरा' आदि शब्दों का प्रयोग किया जायगा, पर इसका अर्थ ऊपर लिखित ही है अर्थात् इस समग्र सृष्टि की लीला करने वाले के अनन्त लीला केन्द्रों में से यह एक केन्द्र, बल्कि यूँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना चाहिये, ऐसा लीलाकेन्द्र जिसने सामूहिक मन में से एक वैयक्तिक मन, सामूहिक प्राण में से एक अपना छोटा सा प्राण तथा सामूहिक अन्न तत्त्व में से एक पाँच साढ़े पाँच फीट का आँखों से दिखाई देने वाला अन्नमय शरीर भी अपने चारों तरफ अपना रखा है। इतना लम्बा 'अनन्तों केन्द्रों में से एक केन्द्र' कहने की जगह प्रचलित 'मैं' शब्द का ही प्रयोग किया जाएगा, पर आशा है पाठक इसमें 'मैं'पन की उग्र या बुरी गन्ध अथवा तीव्र रंगत नहीं पायेंगे क्योंकि उस अर्थ में 'मैं' शब्द नहीं लिखा गया है।

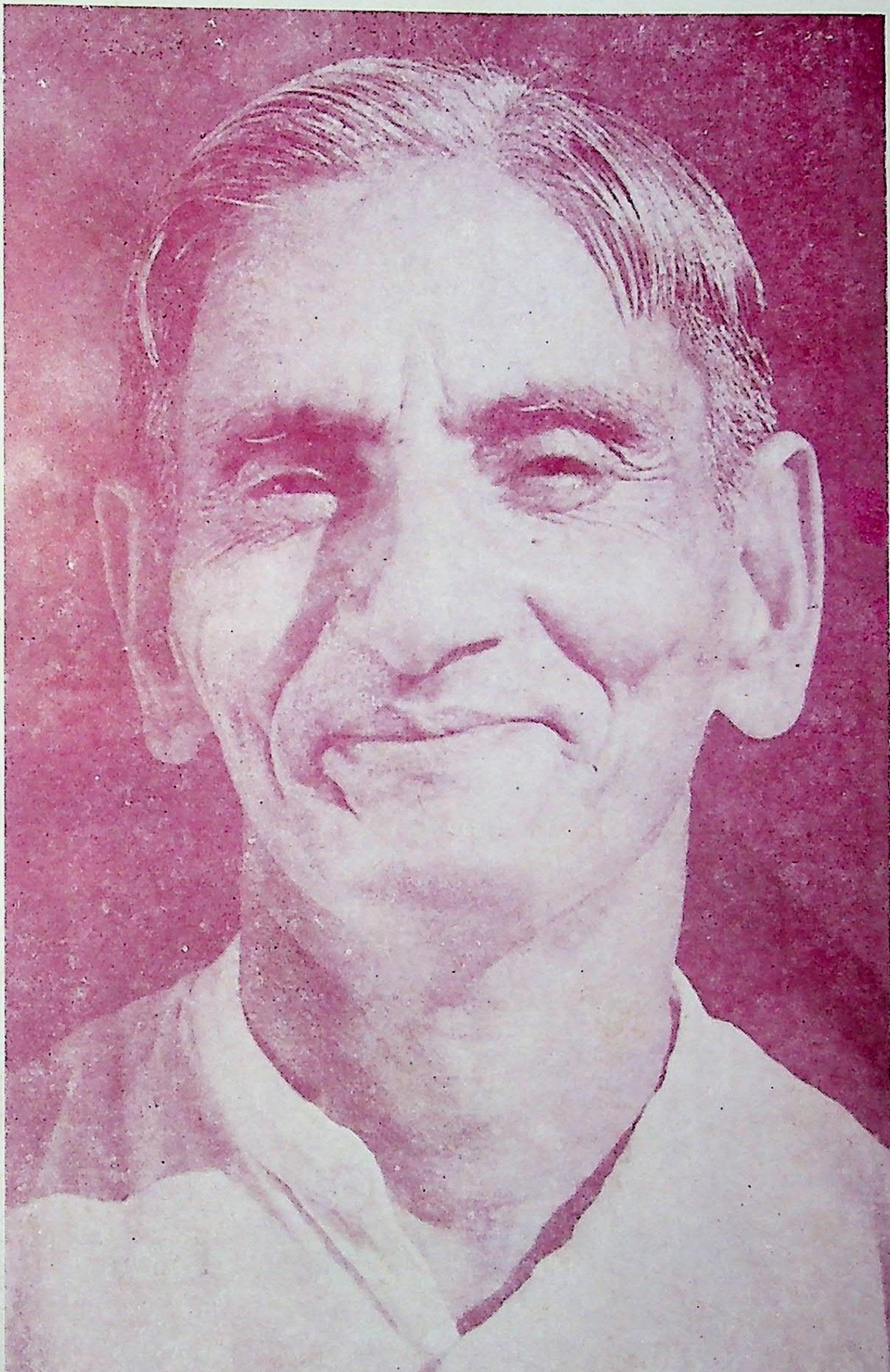
तो 'मैं' हूँ आपका

21-2-61 **अभयदेव**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य अभयदेव



2 जुलाई 1896 — 9 जनवरी 1970

फोटोः—विद्याव्रत, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग-जिज्ञासा की कहानी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म से शरीर की दुर्बलता

जन्मते ही यह शरीर मातृगर्भ से इतना दुर्बल निकला कि लोगों ने देखकर कहा कि 'यह बच्चा जिन्दा नहीं रहेगा।' किन्तु चूंकि परमात्मा ने जिन्दा रखना था अथवा चूँकि मुझे बड़े यत्न से पाला पोसा गया (शायद माता-पिता की पहिली पुत्र सन्तान होने के कारण) अत: बच्चा जिन्दा तो रह गया, आगे जो कुछ हो।

जिस वर्ष इस देह का जन्म हुआ (अर्थात् संवत् 1953) वह दुर्भिक्ष का वर्ष था। पिता जी प्रसन्नता से सुनाया करते थे कि उस दुर्भिक्ष में जब मेरा नामकरण संस्कार हुआ तब वर्षा हुई। जन्मते ही (अर्थात् 2 जुलाई सन् 1896 सायं 3, 4 बजे) हरदोई में वर्षा नहीं हुई यही कसर है। परन्तु यह निश्चित है कि इसका मेरी शारीरिक दुर्बलता से कुछ सम्बन्ध नहीं। यह दुर्बलता पैतृक भी नहीं है क्योंकि मेरे माता-पिता तथा कोई सम्बन्धी दुर्बल-शरीर नहीं थे। मेरी दो सगी बहिन (जिनके अतिरिक्त मेरा कोई सहोदर भाई बहिन नहीं था) भी दुर्बल नहीं थीं या दूसरे शब्दों में इस आत्मा का ऐसा ही संकल्प था, ऐसा कुछ ही कहा जा सकता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं समझ आता।

मेरे पिता जी हरदोई में सरकारी नौकर थे अत: मेरा जन्म हरदोई में हुआ और वहीं मेरा शैशवकाल बीता। बड़ा होकर एक बार गुरुकुल से जब मैं हरदोई गया और अपना घर देख रहा था तो बाहर एक स्थान (जहाँ बचपन में खेला करता था) पर संस्कार इतने प्रबल हुए कि जी में आया कि यहाँ इस स्थान पर धूल में लोट जाऊँ।

मेरे शैशव काल की एक बात मेरे घरवाले सुनाते हैं कि मुझे जहाँ कहीं बिठा देते थे, कई घंटों बाद चाहे आकर देखो, मैं वहीं बैठा मिलता था। इस बात से मेरे पालने वालों को निश्चिन्तता थी। जब मैं 5, 6 वर्ष का हो गया था तब की बात मेरे चाचाजी (प्रताप नारायण जी) को यह स्मरण रहती थी कि मेरी थाली में मेरे खाते हुए बिल्ली भी खाने लगती थी, मैं केवल शिकायत करता था और 'धत्त-धत्त' करता रहता था। वह हटती नहीं थी।

मेरी पाँच वर्ष की आयु में—अगस्त 1901 में हरदोई में माताजी का देहान्त हो गया था अत: मातृ सुख-नहीं प्राप्त हुआ। माता जी की मुझे कोई भी बात स्मरण नहीं है। सुना है माता जी भी बड़े धार्मिक स्वभाव की थीं।

मन पर भोजन का प्रभाव होता है अत: यह भी बतला देना चाहिये कि हमारा कुल सदा से निरामिष भोजी था और आठ वर्ष तक मेरा मुख्य भोजन दूध ही रहा था और यह मुझे प्रिय था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पिता जी के विषय में क्या कहूँ ? फिर भी यहाँ संक्षेप में बता देना चाहिये कि वे बड़े सरल हृदय, सर्वथा निरभिमानी, सात्त्विक कार्यकर्त्ता, परोपकारी, अनथक परिश्रमी, त्यागी, शान्त पवित्र जीवन और परमात्मा के आश्रित रहने वाले ब्राह्मण थे। उन जैसे दैवी सम्पत्ति से सम्पन्न पिता की इस दुर्बल सन्तान में यदि आगे जाकर कुछ सात्त्विक वृत्तियां आ गई तो इसमें जरा भी आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु जन्मग्राम (चरथावल, जिला मुजफ्फरनगर) के रिवाज के कारण पिता जी भी हुक्का पीते थे। कहते हैं कि तम्बाकू का संतान पर भी असर होता है। यह हुक्का पिता जी ने मेरे गुरुकुल जाने से पूर्व ही मेरे कारण (वे सुनाते हैं 'तूने एक दिन हुक्के की नली पकड़कर पीने के लिए मुँह से लगा ली। मैंने कहा यह नहीं पीना चाहिये, यह बुरा है। तो तूने कहा कि बुरा है तो आप क्यों पीते हैं? यह सुनते ही न जाने मेरे ज़ी में क्या आया कि उसी समय मैंने हुक्का तोड़कर फेंक दिया और पीना छोड़ दिया') छोड़ दिया था । पिता जी पक्के आर्य समाजी थे और उन्हें वैदिक संस्कारों पर बहुत श्रद्धा थी। अतः उन्होंने बालकपन के मेरे सब संस्कार किये और आठवें वर्ष विधि के अनुसार मेरा यज्ञोपवीत करके उसी दिन वेदारम्भ के लिए गुरुकुल पहुँचाने मुझे लेकर हरद्वार चल दिये।

यदि आजकल मैं गुरुकुल में प्रविष्ट होने आता तो मेरे जैसे दुर्बल शरीर वाले को कभी भर्ती न किया जाता। तब तक तो गुरुकुल का प्रारम्भ था। मुझे याद है सबसे पहिले जब तारीख लिखना सीखा था तो उस समय अपनी कापियों में सन् 1907 लिखा करता था और दूसरे पिता जी ने छात्रवृत्ति पर अर्थात् 1500 रु० इकट्ठा देकर मुझे प्रविष्ट कराया था। मुझे एक डाक्टर जी ने केवल दौड़ा कर देखा था। बस, फिर भर्ती करने को कह दिया था। मुझे खूब याद है कि मैं अधिक बीमार होकर इलाज के लिए लाहौर ले जाया गया था, तब वहाँ प्रतिनिधि सभा के एक उच्च अधिकारी ने मुझे देखकर पंजाबी भाषा में कहा था कि 'ऐसे बीमारों को गुरुकुल में दाखिल ही क्यों कर लिया जाता है ?' एवं मैं गुरुकुल में भी भाग्य से ही प्रविष्ट हो गया था।

गुरुकुल में भी अपने शरीर के लिए प्रसिद्ध होना ही था। गुरुकुल के प्रसिद्ध डाक्टर सुखदेव जी जब हम बच्चों में आया करते थे तो कभी-कभी मेरे साथियों को एक 'देवशर्मा की कहानी' सुनाया करते थे। संक्षेप में वह कहानी यों थी कि गुरुकुल के एक यात्री ने गंगातट पर पड़ी हुई हड्डियों को बटोर कर ईश्वर से प्रार्थना की कि इसमें जान डाल दे। प्रार्थना स्वीकृत हो गयी। तो उस यात्री ने इसका नाम देवशर्मा रखकर गुरुकुल में दाखिल करा दिया। विद्यार्थी भी कई बार डाक्टर जी के आने पर 'देवशर्मा की कहानी' सुनना चाहा करते थे। डाक्टर जी कभी-कभी मेरी उत्पत्ति 'कब्र के खोदने' से भी कर दिया करते थे। मतलब यह है कि मेरा शरीर अस्थिपंजर ही था और ऐसा ही रहा। आगे की एक बार की बात है कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर बख्तावर सिंह जी ने एक बार मुझे अस्पताल में बुलवाया। मैंने समझा कि मुझे कोई दवा या फल दिये जायेंगे या मेरा तौल होना रह गया होगा किन्तु वहाँ जाने पर उन्होंने मेरी गर्दन झुकवा कर गर्दन की ओर कुछ हड्डियों पर हाथ लगाते हुए सामने बैठे डाक्टरी पढ़ने वाले एक बड़े ब्रह्मचारी को दिखाया कि 'यह है फलानी-फलानी हड्डी।' डाक्टर साहिब को निश्चय था कि मेरे शरीर में ये हड्डियाँ अवश्य बाहर निकली हुई होंगी। चलो मेरा शरीर यदि और कुछ सेवा के काम न भी आ सके तो हड्डियों का पाठ पढ़ाने की सेवा तो दे ही सकता है। मेरा शरीर टेढ़ा-मेढ़ा होने के कारण आगे चलकर मेरा नाम अष्टावक्र भी पड़ गया था और मेरे हल्के तथा सूक्ष्म देह के कारण ही शायद एक वृद्ध भंडारी जी मुझे 'चिड़िया' कहा करते थे। इस अस्थिपंजरभूत, टेढ़े-मेढ़े और सूक्ष्म शरीर की दुर्दशा को पूरा करने के लिए आगे धीरे-धीरे, कब्ज, सिर दर्द, भूख न लगना आदि रोगों ने भी इसे अपना घर बना लिया था, यह भी पाठक आगे देखेंगे। अस्तु। यह तो हुई मेरे बालकपन के शरीर की कहानी। अर्थात् इस कथा के नायक मनराम (क्योंकि मनुष्य मनोमय प्राणी है) के उर की कहानी, पर इस टूटे-फूटे और जिसके कि हवा में उड़ जाने की सम्भावना रहती थी (एक बार आचार्य बन जाने पर बालकों का निरीक्षण करते हुए श्री प्रोफैसर बालकृष्ण जी ने मुझे देखकर मेरी कलाई जरा दबाते हुए कहा था—'चील उड़ा ले जायेगी') ऐसे कुटीर में रहने वाले स्वयं मनराम बालपन में कैसे थे, इसकी कथा पाठक अगले प्रकरण में देखेंगे।

गुरुकुल में पहले सात साल (क)

मनोऽवस्था

गुरुकुल में आने से पहले मनोऽवस्था की तो केवल निम्न दो बातें ही कह सकता हूँ। (1) यह याद है कि मैं स्वभावतः घर के अन्दर बहुत ही कम जाता या ठहरता था। बाहिर (बैठक में या बैठक के आस-पास) रहना और अकेले खेलते रहना मुझे पसन्द था। दूसरे के घर के अन्दर मुझे ले जाना तो बहुत ही कठिन था।

(2) शायद मातृप्रेम का कुछ भी अनुभव न होने के कारण पिता जी में अति प्रेम या मोह था इसलिए प्रायः घोड़े पर उनके साथ ही रहता था। पिता जी युक्त प्रान्त हरदोई जिले में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में ओवरसियर थे और अक्सर घोड़े पर दौरे में जाते थे। दुर्बल शरीर होने पर भी उस 6, 7 वर्ष की आयु में उनके साथ रहता था। एक बार दिन में 52 मील तक का सफर किया था और मेरी टांगों में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खून उतर आया था, यह स्मरण है। यदि पिता जी मुझे छोड़कर दौरे पर चले जाते थे तो मैं देर तक रोता रहता था।

आठ वर्ष से पहले के विषय में इन दो बातों के सिवाय और कुछ नहीं दीखता—कुछ स्मरण नहीं आता। किन्तु गुरुकुल में आकर 8 वर्ष की आयु से 15, 16 वर्ष तक मन की जो दशा थी वह स्पष्ट दीखती है। इस समय मेरा मन स्वभावतः शंकित और दुःखित रहता था, चिड़चिड़ा और तंग सा था तथा थोड़ी सी बात को देर तक और तीव्रता से सोचते रहने वाला था।

शंकित रहने का मतलब यह है सदा कष्ट या अनिष्ट होने का डर लगा रहता था। न जाने अब तेरा क्या होगा—ऐसी आशंका अन्दर सदा रहती थी। मतलब यह नहीं कि मैं डरपोक था। सामान्य डर (भय) तो मुझमें बचपन से कम था। खूब याद है कि हरदोई में ही मैं रात को अंधेरे में निडर इधर-उधर अकेला जाने को तैयार रहता था और पिता जी के भेजने पर जाया करता था। भूत-प्रेत का कभी डर नहीं हुआ। (शायद आर्यसमाजी पिता का पुत्र होने के कारण) गुरुकुल में आकर जंगल के जानवरों का भी भय नहीं था। कुछ ऐसा मन में बैठा हुआ था कि ये जन्तु हानि नहीं पहुँचायेंगे। इन दिनों डर था तो मनुष्य का—चोर, डाकू, पुलिस का सिपाही, हथियार वाला कोई दुष्ट पुरुष न मार डाले, इसका डर था। किन्तु शंकित मन सदा रहता था। जो कुछ होता था मैं समझता था कि इसका परिणाम मेरे लिए कुछ बुरा होगा। यह याद है कि प्रथम श्रेणी में ही जबकि कोई शायद पहली ही बार हमें जंगल में भ्रमणार्थ ले जा रहे थे तब और तो सब आनन्दित थे पर मैं अन्दर डर रहा था कि न जाने ये कहाँ ले जा रहे हैं, कहीं मार न डालें। पर किसी से कह न सकता था। धीरे-धीरे यह आशंका दैवी विपत्तियों से रह गई थी। मनुष्य से तो एक ही आशंका रहती थी और वही बहुत बड़ी थी। वह थी चिढ़ाने वाले या दुःखदायी वाक्य सुनने की। जैसे प्रायः बालकों को अध्यापकों से दण्ड पाने की आशंका रहती है, वह मुझे कभी न थी क्योंकि मैं पढ़ने में ठीक था और मुझसे शरारत कोई होती न थी। केवल दो बार दो थप्पड़ खाए, याद आते हैं, वे भी नए अध्यापकों से (जो मुझे अभी जानते न थे)। किन्तु लोगों के वाक्शल्य मुझे बहुत दुःख देते थे, क्योंकि मैं दुर्बल होने से थोड़ी-थोड़ी बात पर चिढ़ जाता था। जो कुछ मुझे या मेरे विषय मे कहा जाय उसे देर तक मन सोचता ही रहता था, छोड़ता नहीं था। शंकित मनस्कता और चिढ़े रहने के कारण मैं प्रसन्नवदन कभी ही होता था। बात कम करता था। बोलता था तो प्रायः खीझ कर बोलता था। साथियों से (ब्रह्मचारियों से) कम मिलता था। लोगों को देखकर प्रसन्न नहीं होता था। लोगों से डरकर गुमसुम उदास जुदा रहता था। मेरी लज्जालुता का भी इसी में समावेश हो जाता है।

चिड़चिड़ेपन का कारण दुर्बलता के साथ मेरा 'तीव्र अनुभव करने का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभाव' भी था। तीव्र अनुभव के दो उदाहरण सुनाता हूँ। चतुर्थ या पंचम श्रेणी में एक अधिष्ठाता जी ने हमें एक आदमी के बारूद से मर जाने की बात सुनाई। यह सुन कर मुझ पर ऐसा असर हुआ कि मैंने अनुभव किया कि मैं ही मरा जाता हूँ और देर तक मैं बड़ा घबराता रहा, कठिनता से स्वस्थ चित्त हुआ। दूसरी बात महाविद्यालय की है कि एक बार प्रो० बालकृष्णजी ने इतिहास-अर्थशास्त्र के घन्टे में पढ़ाते हुए किसी प्रसंग में यह वर्णन किया कि तैमूर यहाँ से हजारों दास ले गया था, उन्हें काबू रखने के लिए उन सबके बायें हाथ एक लोहे की छड़ में इकट्ठे पिरो दिये गये थे। यह सुनते ही मैंने एकदम ऐसा अनुभव किया कि मेरे बायें हाथ में शलाका गुजारी गयी है और सचमुच कई सैकंड तक मेरी बायीं हथेली में दर्द होता रहा। यह तीव्र अनुभव करने (और जरा सी बात को देर तक सोचते रहने) के स्वभाव के कारण ही मैं बालकपन में ऐसा दुःखी रहता था और अन्त में ठीक रास्ते लगने पर मेरा यह स्वभाव ही मेरे उद्धार का (सर्वथा परिवर्तन का) कारण हुआ। इस तीव्र अनुभव के स्वभाव से अब भी एक लाभ तो मुझे था। वह यह था कि इसी कारण मैं पढ़ने में अच्छा था। जो बात सुनता था, वह अन्दर तक बैठ जाती थी और गृहीत हो जाती थी। संस्कृत के पंडित श्री मेलाराम जी कहा करते थे कि देवशर्मा को तो एक बार सुनने से ही बात याद हो जाती है।

एक शब्द में सारांश यह है कि बचपन में मैं सच्चे अर्थों में 'निराशावादी' था। मैं कभी किसी (अभीष्ट) वस्तु की आशा करते हुए डरता था। सदा अनिष्ट की आशंका करता था। प्रधान जी (गुरुकुल के आचार्य महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) को हम लोग उस समय प्रधान जी पुकार करते थे) के उपदेश में (जो कि मैं स्वभावतः बड़े ध्यान से सुना करता था) एक दो बार वह सुना था कि दृढ़ इच्छा करने से रोग हट जाता है या अन्य अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। परन्तु यह बात मुझे अनुभव के सर्वथा विपरीत मालूम होती थी। मुझे याद है कि यह सुनकर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ था कि प्रधान जी ने यह क्या उलटी बात कही है। मुझे तो इष्ट की आशा करते हुए डर लगता था। हर एक होती हुई घटना में मुझे यही दिखाई देता था कि इसका परिणाम मेरे लिए कुछ अनिष्ट होगा। सब संसार क्लेशदायक दीखता था। लोग बुरे दीखते थे। मेरे लिए प्रसन्नता कारक कोई ही अवसर आता था और वह भी थोड़ी देर के लिए।

मन की इस अवस्था का बिल्कुल काया पलट तो गुरुकुल जीवन के अन्त में (तेरहवीं चौदहवीं श्रेणी में) हुआ था। आठवें साल की लम्बी बीमारी के बाद नवें साल से कुछ-कुछ परिवर्तन होने लगे थे। परन्तु इन सात साल तो तथा बीमारी के आठवें साल भी मेरी मनोऽवस्था ऐसी ही सदा शंकित, दुःखी, दुर्बलता और तीव्र अनुभव के कारण चिड़चिड़ी तथा लोगों से दूर रहने की बनी रही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल में पहले सात साल (ख)

क्या-क्या किया ?

ये सात साल बल्कि आठ साल अर्थात् मेरा 16 वर्ष तक का जीवन मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मैंने यह काल सोते हुए से गुजार दिया था। इन दिनों मेरी आँखें सचमुच आधी मुंदी रहती थीं। इस लिए इस समय की मनोऽवस्था तो खूब स्मरण है जो गत प्रकरण में कही है किन्तु जागते हुए मैंने कुछ किया है, यह स्मरण नहीं। तो भी इस बीच में जो थोड़ी सी बातें स्वप्न की तरह की या देखी स्मरण आती हैं, वे निम्नलिखित हैं :—

चतुर्थ श्रेणी में ही मेरी आँखें इतनी कमजोर थीं कि मैं कृष्णपट्ट (black-board) पर लिखा हुआ नहीं पढ़ सकता था। सबसे पहले गुरुकुल में जिन 5, 6 ब्रह्मचारियों को ऐनक दी गई और इसके लिए जिन्हें जालंधर की सैर करने का अवसर मिला, उनमें मैं भी एक था और आँखों के खराब होने में मैं सबसे पहले नम्बर का था यद्यपि (इन सब में से मैं एक बराबर आयु वालों में सबसे छोटा था)। मुझे +3 और +5 के शीशे लगे थे।

मुझे सबके साथ मिल कर खेलने में प्रीति नहीं थी (पीछे षष्ठ, सप्तम् श्रेणी में गेंद बल्ला खेलने का अवश्य शौक हुआ था)। किन्तु अकेले खेलने में मुझे बड़ा आनन्द आता था। घन्टों अकेला खेलता था। ये अकेले खेल क्या थे? रामायण और महाभारत की जो कहानी हमें सुनाई गई थीं, वे चित्रवत् मेरे हृदय पर पूरी अंकित थीं। कभी रामायण और कभी महाभारत की कथा का पूरा-पूरा खेल (लकड़ी, पत्थर के टुकड़े आदि से) मैंने बहुत बार अकेले में किया है। मैं अकेले में खिड़की की सीखों को पढ़ाया करता हूँ, यह साथियों में भी प्रसिद्ध था। कमरा बन्द करके दायें बायें हाथों से गेंद बल्ला (क्रिकेट) में दो दलों का सान्मुख्य (मैच) कराया करता था। इसी तरह कभी भंडार की, कभी औषधालय की, कभी रेल की क्रियाओं का दृश्य बना कर खेला करता था। बड़े होकर नवीं-दसवीं श्रेणी तक मैं यह बालकों के खेल ऐसी जगह जाकर, जहाँ कोई और न देखे, मौका मिलने पर पाँच-पाँच छः-छः घन्टे तक करता रहता था, किसी और को आता देखता तो बन्द कर देता था।

मुझे कब्ज शुरू से ही रहने लगी थी किन्तु आरम्भ के तीन चार वर्ष तो मैं यह नहीं मानता था कि शौच न होना कोई रोग है। जब इसके कारण मुझे कभी-कभी ज्वर हो जाने लगा और पंचम-षष्ट में जब प्रायः मुझे सिर दर्द होने लगा तो मैंने समझा कि इन सब रोगों का कारण कब्ज ही है। भूख भी कम लगती थी। किन्तु डाक्टर जी तथा अन्य सब लोग मुझ पर प्रेम और कृपा करते थे और मेरे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर को तथा हृदय को पुष्ट करना चाहते थे। डाक्टर जी मुझे मोटा करने की औषधें (माल्ट माइओल भी) खिलाते थे और कब्ज हटाने के भी बड़े उपाय करते थे। मुझे फल तथा दूध दिलाने का भी यत्न करते थे। एक बार मुझे इक्कीस दिन तक सतत ज्वर हो गया। इसके बाद तो बहुत महीनों तक डाक्टर जी ने अपने पास रखा। अपने सामने अनुकूल भोजन खिलाते थे। केवल पढ़ने (कभी-कभी गेंद बल्ला भी खेलने) के लिए ही मैं श्रेणी में जाता था, नहीं तो दिन-रात आनन्द से हस्पताल के एक कमरे में स्वाधीन रहता था। स० मुख्याधिष्ठाता जी मुझे 'हस्पताल का ब्रह्मचारी' या 'डाक्टर का ब्रह्मचारी' कहते थे। इसी तरह एक बार (शायद सप्तम् में) डाक्टर जी ने मेरा पढ़ना छः महीने तक बन्द रखा और यह प्रबन्ध किया कि मैं बाग में स्वेच्छा से इस समय काम किया करूं और घूमूं तथा भोजन खाऊँ तो इसके अतिरिक्त और कुछ फिकर न हो। डाक्टर जी ने समझा था कि शायद पढ़ने में लगे रहने से मुझे कब्ज होती है। इन छः महीने में कुछ समय बाग में काम करता था, कभी-कभी मिस्त्री-खाने में भी, शेष समय प्रायः वे ही उपर्युक्त एकान्त खेलें खेलता रहता था। इसी तरह छः महीने बिता दिए। आश्रम में दिया जाने वाला पढ़ाई का काम तो मेरे लिए कई बार रोक दिया गया था। मेरा जी पढ़ाई में सुगमता से और मग्नता से लगता था इसलिए ऐसी छुट्टियों से और बीमारी से मेरी पढ़ाई की उन्नति में कुछ हानि नहीं होती थी, पर यह दुर्बलता और रोग नहीं हटता था। इन आठ सालों तक जो मैंने अपने आपको सोता हुआ सा अनुभव किया, शायद इसका कारण भी यह कब्ज रहना ही हो। अस्तु।

इस तरह इन दिनों बहुत बार मेरा श्रेणी से जुदा ही रहना हुआ और स्वभाव भी जुदा रहने का था तो भी एक श्रेणी में और कुल में (आश्रम में) रहते हुए मुझमें सर्वथा सामाजिक जीवन का अभाव नहीं हो सकता था। इसलिए उस समय के अपने बालकपन के सामाजिक जीवन (जो नाम मात्र, नहीं के बराबर था) की भी एक दो बातें यत्न से स्मरण करके लिखता हूँ। उन दिनों अन्य साथियों की तरह बाग से फल आदि तोड़ लाने को बुरा नहीं समझता था। षष्ठ श्रेणी में एक दो बार नींबू मैंने तोड़े भी थे, यद्यपि बहादुरी से नहीं (अर्थात् नींबू तोड़ने की नीयत से उधर नहीं गया था।) जो शरारती विद्यार्थी थे वे सब मेरे मित्र कहे जा सकते थे अथवा यों कहना चाहिए कि वे मेरे इतने परिचित थे (शायद मुझ से पढ़ने के कारण) कि मुझे अपनी शरारतें सुनाने में कुछ हर्ज नहीं समझते थे। श्रेणी के विद्यार्थी मिलकर जो कुछ करें (अच्छा या बुरा) उसमें साथ देना चाहिए यह भी हम 'धर्म' समझते थे। इसे अब मैं 'श्रेणी-भक्ति' नाम दे सकता हूँ। मेरा मन भी ऐसा श्रेणी-भक्त था। परन्तु जुदा रहने से श्रेणीभक्ति का कुछ कार्य मैं तब तक नहीं कर सकता था। (शायद षष्ठ श्रेणी में ही) जबकि हम छोटों की छुट्टियाँ दो की जगह एक महीने की ही कर दी गयीं थीं तब जो आन्दोलन हमारी श्रेणी के विद्यार्थियों ने किया था, केवल उसमें

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी श्रेणीभक्ति वश सम्मिलित था। हममें ऐसी बातें उस समय क्यों आयीं थी, इसका वर्णन करने का यह स्थान नहीं है। अस्तु।

उसी समय कई अखबार देखने वाले सुबोध साथियों के संग से बाहरी सार्वजनिक जीवन का भी पता लगा था और देश भक्ति का बीज इन्हीं षष्ठ सप्तम् श्रेणी के वर्षों में अर्थात् 14, 15 वर्ष की आयु में बोया गया था। तभी से यह इच्छा मन में बैठ गयी थी कि हमारा देश भी स्वाधीन होना चाहिये, यद्यपि उस बालकपन में हमारे सामने उस समय के अनुसार देशभक्ति का एक ही आदर्श अर्थात् बंगाल के बम फेंकने वालों का था। खेल-खेल में एक बार मैंने 'अज्ञात' और 'काल' नामक दो अखबार निकाले थे जो कि लिखकर दो बार साथी ब्रह्मचारियों को ही दिखलाता था। इसकी देखा-देखी बड़े बढ़िया और सर्व प्रकट रूप से और भी अखबार निकालने का खेल होने लगा जो कि अब गुरुकुल की एक स्थिर वस्तु हो गयी है, परन्तु गुरुकुल में इसका प्रारम्भिक (आविष्कारक) अभी तक मैं अपने को ही समझता हूँ।

लम्बी बीमारी

यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि पीछे कहे हुए सब यत्नों के—पढ़ाई छुड़ाना, नाना औषध पिलाना, भोजन बदलना, व्यायाम कराना आदि के होने पर भी मैं दुबला ही रहा और मेरा रोग नहीं गया। कब्ज की यह दशा थी कि कई बार सात-सात दिन तक शौच नहीं होता था और मैं प्रायः अनीमे द्वारा शौच किया करता था। अन्तिम दिनों में भूख इतनी मारी गयी कि सचमुच मुझे यह ज्ञान नहीं रहा था कि भूख क्या होती है, क्योंकि घंटी बजती थी और अन्य लोग भोजन खाने जाते थे इसीलिए मैं भी कुछ खा लेता था। ऐसी अवस्था में सप्तम् श्रेणी के अन्त में मेरी कोष्ठबद्धता का पूरी तरह इलाज करने के लिए मुझे शैयाशायी किया गया। कुछ महीने गुरुकुल में पड़ा रहा, फिर लाहौर में प्रसिद्ध डाक्टरों का (डा० कुलभूषण जी का नाम याद है जो कि पीछे काश्मीर राज्य के मेडिकल आफिसर हुए थे) इलाज होता रहा और अन्त में जब निराशा ही हो गयी तो मेरे पिता जी (जो कि अब हमीरपुर जिले में थे) मुझे हमीरपुर ले गये। वहाँ अन्त में एक यूनानी हकीम के इलाज से मैं इतना अच्छा हुआ कि मुझे प्रतिदिन एक बार स्वयं शौच होने लगा और मैं चारपाई से उठ खड़ा हुआ। एवं लगभग नौ महीने बाद मैं आषाढ़ में गुरुकुल वापिस आया। यहाँ आते ही मुझे फिर कब्ज हो गयी। यहाँ दो महीने की छुट्टियाँ भी होने वाली थीं अतः दस-पंद्रह दिन बाद ही मुझे फिर हमीरपुर भेज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया गया, जहाँ से कि मैं फिर चार महीने लगाकर आया। अष्टम् श्रेणी की परीक्षा उत्तीर्ण कर नवम् श्रेणी में हो गया। अब यह मान लिया गया कि मेरे लिए गुरुकुल का जलवायु अच्छा नहीं है अत: अब से प्रतिवर्ष मुझे दो-तीन महीने के लिए हमीरपुर भेज दिया जाने लगा। यह मेरा आठवें साल का संक्षिप्त इतिहास है। ये बीमारी के ग्यारह-बारह महीने कहाँ कैसे बीते, क्या-क्या कठिनाइयाँ आई, इत्यादि वर्णनों की यहाँ कुछ आवश्यकता नहीं दीखती। मैं इस बीमारी की केवल निम्न तीन बातों का उल्लेख आवश्यक समझता हूँ जो कि मेरी मनः प्रवृत्ति को दिखलाने वाली हैं—

[1] बीमारी में मुझे जो कोई दवा दी जाती थी, उसका गुण आदि जाने बिना मुझे चैन नहीं आती थी। गुरुकुल में तो एक सुयोग्य शिवराज जी कम्पाउन्डर थे जो कि जब मेरी दवाई बदली जाती थी तो उसके गुण बतला देते थे और नया मिश्रण (मिक्चर) बनाते थे तो कभी-कभी मेरे कहने पर 'मैटीरिया मैडिका' से पढ़कर भी उन औषधों का गुण सुना देते थे। डाक्टर साहब भी जब कभी मुझे देखने आते थे तो मेरे पास एक आध सवाल पूछने के लिए तैयार रहता था, जैसे 'पेट में गुड़गुड़ क्यों होती है ?' 'सुद्दे बनते क्यों हैं ?' हमीरपुर में प्रारम्भ में एक दो महीने मेरे चिकित्सक वहाँ के सिविल सर्जन रहे थे जो कि एक विरक्त-स्वभाव बंगाली सज्जन थे। पिताजी जब उनसे मिलने जाते थे तो मेरी एक-एक प्रश्नावली भी साथ ले जाते थे जिसका कि वे कृपा पूर्वक उत्तर दे देते थे। मैं अब समझता हूँ कि वे सिविल सर्जन कितने सज्जन होंगे जो कि मेरे प्रश्नों से तग नहीं होते थे और समझता हूँ कि वे मन में सोचते होंगे कि यह कैसा अजब मरीज है। यूनानी हकीम साहिब तो रोज घर पर ही नब्ज देखने के लिए तशरीफ लाते थे। उनसे तो उसी समय जी खोलकर बातें पूछ लेता था। चारपाई पर मेरे तकिये के पास एक नोट बुक और पैन्सिल सदा रहती थी।

[2] संध्या जब से सीखी थी (प्रथम श्रेणी से ही) तभी से मैंने संध्या में कभी नागा नहीं की। इस बीमारी में भी वैसे ही मैं दोनों समय चारपाई पर पड़े-पड़े सदा संध्या करता रहा। कभी सिर दर्द या किसी ऐसे ही किसी कष्ट के कारण उस समय न हो सके तो मध्यरात्रि (या दोपहर) अथवा अगले दिन तक भी उसे पूरा करता था। 'न हो सके' इसलिए कहा है क्योंकि मेरी संध्या मन्त्रोच्चारणमात्र नहीं थी। यह अर्थ विचार रूप होती थी और आजकल एक-दो घंटे में पूरी होती थी। संध्या के अर्थ जब बताये गये थे तभी से संध्या अर्थ विचार के कारण लम्बी होने लगी थी। संध्या में मंत्रोच्चारण तो मैं कभी-कभी भूल भी जाता था, किन्तु संध्या का अर्थ जो कि आजकल दो घंटे की एक विचार शृंखला के रूप में था, उसमें से दिन में दो बार गुजर जाने पर मुझे बड़ी शान्ति और तृप्ति मिलती थी। डाक्टर लोग तो मेरी इस लम्बी संध्या पर हँसा करते थे। कहते थे 'अच्छा, खाली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़े यही करो' पर यह मैं ही जानता हूँ कि यह मेरे लिए कितने सुख का साधन थी और संध्या के बाद मेरा मन भी नया जीवन पाकर कैसा प्रफुल्लित होता था।

[3] तीसरी बात यह है कि अब मैं देखता हूँ कि मेरा मन आत्मसंयमी होता जाता था। मुझे जो परहेज बताये जाते थे उन्हें बड़ी आसानी से कर लेता था। कब्ज होने के विचार से सब स्वादिष्ट वस्तुएं खानी छोड़ दी थीं। दूसरी तरफ ऐलोपैथी की बुरे स्वाद की दवाईयां मजे से पीता था और शाक भाजी (जो कि स्वभावत: मुझे बुरी लगती थी और कभी नहीं खाता था) अब कटोरा भर-भरके खाने लगा था और विचार से ये अच्छी भी लगने लगी थीं (क्योंकि सुना था कि इनसे कब्ज हटती है) चिकित्सक का कहना पूरी तरह मानता था। डाक्टरों ने कहा कि चबाकर खाओ तो खूब चबाने लगा, उन्होंने घूमने को या कुछ और करने को कहा तो ठीक वैसा ही करता था। एक बार मैं पिताजी के पास से चाचा जी के यहाँ (जो कि तहसीलदार थे) चंदेड़ी इसी लिये गया कि वहाँ के प्रसिद्ध खरबूजे खाऊंगा (उन खरबूजों की स्तुति में श्लोक भी बना डाले)। बड़ी प्रतीक्षा के बाद पहुंचे, किन्तु जब खास उन खेतों पर जाने को तैयार हुए तो वहाँ के एक वैद्य ने यह कहकर कि 'ये खरबूजे न खाएं तो अच्छा है, खाने से कुछ लाभ नहीं' (मेरी समझ में) हल्के तौर पर मना किया। मैंने खरबूजे खाने की इच्छा बिल्कुल त्याग दी। लोगों ने मुझे फुसलाया कि वैद्य जी ने 'हानि कुछ नहीं बतलायी इत्यादि' और घोड़े पर मुझे खेतों तक ले भी गये कि शायद वहाँ जाकर मेरी इच्छा हो आएगी। वहाँ सबने खूब आनन्द से खरबूजे खाये और मैं आनन्द से देखता रहा और बातें करता रहा किन्तु खरबूजा जरा भी चखा तक नहीं। इसी प्रकार कई बड़े प्रलोभन होने पर भी मैंने स्वास्थ्य के नियम नहीं तोड़े थे। हमीरपुर में मुझे जी बहलाव के लिए ताश का खेल सिखाया गया था और लगभग साल भर तक नित्य नियमपूर्वक बड़े चाव से भोजन के बाद ताश खेला करता था। पर एक दिन जब जी में आया कि मुझे अब इस जी बहलाव की जरूरत नहीं है और यह व्यसन है तो उसी दिन मैंने इस बड़े प्रिय विषय को छोड़ दिया और फिर इसकी कभी इच्छा भी नहीं होती थी। उस समय के आत्म संयम के ऐसे छोटे-छोटे उदाहरण और कई कह सकता हूँ। ये छोटे-छोटे ही बड़ों के लिए मार्ग बनाते हैं।

पर मेरे दुर्बल मन में यह आत्म संयम का बल कहाँ से प्रकट होने लगा? यदि यह मुझसे पूछा जाय तो मेरा असंदिग्ध उत्तर है कि नित्य सध्या करने से— उस विचार शृंखला में से नित्य गुजरने से आता था और प्रतिदिन आता हुआ स्पष्ट दीखता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम् दशम् श्रेणी

बीमारी से उठ नवम् श्रेणी में पहुंचकर अब अपने आपको जागता हुआ सा दीखता हूँ। ऐसा मालूल होता है कि अब से तीन साल तक (विद्यालय के ये दो साल तथा महाविद्यालय का पहिला साल) मैं दुनिया में आँख खोलकर रहा हूं। अब मैं साथी ब्रह्मचारियों से मिलता था, हँसता भी था। यद्यपि मन अब भी निराश और शंकित रहता था, चिड़चिड़ा भी था तो भी अब मैं समाज में रहना आवश्यक समझने लगा था और इच्छापूर्वक अर्थात् कुछ यत्न से श्रेणी के विद्यार्थियों में मिलता था, सब बातों में शरीक होता था। नवम् दशम् श्रेणी (उच्च विद्यालय) की साहित्य संजीवनी सभा का डेढ़ साल तक (नवम् से दशम् के अन्त तक) मैं ही मंत्री रहा। लज्जालु था, बोलता कम था, तो मेरे मन्त्रित्व में सभा का बड़ा शानदार जन्मोत्सव मनाया गया और गुरुकुल में सबसे पहिला अभिनय (नाटक) किया गया। दशम् में मैं एक निजी दैनिक अखबार भी निकालता था। और अधिकारी परीक्षा में जब आठ दिन रह गये थे, तब मैंने साहित्य संजीवनी की मासिक पत्रिका 'चन्द्रिका' के दो अंकों को संपादन कर समाप्त किया था। गंगा में तैरा करता था। दशम् में एक गतका फरी के शिक्षक गुरुकुल में आये तो गतका आदि सीखने के लिए (विद्यालय में) सबसे पहिले मैंने ही अपना नाम लिखाया था। कुछ दिनों बाद अन्य भी कई सम्मिलित हुए।

श्रेणी के सब कामों में शरीक होता था। 'श्रेणीभक्ति' जिसका मैं गत प्रकरण में वर्णन कर चुका हूँ, मुझमें खूब थी। नवम् श्रेणी भर 'श्रेणीभक्ति' के सब कार्य खूब उत्साह से किये। इसीलिए दशम् के अन्त में मेरे इन गुरुकुलीय सार्वजनिक जीवन-विषयक विचारों में परिवर्तन आया। एक साल की क्रियात्मक 'श्रेणीभक्ति' करके कई घटनाओं का अनुभवी होकर यह देखा कि असल में 'श्रेणीभक्ति' के स्थान पर 'कुलभक्ति' धर्म है। अथवा (यों कहना चाहिये) श्रेणीभक्ति कुलभक्ति के अनुसार होनी चाहिये इसलिए दशम् के दूसरे सत्र में अनुचित कार्यों में सहायता न देने का आत्मिक बल (Moral courage) भी मुझ में आ गया था। तब से आम श्रेणी में (सामान्य बहुमत वालों में) सदा मिले रहने की अपेक्षा अपने समान विचार वाले थोड़े से साथियों से अधिक मिलने-जुलने लगा था। यह बात महाविद्यालय में पहुँचकर और भी बढ़ गयी थी।

बाह्य सार्वजनिक जीवन के विषय में भी विचार बदले। दक्षिणी अफ्रीका सत्याग्रह का हाल सुना, इसका इतिहास (भवानीदयाल रचित) भी पीछे से पढ़ा तो बम वालों की देशभक्ति की जगह पर सत्याग्रह की देशभक्ति अच्छी लगी। स्वामी सत्यदेव की अमेरिका सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ीं। संसार के कई देशभक्तों (मेजिनी आदि)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जीवन चरित्र तथा क्रान्ति के इतिहास पढ़े। अन्य साहित्य तथा पत्र-पत्रिकाओं के बहुत लेख पड़े। स्वामी विवेकानन्दजी का 'कर्मयोग' भी पढ़ा जिसका कि मुझ पर बहुत असर हुआ। इस प्रकार यह सब पढ़ लिखकर और सोच विचार कर इन दो वर्षों में मैंने अगले जीवन के विषय में यह निश्चय किया कि मैं देश सेवा में लगूंगा। यही जीवन का उद्देश्य बना। इसीलिये यद्यपि मुझे सबसे प्रिय विषय तो 'गणित' लगता था तो भी महाविद्यालय में जाकर इतिहास अर्थशास्त्र विषय लेने का निश्चय किया। यह भी सोचा कि स्नातक होकर अपने गाँव में रहकर खेती करूंगा और सार्वजनिक जीवन में भाग लूंगा। तब तक मैं यह बिल्कुल ख्याल तक न करता था कि कभी मेरा विचार योग सीखने की तरफ भी हो सकेगा। अपना जीवनोद्देश्य ग्राम में कृषि करते हुए देश सेवा करना स्थिर कर लिया था।

पढ़ाई के विषयों में से किस विषय में मन को रुचि होती है, इससे भी मन की प्रवृत्ति पता लगती है। अत: यह बतला दूँ कि मुझे गणित और साहित्य ये दो विषय बहुत प्रिय थे। बहुतों को इन दो विषयों का जोड़ विचित्र मालूम होगा, किन्तु मुझे गणित के प्रश्न हल करने में बड़ा ही आनन्द आता था और काव्य के रस का भी मैं कुछ रसिक था। इन विषयों की पढ़ाई बन्द होने पर भी स्वयं देखा करता था। व्याकरण (जो कि बहुतों को बड़ा कठिन लगता था) मुझे आसान प्रतीत होता था, इसमें कभी परिश्रम नहीं किया। व्याकरण के विषय में कुछ ऐसा लगता था कि मानो यह पूर्वजन्म में पढ़ी हुई वस्तु है। रटना तो कभी किसी चीज का नही किया। दूसरी तरफ आलेख्य, भूगोल और इतिहास कभी-कभी कठिन लगते थे, प्रिय तो नहीं थे। गणित के विषय को लेकर मेरे सामने इस बात का दृष्टान्त भी सामने आ गया कि अच्छे अध्यापक का कितना महत्त्व होता है। छोटी श्रेणियों में हमें एक मोहन लाल जी गणित पढ़ाते थे। जब तक वे पढ़ाते रहे मुझे गणित नहीं आई, क्योंकि वे कुछ समझाते नहीं थे। पर मास्टर हरिगोपाल जी के गणिताध्यापक होते ही मैं गणित का अपनी श्रेणी में सबसे अच्छा विद्यार्थी हो गया। वे बड़े निपुण अध्यापक थे।

नवम् और दशम् श्रेणी में भी मैं तीन महीने के लिए हमीरपुर भेजा गया था। हमीरपुर से जब मैं गुरुकुल आता था तो पिताजी के वियोग का दु:ख होता था। और यह सोचकर और भी कष्ट होता था कि जब पिताजी का बिल्कुल वियोग (देहयात्रा की पूर्ति) हो जायेगी तो कितना दु:ख होगा। मोहवश एक बार उनको 'आयुर्दाऽग्नेसि' आदि एक दो आयुवर्धक प्रार्थना के मंत्र लिखकर दे आया था कि आप यह प्रार्थना सदा किया करें। गुरुकुल आकर जब यह वियोग दु:ख होता था तो मेरा मन चंचल न हो, इस विषयक मनन चिंतन में लगा रहता था। चिंतन से जिन विचारों द्वारा मुझे कुछ शान्ति मिलती थी तो धीरे-धीरे सोचकर ऐसे सात-आठ विचार मैंने एक कापी पर लिख लिए थे। तब प्राय: इन्हें पढ़कर मन को संभाला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था। आगे भी मैं प्रतिवर्ष घर जाता रहा। आगे-आगे यह दुःख कम-कम ही होता गया।

दशम् में सबसे पहिले स्वप्न दोष का अनुभव हुआ। शायद दो बार सोते हुए वीर्यस्राव हुआ। किन्तु दोनों बार कोई भी स्वप्न न आकर वैसे ही बिना जाने स्राव हुआ। दशम् तक मुझे 'काम विचार' का कुछ भी पता न था। यह स्वप्न आकर हुआ करता है, यह भी पीछे पता लगा। जब ऐसा दूसरी बार हुआ तो मैंने आचार्यजी (प्रधानजी) के पास जाकर बतलाया। उन्होंने बड़े वात्सल्य से सांत्वना दी और कृपा करके मसाने की इस कमजोरी को हटाने की एक दो विधियां बतलायीं।

यहाँ विद्यालय का प्रकरण समाप्त करते हुए मैं अपने मनका एक स्वभाव और वर्णन कर दूँ, जो कि आजकल प्रकट हुआ था और आगे योग-क्रियाओं के सम्बन्ध में काम आवेगा। मेरी यह आदत थी कि पढ़ते हुए मैं अपने हाथ पैर की स्थिति न जानते हुए (unconsciously) बदलता रहता था पर मेरा मन पढ़ाई में पूरी तरह होता था। जिन सुयोग्य अध्यापक जी का मैंने गणित के प्रकरण में उल्लेख किया है उन्हीं माननीय मास्टर हरिगोपाल जी ने मुझे पीछे (स्नातक होने पर) बताया कि तुम जानते हो मैं किसी भी विद्यार्थी को ठीक बैठा न देखता था तो तुरन्त उसे टोकता था—पैर बैंच से नीचे उतरवाता था या हाथों को निश्चेष्ट रखने कहता था किन्तु यद्यपि तुम भी अपने हाथ पैर ऊपर नीचे किया करते थे पर मैं यह जानता था कि तुम्हारा मन व्याख्यान सुनने में ही होता है अतः मैंने तुम्हें कभी कुछ नहीं कहा।

जिज्ञासा का उदय

अब मैं महाविद्यालय का ब्रह्मचारी हो गया। गणित के बंगाली अध्यापकजी के आग्रह होने पर भी मैंने गणित विषय न लिया और मैं 'इतिहास अर्थशास्त्र' का विद्यार्थी बना। यद्यपि इस वर्ष गुरुकुलीय अखबार निकालना और सभायें चलाना तो मैंने बिल्कुल नहीं किया (क्योंकि इसका शौक मैं पूरा कर चुका था और इसकी अपने लिए कुछ आवश्यकता नहीं है, यह जान चुका था) मैं किसी भी सभा का सभासद तक नहीं बना, किन्तु अन्य सब प्रकार से पिछले दो वर्षों की अपेक्षा भी इस एकादश श्रेणी में अधिक जागता रहा। गुरुकुलीय सार्वजनिक जीवन के सब कार्य जोश से करता रहा। छोटे बड़े सबसे खूब परिचय प्राप्त करके रहा। गंगा में बहुत तैरा। गंगा के पार जाना तो तैरने के दिनों से नित्य कर्म था, कभी-कभी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर एक दो मील से भी मैं एक मंडली में आता था। आस-पास के जंगलों और पहाड़ों पर खूब फिरा। गुरुकुलीय जीवन जानने वालों को यह यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं दशम् श्रेणी तक कभी चंडी पहाड़ पर भी नहीं गया था। पर इस साल सब कसर निकाल ली, शायद पाँच छः बार चंडी पर गया। प्रति सप्ताह घूमने जाता था। डाक्टरजी के कथन से कुश्ती लड़ने का व्यायाम भी करता था, दूसरी तरफ अपने को 'अपटुडेट' अखबार पढ़ने वाला बनाया। शाम को हस्पताल के रोगियों में घूमते हुए बड़े चाव से रोज के समाचार सुनाया करता था। लोकसेवा में आयुर्वेद काम आयेगा, अतः आयुर्वेद पढ़ना भी (डा० संगतराम जी से) शुरू किया। एवं अन्य इधर-उधर की व्यावहारिक बातें जानने में भी मन लगाता रहा, परन्तु अपनी महाविद्यालय की पढ़ाई पर कुछ भी ध्यान न दिया। इस वर्ष महाविद्यालय में आने का आनन्द लेता रहा। इसीलिए वार्षिक परीक्षा में मुझे अंग्रेजी में दो कृपांक दिए गए, यह सुनने की बड़ी भारी लज्जा उठानी पड़ी। (अपने लिए अनुत्तीर्ण होना तो क्या इतना भी मैं असंभव समझता था।)

इस वर्ष के दूसरे सत्र से विद्यार्थीपन की एक मैत्री का भी अनुभव किया। विद्यालय की नवम् श्रेणी के एक विद्यार्थी में मेरा इतना अनुराग हो गया था कि वह छुट्टी के दिन या किसी समय मिलता था तो प्रसन्नता होती थी, नहीं मिलता था तो चिन्ता होती थी। मैं बहुत बार उसके स्मरण और प्रतीक्षा में रहता था। अगले वर्ष जब मैं छुट्टियों में हमीरपुर गया तो उसे चिट्ठी लिखने और उसका पत्र पाने में बड़ी प्रसन्नता रहती थी। इस मैत्री का प्रारम्भ ऐसे हुआ था कि एक प्रतिष्ठित स्नातक जी ने मुझे विद्यालय के तीन चार उन्नतिशील विद्यार्थियों के नाम बताये थे और आग्रह किया था कि इन्हें सहायता देते रहना। उन्हीं विद्यार्थियों में यह एक था और उन दिनों विशेष प्रिय लगा था। यह विशेष अनुराग मुझे विचार द्वारा कुछ ज्ञान देता हुआ दूसरे वर्ष (द्वादश) के अन्त तक समाप्त हो गया था और जब एक सायंकाल इस आसक्ति के बन्धन से छुटकारे की अनुभूति हुई तो मैंने प्रथम बार एक कविता (तुकबन्दी) की। यह बात खूब याद है। तब से यह विद्यार्थी मेरे लिए अन्यों की तरह अतीव सामान्य रह गया था। मैं समझता हूँ कि इसी से मैंने कुछ यह अनुभव प्राप्त कर लिया है कि संसार में अनुराग या प्रेमासक्ति क्या वस्तु है और इसकी अवश्य कुछ झलक पा ली है कि परमात्मा ने प्रत्येक प्राणी में किस पवित्र प्रयोजन के लिए—किस उच्च उद्देश्य के लिए रखा है।

द्वादश श्रेणी में पहुँचकर मेरा तैरना, घूमना, नित्य अखबार पढ़ना आदि बन्द हो गया। इनसे भी मैं एक साल में ही तृप्त हो गया। नित्य अखबार पढ़ने से कुछ लाभ न देखा, आवश्यक समाचार मुझे पता लग जाते थे फिर जो कुछ स्वयं पढ़ने योग्य होता था, ऐसा ही कोई लेख आदि मैं स्वयं पढ़ लेता था। अब

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा मन गम्भीर साहित्य पढ़ने की तरफ और अपनी पढ़ाई की तरफ फिरा। अकेले बैठकर विचार पूर्वक खूब पढ़ना तथा लिखना यह मेरी द्वादश श्रेणी की विशेषता रही।

आश्रम के शोर से पृथक् पढ़ने के लिए अब जो एकान्त स्थान की इच्छा हुई तो मेरी नजर प्रधान जी के बंगले के पास के एक पंचकुटी नामक स्थान की तरफ गयी (जो कि खाली था) और मैंने सोचा कि इन पाँच कुटियों में से एक कुटी में पढ़ने के लिए रहने की आज्ञा मैं प्रधान जी से प्राप्त करूंगा। किन्तु एक विद्यार्थी से सुना कि प्रधान जी एकान्त में रहने के खिलाफ हैं। उसने सुनाया था कि प्रधान जी ने एकान्त चाहने वालों को उत्तर दिया था 'क्या तुम चाहते हो कि काम, क्रोध, लोभ आदि ही तुम्हारे साथी रह जायें?' इसलिए प्रधान जी से एकान्त कुटी में रहने की आज्ञा माँगते हुए मैं डरा। किन्तु मन न माना और प्रधान जी से जा ही पूछा। उन्होंने भी तुरन्त आज्ञा बल्कि लिखित आज्ञा—प्रदान कर दी। न जाने उस विद्यार्थी का कहना कहाँ तक सच था किन्तु प्रधान जी ने मुझे यह नहीं कहा कि एकान्त में रहने द्वारा क्या तुम काम, क्रोध, लोभ आदि को ही अपना साथी रहने देना चाहते हो? बल्कि कुछ समय तक मुझे 'एकान्त सेवी' नाम से पुकारते रहे। 'कहो एकान्त सेवी क्या हाल है?' इस तरह मुझे देखकर कहा करते। उस समय मुझे सचमुच यह समझ में नहीं आता था कि अकेले में काम, क्रोध आदि ही कैसे साथी हो सकते हैं ('उदासी' या 'आलस्य' साथी हो सकते हैं यह तो समझता था), यद्यपि बड़े होकर प्रधान जी के उस वाक्य का मतलब जान सकता हूँ। प्रधान जी ने ठीक मुझे एकान्त सेवन का अधिकारी समझा, यदि किसी और को न भी समझा हो। अस्तु।

मैं दिन भर इस कुटी में रहता था और पढ़ता था। जेम्स ऐलन की पुस्तकें बड़ी अच्छी लगीं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर की गीतांजलि, साधना तथा स्वदेश आदि पुस्तकें बड़े ध्यान से पढ़ता था। इसी तरह मैंने सायंकाल के (हाकी, फुटबाल आदि) खेल से भी छुट्टी प्राप्त कर ली थी, क्योंकि मैं स्वयं अपना व्यायाम सदा नियम पूर्वक शाम को भी कर लिया करता था। जाड़ों में सायंकाल के कुछ पहिले बड़ी गंगा पर एकान्त में जहाँ व्यायाम करता था वहाँ रामतीर्थ की पुस्तकें तथा वड्सवर्थ की कुछ कविताएँ भी मननपूर्वक पढ़ा करता था और आनन्दित होता था।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि द्वादश श्रेणी में मुझमें परिवर्तन आ रहा था। असल में मेरा फिर सोने का समय आने वाला था—नवम् दशम् और एकादशम् यह तीन साल मेरे संसार के लिए जागते रहने के बाद फिर त्रयोदश श्रेणी से मुझ पर एक लम्बी रात्रि आने वाली थी जिसमें कि मैं संसार के लिए सोऊँगा और यह द्वादश श्रेणी का वर्ष इस दिन और रात को मिलाने वाला संध्याकाल था। इस बार का सोना बेशक बालकपन के (अष्टम् श्रेणी तक के) सोने से स्पष्टतया भिन्न प्रकार का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोना था। यह जानते हुए सोना था। इस आँख मीचने का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ कि इस वर्ष के शायद अन्तिम दिनों में प्रतिदिन सबेरे उठने पर मन घबराता था। मन में यह प्रश्न उठते थे कि मैं क्या हूँ - सँसार में क्यों आया हूँ ? संसार क्या है ? मैं यह सब क्यों करता हूँ ? इसका उद्देश्य क्या है ? कुछ समय तक तो ऐसा रहा कि प्रतिदिन दिन में गुरुकुल के नित्य के कर्त्तव्य चक्र में (Routine) पड़कर तो ये प्रश्न मैं भूल जाता था। पर अगले दिन सोकर उठने पर फिर मेरा मन ऐसा ही होता था और इन प्रश्नों के मारे कुछ समझ नहीं पड़ता था कि मैं क्या करूं। किन्तु आगे धीरे-धीरे ये प्रश्न दिन में भी याद रहने लगे और मुझे दिन भर तंग करने लगे।

यह जो अब मुझमें जिज्ञासा का उदय हुआ, इसके प्रारम्भिक कारण अब तक लिखे गए। इस मन के इतिहास में विचारक पाठक ढूंढ़ सकते हैं। पीछे की सब बातें प्राय: इसीलिए लिखी हैं। जिज्ञासा का क्षेत्र धीरे-धीरे तैयार हुआ था। और शायद इसका उत्तेजक कारण द्वादश श्रेणी का गम्भीर अध्ययन और विचार हुआ। कई लोग जो समझते हैं कि ऐसे प्रश्न निर्बलता और रोगी होने के कारण उठा करते हैं (संसार में जो लोग खूब खाते पीते और आनन्द करते हैं, उनके पास ये फिजूल के प्रश्न फटकने तक नहीं पाते), वहाँ मैं इतना कह दूं कि अब मेरा मन पहिले से निःसंदेह बलवान था और कब्ज का भी अब कष्ट नहीं था। एकादश में और द्वादश में ही मैं दुनियां में बड़े आनन्द से रहा हूँ। एकादश में एक दिन कुछ ज्वर हो जाने के अतिरिक्त इन दोनों वर्ष मुझे कुछ रोग तक भी नहीं हुआ।

लाला मुरारी लाल जी

जब इस प्रकार मेरा मन इन रहस्य विषयक प्रश्नों की उलझ में विचारग्रस्त और चिन्तामग्न रहने लगा तो स्वभावत: मैंने हर एक बात को प्रारम्भ से—मूल से—विचारना शुरू किया। इस जीवन का उद्देश्य क्या है। इस प्रश्न को यह उत्तर देकर शांत किया कि 'मनुष्य जीवन का उद्देश्य पता लगाना' ही अभी मेरा उद्देश्य है। हर एक बात को प्रारम्भ से विचारना शुरू करने पर अपने और जगत् के सम्बन्ध में सोचते हुए संस्कारवश 'परमात्मा' का ध्यान बार-बार आता था, अतः मैंने परमात्मा के विचारको भी एक बार दिल से निकाल दिया। एक दिन शाम को पंचकुटी के उसी कमरे में खड़े होकर पैर पटककर कहा 'जब परमात्मा अनुभव नहीं होता तो उसे मैं क्यों यों ही माने हुए हूँ ?' इस प्रकार अपने अन्दर से मानो परमेश्वर को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल दिया। एवं उस सायंकाल से लेकर लगभग एक-दो दिन तक मैं नास्तिक भी रहा। पर इससे अधिक देर तक मैं परमात्मा को नहीं निकाले रख सका। न जाने क्या हुआ कि एक प्रबल आवेश की तरह कुछ ऐसा विचार जोर से आया 'और सब कुछ चाहे न हो पर परमात्मा तो सबकी जड़ में है, सबका प्राण है, उसे 'नहीं' नहीं किया जा सकता।' इस प्रकार मेरे मन में बड़ी-बड़ी उलट-पलट होने लगीं। मैं कई श्रद्धेय अध्यापकों की शरण भी पहुँचा। एकादश द्वादश श्रेणी में वेद पढ़कर वेदों के ईश्वरीय होने में बिल्कुल श्रद्धा नहीं रही थी और मैं वेद के घन्टे को बिल्कुल व्यर्थ समझने लगा था। इस वेद विषय में सत्य ज्ञान कैसे प्राप्त होवे इत्यादि विषयों पर मैंने दो मान्य उपाध्यायों से भी गहराई में बातचीत की। उन्होंने भी गम्भीरता से कई बातें समझाईं किन्तु मुझे कुछ विशेष सन्तोष नहीं हुआ। अन्त में कई महीने की हार्दिक उथल-पुथल और अशान्ति के बाद जिस व्यक्ति द्वारा मुझे शान्ति मिली और मेरी व्याकुलता हटी, वह थे गुरुकुल के कार्यालय (दफ्तर) के अध्यक्ष लाला मुरारी लाल जी।

यह एक विचित्र पुरुष थे। साधारणतया ये लोगों में बदनाम थे। इनसे आम लोग डरते थे। परन्तु इनका यह रौद्र रूप ही (जो कि दफ्तर में तथा प्रबन्ध सम्बन्धी अन्य कार्यों में प्रकट होता था) प्रायः लोगों को दिखता था। इनका सौम्य रूप बहुत कम लोगों को विदित था। इनका जीवन बड़ा ही नियमित था। वैसे तो गुरुकुल के कार्यालयाध्यक्ष का कार्य ही बड़े झंझट और झमेले का है, चित्त को चौबीस घंटे विक्षिप्त रखने को पर्याप्त है। किन्तु लालाजी एक दो वर्ष तक तो क्रियात्मक तौर पर गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का भी कार्य 'क्लर्क की कुरसी' पर बैठकर ही करते थे। पर उत्तरदातृत्व के, व्यग्रता और चिंता के इस सब कार्य को ठीक निभाते हुए भी उनकी प्रातःकाल की स्थिर आसन से बैठकर एक घंटा संध्या तथा इसके उपरान्त एक दो घंटा स्वाध्याय, एवं सायंकाल भी पढ़ना-पढ़ाना, घूमना और नौ बजे तक सो जाना किसी ने टलते नहीं देखा। केवल इतना ही नहीं था। जहाँ वे गुरुकुल के बाह्य संचालन के स्तम्भ थे, वैसे ही वे गुरुकुल की आंतरिक उन्नति के भी स्तम्भ थे, क्योंकि चुपके-चुपके ब्रह्मचर्य और सदाचार का जितना दृढ़ प्रचार ये विद्यार्थियों में करते थे, उतना गुरुकुल में किसी और ने नहीं किया है। इनका विद्यार्थियों से मिलने का समय चार बजे दफ्तर की समाप्ति के बाद से आठ बजे तक के बीच में प्रायः होता था। उनसे मिलने वाले लोग ही उनके इस बड़े सौम्य रूप को जानते थे। जो कोई उनसे समीपता से मिलता था, वह बिना प्रभावित हुए नहीं रहता था। मि० पीयर्सन और मि० फिलिप्स ये दो योरोपियन उनके बड़े भक्त हो गये थे। इनका अध्ययन बहुत था। पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थ इन्होंने बहुत पढ़े ही थे किन्तु संस्कृत न जानते हुए भी उन्होंने अपने सब शास्त्रादिक भी (बहुत कुछ अंग्रेजी द्वारा) खूब मनन किए थे। यह सब कुछ पढ़कर उन्होंने एक सत्य ज्ञान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

463 / 3
78359

वास्तव में उपलब्ध किया था। इस 'ज्ञान' का मैं उन्हें ऋषि कह सकता हूँ। उन्हें सर्वत्र यही दिखलाई देता था। आशा है उनके जीवन का यह संक्षिप्त वर्णन पाठकों को लाभदायक हो सकेगा। इसी चौबीस घंटे के परिमित समय में इतना अधिक कार्य करने का उनका सामर्थ्य जिसका कि मूल मन्त्र उनके जीवन की नियमितता थी हमारे लिये ग्रहण करने को यही वस्तु बहुत है।

97301

मेरी उनके पास पहुंच कैसे हुई इसकी कथा इस प्रकार है। लखनऊ की प्रसिद्ध कांग्रेस के आशाजनक समाचार सुनने के बाद मेरी इसी कुटी में बैठे हुए कई साथियों में से एक ने यह प्रस्ताव किया कि हमें मिलकर देश सेवा की तैयारी करनी चाहिए। बात चलते-चलते यह विचार पक्का हो गया और हमने एक समिति बनाई जिसमें हम छः सात विद्यार्थी थे। हम में से तीन लाला मुरारीलाल जी के शिष्य थे (जैसा कि मुझे पता लगा) इस समिति में हमने एक तरफ तो दस-बारह तपस्या के नियम बनाये जिनका उल्लंघन होने पर एक निश्चित प्रायश्चित्त करना होता था जो कि छुट्टी के दिन शाम को (उस समय हम भोजन नहीं करते थे) समिति की बैठक में बतलाना होता था और दूसरी तरफ एक विचार-समिति में हम देश-सेवा की विचार विधि के विषय में विचार विनिमय किया करते थे। इन तपस्या के नियमों से यद्यपि मुझे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ (क्योंकि मैं इन्हें पहले से पालता था और जैसा आगे लिखूंगा दिनचर्या भी लिखा करता था), तो भी अन्य साथियों को बड़ा लाभ हुआ बल्कि सब महाविद्यालय को लाभ हुआ और यह समिति देर तक चलती रही। किन्तु जो यह विचार विनिमय की समिति थी, इसमें हम प्रायः किसी भी निश्चय तक नहीं पहुंच सकते थे। इसका कारण यह था कि ये जो तीन लाला जी के शिष्य थे, इनके विचार अन्यों से मौलिक रूप में भिन्न होते थे। अतः यह समिति शीघ्र बन्द हो गई। पर मेरा यह एक लाभ कर गई। मेरी प्रवृत्ति देखकर इन लाला जी के शिष्यों की इच्छा हुई कि मुझे लाला जी से परिचित कराना चाहिये। ये लोग (विशेषतया एक मेरी कुटी के पास रहने वाला विद्यार्थी) मुझसे लाला जी के विषय में बातें भी करने लगे। इधर मुझमें तो यह संसार-रहस्य जानने की जिज्ञासा प्रबल हो चुकी थी जो मुझे चिंतित रखती थी। अतः मेरी भी इच्छा हुई कि किसी तरह उनसे मिलूं और उनके विचारों से लाभ उठाऊं। इतने में जब मैं द्वादश से त्रयोदश में हुआ, उस वर्ष जो नई श्रेणी विद्यालय से आयी, उसमें के एक विद्यार्थी को लाला जी ने महाविद्यालय में जाने से पूर्व कुछ व्याख्यान देकर भेजा है यह मुझे कहीं से पता चला। मैं उस छोटे विद्यार्थी से ही उन व्याख्यानों को सुनने को उद्यत हो गया। यह पता लगने पर लाला जी ने स्वयं कहला भेजा कि मैं ही देवशर्मा को वह बात बतला दूंगा, वह आज चार बजे मेरे पास आये। मैं उस दिन चार बजे बड़े आनन्द से उपस्थित हुआ। पहले दिन उन्होंने उपयोगितावाद (Utility) पर व्याख्यान दिया। ऐसे दस दिन तक दस व्याख्यान

पुस्तकालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिये। मैं प्रतिदिन के व्याख्यान आकर लिख लेता था। वे वहाँ नोट नहीं करने देते थे, केवल कोई-कोई शब्द पैंसिल से लिखकर समझाते जाते थे। मैं इन शब्दों से ही सोचकर पूरा व्याख्यान लिख लेता था। मेरी इस दत्तचित्तता और लगन को देखकर लालाजी भी प्रसन्न हुए। इन सब व्याख्यानों से अन्त में परिणाम यह निकला कि एक विद्या (Science) है—अध्यात्म-विद्या या योग-विद्या या Spiritualism जिसको कि जानना चाहिए, जिसके बिना जाने (हम चाहे कितने यत्न कर लें) शान्ति निश्चिन्तता और सफलता नहीं मिल सकती। वह विद्या कहाँ से मिले ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक-दो दिन के बाद जो कुछ प्राण विद्या का रहस्य वे जानते थे, वह मुझे बतलाने की कृपा की और कहा कि अभी इसे करो। इस प्रकार योग की दिशा में मेरे वे पहिले गुरु हुए। उनके व्याख्यानों से मेरे बहुत से विचारों में परिवर्त्तन हुआ। सबसे बड़ा परिवर्त्तन यह हुआ कि मुझे अपने प्राचीन शास्त्रों में श्रद्धा हुई। वेद में भी श्रद्धा हुई। यह मैंने समझ लिया कि इस समय जो हमने वेद के अर्थ पढ़े हैं, इनसे अतिरिक्त इनके असली अर्थ कुछ और हैं और यह भी संकल्प हुआ कि आगे बड़ा होकर जब मैं इस अध्यात्म-विद्या को जान लूंगा तो कभी मैं स्वयं वेद पढ़ूंगा और ठीक अर्थ जानूंगा। लाला जी के सत्संग से ब्रह्मचर्य के विषय में भी बड़े पक्के विचार हो गये। लाला जी से मिलने वाले प्रत्येक विद्यार्थी में प्रायः सम्पूर्ण आयु ब्रह्मचारी रहने का संकल्प अवश्य हुआ करता था।

स्वामी पार्टी

गत प्रकरण में मैंने जो उल्लेख किया है कि 'हमने एक समिति बनायी जिसमें हम छः सात विथार्थी थे' उस समिति के हम इन विद्यार्थियों को दूसरे लोग जिस नाम से पुकारते थे वह था 'स्वामी पार्टी' बल्कि 'स्यामी पार्टी'। एक उपाध्याय जी हम लोगों को Idealistic band कहा करते थे। असल में सदा ही आदर्शवाद और व्यवहारवाद में टक्कर होती रहती है। सो हमारे विद्यार्थी काल में, गुरुकुल के हम विद्यार्थियों में भी यह टक्कर होती रही। गुरुकुल की स्थापना ही एक आदर्शवादी—जिन्हें हम 'प्रधान जी' कहते थे, बाहर केलोग 'महात्मा मुन्शीराम' कहते थे, मास्टर काशीराम जी जैसे लोग 'वह बंगले वाला' बोला करते थे—की प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा हुई थी, अतः कम से कम प्रारम्भ में गुरुकुल में आदर्शवाद का ही जोर था। गुरुकुल में नाना प्रकार के आदर्शवादी खिंचकर आते थे। सुशीलचन्द्र लाहिड़ी (जो पीछे राजद्रोह में फांसी चढ़े) हमारी श्रेणी के अधिष्ठाता रहे थे। वे जमीन पर सोते थे तथा कठोर तपस्या का जीवन बिताते थे। वे कहा करते थे कि आजकल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद पढ़ने के सभी अनधिकारी हैं, क्योंकि सब शूद्र हैं, गुलाम हैं। वे बंगाली थे तो एक 'आप्पाराव' महाराष्ट्रीय थे। प्रसिद्ध पं० सातवलेकरजी तो थे ही। इन सब प्रभावों के कारण हमारे मनों में आदर्शवाद जागता था। उस हमारी समिति की स्थापना भी 1916 की लखनऊ की कांग्रेस में दोनों (गरम नरम) दलों की एकता होने के आशापूर्ण समाचार के साथ हुई थी।

बम चलाने वाले देशभक्तों की चर्चा हम सुनते थे। अखबार पढ़ते थे। बालकपन में नकल करने की जो प्रवृत्ति होती है, उसी के अनुसार सातवीं श्रेणी में ही मैंने 'अज्ञात' और 'काल' नाम से दो अखबार निकालने का अनुकरणात्मक खेल रचा था, यह खूब याद है। अखबार अपने हाथ से लिखकर कुछ मित्रों को दिखा दिया जाता था। उस समय की अपनी समझ के अनुसार उसमें गरम बातें लिखा करता था। बम बनाना भी सीखना आरम्भ किया था, यह भी बताने में अब कोई हर्ज नहीं है। जब लहरी जी (लाहिड़ी जी) जैसे बड़ों की प्रेरणा से आदर्शवाद की लहर उठती थी तो जी में आता था कि हमें गुरुकुल में अधिक तपस्वी के अधिक ब्रह्मचारी होना चाहिये। गुरुकुल में जब ढील आराम पसन्दगी को बढ़ावा मिलता था तब हमारी यह समिति (लोगों की ताने की भाषा में कहें तो यह 'स्यामी पार्टी') उसका विरोध करती थी। मैं भी पार्टी का एक सदस्य था। अधिक सक्रिय विरोध करने वाले चाहे दूसरे हों (जो अधिक राजसिक प्रकृति के थे) पर मेरा भी उस समिति में (पार्टी में) एक अच्छा (आदरणीय सा) स्थान था। हम मिठाइयां खाने का विरोध करते थे। घी, दूध, मट्ठा आदि हमें स्वाभाविक रूप में मिलना चाहिये, यह हमारी मांग थी। ऐसे ही अन्य तपस्या के नियमों को हम चलाना चाहते थे। गत प्रकरण में मैंने जो लिखा है कि इस समिति से 'बल्कि सब महाविद्यालय को लाभ हुआ' वह इसी अर्थ में लिखा है। एक बार प्रधान जी ने (महात्मा मुन्शीराम जी ने) नवम् और दशम् श्रेणी को प्रतिदिन प्रातः काल हमारे आश्रम में आकर एक महीना भर ब्रह्मचर्य के विषय में उपदेश दिये थे। उसका कारण यही था कि एक बार मैंने उनसे इस विषय में एकान्त में बातचीत की थी। उसी पर प्रधान जी ने यह निश्चय किया था कि 'अच्छा, मैं नवम्-दशम् श्रेणी के आश्रम में ही आकर सब ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचर्य की महिमा बताऊंगा।' इसी तरह नया वर्ष आरम्भ होने पर महाविद्यालय विभाग में जो कमरों के स्थानों की पॉलिटिक्स चलती थी, उसे रोकने के लिए शायद 13वीं श्रेणी के प्रारम्भ में महाविद्यालय आश्रम में सबका स्थान (किस कमरे में कौन-कौन से चार विद्यार्थी रहें) यह ऊपर से—प्रधान जी द्वारा—निश्चित होकर आया था। सो वह स्थान—निश्चित असल में मेरा ही—अपने साथियों की सलाह से—बनाया हुआ था, वही प्रधान जी द्वारा लागू कर दिया गया था। इस प्रकार हम लोग गुरुकुल में सुधार करने का प्रयत्न किया करते थे। व्यवहार में जो स्वभावतः ढील आ जाती थी, उसे हम फिर आदर्शवाद की ओर मोड़ने का यत्न करते थे (उसमें कुछ स्थायी सफलता हो या न हो)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुलीय आदर्शवाद से प्रभावित हो जो लोग बाहर आते थे उनमें से योरोपीयन भी होते थे जो प्राय: पक्की धर्मशाला में ठहराये जाते थे। एक फ्रैन्च प्रसिद्ध पुरुष 'पाल रिशार' भी गुरुकुल में आकर कुछ महीने रहे थे। उस समय तो यह तो पता नहीं था कि वे श्री अरविंदाश्रम पांडिचेरी की 'श्रीमां' के पति थे, पर इतना पता था कि बम चलाने वाले गरम पार्टी के अरविंद घोष जो कि आजकल पांडिचेरी में योग साधना कर रहे हैं, और वहां से 'आर्य' पत्रिका निकाल रहे हैं, उनके पास से ये आये हैं। प्रसंगवश यह भी बता दूं कि लाला मुरारी लाल जी भी अरविन्द घोष की 'आर्य' पत्रिका पढ़ा करते थे तथा उसके नियमित ग्राहक थे। इन पाल रिशार के पास जो विद्यार्थी जाया करते थे, उनमें मैं भी एक था। उनके साथ हम विद्यार्थियों के सम्पर्क में आने की कई मनोरंजक बातें सुनायी जा सकती हैं, पर यहाँ पाल रिशार जी का उल्लेख करने का अभिप्राय यह है कि हमारे मनों के लिए 'अंग्रेजों को भारत से निकालना' 'आर्य' होना और तपस्या तथा योगाभ्यास, ये चीजें एक ही श्रेणी की, सजातीय सी थीं। मैंने पाल रिशार से ब्रह्मचर्य, वीर्यरक्षा और योगसाधना की बातें की थीं। उनका चेहरा तथा बातचीत का ढंग प्रभावोत्पादक होता था।

मैं लिख चुका हूँ कि दशम् श्रेणी तक देश सेवा के रूप में मेरी दृष्टि अंग्रेजों को भारत से निकाल स्वाधीन होने की तरफ ही थी, पर लाला जी से मिलने पर जो विचार बदले तो अपनी प्राचीन सभ्यता, योग, तपस्या की तरफ ध्यान गया। इस सबकी मेरी पृष्ठभूमि लाहिड़ी जी या अरविन्द घोष के साथी पाल रिशार आदि से मिली प्रेरणाओं से बनी थी और इन्हीं विचारों को क्रियान्वित करने के लिए ही हमने यह समिति या 'पार्टी' बनायी थी।

एक बार मुझे याद है कि पांच दिन की लगातार छुट्टी का अवसर आने पर जब एक हमारी 'स्वामी पार्टी' के विद्यार्थी ने इस छुट्टी के समय का उपयोग योग सीखने जाने में करना चाहा तो मैंने उसे सब सहायता दी। उसे गेरुवे कपड़े पहना कर, मुख पर राख मलकर, उसे गंगा के पुल तक (जहाँ हमारे पकड़े जाने का डर होता था वहाँ तक) स्वयं पहुंचाकर आया था।

हमारी यह पार्टी हमारे काल में तो रही ही थी बल्कि उसके बाद भी कुछ वर्षों तक रही, इतना मुझे अच्छी तरह पता है। लाला मुरारीलाल जी इस 'पार्टी' के प्रेरणाप्रदाता नहीं तो नैतिक सहायक माने ही जाते थे तथा प्रधान जी का हमारे सिर पर हाथ था ही।

प्रधान जी (महात्मा मुन्शीराम जी) जब सन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी होने वाले थे तो उसका संकेत उन्होंने मुझे एक पत्र में छुट्टियों में किया। उसी पत्र के कारण उनकी अनुमति से शिमला आर्यसमाज के उत्सव पर मैं भी उनके साथ रुड़की से शिमला गया (तब जीवन में पहली बार बिजली का प्रकाश शिमला में देखा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था और लौटकर आने पर साथी विद्यार्थियों को सुनाया था कि शिमला में यों बटन दबाते ही प्रकाश हो जाता था) तब पहली बार विद्यार्थी होते हुए कुछ दिनों लगातार उनके बिल्कुल निकट रहने का अवसर मिला। किसी महान् पुरुष की महत्ता समझने के लिए तो तब बालकपन की बुद्धि ही मेरे पास थी। फिर भी उनके इतना पास रहने से (उनके किन्हीं दोषों की जगह) उनके गुण ही अधिक स्पष्टता से सामने आये, यह कह सकता हूँ और उनके वात्सल्य भाव का इतना विशेषतया अनुभव हुआ कि उनसे जुदा होने पर लगा कि मानो कुछ खोया गया है।

योग की जिज्ञासा और गुरुकुल छोड़ने की इच्छा

इस प्रकार मेरी जिज्ञासा लाला जी की कृपा से योग जिज्ञासा के रूप में परिणत हो गई। मेरे ये सब संशय योग द्वारा मिटेंगे और योग द्वारा मुझ में सत्य ज्ञान का उदय होगा इसलिए योग ही सीखना चाहिये, यह निश्चय किया और इस तरह इस संसार में और बातों से पहले सब यंत्रों और साधनों से अपने को योगी बनाने में लगने का निश्चय करके मेरा मन शान्त और स्वस्थ हुआ। देशोद्धार और देश सेवा का विचार अब दूर चला गया। जब तक मैं स्वयं न सुधर जाऊँ, अपना उद्धार न कर लूं तब तक देश का उद्धार करने में मैं कैसे साधन हो सकता हूँ ? इस प्रकार मैं विचारने लगा और जब तक मैं स्वयं अपनी सेवा करके समर्थ नहीं हो जाता, योग्य नहीं हो जाता तब तक के लिए (अर्थात न जाने कितने समय तक के लिये) वह मेरा देश सेवा या समाज सेवा का विचार स्थगित हो गया।

लाला जी ने मुझे भी प्राण का अभ्यास बताया था, वह मैंने प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु इसके करने से मुझे दो-चार दिन में ही पता लगा कि मेरे शरीर में वाम प्राण की तरफ बड़ी त्रुटि है। इसलिए अब मैं दिन रात इसे सुधारने में ही लग गया। त्रयोदश श्रेणी का पहला सत्र इसी यत्न में शीघ्रता से गुजर गया और दो महीने की छुट्टियाँ आ गयीं। हमीरपुर में रहता हुआ इन दो महीनों में भी मैं इसी प्राण सुधारने में बड़े यत्न से लगा रहा। किन्तु कुछ सफलता नहीं हुई इसलिए गुरुकुल आकर भी सात दिन के लिए पढ़ाई से छुट्टी ले ली पर जब देखा कि किसी तरह मेरा प्राण ही ठीक नहीं होता है तो मैंने सोचा कि अब पढ़ाई छोड़कर किसी योगी के पास चले जाना चाहिए, इसी में कल्याण है। मैं योग की विद्या के सामने अब इस किताबी पढ़ाई को सचमुच कुछ नहीं समझता था। अतः गुरुकुल की व्यर्थ पढ़ाई छोड़कर सर्वथा योग साधन में लग जाने की मैं सोचने लगा। गुरुकुल के अधिकारियों से तो कहा ही, किन्तु पिताजी की आज्ञा लेनी आवश्यक है, यह सोच-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर पिता जी को भी लिख दिया 'आप डिग्री का मोह न करें। यदि स्नातक की डिग्री से मैं वंचित रहूँगा तो इसमें कुछ भी हर्ज नहीं है। वास्तविक चीज तो योग्यता है और असली योग्यता पाने के लिए ही मैं गुरुकुल छोड़ता हूँ। यहाँ व्यर्थ दो साल और क्यों खोऊँ ?' परन्तु पिताजी ने आज्ञा नहीं दी। उन्होंने लिखा कि 'जो कार्य शुरु किया है उसे पूरा कर लेना चाहिए। डेढ़ साल बाद स्नातक होकर फिर यह कार्य भी करना।' उस समय तो मुझे पिताजी का यह उत्तर ठीक नहीं लगा था और मैं दुखी हुआ था परन्तु अब सोचता हूँ कि अच्छा ही हुआ कि मैंने गुरुकुल नहीं छोड़ा। छोड़ने से कुछ भी अधिक लाभ नहीं होना था। जो कुछ हो सकता था वह गुरुकुल में भी मिल सकता था और वह मिला। लाला जी ने भी मुझे यही समझाया था कि गुरुकुल छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। लाला जी ने भी तो पिताजी का पत्र आने पर मुझे कहा कि 'पिताजी ने तुम्हें बहुत ठीक उत्तर दिया है' और डेढ़ साल बाद जिस दिन कि हम स्नातक परीक्षा का अन्तिम पर्चा देकर आये उसी समय सांयकाल पंचकुटी में मेरे स्थान पर आकर कहा "आज मेरे लिए बड़े आनन्द का दिन है। मुझे आज तक डर लगा रहता था कि कहीं देवशर्मा भाग न जाये, किन्तु आज निश्चिन्त हुआ हूँ और भाग जाने पर मेरा नाम तो लगना ही था कि मैंने इसे भगा दिया है।" वास्तव में सब पूज्य पुरुषों के मना करने से ही मैंने समझा था कि शायद जाने से मेरा भला नहीं होगा, नहीं तो बहुत सम्भव था कि मैं गुरुकुल से भाग ही जाता। अस्तु।

इसके बाद मेरी इच्छा यह हुई कि मेरा ऐच्छिक विषय 'इतिहास अर्थशास्त्र' ऐसा है कि इसमें पढ़ना बहुत पड़ता है अत: यदि अब भी इसे बदलने की आज्ञा मिल सके तो मैं कम से कम इसके स्थान पर कोई आसान विषय ले लूं जिससे कम पढ़ना पड़े और अभ्यास के लिए बहुत समय मिल सके। कहाँ तो अभी एकादश-द्वादश श्रेणी में मुझे वेद ब्राह्मण आदि ही व्यर्थ से लगते थे और इस अपने 'इतिहास अर्थशास्त्र' विषय को तो मैं बड़ा आवश्यक समझता था, पर अब सभी विषय मेरे लिए एक जैसे निरर्थक हो गये थे बल्कि वेद पढ़ने की तो (कभी बड़े होकर पढ़ने की) इच्छा भी थी। सभी पढ़ने को मैं एक सिरे से समय खोना समझता था। अतः जिस विषय को मैंने इतने शौक से (कइयों की विमति होने पर भी) लिया था, उसे भी बदलने का मैंने प्रार्थना पत्र लिखा। यह स्वीकृत तो क्या होना था ? प्रो० बालकृष्ण जी ने (जो उन दिनों कुछ समय के लिए आचार्य भी थे) समझा बुझा दिया और कहा कि तुम इसमें बेशक बहुत कम समय दो और आश्रम में पढ़ने लिखने का जो वे कभी-कभी कार्य दिया करते थे, उसे भी मुझे न करने की अनुमति दे दी। मैंने भी देख लिया कि अब डेढ़ साल शेष रह जाने पर एक नया विषय लेने से वास्तव में कुछ लाभ नहीं है।

इस प्रकार मैं गुरुकुल में ही रहा और इतिहास, अर्थशास्त्र तथा राजनीति का ही विद्यार्थी रहा किन्तु क्रियात्मक तौर पर मेरा पढ़ना लिखना सब बन्द हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। मुझे जब देखो मैं कोठरी बन्द किये पड़ा होता था। एकादश में तो महा विद्यालय का आनन्द लेने के लिए कम पढ़ा था, पर द्वादश में खूब पढ़ने के बाद अब फिर मेरा पढ़ना छूट गया। अब मेरा अभ्यास के लिए पढ़ना छूटा था। इन अन्तिम दो साल मैंने पढ़ाई के घन्टों के अतिरिक्त तो पढ़ाई सम्बन्धी कुछ पढ़ा ही नहीं। किन्तु घन्टा भी जब कभी कोई खाली होता तो बड़ा आनन्द होता था और मैं उठकर चुपचाप अपनी कोठरी ही में बन्द हो जाता था। पीछे से मैंने सुना था कि कइयों ने मेरी इस कोठरी का नाम गुफा रखा हुआ था। परीक्षा में जब लगभग एक महीना रह जाता था तब मैं पढ़ाई के लिये पुस्तकें खोलता था और थोड़ा-थोड़ा अपने अभ्यास में विघ्न न करते हुए पढ़ता था। रात्रि को तो मैं अपनी आँखों की स्वस्थता के लिए पहले ही यथाशक्ति कम पढ़ता था अर्थात् परीक्षा आरम्भ होने से एक ही या दो दिन पहले रात्रि को भी पढ़ना शुरू करता था। त्रयोदश श्रेणी में तो मैंने सोचा था कि सब विषयों की इकट्ठी तैयारी के बोझ के कारण मेरे अभ्यास में विघ्न कुछ भी न पड़े, इसलिए दो बड़े-बड़े विषयों की परीक्षा सत्र परीक्षा में न दूंगा और इनमें अनुत्तीर्ण समझा जाकर धीरे-धीरे बहुत थोड़ा समय देते हुए इन्हें तैयार करके इनकी परीक्षा उपसत्र परीक्षा में दूंगा। ऐसा करने से मुझे इन दो विषयों में केवल 33% अंक ही मिलेंगे, इसकी मुझे जरा भी परवाह न थी। परन्तु इन दो विषयों के उपाध्यायों के समझाने पर मुझे अपना यह विचार छोड़ना पड़ा। इसी तरह परीक्षा परिणाम सुनने की इच्छा मुझे बिलकुल नहीं होती थी, द्वादश का तथा त्रयोदश चतुर्दश का परिणाम मैं सुनने नहीं गया, न कभी पता लगाया। पढ़ाई के घन्टों में पढ़ना और भोजनादि आवश्यक कार्य करने के अतिरिक्त मैं सदा कोठरी में ही रहता था। आवश्यक बातचीत करने या अन्य आवश्यक कार्य करने के लिए मेरे पास भोजन के पश्चात् का एक आधा घन्टा होता था, क्योंकि इस समय मैं अभ्यास नहीं कर सकता था। नहीं तो अन्य समय पर मुझे बातचीत के लिए भी फुरसत नहीं थी। अन्य समय में यदि मुझे कभी कोई ऐसा बाह्य काम करना पड़ता था तो मैं अन्दर-अन्दर बड़ा दुखी होता रहता कि मेरा समय नष्ट हो रहा है। यदि कभी सभा आदि में बैठना पड़ता था तो मैं अन्दर-अन्दर दुखी होता हुआ यत्न यह करता था कि मन को सभा की कार्यवाही से हटाकर उस समय को उस स्थान पर किये जाने योग्य किसी अपने अंतरीय कार्य में लगा रखूं। यहाँ तक कि स्नान, दाँतन आदि में भी मुझे समय व्यर्थ जाता हुआ प्रतीत होता था। पिछले वर्षों में खूब तैरने वाला मैं अब गर्मियों में भी एक बार (वह भी कम से कम समय लगाकर) से अधिक तो कभी भी स्नान नहीं करता था। कभी-कभी एक बार भी नहीं करता था क्योंकि मैं अपने लिए इसकी आवश्यकता नहीं अनुभव करता था। स्नान के लिए बिलकुल मन ही नहीं करता था। योग की पुस्तकों में भी ऐसा ही पढ़ा था। दांतन करना तो प्रायः छोड़ ही दिया था (दांत ठीक रखना कितना आवश्यक है, इसका महत्त्व

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे समझा) यद्यपि हठयोग में दांत धावन का विधान है, पर उस समय उस समय उस पर ध्यान नहीं गया। इस प्रकार कुटिया में बंद हो अपना संध्या आदि करने के अतिरिक्त यदि मैं कुछ स्वेच्छा से करता था तो वह शौच जाना, व्यायाम करना, भोजन खाना और नींद लेना—केवल इन चार कार्यों को ही आवश्यक समझकर करता था। नहीं तो मैं अन्दर अपने अभ्यास, संध्या आदि अन्तरीय कार्य में ही दिन भर लगा रहता था। आजकल यह शन्नो देवी वाली संध्या ही मैं चार-चार घंटे तक करता रहता था। रात्रि को स्वप्न भी ऐसे ही आते थे। या तो अपनी कोठरी में वही प्राण का अभ्यास करने का स्वप्न आता था या आज इतनी संध्या रह गयी है यह स्वप्न आता था और मैं संध्या करने लगता था। ऐसा बहुत बार हुआ है कि मैंने स्वप्न में पूरी-पूरी संध्या की है। इस प्रकार गुरुकुल के अन्तिम दो वर्ष का जीवन मेरा उस कोठरी में ही बीता।

मनन

पाठक यह जानना चाहेंगे कि इतने समय तक कोठरी में पड़ा-पड़ा मैं क्या किया करता था और संध्या में चार-चार घंटे कैसे लग जाते थे। मैं जो कुछ यह अन्तरीय कार्य करता था, उसे मैं एक शब्द में मनन या 'एकान्त विचार' 'आत्म विचार' कहा करता हूँ। समझने के लिए मैं इस मनन व विचार को दो भागों में बांट सकता हूँ। एक तो मैं अपनी त्रुटियों को दूर करने (अथवा गुण धारण करने) के विषय में मनन व विचार करता था। मैं क्रमशः इन्हें स्पष्ट करता हूँ।

(1) अपनी त्रुटियां दूर करने विषयक मननों में से [क] सबसे अधिक समय तो मैं उसी अपने प्राण की खराबी के निवारणार्थ प्राण की गति पर ध्यान लगाने में व्यय करता था। इतनी देर तक प्राण पर मन को एकाग्र तो नहीं कर सकता था किन्तु मैंने विचारते-विचारते कुछ भावनायें बना ली थीं। उन्हीं भावनाओं में रहते हुए प्राण पर ध्यान रखता था [ख] कुछ समय ब्रह्मचर्य तथा अपने शरीर की स्वस्थता पर भी [भावना द्वारा ही] ध्यान करता था [ग] एवं अपने अन्दर की (स्वभाव की) जो त्रुटियाँ (दोष) जान लेता था उन्हें भी दूर करने के लिए अपनी दिनचर्या पुस्तक (दिनचर्या लिखने के विषय में मैं आगे इसी प्रकरण में कुछ विस्तार से लिखूंगा) में लिख लेता था और इनकी जाँच पड़ताल संध्या में ही करता था कि ये त्रुटियां कहाँ तक हट रही हैं। जिस दिन इन त्रुटियों के कारण कुछ (दोष) घटित हो जाता था उस दिन की संध्या में तो यह विचार (मनन) बहुत समय लेता था; [घ] एक अपना यह नियम कर रखा था कि दिन भरमें मैं यदि किसी को भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीड़ित या दुःखग्रस्त देखता था या किसी के बड़े रोगादि कष्ट में होने की बात सुनता था मैं इनके लिए दोनों समय प्रार्थना करता था। यह भी मैं आत्मविशुद्धि के लिए करता था और इनमें भी दोनों समय दस-दस या पन्द्रह-पन्द्रह मिनट लग जाते थे।

एवं यह मनन चार प्रकार का हो गया। इन अपनी त्रुटियों के दूरीकरणार्थ (या गुण धारणार्थ) किये जाने वाले मनन के सम्बन्ध में मैं पाठकों का ध्यान इस बात की तरफ खींचना चाहता हूँ कि इसमें मुझे भावनात्मक मनन से बड़ा लाभ होता था। उदाहरणार्थ, ब्रह्मचर्य के लिए मैं दीपक की भावना करता था कि 'वीर्य रूपी तेल सब ऊपर मस्तिष्क में चढ़ रहा है और ज्ञानरूपी प्रकाश बन रहा है' या शिव की भावना कि "तीसरा नेत्र खोलते ही 'काम' भस्म हो गया है।" ['तब शिव तीसरा नयन उघारा, देखत काम भयऊ जलि धारा या तावत्सवह्निर्भनेत्रजन्मा भस्मा-वशेषं मदनम् चकार।' यह बोलते हुए।] 'मैं प्रेम का सूर्य हूं चारों तरफ सब लोगों में प्रेम की किरणें फैल रही हैं—कोई शत्रु नहीं" ऐसी भावना करना। विराट् पुरुष की भावना करना। शरीर को "सर्वथा रोग रहित, पूर्ण स्वस्थ" भावना करना। ऐसा भावित करना 'मैं आनन्दमय, आनन्द से पूर्ण भरा हुआ, इतना परिपूर्ण कि जो मेरे समीप आये उसका भी दुःख ताप मिटने लगे।' मेरा अनुभव है कि ऐसी भावनायें यदि क्षण भर भी पर पूरी तीव्रता से अर्थात् अपने को कल्पना में वही चित्रित करके बिल्कुल वही बनकर की जा सकें तो भी बड़ा लाभ होता है। एक बार भी संस्कार पड़ जाने पर फिर वह भावना जल्दी और आसानी से होने लगती है। अपनी प्राणगति सम्बन्धी तथा अपने जीवनोद्देश्य सम्बन्धी और भी कई बड़ी अच्छी भावनायें मैं करता था जिनके कि उल्लेखन की (अन्यों के लिए अनुपयोगी होने से) आवश्यकता नहीं। आशा है पाठक उपरिलिखित 'भावना' का अर्थ तो समझ गये होंगे। इस कथन का उद्देश्य यह है कि जिन लोगों के मनों में कल्पना शक्ति है, उन्हें इसे व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। वे भावनाओं द्वारा अपना बड़ा लाभ कर सकते हैं। अस्तु।

(2) दूसरा ज्ञान प्राप्ति के लिए किया जाने वाला मेरा मनन प्रायः सब संध्या में होता था। वे जो संसार का रहस्य जानने विषयक प्रश्न मुझमें उठे थे उनका विचार स्वभावतः सन्ध्या में [जबकि मैं परमात्मा से अपना सम्बन्ध जोड़ने या देखने बैठता था] होने लगता था। चित्त में जो संशय आते थे, उन्हें विचार द्वारा दूर करता हुआ और इस नये विचार से जो और उलझनें पैदा होती थीं, उन्हें भी सुलझाता हुआ मैं अपनी संध्या पूरी करता था। इसीलिए मुझे संध्या में कभी-कभी चार घन्टे तक हो जाते थे। तीन घन्टे तक तो सामान्य बात थी। संध्या में जहाँ अपने, जगत् और परमात्मा के सम्बन्ध में जो शंका उठती थी, मैं उसे वहीं विचारने लग जाता था और जब तक चित्त सन्तुष्ट नहीं हो जाता था तब तक आगे नहीं चलता था। मेरा मन गड़बड़ी में, संशय में जरा भी रहना नहीं अंगीकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था, बेचैन हो मनन करता चला जाता था। मतलब यह कि बुद्धि को–दृष्टि को–साफ निर्मल रखना, बुद्धि के सामने जो [क्लेश या अज्ञान आदि की] रुकावट या पर्दा आये उसे विचार कर, बार-बार चिन्तन करके हटाना यही मेरा मनन था। इसीलिए संध्या के बाद मैं नित्य बड़ा ही आनन्दित होकर, बिल्कुल निश्चिन्त निर्बाध होकर उठता था। शंकायें रोज-रोज नये-नये रूप में उठती थीं और रोज उनके हल कर लेने द्वारा मुझे सध्या का अवर्णनीय आनन्द मिलता था। मुझे सचमुच भोजन की तरह नित्य नया ज्ञान व प्रकाश मिलता अनुभव होता था और [जैसा कि मैं अभी लिखूंगा] कभी-कभी विशेष ज्ञान देखकर संध्या के बाद मैं इसे अपनी एक 'दिनचर्या पुस्तक' में लिख भी लिया करता था। 'मनन' इस शब्द को मुख्यत: मैं संध्या के इस मनन के लिए ही प्रयुक्त करता हूँ। एक मेरा यह भी नियम था कि दिन में मुझे जो कोई कष्ट या दुःख होता था तो उसे लेकर मैं अपने इसी एकान्त विचार के समय में उसके कारण की खूब सोचा करता था। इतना सोचता था कि तत्त्व जान लेने पर यह कष्ट मुझे फिर कभी दुखित न कर सके।

एवं यह दूसरा मनन द्विविध था। यही दोनों प्रकार का [त्रुटि दूर करने के लिए तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए] मनन व विचार ही मेरा आजकल का सब योगाभ्यास था। दोनों मिलकर ये ही मनन, भावनायें व विचार मेरे 'अन्तरीय कार्य' थे जिन्हें कि मैं दिन भर उस कोठरी में करता रहता था और मग्न रहता था। इनसे मुझे बड़ा ही लाभ हुआ है। मैं तो चाहता हूँ कि इसी प्रकार प्रत्येक पाठक इस मनन विधि को स्वीकार कर बड़ा लाभ पा सकें। अस्तु।

प्रकरण को समाप्त करते हुए मैं एक और बात बतलाना उपयोगी समझता हूँ। दोनों प्रकार के मनन में मुझे दिनचर्या लिखने से बहुत लाभ प्राप्त हुआ है। जबसे आचार्य जी के उपदेश में दिनचर्या की बात सुनी थी, तभी से मैं अपनी समझ के अनुसार दिनचर्या लिखने लगा था। इसमें धीरे-धीरे विकास होता गया। विद्यालय में मैं केवल त्रुटियाँ सुधारने की दिनचर्या लिखता था। दशम् में मैंने दस गुण दिनचर्या में लिखे हुए थे। उनमें से (1) सीधा (कमर न झुका कर) बैठना, (2) सबको नमस्ते (अभिवादन) करने का अभ्यास करना, (3) दूसरे क्या कहेंगे इस डर से ठीक कार्य करने से न डरना, ये तीन स्मरण भी हैं। इनमें से तीसरी बात तो बहुत देर तक चलती रही थी। एकादश में आकर दिनचर्या में अपने विचार भी लिखने लगा था। यह वर्ष सन् 1915 के कुम्भ से प्रारम्भ हुआ था। इस दिनचर्या में (1) प्रारम्भ में चार-पांच खाने त्रुटियों की हाजिरी को बनाकर (आजकल की त्रुटियाँ ठीक स्मरण नहीं आतीं। सदा प्रसन्न रहना संकोच न करना, ये दो बातें शायद उनमें थीं) (2) इसके नीचे उस दिन कोई घटनायें या दृश्य देखकर जो विचार मन में उठते थे उन्हें लिखता था तथा (3) कभी यदि किसी और का या किसी पुस्तक आदि का भी कोई अच्छा विचार सुना या प्राप्त किया होता था तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे कभी वहीं लिख लेता था। द्वादश में विचार गम्भीर होने लगे थे और मैं इन्हें विस्तार से लिखा करता था। किन्तु अब त्रयोदश में आकर इन तीनों कार्यों के लिए जुदा दिनचर्या पुस्तकें बना ली थीं। (1) त्रुटि सुधारने (या गुण धारण करने) की कापी में मैंने त्रयोदश के प्रारम्भ में निम्न पांच बातें लिख रखी थीं (क) निर्भयता, निधड़कता (ख) सत्य और निर्मल मस्तिष्कता (ग) एकाग्रता (घ) आत्मस्वरूप और परमात्मा को यथाशक्ति दिनभर स्मरण रखना (ङ) परमार्थ में अपने को भूल जाना या निःस्वार्थता। इनमें आगे कुछ परिवर्तन भी हुए थे। चतुर्दश में आकर तो मैं यम और नियमों को ही अपने जीवन में लाने का यत्न किया करता था। इसके लिए नित्य एक यम-नियम पर संध्या में देर तक विचार किया करता था। यहाँ यह स्मरण आये बिना नहीं रहता कि इन वर्षों में गुरुकुल के श्रद्धेय उपाध्याय श्री मान्य पं० सेवाराम जी हमें गुणी और चरित्रवान बनने के लिए सदा प्रेरणा करते थे और इसके लिए सामग्री उपस्थित करते रहते थे। मुझे तो उनके वचनों से, उनकी बतलायी बातों से बड़ा लाभ हुआ था। अस्तु ! उधर हमारी उस समिति से निर्धारित जो तपस्या के नियम थे, उनका पालन लिखने के लिए एक जुदा ही दिनचर्या थी। (2) दूसरी दिनचर्या अर्थात् अपने विचार लिखने की दिनचर्या इस समय मेरे लिये बड़ी मूल्यवान वस्तु थी क्योंकि इसमें मैं आजकल की संध्या के मनन से निकलने वाले विचार लिखा करता था। एकादश द्वादश में तो बाह्य घटनाओं द्वारा उठे अपने विचार लिखता था किन्तु अब के ये विचार वे 'ज्ञान' विचार थे जो कि मुझे अन्दर से प्रकाश की तरह मिलते थे। मैं इन्हें इतना कीमती समझता था कि कहा करता था कि यदि कहीं मेरे स्थान पर आग लग जाए तो सबसे पहले मैं अपनी इस कापी को बचाने का यत्न करूंगा और बेशक सब कुछ जल जाये। द्वादश श्रेणी की दिनचर्या भी मैंने अन्य सब पुरानी दिनचर्याओं की तरह (प्रायः थोड़े से पृष्ठ काम के समझ कर रख छोड़े हैं) फाड़ डाली है, किन्तु यह अब तक संभाल कर रखी है। इसमें स्नातक होने के दो साल बाद तक के विचार लिखे हुए हैं। ये विचार पढ़कर मुझे आज भी बड़ा चैतन्य और जीवन मिलता है। (3) इसी तरह अच्छे-अच्छे व्याख्यानों को नोट करने तथा अच्छी पुस्तकों का सारांश लिखने की लेख पुस्तकें (नोट-बुकें) अब जुदा हो गयी थीं। एक बार स्फूर्तिदायक और उठाने वाले (Inspiring) वाक्यों के लिए तथा ऐसे ही अपने प्रिय भजनों के लिए भी एक कापी बनायी थी। यह सब लिखने का अभिप्राय यह है कि पाठक भी यदि ऐसी तीनों प्रकार की (या स्वभावतः जितने प्रकार की दिनचर्याओं की उन्हें आवश्यकता हो) दिनचर्या-पुस्तकों को लिखा करेंगे तो उन्हें (1) आत्म-निरीक्षण करने में (2) अपने मनन को स्थिर तथा पुष्ट करने में और (3) बाहर से ज्ञान संग्रह करने में बड़ी सहायता मिलेगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय के कुछ अनुभव

यहाँ मैं अपने मनन के दिनों के तीन अनुभव भी अवश्य लेखबद्ध करना चाहता हूँ। ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं, इन्हें एक भी कहा जा सकता है किन्तु मैं सुगमता के लिए इन्हें तीन करके ही लिखूंगा।

(1) ज्ञान प्रकट करने में वाणी असमर्थ है—

एक तो मैंने यह अनुभव किया कि मन के (बुद्धि के) संवेदन को, ज्ञान को (अनुभव को) वाणी (भाषा) प्रकट करने में असमर्थ है। निम्नलिखित प्रकार की बात इन मनन के दिनों में मैंने कई बार देखी। मान लीजिये कि आज संध्या में कोई अनुभव हुआ और वह मैंने लिख लिया। कई अनुभव होकर हृदय से उतर भी जाया करते थे और कुछ देर बाद फिर होते थे। यह उपर्युक्त अनुभव भी ऐसे ही उतर गया और कुछ दिनों बाद फिर आया। इसे कागज पर लिखकर जब मैं यह देखने लगता था कि यह तो अनुभव पहले भी हो चुका है, देखूं इसे कहीं कापी में लिख तो नहीं चुका हूँ, तो यह प्रायः उन्हीं शब्दों में मुझे लिखा मिलता था किन्तु इन पहिले लिखे शब्दों को पढ़कर इन बीच के दिनों में इस (वास्तविक) अनुभव को नहीं प्राप्त नहीं करता (कर सकता) था, यह बात उस दुबारा अनुभव प्राप्ति के दिन मैं स्पष्ट देखता था। आशा है मैं अपना भाव स्पष्ट कर सका हूँ।

(2) सब ज्ञान अपने अन्दर से मिलता है—

ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता, सब ज्ञान अपने अपने अन्दर ही है, सबके हृदय में सब ज्ञान देते हुए ज्ञानस्वरूप (परमात्मा) बस रहे हैं यह बात इन दिनों में मैंने अच्छी तरह अनुभव की। 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।' इस योगसूत्र के इस आशय को हृदयस्थ परमात्मा ही असल में प्रत्येक का गुरु है, मैंने अच्छी तरह समझ लिया था। मुझे जो कुछ मिला है वह सब अपने ही विचार से, मनन से अर्थात् अन्दर ही अन्दर से मिलता है। अपनी जिज्ञासा दूसरों को बतलाकर पूछने से मुझे कुछ प्राप्त नहीं हुआ, उनकी बतलायी पुस्तकें पढ़ने से भी मेरे प्रश्न हल नहीं हुए, किंतु अन्त में स्वयं सोचते-सोचते ही कभी एकदम प्रश्न हल हो जाते गये। 'योगः स्वयमेवः गुरुः' यह वाक्य मैंने सर्वथा सत्य देखा। इस वाक्य के अर्थ का उस समय मैंने जहाँ तक अनुभव किया था, उसमें तो इस वाक्य के योग' शब्द का अर्थ मनन, विचार इतना ही पर्याप्त रहा। मैंने देखा कि विचार करते चले जाओ, एक विचार ही उससे अगले विचार तक हमें पहुँचाता चला जाता है, अगला मार्ग दिखलाता जाता है। बाहर जाने की जरूरत नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना आत्मानुभव हुए दूसरे के देने से ही ज्ञान कैसे मिल सकता है, यह मैं अब समझ ही नहीं सकता। अनुभव प्राप्त होने पर मैं अपने अनुभव ज्ञान को बेशक उन्हीं शब्दों में प्रकट करूं जो कि पुस्तक में लिखे थे या कोई व्याख्याता बोलते थे किन्तु पुस्तक के व्याख्याता के उन्हीं शब्दों से मुझे वह ज्ञान पहिले न होता था। यह क्यों ? उदाहरणार्थ 'सदा सत्य बोलना चाहिये' यह बड़ा प्रसिद्ध वाक्य है, सैंकड़ों पुस्तकों में लिखा है और सदा बोला जाता है किन्तु इसी बात को, इस सत्य को, इस ज्ञान को—मैंने कभी-कभी ऐसा साक्षात् अनुभव किया है कि उसे मैं कुछ वर्णन नहीं कर सकता था, केवल यह देखता था और कह सकता था कि मुझे आज एक नया ज्ञान साक्षात् हुआ है कि सदा सत्य ही बोलना चाहिये। इस स्वात्मानुभव को कोई बाहर से कैसे करा सकता है, यह तो जब अन्दर से हृदय तैयार होगा तभी स्वयं होगा। किसी ने कितना सुन्दर और सत्य वचन कहा है कि—

पानी पियावत क्या फिरे, घर-घर सायर वारि।
तृषावंत जो होयगा पीएगा झक मारि ॥

जिसे जिज्ञासा लगी है—ज्ञानतृषा लगी है उसकी तृषाशान्ति के लिए अन्दर सब प्रबन्ध हुआ रखा है बल्कि अन्दर ही है, बाहर उसकी प्यास कोई नहीं बुझा सकता। बाहर के लोग जो प्यास बुझाते दीखते हैं वे तो केवल ठीक समय आ जाने के कारण हमारे अन्दर के ही पानी को दिखलाने के साधन हो जाते हैं। इसलिए इसका यह मतलब नहीं कि उपदेश नहीं देने चाहियें या उपदेश नहीं सुनने चाहियें। उपदेश देना इसलिए चाहिये कि किसी पात्र में (जिज्ञासु में) बीज अंकुरित हो जाय, किन्तु अन्दर का बीज अंकुरित होएगा वहीं जहाँ कि उस बीज के लिए हृदय क्षेत्र तैयार किया होगा। एवं उपदेश सुनने इसलिए चाहियें कि इनसे पड़ने वाले संस्कारों की चोट से कभी हृदय कपाट खुल जायें, किंतु हृदय कपाट खुलेंगे उसी क्षण जबकि कपाटों के सामने की अन्तिम बाधा निकाल चुका होगा। सब बात अन्दर की तैयारी की है। तैयारी न होने से हमारे 99% उपदेश सुनने (और सुनाने) व्यर्थ जाते हैं। हृदय जब एक ज्ञान के लिए पूरा परिपक्व हो जाता है तब तो किसी गंवार के एक शब्द से पुस्तक के एक वाक्य से, जरा से इशारे से वह स्वयं फूट जाता है और अन्दर से ज्ञान-फल निकल आता है। यह एक बड़ा भारी सत्य है कि सब ज्ञान अन्दर ही है और यह हमारी अन्तःकरण की स्थिति के (जिज्ञासा के) अनुसार अन्दर से निकलता आता है। सब ज्ञान स्वात्मानुभव से मिलता है और यह स्वात्मानुभव अन्दर से ही होता है।

(3) अगला ज्ञान हृदय की अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न मिलता है—

तीसरी बात यह देखी कि मेरी एक जिज्ञासा जिस ज्ञान से शान्त हुई, दूसरे पुरुष की वही जिज्ञासा उस ज्ञान से (उस उत्तर से) नहीं मिटी। इसका कारण है मनुष्यों की हृदय की अवस्था का भिन्न-भिन्न स्थान तक पहुँचा होना। केवल दो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषों की हृदयावस्था भिन्न-भिन्न नहीं होती, किंतु एक ही पुरुष को हृदयावस्था आगे-आगे भिन्न होती जाती है, बदलती जाती है। इसलिए मैंने यह भी खूब देखा कि आज मेरा एक प्रश्न एक उत्तर पाकर हल हो जाता है किंतु उस उत्तर के होते हुए भी वह प्रश्न कुछ समय बाद फिर उठता है और तब वह एक और उत्तर पाकर शांत होता है। वास्तव में जिज्ञासा के प्रश्न तो थोड़े से ही हैं—संसार क्या है ? मैं क्या हूँ ? संसार में दुःख क्यों है ? इत्यादि। किंतु यही प्रश्न जब तक कि वास्तव में पूर्णता नहीं मिल जाती, तब तक नाना रूपों में हमारे सामने आते-जाते हैं। मनुष्य बीच-बीच में बहुत बार समझता है कि मुझे कुछ संशय नहीं रहा, मेरे सब प्रश्न हल हो गए, किंतु उसे अगला और उच्च ज्ञान देने के लिए किसी समय उसके सम्मुख इन्हीं प्रश्नों में से कोई प्रश्न फिर एक भिन्न रूप में आ खड़ा होता है। इन्हीं अनुभवों के कारण मुझसे जब कोई रहस्य का प्रश्न पूछता है तो मैं उसे यही कहता हूँ कि 'स्वयं सोचो, खूब सोचो, घबराओ नहीं, तुम्हारे अपने सोचने से ही तुम्हें ठीक उत्तर मिलेगा।' अपने अनुभव से कुछ उत्तर देता भी हूँ तो यह आशा कदापि नहीं करता कि मेरे उत्तर से अवश्य उसे शान्ति होगी। अवश्य शांति देने वाला पूरा ठीक उत्तर तो वही दे सकता है जो कि उसकी उस समय की हृदयावस्था को पूरी तरह जानता है और वह तो अन्त में हृदयान्तर्यामी परमात्मा ही है अर्थात् अपने सोचने से ही शान्ति मिलती है। इसी कारण से मुझे यह बतलाने से भी कुछ लाभ नहीं दीखता कि मुझे मेरी एक जिज्ञासा का कब क्या उत्तर मिला।

वेद में जो बहुत जगह केवल प्रश्न ही किये हैं और उनका कुछ उत्तर नहीं दिया गया है, इसका कारण मुझे यही समझ में आता है कि सबकी हृदयावस्था भिन्न होने से उस प्रश्न का सबके लिए एक उत्तर नहीं दिया जा सकता। उसका एक उत्तर यही समझना चाहिये कि 'इस प्रश्न को हल करो, स्वयं उत्तर जानो।' वास्तव में जिज्ञासा ही मुख्य वस्तु है, जब जिज्ञासा पैदा हो गयी फिर ज्ञान तो अन्दर तैयार है ही। इसलिए केवल प्रश्न ही करके जिज्ञासा उत्पन्न कर दी जाती है, सामने एक प्रश्न रख दिया जाता है कि इसे स्वयं हल करो, इसी की आवश्यकता है।

मनन का फल

इस मनन के अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे मेरे मन और शरीर का अब तक कितना भारी परिवर्तन—कायापलट—हो गया था और होता जा रहा था तथा मेरा आत्मा कितना निर्मल निकलता आता था, इसका दिग्दर्शन कराने का अब अवसर आ गया है। सचमुच पहले की अपेक्षा अब मैं बिल्कुल बदल गया था, मानों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा कायाकल्प हो गया था या मैं दूसरी योनि में पहुँच गया था। अपने परिवर्तित मन, शरीर और आत्मा का मैं क्रमशः कुछ वर्णन करता हूँ।

[1] मेरा मन अब निराशा की जगह अत्यधिक आशावादी हो गया था। किसी भी घटना से अन्दर निराशा नहीं होती थी। सब काम ठीक हो जायेंगे, ऐसी आशा बड़ी जल्दी हो जाती थी। इन दिनों मैं आशापूर्णता में अति करता था (यह मुझे आगे पता लगेगा)। संसार में जो कुछ होता है और होगा, वह सब कल्याण के लिए ही है इस बात में मेरी दिनों दिन श्रद्धा बढ़ती जाती थी। संसार आनन्दमय की रचना दीखता था। सब लोगों में आत्मा दिखाई देता था अतएव सब अच्छे लगते थे। लोगों से मैं बेशक अब भी जुदा—पहिले से भी अधिक जुदा—रहता था। पर यह लोगों से डर कर या घृणा करके नहीं किन्तु यह सोचता हुआ कि मैं इस तरह अपने को संसार में काम आने के योग्य बना रहा हूँ, अपने आपको जुदा रखता था। सेवा का ध्यान मुझे रहता था। मन का चिड़चिड़ापन न जाने कहाँ चला गया था। दूसरे से खीझना, दूसरे से मन में क्रुद्ध होना स्वभाव के विपरीत हो गया था। मेरी शंकाशीलता जिज्ञासुता में बदल गयी और तीव्र अनुभव करने के स्वभाव ने मुझे भावुक (भावनाप्रधान प्रकृति वाला) बना दिया। मनन करते-करते मेरा मन इन दो-तीन वर्षों में इतना पलट गया। मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसे पूरी तरह तो वही समझ सकता है जिसने मेरे अन्तःकरण में घुसकर इसकी ये दोनों अवस्थाएं देखी हों, पर यहां तो समझाने के लिए मैं केवल लिख ही सकता हूँ।

[2] मेरा शरीर भी परिवर्तित हुआ था। मन के परिवर्तन के साथ यह स्वाभाविक था। कब्ज का कष्ट तो एकादश-द्वादश में ही जाता रहा था, पर कब्ज जाती रही नहीं कही जा सकती थी। किन्तु चतुर्दश में पहुँचकर आसन और प्राणायाम से तथा अन्य प्राकृतिक साधनों से शौच का भी सवाल हल हो गया था। महाविद्यालय के चारों सालों में पहिले साल एक दिन ज्वर हुआ था तथा फिर चौथे साल श्लेष्म ज्वर (इन्फ्लुऐन्जा) की बीमारी के दिनों में रोगियों की सेवा करते हुए ही (अपने शारीरिक और मानसिक नियमों के छूट जाने के कारण से) कुछ ज्वर हो हो गया था, इसके अतिरिक्त इन चारों सालों में और कोई रोग नहीं हुआ। शायद सिर का दर्द भी कभी नहीं हुआ। अब मैं 'डाक्टर जी का विद्यार्थी' न रहकर प्राकृतिक चिकित्सा का पक्षपाती हो गया था और औषध जरा भी प्रयोग नहीं करता था। चार साल पहिले मैं इतनी दवा खाने वाला था कि एक समय मुझे भोजन से पन्द्रह मिनट पहिले सोडा-बाईकार्ब, भोजन खाते-खाते मध्य में एक दवा और भोजन के अन्त में एक खट्टी-खट्टी दवा पिलायी जाती थी, पर अब औषध से यहाँ तक घृणा हो गयी थी कि मलेरिया के दिनों में जो सबको कुनीन की गोलियाँ खिलाई जाती थीं, उनके खाने में मुझे एतराज था। द्वादश या त्रयोदश में एक डाक्टर साहिब ने यह भी कह डाला कि यदि तुम कुनीन नहीं खाओगे तो जरूर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुखार आ जायेगा, तो भी मैंने नहीं खायी। बुखार आना कोई जरूरी तो था ही नहीं, नहीं आया। प्राकृतिक चिकित्सा में एक बार मैंने छः महीने तक जल-चिकित्सा की और उनके सिद्धांतानुसार घी, नमक, मसाला से सर्वथा रहित सादा भोजन खाता रहा। 'उपवास चिकित्सा' पुस्तक पढ़कर सात दिन का उपवास भी किया। दो या चार दिन का उपवास तो कई बार किया था। इन दोनों चिकित्साओं से भी कुछ समय के लिए बड़ा काफी लाभ हुआ। परन्तु पूरा और स्थिर लाभ तो आसनों और प्राणायाम से हुआ जिसका कि प्रसंग अगले प्रकरण में आएगा। इस प्रकार मेरे पुराने सब शारीरिक कष्ट अब हट गये थे। अब केवल एक तो वीर्यरक्षा की चिन्ता रहती थी, क्योंकि स्वप्नदोष होते थे। महाविद्यालय में आकर काम विचार क्या होता है, इसका एक अनुभव हुआ था और इन चार सालों में तीन या चार बार एक स्वप्न आकर भी स्राव हुआ, नहीं तो अब भी सदा बिना किसी स्वप्न के ही (कभी उस समय पता लग जाता था और कभी-कभी प्रातः जागकर ही पता चलता था) स्वप्नदोष होता था। इस वीर्यरक्षा के साथ तथा उस प्राण की त्रुटि को सुधारने के साथ अन्दर की लड़ाई बेशक अब भी लगी रही किंतु शरीर में किसी रोग (जिसे संसार 'रोग' कहता है) का कष्ट नहीं हुआ और ये दो बातें भी बिना औषध के मनन से, विचार से, इच्छाशक्ति से ठीक हो जायेंगी यह आशा समायी रहती थी अतः सदा उत्साह ही रहता था।

[3] मेरे आत्मा पर जो मनन का प्रभाव हुआ, उसे वर्णन करना असंभव है। इस मनन से कभी अन्दर इतना सुख होता था कि वास्तव में मैं उसे सह नहीं सकता था। एक-दो बार में आनन्द में रुदनोन्मुख भी हुआ हूँ कि हे भगवान्! तूने मुझे इतना आनन्द क्यों दिया है, यह आनन्द औरों को भी दे दे। बस, इतना कहना ही पर्याप्त है।

इस प्रकार जिज्ञासा द्वारा मैंने तो 'मनन' नामक ही एक अनमोल वस्तु प्राप्त की है जिसने मेरा उद्धार किया है। इसी के कारण मैं समझता हूँ—अभिमान रखता हूँ कि मेरे पास कुछ चीज हैं। इसलिए और भी जो कोई अपना स्वभाव तक बदलना चाहता है उसे मेरा यही कहना है कि 'खूब मनन करो, विचारो।' इस योग से ही स्वभाव बदल सकता है। मनुष्य में जैसी वृत्तियाँ उठती हैं, वह वैसे ही कर्म करता है, उससे वैसा ही संस्कार पड़ता है और वह फिर और अधिक वैसी ही वृत्ति को पैदा करता है। इस प्रकार इस चक्र में जो जिधर बह रहा है, वह उधर ही दूर-दूर जाता जा रहा है और उस स्वभाव में और पक्का होता जाता है। स्वभाव को दूसरी तरफ प्रवृत्त कराने के लिए वृत्तिधारा को दूसरी तरफ बहाना आवश्यक है और इसके लिए एक तरफ चित्त-वृत्ति का निरोध (अर्थात् योग) करके ही दूसरी तरफ धारा बहायी जा सकती है। इसलिए मैं कहता हूँ कि योग ही स्वभाव बदलने का एकमात्र उपाय है। इसे ही मैं 'मनन' कहता हूँ—मनन में एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ से रोकना और दूसरी तरफ बहाना ये दोनों कार्य होते हैं। इसलिए मैंने यह योग-जिज्ञासा की कहानी सुनाते हुए गुरुकुल के अपने ब्रह्मचारियों को कहा था कि यदि मैं इतनी सेवा करने में सफल हो सकूं कि तुममें से दस ब्रह्मचारियों को ही मननशील बना सकूं, तो मैं समझूंगा कि मैंने दस हजार विद्यार्थियों को पढ़ाने जितना काम किया है और मुझे इतने कार्य का ही पुण्य होगा। मनन इतनी ही महत्त्व की वस्तु है। मननशील बनाने का अर्थ है 'मनुष्य' बनाना क्योंकि मनन में ही मनुष्य का मनुष्यत्व है।

योग-संबंधी ज्ञान

जब से मेरी जिज्ञासा योग-जिज्ञासा में परिणत हुई थी और मैंने 'योगी बनना' अपना लक्ष्य बनाया था, उसके बाद से ही मैं यह स्पष्ट अनुभव करता चलने लगा कि मुझे योग की तरफ ले जाने वाली सामग्री तथा साधन स्वयमेव जुड़ते चले जा रहे हैं। प्रारम्भ में दो-चार जगह ऐसी बातें सुनने को मिलीं जिनसे कि मेरा योग की तरफ जाने का इरादा पक्का हो गया, मैंने समझ लिया कि यही एकमात्र मार्ग है। फिर अचानक कहीं-कहीं से मुझे योग संबंधी पुस्तकें पढ़ने को मिलती गयीं। इसी तरह आगे सम्पूर्ण आसन मुझे गुरुकुल में ही सीखने का सुयोग मिल गया। फिर कहीं कहीं से विशेष आसन और प्राणायाम की विधियाँ पता लगीं और धीरे-धीरे योग की उत्तमोत्तम क्रियाएं परमात्मा की परम कृपा से बड़े अच्छे अच्छे पूज्य महात्माओं से मिलती चली गयीं। यह सब कथा तो आगे क्रमशः आयेगी, परन्तु यहाँ इस प्रकरण में इतना ही कहना है कि गुरुकुल वास के अन्त तक (अर्थात् इन दो वर्षों में) मुझे योग-संबंधी क्या-क्या ज्ञान कहाँ-कहाँ से प्राप्त हुआ।

इन वर्षों में भिन्न-भिन्न समय में जो मैंने योग-संबंधी पुस्तकें पढ़ीं उनकी सूची मैं इकट्ठी यहीं नीचे देता हूँ। योग संबंध में छोटी-मोटी पुस्तक तक जो कुछ मैंने पढ़ा, उसकी यह परिपूर्ण सूची है। ये पुस्तकें भोजन के बाद या सफर में या अन्य ऐसे ही (जबकि मैं अभ्यास नहीं कर सकता था) अवसरों पर पढ़ी हुई हैं।

(क) हिन्दी की पुस्तकें

(1) योग सोपान —यह एक बहुत छोटी सी पुस्तक है (2) धर्म निर्णय— इसमें योगियों की कहानियाँ हैं (3) योग समाचार संग्रह—योग संबधी बातों का यह अच्छा संग्रह है (4) एकाग्रता व दिव्य शक्ति यह 'ओ इष्णु हारा' की एक पुस्तक का अनुवाद है (5) चरणदास के 'भक्ति सागर' पुस्तक के एक-दो योग-संबंधी प्रकरण भी पढ़े हैं। यह कविता में है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) संस्कृत पुस्तकें

(1) शिव-स्वरोदय—इसमें नासिका के स्वरों का वर्णन है (2) घेरंड संहिता और (3) हठयोग प्रदीपिका—ये दोनों हठयोग की बड़ी उत्तम पुस्तकें हैं। घेरंड संहिता संक्षिप्त और अधिक क्रमबद्ध है (4) शिव संहिता भी हठयोग की पुस्तक है। पर इसमें विस्तार अधिक है और इसमें मुझे अत्युक्ति भी अधिक दीखती है।

(ग) अंग्रेजी की पुस्तकें

(1) How to be a yogi (2) Mystery of breath (3) अमेरिकन रामचरक की Hath yoga (4) Science of breath ये चारों छोटी-छोटी पुस्तकें मुझे लाला जी से मिली थीं (5) Nature's finer forces का केवल अन्तिम भाग पढ़ा है (6) ऐनी बीसेंट की 'Thought Power' तथा लेडवीडर की (7) Clairvoyance तथा (8) Dream भी पढ़ डाली हैं।

इन सब पुस्तकों में से संस्कृत की चारों पुस्तकों से हठयोग संबंधी बहुत परिचय प्राप्त हुआ और बहुत सा ज्ञान होना अभी शेष है तथा श्वांस संबंधी दोनों अंग्रेजी पुस्तकों से कुछ प्राण की व्यायामें मैंने सीखी हैं। शेष सब पुस्तकों से तो साधारणतया मुझे योग में बढ़ने की प्रबल प्रेरणा ही मिली है।

पातंजल योग दर्शन तो मैंने द्वादश में अपनी पढ़ाई में ही पढ़ा था। अब उससे लाभ उठाने का भी विचार किया और उसके साधन पाद में लिखे योग के आठ अंगों में से प्रारम्भिक दो अंगों को अर्थात् यम और नियमों को अपने जीवन में लाने का खूब यत्न करने लगा। इसके लिए यह नियम किया हुआ था कि एक यम और एक नियम को लेकर उन पर तीन दिन तक विशेषतया ध्यान रखता था और तीन दिन तक संध्या में इन्हीं दोनों पर विचार किया करता था। इस प्रकार एक पक्ष में पांचों यमों और नियमों पर एक बार विशेष अमल और विचार पूरा हो जाता था। इन दिनों मैं इनका पालन बड़ी सचिन्तता से करता था, दूर तक देखता था कि मेरे किसी कर्म से कहीं कोई हिंसा, स्तेय या असत्य तो नहीं होता है। इन दिनों यम नियमों पर मेरा विचार भी काफी गहरा हो गया था।

हठयोग की संस्कृत पुस्तकें देखने पर और विशेषतया उनमें 'चन्द्र' का (जिसका कि वामप्राण से संबंध है) बड़ा माहात्म्य वर्णित देखकर मुझे खास तौर से चिन्ता हुई कि सबसे पहले अपने प्राण की यह त्रुटि दूर करनी चाहिये। यह तो मैंने समझ ही लिया था कि मेरी शारीरिक कमजोरी या कब्ज आदि का असली कारण यही प्राण की त्रुटि है। इस त्रुटि के कारण आयु कम होती है (बल्कि एक कथन के अनुसार तो छ: मास में मृत्यु हो जाती है) यह भी मैंने कई जगह पढ़ा था। अतः इस त्रुटि की तरफ मेरा बहुत ध्यान था। यद्यपि इन पुस्तकों में मुझे कुछ ऐसी क्रियाएं भी दीखती थीं जिनसे कि मुझे आशा थी कि मेरा प्राण सुधर सकता है, किन्तु इन्हें बिना गुरु के करना मैं भयावह समझता था। अतः प्रबल इच्छा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी प्राण-विद्या जानने वाले गुरु के पाने की थी और उनके बिना मिले मैं अभी तक कोई भी हठयोग की क्रिया नहीं करता था। तो भी दो आसन (जिन्हें कि कईयों को व्यायाम के तौर पर करते देखा था और सुना था कि इनसे कब्ज हटती है) मैंने सीखे थे और कभी कभी किया करता था। इतने में यह हुआ कि वार्षिकोत्सव पर पं० श्री दा० सातवलेकर जी गुरुकुल में आये हुए थे और एक दिन जब कि मैं उनके पास से गुजर रहा था, अचानक उन्होंने मेरा दुबला शरीर देखकर मुझसे बातचीत छेड़ दी। पंडित जी ने भी शायद तब नये-नये ही आसन सीखे थे। उन्होंने आसनों का परीक्षण कर देखने को कहा और हम सात-आठ विद्यार्थियों ने चार दिन लगा कर उनसे सब आसन सीख लिये। अभी तक तो इन पुस्तकों के संस्कृत श्लोकों में लिखे आसनों का वर्णन पढ़कर इनकी विधि कुछ समझ नहीं पड़ती थी। किन्तु अब एक बार क्रियात्मक तौर पर करके देख लेने पर मैं आसनों के प्रकरणों को बहुत कुछ समझने लगा। इन आसनों से भी मेरे शरीर में पर्याप्त लाभ दिखायी दिया। इस प्रकार यम-नियमों के बाद आसनों से भी मेरा परिचय हो गया।

आगे एक दिन 'धर्मनिर्णय' पुस्तक पढ़ते हुए वहाँ एक प्राणायाम लिखा देखा। यह कुंभक प्राणायाम था और वहाँ विस्तार से स्पष्ट लिखा हुआ था। मैंने सोचा कि इसे स्वयं करने में क्या हर्ज है ? और मैंने करना शुरू कर दिया। इसके करने से मैंने देखा कि मुझे स्वयं अच्छी तरह शौच आ जाता है। इस तरह इस प्राणायाम द्वारा मेरी कब्ज की चिन्ता का सर्वथा ही अन्त हो गया।

किन्तु मेरी मुख्य चिन्ता तो आजकल अन्दर के उस प्राण संबंधी त्रुटि की थी और इसके लिए मुझे किसी प्राणाभ्यासी योगी की तलाश रहती थी। पर गुरुकुल में रहते हुए मैं योगियों की तलाश में कैसे फिर सकता था ? अतः यह सोचा था कि कम से कम अपनी दो मास की छुट्टियाँ तो इसी काम में लगाऊँ। एक महात्मा का पता, जो कि इटावा में रहते थे, लाला मुरारीलाल जी ने मुझे बताया और कहा कि उनके दर्शन करके ही देख लो। इतने में जबकि चतुर्दश श्रेणी की हमारी छुट्टियां प्रारम्भ होने में थोड़े ही दिन रह गये थे, दफ्तर के एक नए चपरासी से एक विचित्र प्रकार से ऐसी बात छिड़ जाने से उस चपरासी ने लालाजी को बतलाया कि यहाँ पास ही नागल गाम में एक योगी रहते हैं। यह समचार सुनकर तो मुझे विशेष खुशी हुई कि वे स्वर योगी हैं। मैंने निश्चय कर लिया कि इन छुट्टियों में मैं नागल और इटावा तो अवश्य होकर आऊंगा और अभ्यास के लिए यदि कहीं रहना पड़े तो दो महीने वहीं बिताऊंगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगियों की तलाश

छुट्टियाँ प्रारम्भ होते ही मैं अकेला अपना बिस्तर उठाकर चुपचाप नागल ग्राम में पहुँचा और वहाँ से 'भूरिया स्रोत' के इन सन्त के आश्रम का पता लगाया। ये स्वर योगी साधु केवल लंगोट पहिनते थे। शरीर लम्बा-चौड़ा सर्वथा सुडौल और स्वस्थ था। उन्होंने मेरे पहुँचने से एक निरभिमान जिज्ञासु देखकर सायंकाल इशारे से मेरा आगमन प्रयोजन पूछा। मैंने अपना हाल सुनाया तो उन्होंने स्वयं करके मुझे एक आसन बतलाने की कृपा की जिससे कि मेरा प्राण ठीक हो सके। अगले दिन प्रातः उन्होंने गंगा की रेत पर लिखकर मुझे यह संदेश पहुँचाया 'अभी उन्हें यहाँ कष्ट होगा, वे देर तक रहना चाहते हैं तो वे फिर कभी आवें।' अतः मैं वहाँ दो दिन ही रहकर उन्हें प्रणाम कर आशीर्वाद लेकर चला आया।

यहाँ से मैं हमीरपुर गया और पिताजी से एक परिचित इटावा निवासी महाशय की चिट्ठी इटावा में एक वैश्य सज्जन के यहाँ ठहरने के लिए लेकर इटावा पहुँच गया। पहिले दिन ही सायंकाल चार बजे मैं यमुना तट पर इन सन्यासी जी की तलाश में गया। स्वामी जी एक विद्वान महात्मा थे, एक गद्दी के अधीश थे। रेल पर यात्रा नहीं करते थे। वहाँ इनकी बहुत स्तुति सुनी, पर मैंने देखा मेरे लिए यहाँ सफलता की आशा नहीं है क्योंकि मैंने उस आश्रम के बाहर के दरवाजे पर इस आशय का तख्ता लगा हुआ देखा कि स्वामी जी से प्रश्न आदि पूछना मना है। और लोगों की बातचीत से भी इसकी पुष्टि हुई। खैर, बड़ी प्रतीक्षा के बाद आठ बजे के लगभग पता लगा कि अब उनके दर्शन हो सकते हैं। वे बहुत से लोगों से घिरे बैठे थे। उन पर पंखा हो रहा था। इन सबके पीछे मैं भी प्रणाम करके बैठ गया, पर वहाँ तक तो वे जो कुछ कहते थे, वह भी नहीं सुनायी देता था। कुछ देर बाद उन्होंने चुटकी बजाई जिसका यह मतलब था कि अब सब चले जायें। केवल दर्शन पाकर मैं भी सबके साथ उठ आया। उस समय वहाँ यह भी पता लगा कि कल स्वामी जी नाव द्वारा कहीं बाहर चले जायेंगे और बहुत दिन में लौटेंगे। मैं सोचता-सोचता नौ-दस बजे शहर में अपने ठिकाने पर पहुँचा। 'एक तो स्वामी जी से प्रश्न आदि करना मना है, फिर वे लोगों से घिरे रहते हैं तो उन तक पहुँच होना कठिन है और यदि किसी तरह कुछ दिनों में उन तक पहुँच हो भी सके तो वे कल ही कहीं बाहर चले जायेंगे, अतः यहाँ किस प्रयोजन से ठहरूं?' इस प्रकार सोचकर मैंने निश्चय किया कि प्रातः की ही गाड़ी से चला जाऊं और यह अपना अभिप्राय उन वैश्य सज्जन जी को कह दिया। उन्होंने कहा 'आप तो एक महीना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक ठहरने का इरादा करके आये थे, एक ही दिन में चल दिए ?' मैंने सब हाल कह सुनाया। और प्रातः चार बजे की रेल से रवाना होने के लिए स्टेशन पर भी प्रातः ही पहुँच गया। पर वहाँ उस दिन मुसाफिरों को टिकट नहीं दिये गये। खबर सुनी कि गाड़ी बहुत भरी है और इसमें फौज जा रही है अतः आज कोई मुसाफिर नहीं जा सकेगा। गाड़ी आयी और चली गयी। मैं क्या करता ? हमीरपुर पहुँचने के लिए तो वही एकमात्र गाड़ी थी। अतः यह सोचकर कि अब कल की इस गाड़ी से जाऊंगा, मैं शहर लौट आया। दिन भर कटा। सायंकाल इच्छा हुई कि चलूं आज फिर यमुना तट पर घूम आऊँ—स्वामी जी तो वहाँ नहीं होंगे पर आश्रम के अन्य लोगों से परिचय प्राप्त करूंगा। आश्रम में ज्यों ही पहुँचा तो मैंने आश्चर्य से देखा कि सामने से स्वामी जी अकेले आश्रम की तरफ चले आ रहे हैं। मैंने प्रणाम किया और उनके पीछे-पीछे मकान के ऊपर चल दिया। एक और आदमी दौड़ा आया और उसने स्वामी जी के विराज जाने पर उन्हें पंखा करना प्रारम्भ किया। मैं भी स्वामी जी की आज्ञा से सामने बैठ गया। पता लगा कि स्वामी जी कहीं होकर अभी लौटे आ रहे हैं। जहाँ बहुत दिनों के लिए जाना था, वहाँ नहीं जा सके। स्वामी जी ने मेरा हाल चाल पूछा। इतने में स्वामी जी का अंगोछा उड़कर नीचे जा गिरा। वह पंखा करने वाला सेवक अंगोछा उठाने और उसे धोकर लाने के लिए नीचे चला गया। पंखा मेरे हाथ लगा और मैं खड़ा होकर उनके और समीप आकर पंखा करने लगा। एक अन्य आदमी के समीप होने का जो संकोच था, वह भी हट गया और मैं अकेला ही स्वामी जी के पास रह गया। अब मैंने खूब खुल कर स्वामी जी से बातें कीं। वाम प्राण को ठीक करने के संबंध में (जो कि मेरी मुख्य जिज्ञासा थी) तो स्वामी ने बड़ी सरलता से कह दिया कि यह विषय मेरा अनुभूत नहीं है, केवल शास्त्रों में पढ़ा हुआ है अतः कुछ नहीं बतला सकता। आगे समाधि क्या है, कुंडलिनी क्या है इत्यादि विषय पर बातें होती रहीं जिनसे बड़ा सन्तोष मिला। इनमें से एक बात यहाँ भी लिखने योग्य है। कुंडलिनी के प्रकरण में स्वामी जी ने कहा कि 'उपनयन संस्कार' में जो—

मम व्रते ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

यह मंत्र बोला जाता है यह केवल बोलने का मंत्र नहीं है किन्तु किसी समय सच्चे आचार्य इस मंत्र के साथ सचमुच एकचित्तता द्वारा ब्रह्मचारी के अन्दर प्रविष्ट होते थे और उसके कुंडलिनी के मार्ग को साफ कर देते थे। इस क्रिया से ही आचार्य और ब्रह्मचारी का सम्बंध जुड़ता था और ब्रह्मचारी वास्तव में उपनीत (पास लाया गया) होता था। पर आजकल तो ऐसा कोई नहीं दिखाई देता। यह मैंने स्वामी जी के भाव को अपनी भाषा में जरा स्पष्ट करके लिख दिया है। अस्तु। इस प्रकार अपनी सब बातें पूछकर अन्त में उनका आशीर्वाद लेकर और प्रणाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके बड़ी प्रसन्नता से वापिस लौटा। स्वामी जी की कृपालुता का मुझे अभी तक स्मरण बना हुआ है।

यह घटना मेरे जीवन की उन कुछ घटनाओं में से है, जिसने कि मेरी इस बात में श्रद्धा दृढ़ की है कि कल्याणस्वरूप परमात्मा बड़े अद्भुत तरीकों से हमारी इच्छायें पूरी करते हैं या हमें लाभ पहुंचाते हैं। मेरी गाड़ी छूट जाना, फिर यमुना तट पर मेरी जाने की इच्छा होना. स्वामी जी के आते ही अकेले मिल जाना और उनका अंगोछा नीचे गिर जाने से सर्वथा एकान्त हो जाना ये सब बातें मेरे लिए होती चली गईं और मैं जो कि पिछले दिन सर्वथा निराश हो लौट जाने वाला था, अब बड़ा आनन्दित होकर लौटा।

इटावा से मैं सीधा महोबा गया। यह हमीरपुर के जिले में ही है। सुना था कि वहाँ एक योगी ठहरे हुए हैं। वहाँ उनके भी दर्शन हुए। उनकी बातों ने मेरी इस श्रद्धा को और पक्का किया कि योगियों की तलाश में भटकने से भी कोई नहीं मिलता और जब समय आता है तो घर बैठे गुरु मिल जाते हैं। अपनी इस श्रद्धा के कारण वास्तव में मैं आजकल भी अपने प्रयोजन के कोई योगी न मिलने से कुछ भी दुःखी या व्याकुल नहीं था। जिससे जो कुछ मिलता था, उसे ही बहुत और अपने बड़े कल्याण की वस्तु समझता था।

इसी वर्ष मेरी सगी बहिन का विवाह होकर चुका था और उसे एक सुयोग्य और साधु स्वभाव पति मिले थे। जब मैं ज्वालापुर महाविद्यालय में पहली बार ही बहन को मिलने गया था और अपने भगनिपति पं० रामअवतार जी शास्त्री (जो ज्वालापुर महाविद्यालय के स्नातक थे और तब वहीं अध्यापक थे) से पहली बार ही परिचय हुआ था, ये तभी समझ गये थे कि मुझे योग की तरफ रुचि है। उन्होंने मुझे यह कहा 'यदि आपने योग मार्ग में ही चलना है तो आप एक बार दौलतराम जी से अवश्य मिलें जो पहले अनूपशहर के पास रहा करते थे। एक बार मैं भी विरक्त होकर यहाँ से भागकर उनके पास गया था और वहाँ छः महीने तक रहा था।' रामावतार जी ने मुझे वह क्रिया भी बतलाई थी जो प० दौलतराम जी ने उन्हें प्रारम्भ में उपदेश की थी और वे अब मेरे कहने पर पं० जी का ठीक-ठीक पता अनूपशहर पत्र लिखकर मालूम कर रहे थे। इस प्रकार मेरी बहिन के विवाह ने भी मुझे एक योगी का पता बतलाया। अस्तु। जब तक मैं छुट्टियों से लौटा तब तक उनका पता भी रामावतार जी ने मालूम कर लिया था। इसलिए अब आगे के सबसे पहिले अवसर पर ही अर्थात् स्नातक परीक्षा देने के बाद गुरुकुलोत्सव तक जो नए स्नातकों को घर जाने के लिए लगभग एक मास का अवकाश मिलता था, उसमें ही घर न जाकर अनूपशहर जाने का निश्चय किया और गया।

इस प्रकार अब मैं योगियों की तलाश में रहने वाला अर्थात् लोगों को भी दिखायी देने वाला 'योग जिज्ञासु' बन गया। असल में तो योग के जिज्ञासु का ही पद ऊँचा है, भगवद्गीता में कहा है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।" मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं ऐसा योग जिज्ञासु हो गया था कि "शब्द ब्रह्म को अति वर्त्तन" कर गया था, अर्थात् मेरी बुद्धि वाणी के प्रपंच में (पुस्तकों, शास्त्रों, वचनों के शब्द जाल में) बिल्कुल न फंसकर पीछे रखे हुए तत्त्व को सीधा देखने लगी थी, किन्तु मैं अपने को योग का जिज्ञासु अवश्य अनुभव करता था और (यद्यपि गीता के इस वाक्य का तो उस समय पता न था) अन्दर ही अन्दर ऐसा (उचित या अनुचित) अभिमान भी रखता था कि मुझे कोई वस्तु मिल गई है—मुझे कोई 'पद' प्राप्त हो गया था। अस्तु।

मेरी यह योग-जिज्ञासा पूरी हुई या नहीं ? पूरी हुई तो कैसे ? इत्यादि आगे की कथा पाठक अग्रिम खन्डों में देखेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग-प्राप्ति की कहानी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित दौलत राम (अच्युत मुनि जी महाराज)

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि 1919 के प्रारम्भ में स्नातक परीक्षा दे लेने के पश्चात्, गुरुकुलोत्सव पर दी जाने वाली स्नातक की उपाधि प्राप्त करने से पूर्व जो लगभग एक मास का अवकाश हमें मिलता था, उसमें मैं अपने घर न जाकर अनूपशहर में पं० दौलतराम जी के दर्शनार्थ गया। सन्यास ले लेने पर उनका नाम अच्युत मुनि हो गया था। उस समय महाराज जी अनूपशहर से दो मील दूर गंगा की रेती में धारा के पास एक काष्ठ कुटीर में विराजते थे। पूछताछ कर वहीं पहुँच कर जब उनकी मूर्ति का दर्शन किया तो देखते ही चित्त प्रसन्न हो गया। उनके मुखसे निकला 'रामावतार ?' मैंने निवेदन किया, 'रामावतार जी का ही भेजा हुआ हूँ।' पूरा परिचय और प्रयोजन जानकर उन्होंने मेरे लिए 'आत्मा के स्वरूप' का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। उनका कहना था कि सब साधनों का उद्देश्य आत्मप्राप्ति ही है और बहुत से पुण्यात्मा लोगों को पूर्व जन्मों की कमाई के कारण एकदम ही आत्म-ज्ञान हो जाया करता है, इसके लिए उन्हें शारीरिक या मानसिक योगाभ्यासों की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए उन्होंने सीधा आत्मदर्शन कराने का यत्न किया। स्वयं दौलतराम जी महाराज को भी योग का फल (अर्थात् वेदान्त ज्ञान) पहिले प्राप्त हो गया था और योग की कुछ क्रियायें तथा अभ्यास उन्होंने पीछे से जाने थे, जान लिये थे। जब उनको सब जगत् में एक अखण्ड वृक्ष के अतिरिक्त और कुछ भासता ही नहीं तो उनका मन और कहाँ जा सकता था ? सचमुच, उसी दृढ़ धारणा के कारण महाराज जी का मन कहीं न भटक सकने के कारण समाहित हो जाता था। प्राण भी रुक जाता था। इस प्रकार योग के शारीरिक मानसिक कुछ फल तो उन्हें स्वयं ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हो गये थे तथा कुछ राजयोग की क्रियायें उन्होंने पीछे से सुन सुनाकर प्राप्त की थीं। वे कहते थे कि मुझे अकेले बैठा देख लोग मुझे योगाभ्यासी समझ कर मुझसे पूछने आते थे, मुझे तो कोई क्रिया आती न थी, मुझे तो बस यह ज्ञान ही मिला था, पर बातों में जब वे सुनाते थे कि हमें फलाने साधु महात्मा ने एक ऐसी क्रिया करने को बतलायी थी तो उस क्रिया को वह सुनाने वाला करता हो या न करता हो किन्तु मैं करने लगता था। इस प्रकार कई योग-क्रियायें महाराज ने दृढ़ कर ली थीं। उदाहरणार्थ, उन्हें त्राटक का इतना अभ्यास था कि वे पांच-छः घन्टे तक त्राटक करते रहते थे और कभी-कभी तो रात भर चन्द्रमा पर त्राटक होता रहा, जब चन्द्रमा अस्त हो गया तब पता लगा कि दृष्टि का आश्रय चन्द्रमा था। उनके सामने यदि कोई सिंह आदि हिंस्र जन्तु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये तो उनकी आंख नहीं झपकेगी, यह निश्चित था। अस्तु उन्होंने गुरु से प्राप्त एक जपपूर्वक प्राणाभ्यास मुझे बतलाने का निश्चय किया। हठयोग उन्हें पसन्द न था। इसलिए अपने वाम प्राण (इडा नाडी) ठीक करने की जो मेरी इच्छा थी, उस पर उन्होंने कहा कि यह हम कुछ नहीं जानते हैं, यदि तुम हठयोग सीखना चाहो तो यहां पास ही गंगापार गवां नामक गांव में एक हीरालाल जी बड़े हठयोगी रहते हैं, मैं उन्हें कह दूंगा, वे चाहेंगे तो सिखा देंगे। मेरे भाग्य से अगले दिन हीरालाल जी वहीं महाराज जी के पास आ गये। हीरालाल जी की इच्छानुसार मैंने दो-तीन दिन बाद गवां जाने का निश्चय कर लिया। महाराज जी ने भी कहा कि वहां हो आओ, वहां से आने पर मैं तुम्हें वह अभ्यास सिखा दूंगा। मैंने सुना था महाराज जी उपनिषदों के बड़े विद्वान् और अनुभवी हैं, अतः उपनिषद् की पुस्तक साथ ले गया था। उन्होंने एक-दो दिन कुछ पढ़ाने को भी सोचा था। पर जब देखा कि हीरालाल जी भी पढ़ने के लिए ही आये हैं तो एक कहानी सुन-सुनाकर पढ़ने-पढ़ाने का कार्यक्रम छोड़ दिया। अस्तु तीन दिन बाद मैं 'गवां' में हीरालाल जी के पास पहुंचा। हीरालाल जी बड़े सज्जन तथा अतिथिसेवी थे। उन्होंने वहां के एक और स्वतः प्रकाश जी नामक एक महात्मा के दर्शन कराये। इन्हीं के दर्शनों के निमित्त वे मुझे गवां बुलाते थे। स्वामी स्वतः प्रकाश जी के दर्शन का मुझ पर बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ा। ये बड़े मधुर स्वभाव के थे, अंग्रेजी बी० ए० तक पढ़े थे, सब धर्मों के महापुरुषों का आदर करते थे। उनकी वहां बहुत स्तुति सुनी। एक समय उनके सत्संग (कथा) में भी सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसमें जो उन्होंने कहा, उसकी दो बातें मुझे आज तक याद हैं। जाते समय जब मैंने उनसे आशीर्वाद मांगा तो उन्होंने कहा, 'मैं चाहता हूँ कि तुम्हें मुझसे भी पहले सिद्धि प्राप्त हो।' इस एक वाक्य ने ही उनकी महत्ता मेरे हृदय में बिठा दी। पीछे वे 'हरिबाबा' नाम से प्रख्यात हुए। अस्तु, हीरालाल जी से अपने उपयोगी एक दो आसनों की ठीक (अनुभूत) विधि जानकर मैं फिर महाराज जी के पास काष्ठ मन्दिर पर पहुंच गया उस रोज मैं दिनभर महाराज जी के पास रहा। उसी दिन बातचीत में उन्होंने वह उपनिषद् की 'सयुग्वा रैक्क' की कथा सुनायी जो कि मैंने एक दो साल बाद 'वैदिक धर्म' मासिक में 'सब सुखों की युगपत् प्राप्ति' इस शीर्षक से सम्पादक श्री सातवलेकर जी की बहुत इच्छा होने के कारण लेखबद्ध कर दी थी। महाराज जी की वाणी में प्रभाव और शक्ति थी। यह वे लोग जानते हैं जिन्होंने उनके व्याख्यान सुने हैं जबकि वे पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक थे। मुझे पं० विश्वंभरनाथ जी आदि कम से कम पांच प्रतिष्ठित सज्जनों ने भी उन दिनों का अपना अनुभव बतलाया है कि पं० दौलतराम जी के उपदेश उनके हृदयों पर बड़ा प्रभाव करते थे। एक कहते थे कि हम लड़के प्रायः खटपट करते हुए बैठते थे पर थोड़ी देर बाद प्रभावित होकर शान्त श्रोता बन जाते थे। मेरे हृदय पर भी उनका यह उपदेश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा स्थिर अंकित हुआ था कि दो वर्ष बाद भी मैं इसे वैसा का वैसा लेखबद्ध कर सका। उस दिन उन्होंने अपने जीवन की योग प्राप्ति विषयक कुछ घटनायें सुनाने की कृपा भी की जिससे कि मुझे पता लगा कि उन्हें दो अभ्यास गुरु प्राप्त हैं। एक तो वही प्राणायाम (प्रणवजाप के साथ केवल कुम्भक, जिसे योगदर्शन में चौथा प्राणायाम कहा है) जोकि उन्होंने मुझे अन्त में बतलाया तथा एक मंत्र (जिसके द्वारा योग में प्रगति होती जाती है)। उस मंत्र की चर्चा हीरालाल जी ने भी मुझसे की थी। अतः वह प्रणवजपपूर्वक प्राणायाम सीख लेने पर मैंने उनसे यह भी इच्छा प्रकट की कि आप मुझे वह मंत्र भी बतलाने का अनुग्रह करें किन्तु महाराज जी ने कहा 'तुम्हें उस पर श्रद्धा नहीं होगी।' तुम बचपन से आर्यसमाज के गढ़ में पले हो इसलिए मन्त्र द्वारा कुछ लाभ न होगा, इस पर तुम्हें श्रद्धा नहीं होगी और बिना श्रद्धा के बतलाना ठीक नहीं। मैंने कई तरह प्रकट किया कि मुझे तो इसमें कोई ऐसी बात नहीं दीखती जिस पर मेरी श्रद्धा न हो। मुझे शब्द शक्ति पर बड़ा विश्वास है, यह भी मैंने कहा। परन्तु सब निरर्थक गया। कुछ देर तो मैं बड़ा दुःखी हुआ कि मुझे श्रद्धा है फिर भी मुझे वस्तु नहीं मिल रही। फिर वही अपना निर्णीत विचार आया कि 'कोई बात नहीं, मैं अभी इसके योग्य नहीं हूँ।' परमात्मा मेरे भले के लिये ही ऐसा कर रहे हैं। परमात्मा चाहेंगे तो कल ही इससे भी बड़ी बढ़िया वस्तु मुझे दिला देंगे, परन्तु अभी मेरे कल्याण के लिए इस मंत्र की भी आवश्यकता नहीं, अभी मुझे उनका प्राणायाम का अभ्यास ही करना चाहिए। यह विचार कर मैं शांत हो गया। जाते समय जो उन्होंने मुझे उपदेश के तौर पर कहा था उसमें दो बातें शायद अन्य योगाभ्यासियों के काम की होंगी अतः लिखता हूँ। उन्होंने कहा था (1) इस मार्ग पर चलकर रुपयों की कभी चिन्ता मत करना (2) योग ऐसी चीज है जो कि फिर छूटती नहीं है। इन दोनों बातों का अर्थ (मूल्य) मुझे तो आगे-आगे अधिक अधिक समझ में आया। अस्तु।

गुरुकुल वार्षिकोत्सव आ गया था। जीवन में पहली बार लांग की धोती पहन कर स्नातक का चोला प्राप्त किया और 'विद्यालंकार' बन गया। अब ब्रह्मचारी की जगह 'पंडित जी' कहलाने लगा पर स्नातक होने की मुझे जरा भी खुशी नहीं थी। इससे अधिक खुशी इस बात की थी कि मैं एक अभ्यास सीख कर आया हूँ। बल्कि मैं अपने साथियों से कहता था कि यदि मैं एक वर्ष अनुत्तीर्ण होकर रह जाता तो भी अच्छा था। बाहर जाकर नून तेल अदरक की चिन्ता करनी पड़ेगी। वैसे स्नातक होकर सोचा यह था कि गाँव (चरथावल) में जाकर खेती करूंगा। इसके लिए उसी वर्ष चरथावल के जंगल में एक कमरा मेरे पिता जी ने बनवा दिया। यह मेरे बाबा जी की यादगार में तीनों भाईयों की तरफ से बनवाया गया था। इस पर मैंने दो श्लोक (आठ पाद) बनाकर लिखवाये थे जिनके प्रथम अक्षरों से उनका 'उमराव सिंह शर्मा' यह आठ अक्षर का नाम बनता था। पर मैं चरथावल में अनेक वर्षों तक कभी न रह सका। दो चार बार कुछ दिनों के लिए ही गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातक परीक्षा समाप्त हो जाने के दिन जब मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी के पास से (क्योंकि पंचकुटी बंगले के पास ही थी) गुजर रहा था तो स्वामी जी ने कहा—"कहो सब परीक्षा समाप्त हो गई ?" तो मेरे मुंह से निकला "असली जीवन की परीक्षा तो अभी शुरू ही होने वाली है।" उन्होंने कहा, 'हाँ, ठीक है।'

ढाई साल तक का प्रणवजाप

स्नातक हो जाने के बाद ढाई साल तक मैंने असल में एक ही कार्य किया अर्थात् महाराज दौलत राम जी का बताया हुआ अभ्यास-प्राण के साथ प्रणव जप। दिन का यही मुख्य काम था। यद्यपि इन ढाई वर्षों में कई जगह (दो वर्ष पिता जी व चाचा जी के पास और छः महीने गुरुकुल वेदानुसंधान कार्य में) रहा, पर मेरी दिनचर्या अखण्ड रूप से एक ही रही। मैं प्रातः चार बजे (कभी-कभी कुछ पहले भी, पर इससे देर में कभी नहीं) उठकर सवा घण्टा शीर्षासन करता था। इसके बाद बारह कुम्भक प्राणायाम आध घण्टे में करके शौच जाता था। बहुत बार यह प्राणायाम और शौच होना शीर्षासन से पहले भी करता था। फिर मुख हाथ धोकर या स्नान करके (प्रायः स्नान तो भोजन से पूर्व ही करता था) भोजन के समय अर्थात् दस-ग्यारह बजे तक वही प्रणव जाप युक्त प्राणायाम करता था। भोजन और उसके उपरान्त दो घण्टों में ही सब लिखना पढ़ना, किसी से मिलना आदि सब सांसारिक काम करता था। पुनः डेढ़-दो बजे से सायंकाल तक वही प्रणव जाप तथा उसके अन्त में एक घण्टा शीर्षासन, फिर कुछ व्यायाम के तौर पर आसन, फिर भोजन। इस भोजन के पश्चात् भी आध घण्टे तक बातचीत कर सकता था (नहीं तो इस समय भी कुछ विचारता हुआ टहला करता था)। साढ़े नौ तक सो जाता था। बस, इसी चक्र में दिन के बाद दिन बीतते हुए मेरे ढाई साल पूरे हो गये। दोपहर के भोजन के उपरान्त के दो घण्टों में ही मुझे पता लगता था कि मैं आज-कल कहाँ रह रहा हूँ, नहीं तो असल में इन ढाई वर्ष तक प्रणवजाप के विचारों से बनी अपनी एक नई दुनिया में ही मैं रहा हूँ।

स्नातक होते ही मैंने ऐनक लगानी छोड़ दी थी (आँख कुछ अच्छी भी हो गई थी, एक-डेढ़ नंबर घट गया था)। पढ़ना भी छोड़ दिया था। सिवाय गीता के दो वर्ष तक मैंने कोई खास पुस्तक नहीं पढ़ी। खूब मोटे अक्षरों में छपी मूल गीता (किसी का भाष्य नहीं) मैं पढ़ा करता था। हमारे समय में गुरुकुल में प्रारंभ काल का कट्टरता का जमाना था, फिर तो गुरुकुल के पाठ्यक्रम में ही गीता आ गई थी, पर हमें चौदहवीं श्रेणी तक गीता का पता तक नहीं था। स्नातक होते समय किसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठ ने गीता के दो अध्याय छपवाकर गुरुकुल में बंटवाये थे। तब सबसे पहले मैंने गीता के वे अध्याय मूल में पढ़े। बहुत अच्छे लगे। दो रुपये में गोरखपुर की छपी मोटे अक्षर की गीता खरीदी। और उसे पढ़ने का आनन्द लेने लगा। गीता के अतिरिक्त इन दो वर्षों में केवल (गिनी हुई) चार पुस्तकें मैंने पढ़ीं।

गुरुकुल में महीना भर रहने के पश्चात् जब मैं चाचा जी के पास कैराने में रहता था, तब मैंने पहिली पुस्तक पढ़ी। यह अयोध्या के भगवान सहाय जी 'रूपकला' नामक एक सन्त का जीवन चरित्र था। श्रावण मास में यहाँ से चलकर दो-तीन दिन रामावतार जी के पास महाविद्यालय में तथा पाँच-छ: दिन गुरुकुल में ठहरता हुआ हमीरपुर पिता जी के पास जाड़ों भर रहा। वहीं पर मैंने दूसरी पुस्तक परमहंस रामकृष्ण जी का जीवन चरित्र (श्रीरामकृष्ण वचनामृत) पढ़ी। यहाँ दिन में उन्हीं दो घन्टे के समय में एक गरीब विद्यार्थी को संस्कृत पढ़ाया करता था। यहीं से दिसम्बर में कुछ दिनों के लिए महाराज जी के पास भी गया था। दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में फिर चाचा जी के पास मोठ (जिला झांसी) में जाकर तीन-चार महीने रहा। यहाँ 'श्रद्धा' पत्रिका के लिए कभी-कभी लेख भी लिखता था तथा जल-चिकित्सा करता था। यहाँ से चलकर आषाढ़ में फिर लगभग एक मास अनूपशहर रहकर 'पंचदशी' पुस्तक महाराज जी से पढ़ी। यह तीसरी पुस्तक थी। इसी समय चौथी पुस्तक 'In Tune with the Infinite' भी पढ़ी जिसका उल्लेख अगले प्रकरण में आवेगा। इन चार पुस्तकों के अतिरिक्त मैंने कुछ नहीं पढ़ा। केवल गीता पढ़ी। अतएव मैं अपने को अब गीता का समझने वाला भी समझने लगा था। गीता का मेरे जीवन पर जो प्रभाव है, उसका उल्लेख आगे आवेगा।

अनूपशहर से आकर दो मास चरथावल में उसी नये बने मकान में रहा जिसका उल्लेख पिछले प्रकरण में किया है। पर केवल दो मास। तब केवल आम खाता था और सायं दूध। फिर जाड़ों में हमीरपुर में रहा। इन दिनों अपनी बहन बुद्धिमती को संस्कृत भी पढ़ाता था। इस समय बालकपन में पढ़े पंचतंत्र को पुनः पढ़ने में एक और आनन्द आता था। अब उसकी बातें विशेष समझ में आती थीं।

तीसरे वर्ष के प्रारम्भ में फिर चाचा जी के पास (जो कि अब रमपुरा रियासत जिला जालौन में कामदार थे) एक महीना रहकर गुरुकुल में वैदिक अनुसंधान कार्य पर चला आया। यह घटना इस प्रकार हुई।

सन् 1921 के प्रारम्भ में स्वामी श्रद्धानन्द जी गुरुकुल में फिर मुख्याधिष्ठाता होकर आ चुके थे और उन्होंने गुरुकुल में वैदिक तत्वशोधन (Research) का कार्य अवश्य और शीघ्र प्रारम्भ करने का निश्चय किया था, तो उन्होंने इस कार्य के लिए मुझे गुरुकुल आने को लिखा। मेरी कोई सार्वजनिक कार्य करने की इच्छा नहीं थी। अभी तक अपने इसी अभ्यास में लगे रहने की इच्छा थी तो भी मैंने सोचा कि यदि दोपहर को भोजन वाले जो दो घंटे मुझे मिलते हैं (जब कि मैं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यास नहीं कर सकता) उस समय को वैदिक तत्व शोधन में लगाऊँ तो कुछ हर्ज नहीं है। इसलिए मैंने स्वामी जी को पत्र लिखा कि यदि आप मुझ से दिन में केवल ढाई घंटे कार्य लेवें तथा इस समय के अतिरिक्त ऐसा समझें कि मानों मैं गुरुकुल में नहीं हूँ तो मैं इतना समय तो दोपहर में दे सकता हूँ। स्वामी जी ने मेरा केवल ढाई घंटा कार्य करना भी स्वीकार कर लिया और घरवालों पर भी अब अधिक देर तक अपना बोझ रखना ठीक न देखकर मैं गुरुकुल आ गया। वहाँ ढाई घंटा नियम से ऋग्वेद के ऋषियों के सम्बन्ध में अपना कार्य करता रहा। शेष समय वहीं अपना प्रणवाभ्यास करता रहा।

यह वैदिक तत्वशोधन का कार्य छः महीने बाद ही क्यों छोड़ देना पड़ा या यह प्रणवाभ्यास ढाई वर्ष में क्यों पूरा सा कर दिया गया, इसकी कथा आरम्भ करने में तो अभी देर लगेगी, क्योंकि इससे पहिले योगप्राप्ति सम्बन्धी तीन प्रकरण ऐसे आवश्यक हैं जिन्हें पाठकों को बिना सुनाये आगे नहीं चला जा सकता है। उन तीन प्रकरणों के पश्चात् 'पुनः जागरण' के प्रकरण में ही वह कहानी लिख सकूंगा कि ढाई वर्ष बाद वह अपना अभ्यास क्यों पूरा कर दिया गया तथा वैदिक अनुसंधान कार्य क्यों छोड़ दिया गया ?

पर इस प्रकरण में जो मुख्य बात मैं पाठकों को सुनाना चाहता हूँ, वह यह है कि इस प्रणवाभ्यास के दिनों में मेरी मनोऽवस्था कैसी हो गयी थी। मेरा मन किस दुनिया में रहा करता था।

प्रणवजप में मन को एकाग्र करने का यत्न करते हुए मैंने प्रणव के अर्थ की पाँच-छः भावनायें बना ली थीं, जिन ही के घेरे में बारी-बारी से मन को मैं रखता था। किसी एक ही अर्थ पर या शब्द पर मन को एकाग्र, केन्द्रित नहीं कर देता था। पर उस घेरे से बाहर नहीं जाने देना, यही यत्न होता था। प्रणव के अर्थ सम्बन्धी बेशक कोई भी विचार आवें, पर उससे बाहर का (दुनियावी) कोई विचार न आवे। पीछे से जिस जप में मन बाहर चला जाता था उसे मैं नहीं गिनता था, उस पर मनका आगे नहीं सरकाता था। इससे मन को अचंचलता के लिए प्रेरणा बल मिलता था, उदाहरणार्थ ओम् अर्थात् 'सर्वथा परिपूर्ण तत्व', अपने को परिपूर्ण करने वाला 'ओम्' है, सर्वज्ञान का एकमात्र स्रोत है (निरतिशयं सर्व ज्ञान बीजम्) वह मुझे आगे-आगे ज्ञान देता जा रहा है, वह कोष आदि से रहित है, मैं भी निष्काम, निरहंकार होता जा रहा हूँ, वह सम है, मेरी सुख दुःख में समता बढ़ती जाती है। यहाँ पर मैं बड़े से बड़े, घोर से घोर संभावित दुःखों को चित्रित करता था और यत्न करता था कि ऐसा होने पर विचलित नहीं होऊँगा। मृत्यु महा-दुःख के प्रश्न को भी बहुत बार सोच विचार कर हल किया था। इस तरह बड़े से बड़े सुख को भी पाकर आनन्दित नहीं होऊँगा। ऐसी भावनाओं को मैं मन में बोला करता था 'मुझे कोई सुख न चाहिए, कोई दुःख नहीं। कोई चिन्ता नहीं, कोई भय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं।' भय को सर्वथा भगा देने में, सर्वथा भय रहित हो जाने में बड़ा सुख अनुभव प्राप्त करता था। अतएव अपना उपनाम अभय रखना मुझे पसंद हुआ था। वह ओम् भय रहित है। फिर यह ओम् सर्व शक्तिमय है, मुझमें निरन्तर शक्ति दे रहा है। इत्यादि प्रकार की भावनाओं में ही रहकर, मन को रखकर, मैं ओम् की धुन चलाता जाता था। वह बड़ा ही आनन्ददायक कृत्य था। जप समाप्त हो जाने पर भी देर तक वह आनन्द स्थिति बनी रहती थी।

'सन्ध्या' (शंनो देवी वाली) का समय अब घट गया था क्योंकि शंकायें कम पैदा होती थीं, उठती थीं। लगभग एक-डेढ़ घण्टा लगता था। पर अब भी उस विचारधारा में पूरा गुजर जाना ही सन्ध्या करना होता था। यह सन्ध्या प्रायः सायं शीर्षासन में ही पूरी कर लिया करता था।

दुःखितों के लिए प्रार्थना करना अब भी जारी था।

इन ढाई वर्षों में शरीर भी अच्छा रहा। केवल दो बार मामूली सी अस्वथता हुई कही जा सकती है। हमीरपुर में जाड़ों में खुजली सी हुई थी (शायद 'एला रसायन' में भिलावा खाने से) जिसके लिए मैंने आठ दिन का उपवास किया था। दूसरी बार हमीरपुर में ही जल चिकित्सा प्रारम्भ करने पर दो-तीन दिन ज्वर हुआ था। नहीं तो कभी कुछ भी रोग नहीं हुआ।

गुरु धारधा

महाराज दौलत राम जी के प्रति अभी तक मेरी वैसी सी साधारणतया पूज्य दृष्टि थी जैसी कि अन्य कई महानुभावों के प्रति थी जिनसे कि मैंने कुछ आसन या प्राणायाम आदि सीखा था। इन ढाई वर्षों में यह एक विशेष घटना हुई कि महाराज को मैंने विधिवत् अपना योग का गुरु धारण कर लिया। यही वृत्तान्त इस प्रकरण में लिखूँगा।

स्नातक होने पर पहले ही वर्ष जब मैं कैराने से हमीरपुर जाता हुआ बीच में दो-तीन दिन के लिए रामावतार जी के पास महाविद्यालय ठहरा हुआ था तो एक दिन सायंकाल अचानक समाचार मिला कि पं० दौलतराम जी आए हैं। मैं उसी समय उनके पास जाने को हुआ, पर रामावतार जी ने वहाँ से आकर बताया कि महाराज जी ने मुझको कल प्रातःकाल बुलाया है, इस समय तो वहाँ भीड़ लगी है। मैं बहुत प्रातः चार-साढ़े चार बजे ही उनके ठहरने के स्थान पर ऊपर चला गया। तब मैंने प्रथम बार समाधि में प्राण को चढ़ाने और उतारने को प्रत्यक्ष देखा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा कि वे एक रजाई ओढ़े बैठे हुए हैं, मेरे पहुँचते ही उनके शरीर में घड़, घड़, घड़ सा शब्द होना प्रारम्भ हुआ जो कि (मैं पीछे समझा) प्राण के उतारने का शब्द था जैसा कि पानी से भरा घड़ा खाली किया जा रहा हो। ज्यों ही वह शब्द समाप्त हुआ त्यों ही महाराज जी की वाणी का प्रेम युक्त शब्द सुनाई दिया 'क्या देवशर्मा ?' मैंने अनुभव किया कि शायद मेरे अनजाने में महाराज जी के आन्तरिक कृत्य में मेरे आ जाने से बाधा हो गई है। मैंने क्षमाप्रार्थी के तौर पर कहा 'मैंने कुछ विघ्न कर दिया है।' परन्तु महाराज ने बड़ी शान्ति भरी वाणी के साथ यह कहते हुए 'संसार में विघ्न कोई वस्तु नहीं है' बातचीत प्रारम्भ कर दी। उन्होंने यह भी कहा कि सुना है कि तुम खूब लगन से अभ्यास करते हो। ऐसे कहते हुए मुझ पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। आगे प्रणव जप के विषय में बातचीत करते हुए महाराज जी ने ओम् का अर्थ समझाने के लिए उसी समय ब्राह्म-मुहूर्त में 'माण्डूक्योपनिषद्' (जो उन्हें कण्ठाग्र थी) का तत्वार्थ समझाया। अब तक मैंने माण्डूक्योपनिषद् (कोई भी उपनिषद्) विचारपूर्वक अध्ययन नहीं की थी, (गुरुकुल में पढ़ी तो थी, परीक्षा भी दी थी)। आगे जाकर जब मैंने महाराज जी के उपदेश के आधार पर उस उपनिषद् को पढ़ा तो इसे समझ सका और समझ आ जाने पर बड़ा आनन्दित हुआ। उस समय कही गई बातों में से एक यह बात भी स्मरण है कि महाराज जी ने कहा कि प्रणव जाप से नीरोगता आदि बहुत से लाभ होते हैं। ये जो बहुत से योगाभ्यासी बीमार भी रहते हैं वे प्रणव जाप नहीं करते।

इस प्रकार अचानक महाराज जी के दर्शन पाकर और यह जानकर कि महाराज जी मुझसे प्रसन्न हैं, मैं आह्लादित हुआ। परन्तु उनकी प्रसन्नता का प्रसाद तो अभी मिलना शेष ही था। जब मैं हमीरपुर पहुँचा तो कुछ समय के बाद पं० रामावतार जी का मुझे एक पत्र मिला जिसमें लिखा था 'महाराज जी कह गये हैं कि यदि देवशर्मा चाहे तो वह मंत्र मुझसे सीख सकता है जिसके सीखने की उसे तब इच्छा थी।' यह वही मंत्र था जिसे जानने के लिए मैं पहली भेंट में इतना उत्सुक रहा था। अब तक तो मैं उसे लगभग भूल चुका था। मैंने महाराज जी के पास शीघ्र ही पहुँचने का विचार किया और कुछ दिनों बाद दिसम्बर के अन्त में बड़े दिन के अवसर पर जबकि अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन हो रहा था, मैं अपना उत्सव मनाने महाराज जी के पास पहुँचा। आजकल महाराज जी गवां के पास ही रहते थे। गवां में मैं श्री हीरालाल के यहाँ ठहरता हुआ महाराज जी की कुटी पर पहुँचा। रात भी वहीं रहा। बड़ा शीत था। प्रातःकाल बड़ी ठंडी हवा चल रही थी। गंगाजल में स्नान करना बड़ा कठिन था। परन्तु उस आनन्द में मुझे यह कोई कष्ट प्रतीत नहीं हुआ। स्नान करके आया तो महाराज जी ने मेरे लिए मंत्र लिख रखा था। वह मंत्र समझाया। वह दिन मुझे खूब याद है। उस दिन से महाराज जी मेरे प्रतिदिन प्रातः स्मरणीय गुरुदेव हो गये। उस मंत्र में तो केवल दस मिनट लगते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक रूप में आसन, षट्चक्रभेदन, दिव्य शरीरोत्पादन आदि करके जो भावना अगले चौबीस घण्टे के लिए करनी होती है वह यह है—

प्रातः प्रभृति सायान्तं, सायादि प्रातरन्ततः ।
यत्करोमि जगन्मातः, तत्सर्वं तव पूजनम् ।।

इसके साथ ही अगले चौबीस घण्टों के 21600 श्वास प्रश्वास भी माता को अर्पण किये जाते हैं। महाराज जी ने कहा था कि मुख्य बात इस समर्पण भावना को सतत बनाये रखना है। उन्होंने तो 'गुरु' करके अपना स्मरण करने से भी मना किया था, वे सच्चे अर्थ में वेदान्ती थे। 'गुरु' तो परमेश्वर ब्रह्म है, यही मानते थे।

यह मंत्र उन्हें कैसे मिला था, इसकी मनोरंजक कथा भी उन्होंने पहली बार बार ही सुनायी थी। पर अब ठीक प्रकार स्मरण नहीं रही।

महाराज जी सहज दयालु थे। वे मंत्र देकर ही संतुष्ट नहीं हो गये। उनकी हार्दिक इच्छा तो यह थी कि वे मुझे अमूल्य वेदान्त ज्ञान देकर तीर्ण कर दें अतः उन्होंने स्वयं मुझे कहा कि तुम मुझसे 'पंचदशी' पढ़ जाओ। मैंने भी देखा कि मुझे कितना भारी सुअवसर मिला है। वैसे 'पंचदशी' पढ़ लेना और बात है, पर साक्षात्कर्त्ता के मुख से उपदेश सुनना बिल्कुल दूसरी बात है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि महाराज जी के दर्शन करने से पूर्व मैं यह नहीं समझता था कि शंकराचार्य जी द्वारा प्रतिपादित वेदान्त को (पढ़ने, पढ़ाने, कहने के अतिरिक्त) सचमुच वैसा अनुभव करने वाले भी कोई लोग हो सकते हैं। वेदान्ती तो मैंने बहुत देखे थे। पर महाराज जी में मैंने वेदान्त जीता जागता देखा और प्रारम्भ में आश्चर्यान्वित भी हुआ। अस्तु, महाराज जी को बरसात में पढ़ाना अनुकूल था अतः मैं अगले वर्ष (1920 में) आषाढ़ में मोठ से अनूपशहर आया और वहाँ लगभग एक महीना रहकर महाराज जी से 'पंचदशी' पढ़ता रहा। प्रारम्भ में बीस दिन तक तो एक अच्छी श्रेणी लग जाती थी मेरे कारण और बहुत से लोग पंचदशी सुनने का आनन्द प्राप्त करते थे। परन्तु अन्त के पाँच-छः दिन (महाराज की इच्छा से) मैं अकेला ही बिल्कुल प्रातः सूर्योदय के समय उनके काष्ठ मन्दिर पर जाकर पढ़ आता था।

'पंचदशी' के अध्ययन का मेरी आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ा, इसकी चर्चा तो अगले प्रकरण में आ जावेगी। पर महाराज जी के विषय में लिखने में अभी तृप्ति नहीं हुई है। अतः उनकी कुछ अनमोल बातें संक्षेप में यहाँ सुना जाऊँ।

महाराज जी अपना नाम 'अच्युत' (जो च्युत नहीं हुआ है) लिखा करते थे। मैंने जो अपना उपनाम 'अभय' रखा था, वह इसी को देखकर, इससे प्रेरणा पाकर, रखा था। वे जब अपने अच्युत विराट् रूप को अनुभव करते हुए बोलते थे 'यह सूर्य और चन्द्र मेरे नेत्र हैं' तब बड़ी ही विशाल प्रेरणा प्राप्त होती थी।

वे बहुत काल तक संन्यासी नहीं बने थे। वे कहा करते थे कि संन्यासी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनना बड़े उत्तरदातृत्व का कार्य है। संन्यासी हो जाने पर यदि एक बार भी राग या द्वेष उत्पन्न होता है तो उसे गोघात के समान पातक होता है। पर पीछे वे संन्यासी हुए। 'अच्युत मुनि' उनका नाम था। जब मैंने उन्हें पहली बार काषाय वस्त्रों में देखा तो उन्होंने स्वयं सुनाया कि इस शरीर के छूटने की अवस्था आ गई थी, अतः मैंने संन्यास ले लिया, क्योंकि ब्राह्मण को संन्यासी हुए बिना नहीं मरना चाहिये 'ब्राह्मणे नासंन्यस्तेन प्राणस्त्यक्तव्याः।'

एक बा' शायद 1925 में बदरीनाथ जाते हुए मेरे आचार्यत्व काल में गुरुकुल पधारने की भी उन्होंने कृपा की। मैंने ब्रह्मचारियों को कह दि' था कि वे मेरे गुरु हैं, अतः जिनको श्रद्धा हो वे ही उनके पास आवें और उन्हें प्रणाम करें। जब छोटे ब्रह्मचारी आ आकर उन्हें प्रणाम कर रहे थे तो उन्होंने एक ब्रह्मचारी को पकड़ लिया और उससे उसका नाम पूछा। उसने नाम बताया मानो 'देवेश्वर', तो पूछने लगे 'देवेश्वर' कहाँ है, बताओ, देखो देवेश्वर कहाँ है, किस जगह हैं ? बालक का उसकी आत्मा उसके असली स्वरूप की तरफ ध्यान आकृष्ट करने का उनका यह कैसा अनूठा तरीका था ?

एक बार कहते थे कि मैं चौबीसों घण्टे जप करता हूँ, चौबीसों घण्टे कैसे, समझे ? जागृत अवस्था में तो जप करता ही रहता हूँ, पर जब स्वप्न में होता हूँ तो स्वप्न भी यही आता है कि मैं जप कर रहा हूँ और सुषुप्ति अवस्था में तो वैसे ही ब्रह्म से एकरूपता होती है।

एक बार कहते थे मैं जप नहीं करता, जप होता है या यों कहें ब्रह्म मेर जप करता है।

एक बार कहते थे कि जब रेल चल रही होती है तो मेरा जप भी उसी गति से चल रहा होता है।

जब मैं उन्हें रेल पर छोड़ने जा रहा था तो एक प्रसंग में कहा कि 'जब मैं अपने बंडल गिनता हूँ, इतने बंडल हैं, तो एक अपने आप को भी गिन लेता हूँ, कहीं खो न जाऊँ।' सचमुच वे अपने को खोये रहते थे, वे भी एक बंडल ही थे, अहंता नोन कर चुके थे।

वेदान्त ज्ञान के विषय में कहते थे—

'यह ज्ञान (सबको बड़ी इच्छा से देना चाहता हुआ भी) केवल उसी को दया जा सकता है कि जो चरमदेह है।

'विचारते-विचारते देह में आत्मबुद्धि हो गयी है। इसी तरह मन से यह सब जगत् दीखता है (अतएव हम मन के साधन के स्वरूप को नहीं देख पाते)। जब मन हो नहीं रहता तो मैं ध्यान किसका करूं ? मन है ही नहीं, कारण ब्रह्म के अतिरिक्त मन कुछ भी नहीं है। इसी तरह सब जगत् है।

'हम इन चीजों का इतना ध्यान करते रहते हैं अतएव ये इतनी सत्य प्रतीत होती हैं—स्वप्न के समय वह बिलकुल सत्य ही प्रतीत हो रहा होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उपदेशदाता एक वही है। अप्रत्यक्ष रूप से उसी से सब ज्ञान आता है। सीधा उससे क्यों न पूछें ?'

'सच्ची भक्ति भी यही है कि उसे अपना ही समझ लें, न कि पिता, स्वामी आदि। कुछ भी अन्तर रहने पर (उपनिषद् वाक्य) मानने से भय बना रहता है। अतएव गीता में कहा है "तेषां ज्ञानी नित्य युक्तः एक भक्तिर्विशिष्यते।"'

'ज्ञान को अण्डोद्भूत बच्चे के समान सेना चाहिये, नहीं तो पंख गल जाते हैं।'

ज्ञान प्राप्ति के दो विशेष अनुभव

जब मैं अनूपशहर में महाराज जी से पंचदशी पढ़ रहा था तो एक विचित्र परिस्थिति में रह रहा था, आर्यसमाजी और 'नवीन' वेदान्ती दोनों प्रकार के सज्जनों के सम्बन्ध में रहता था। दिन का भोजन, पढ़ने के उपरान्त श्रीयुत सेठ गौरीशंकर जी गोइनका के यहाँ करता था जो कि महाराज जी के प्रसिद्ध शिष्य और सनातन धर्मी थे (महाराज के शरीर त्यागने पर उन्होंने ही 'अच्युत ग्रन्थमाला' वाराणसी में उन्हीं की यादगार में बनाई है), और सायंकाल का भोजन तथा शयन एक महाशय रामस्वरूप जी के यहाँ करता था जो कि वहाँ के उत्साही आर्यसमाजी थे। मैं तो अनूपशहर स्वयं भोजन पकाने के लिए और यहाँ तक कि भिक्षा करने के लिए भी उद्यत होकर आया था परन्तु यहाँ उक्त दोनों सज्जनों के अति प्रेम युक्त आग्रह के कारण एक एक समय का भोजन दोनों ही के यहाँ रहने दिया था। परन्तु मैं अपने पंचदशी अध्ययन के कार्य से दोनों को ही प्रसन्न न रखता था। रामस्वरूप जी को यह ठीक न लगता था, मैं आर्य समाजी पंचदशी जैसी पुस्तक क्यों पढ़ता हूँ जिसका कि पढ़ना स्वामी दयानन्द निषिद्ध कर गये हैं और मेरी जब उनसे वेदान्त विषय में बात होती थी तो मैं उनके सन्मुख वे ही दलीलें रखता था जो कि अद्वैत की पोषक थीं। दूसरी तरफ सेठ जी आदि को यह देखकर दुःख होता था कि मैं 'पंचदशी पढ़कर भी यह नहीं मानता था कि मैं (नवीन) वेदान्ती हूँ और उनसे वेदान्त विषय में बात होने पर मैं वे बातें उनके सामने रखता था जिन (पंचदशी या प्रचलित वेदान्त की बातों) से मेरा मन फिरता था। परन्तु अपने मन में तो मैंने इन द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत का समन्वय कर रखा था और संतुष्ट था। मेरा मन जिन उलझनों में पड़ा हुआ था, वे और ही थीं। मेरा मनन पहले की तरह ही चला करता था और जो नये प्रश्न उठते थे, उन्हें विचार-विचार कर नये नये प्राप्त ज्ञान द्वारा शान्त किया करता था। इन ढाई वर्षों में दो बार ऐसा हुआ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मेरे सामने विशेषतया प्रश्न आकर खड़ा हो गया और रास्ता रुक गया। इनमें से पहला प्रश्न पंचदशी पढ़ने के दिनों में उत्पन्न हुआ। पंचदशी बड़ी अच्छी पुस्तक थी। उसके श्लोक बड़े हृदयग्राही लगे। इन्हें पढ़ते हुए इसके रचयिता के प्रति श्रद्धा पैदा होती थी। परन्तु इसके पढ़ते हुए एक प्रकार का हटाव (Repulsion) भी मुझे होता था। इसका कारण मुझे यही प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ ऐसी बात बार-बार कही गयी है जिसकी कि मात्रा पहले ही मुझमें बहुत है। यह बात थी संसार को दुःखमय समझ छोड़ना, माया से डर कर भागना। इन बातों को मेरा मन स्वीकार नहीं करता था, इनसे फिरता था। इसी समय विचारते-विचारते मेरे सामने प्रश्न यह खड़ा हुआ कि 'संसार में दुःख क्यों है ?' या 'यह संसार जिसमें इतना घोर दुख भी है क्यों बनाया गया है ?' मेरा यह प्रश्न हल होने में नहीं आता था। सम्भवतः यह प्रश्न पंचदशी के पढ़ने से मुझमें उठा था पर पंचदशी में ही अन्त तक इसका कुछ उत्तर मुझे नहीं मिला। अन्यों से बातचीत करने से भी कुछ शान्ति नहीं हुई। इन्हीं दिनों मुझे एक पुस्तक पढ़ने को मिली। अनूपशहर में उन्हीं दिनों हमारे पास ही पंडित चेतराम जी रहते थे। ये गुरुकुल के प्रारम्भिक स्नातकों में सबसे बलिष्ठ प्रसिद्ध स्वर्गीय स्नातक ब्रह्मदत्त जी के पूज्य पिताजी थे। ये मेरे आदरणीय थे तथा मुझ पर स्नेह रखते थे। ये भी पंचदशी सुनने रोज बैठा करते थे। मुझे याद है कि प्रभु का नाम बोल बोल कर लेते जाते हुए वे प्रातः अपने कमरे में किस आनन्द से झाड़ू दिया करते थे। मैं कई बार उनके पास आया करता था। एक दिन उन्होंने मुझे अपनी पुस्तक निकाल कर दी और कहा, 'इसे पढ़ोगे ?' वह पुस्तक थी सर वाल्डो ट्राइव की Intune with the Infinite (अनन्त के साथ स्वर मिलाना)। इस पुस्तक से एक बार परिचय तो मेरा हो चुका था और यह भी मन में आया कि इसे कभी पढ़कर देखूंगा इसलिए यह पुस्तक ले गया। ज्यों ज्यों यह पुस्तक मैं पढ़ता जाता था त्यों त्यों आनन्दित होता जाता था। मुझे ऐसा अनुभव होता था कि इस पुस्तक के पढ़ने से मुझे जीवन मिलता था। इसमें वेदान्त का ही उपदेश है। मैंने समझा मानो यह पुस्तक इस समय मुझे ईश्वर प्रेरणा से मिली है। इसका वेदान्त मुझे प्रिय लगता था और मुझमें जीवन संचारित करता था। पंचदशी के वेदान्त में जो एक रुक्षता मुझे प्रतीत होती थी, उसकी पूर्ति करने वाली यह पुस्तक थी। पीछे से मैंने देखा कि ट्राइव की यह किताब उस फल को प्राप्त कराने में सहायक है जो कि ओम् की प्रथम अ मात्रा के साक्षात्कार (Realisation) से होता है। इसी पुस्तक को पढ़ते हुए मुझे एक दिन मुझ में उठे उस प्रश्न का उत्तर, एक विचार आने पर, सूझ गया। बस फिर क्या था ? मैं इतना आनन्दित हुआ कि आध घण्टे तक आनन्द में पागल सा रहा। पुस्तक नीचे धर दी और आनन्द में बैठा रह गया।

ज्ञान प्राप्ति के ऐसे दूसरे अनुभव की घटना अगले वर्ष (1921) हमीरपुर में हुई थी। जाड़ों के दिन थे। मुझे जिस प्रश्न ने आकर घेरा था उसका रूप यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था 'फिर मनुष्य को संसार में करना क्या चाहिए ?' अपने, परमात्मा और संसार के सम्बन्ध में जो ये प्रश्न मुझ में पिछले चार साल से उठते आये थे असल में थोड़े से ही थे, किन्तु ये ही प्रश्न आगे नये-नये रूप में आते थे। उस उस समय में उस उस प्रकार से मेरे मन के लिए हल होते थे। यह प्रश्न भी पहले कई बार हल हो चुका था। किन्तु इस बार यह ऐसे प्रबल रूप में आया कि सन्ध्या में होने वाले विचार से हल नहीं हुआ। इसके अन्धकार ने मुझे ढक लिया। संध्या में, जप में, भोजन आदि सब कार्यों में मैं इसी में ग्रस्त रहने लगा। इन दिनों मैंने कितना जप किया, कितना भोजन किया शायद यह भी मुझे पता नहीं लगा। मेरे लिए लगभग ये तीन दिन भी रात्रि की तरह ही अन्धेरे ही बीते। सब समय चिन्ताग्रस्त और विचारों में डूबा हुआ सा रहा। अन्त में इस प्रकार बीते दो या तीन दिन के बाद एक प्रातः काल मेरे सामने उजाला हो गया। वह दिन मुझे याद रहा है। वह 6 फरवरी 1921 का दिन था। सब संसार मुझे प्रकाशमय और सुहावना सा दीखा। जो कुछ मुझे उत्तर मिला, उसे मैंने पैंसिल से एक कागज पर मोटे अक्षरों में लिख लिया। वह कागज आज तक भी मुझे चमकता सा लगता है। मैंने अनुभव किया कि मानो मैं भी उस दिन एक बुद्ध बन गया था।

इन दो विशेष ज्ञानानुभवों के अतिरिक्त इन्हीं दिनों मैंने चाचा जी के घर कैराना, मोठ, रमपुरा आदि में) पारिवारिक जीवन से भी कुछ अनुभव प्राप्त किये। गुरुकुल से निकल कर सबसे पहले वहीं पारिवारिक जीवन देखा था, बल्कि उस गृहस्थ परिवार का अंग बनकर रहा था। (आठ वर्ष तक तो बालक था और उसके बाद अब तक गुरुकुल रहा था)। वहाँ मैंने बहुत बार चाचा जी के अपने बच्चों के प्रति 'प्रेम' व्यवहार को देखकर यह अनुभव किया कि किस तरह जगन्माता हम सब बच्चों का सदा कल्याण ही साध रही हैं; किन्तु बहुत बार हम वैसा न समझने के कारण रोते चिल्लाते बिलबिलाते रहते हैं। कई बार गोद के बच्चों को बुरी तरह रोता देखकर मैं तो डर जाता था कि शायद उसके प्राण न निकल जायें, पर 'माता' के गोद में उठाते ही सब ठीक हो जाता था। इसी तरह की छोटे बच्चों की लीलायें देखकर मैंने कई तत्वों को अपने हृदय में आरूढ़ किया था। पीछे से मैंने जो गुरुकुल में एक उपदेश 'हम सब बच्चे हैं' इस शीर्षक से दिया था, उसमें मुख्यतया इन्हीं दिनों के अनुभव अनुप्रोत थे।

सो इन दिनों प्रणवजप की भावनाओं के साथ गीता के उपदेश, विशेषतया गीता का समर्पण भाव (परमात्मा को अपना सब कुछ सौंपने में बड़ी ही निश्चिन्तता अपार निश्चिन्तता का कभी-कभी आनन्द लेता था) और अनन्त के साथ स्वर मिलाने का उत्साहयुक्त प्रयत्न, इन सबके कारण हृदय अपूर्व रूप से समृद्ध अनुभव होता था। सबसे बड़ा फर्क यह था कि मैं अब अन्दर से अपनी एक बादशाहत अनुभव करता था। गुरुकुल में पढ़ते हुए द्वादश श्रेणी में मैंने डायरी में लिखा था 'जैसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम लोग पैदा होकर एक जगह रहते ही रहते जीवन समाप्त कर जाते हैं, क्या मैं भी ऐसा ही होऊंगा ? मुझे तब यह दशा असहनीय प्रतीत होती थी अर्थात् मैं सब संसार का मनुष्य बनने की महत्वाकांक्षा रखता था। पर अब विचार यह था कि यदि सारी आयु एक ग्राम की झोंपड़ी में (कुछ बालकों को पढ़ाते हुए या खेती करते हुए) बिताऊंगा तो वहाँ भी बादशाह की तरह रहूँगा। दुनिया की दृष्टि में प्रसिद्ध पुरुष बनने से मैं कुछ अधिक बादशाह बन जाऊंगा। यदि दुनिया में प्रसिद्ध होऊंगा तो भी बाहर की बादशाहत से जरा भी लगाव न रखकर अन्दर ही से बादशाह रहूँगा। जगन्माता का पूजन कार्य दोनों जगह (दुनिया में प्रसिद्धि या अज्ञात होना) एक सा दीखता था और पूजा करने में, पूजक होने में ही अभिमान था। अपने को 'प्रभुकुमार' 'राजपुत्र' मानता था। इसी तरह बाहर से संसार को देखने की इच्छा जाती रही थी। एक कोठरी में बैठे हुए ही सब संसार को देखने की (जब आवश्यकता हो) शक्ति हो जाय, यही इच्छा थी। यह सब ज्ञान के बढ़ने से क्रमशः होता जावेगा, ऐसा विश्वास था। वेद में सौ तक सूर्योदय देखते रहने की प्रार्थनायें हैं, उनका मैं यही अर्थ लेता था कि हमें सदा अगला-अगला प्रकाश मिलता रहे, अंधकार मिटता रहे। इसी विचार से मैंने एक लेख 'अभय ज्योति' इस शीर्षक से लिखा था जो 'वैदिक धर्म' में छपा था। बाहर का सूर्योदय ही नहीं, अन्दर भी नया नया सूर्योदय होता रहता है। शायद वही सच्चा सूर्योदय है।

शक्ति (कुण्डलिनी) द्वारा क्रियाएं होना

स्वामी कृष्णानन्दजी और योगानन्द जी

इन ढाई वर्षों के अन्तिम छः मास—जब में गुरुकुल में वैदिक तत्वशोधन के कार्य में था—की दो घटनाएं उल्लेखनीय हैं।

पहली दुःखद घटना है। गुरुकुल आने पर कुछ दिनों के बाद ही मुझे श्रीमान्य लाला मुरारी लाल जी की मृत्यु का दुःख अनुभव करना पड़ा। वे उत्सव के बाद ही बीमार हुए और निमोनिया की बीमारी में उनका शरीर छूट गया। परमेश्वर ने मानो अनुभव कराया कि हम 'मर्त्य' लोक में रहते हैं।

दूसरी घटना से (कहना चाहिये) मेरा कुछ और भाग्य जागा। गुरुकुल में रहते हुए कोई चार महीना बीतने पर मन में न जाने क्यों अकस्मात् महाराज जी का बार-बार स्मरण आने लगा और उनके पास जाने की इच्छा हुई। मैंने अपने एक दो (जो एक दो ही थे) मिलने वालों से भी कहा, 'न जाने महाराज के दर्शनों की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा हो क्यों रही है ?' वैसे उनसे मिलने का कुछ प्रयोजन तो था ही नहीं। कुछ महीने हुए अभी उनके पास रहकर आया ही था, पंचदशी पढ़कर आया था। तो भी क्योंकि बार-बार स्मरण आता था अतः मैंने सोचा, 'चलो चार पाँच दिन की छुट्टी मांगता हूँ, यदि मिल जायेगी तो अनूपशहर हो जाऊँगा, और कुछ नहीं तो महाराज जी को प्रणाम कर आऊँगा।'' मुख्याधिष्ठाता जी ने छुट्टी दे दी। मैं महाराज जी के दर्शनार्थ चल पड़ा। मेरे मिलने वाले, सुपरिचित एक ब्रह्मचारी ने कहा भी कि पण्डित जी आप खूब विचित्र हैं, यों ही निष्प्रयोजन चल दिए हैं। मैंने कहा, ''निष्प्रयोजन क्यों ? सब दुनिया ऐसे ही चल रही है। रेल में जिन लोगों को मुझसे या मुझे उन लोगों से, जो सुख दुःख पहुँचना होगा वह पहुँचेगा। इसी तरह से मेरे प्रारब्ध का भ्रमण होगा सो हो जायगा।'' मुझे यह भी मालूम न था कि आजकल महाराज जी कहाँ हैं। तो भी यह सोचकर कि यदि महाराज जी अनूपशहर नहीं होंगे तो उसके आस-पास कहीं होंगे, और कम से कम वहाँ से उनका पता तो लग ही जायेगा। अतः अनूपशहर का टिकट ले लिया। दूसरे दिन दोपहर जब अनूपशहर पहुँचा तो पता लगा कि महाराज जी यहीं हैं, और अभी एक दो दिन पहले ही वे यहाँ आये हैं। यह 1921 का वर्ष था, असहयोग आंदोलन की खूब धूम थी। महाराज जी के पास बहुत से लोग बैठे हुए थे और इसी की चर्चाएं हो रही थीं। इस समय मैंने सर्वप्रथम ही यह देखा कि महाराज जी देश की हलचलों के देखने में भी दिलचस्पी रखते हैं और महात्मा गाँधी आंदोलन के पोषक हैं। यह तो मैंने पहली बार ही जान लिया था कि महाराज दस-दस दिन का उपवास रखते थे और जल चिकित्सा के पक्षपाती थे। अस्तु जब वे सब लोग उठ गये तो मैं महाराज जी के समीप आकर बैठा। महाराज जी बोले, 'देवशर्मा, अच्छा हुआ तुम आ गये। मैं तो तुम्हें याद करता था, मुझे तुम्हारा पता मालूम नहीं था, नहीं तो मैं तुम्हें पत्र लिखता। मैं अब रामावतार को लिखकर तुम्हारा पता जानने की सोच रहा था। यह सुनते ही मैं एकदम समझ गया कि मुझे यहाँ आने की बार-बार इच्छा क्यों हो रही थी और महाराज जी से कहा, ''आपका मानसिक तार पहुँच गया था। पत्र लिखने की क्या आवश्यकता ?'' फिर महाराज जी ने बताया कि यहाँ एक अच्छे बंगाली साधु हैं, उनके पास एक बड़ी अद्‌भुत योग की क्रिया है। मैं चाहता हूँ कि तुम भी यह क्रिया सीख लो। इसलिए तुम्हें स्मरण कर रहा था। तुम आये भी बहुत अच्छे समय हो, क्योंकि वे दोनों साधु (बंगाली तथा उनके दूसरे साथी एक ब्रह्मचारी) आज यहीं आये भी हुए हैं। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। दोपहर को उन बंगाली कृष्णानन्द बाबा के दर्शन किये। दूसरे ब्रह्मचारी योगानन्द जी के दर्शन किये। बाबा कृष्णानन्द जी की मुखाकृति बिल्कुल ऋषितुल्य प्रतीत हुई। बड़े लाल (सुर्ख) मुख पर सफेद जटाएं शोभायमान थीं। योगानन्द जी नवयुवक और नाटे कदके थे। बड़े दयालु गुरु महाराज जी ने पहले ही, स्वयं ही, बाबा कृष्णानन्द जी को मेरी बाबत कह दिया था,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह क्रिया पाने का पात्र है।" एवं कृष्णानन्द जी से थोड़ी सी बातचीत हुई ? उन्होंने कहा, "अक्तूबर महीने में आना तब बतलायेंगे।" उनकी लिखी बंगला पुस्तक [जिसका नाम 'तत्व-कुसुम' था] भी उन्होंने प्रदान की। मैंने गुरुकुल में रहते हुए बंगला भाषा भी कुछ सीख ली थी अतः उसे पढ़ सकता था।

मैं कितने आनन्द के साथ अनूपशहर से लौटा, इसका पाठक अनुमान कर सकते हैं। इस क्रिया की महाराज जी से बहुत प्रशंसा सुनी थी। बताया था कि क्रिया मिल जाने पर शक्ति अपने आप अन्दर कार्य करने लगती है, क्रियाएं होने लगती हैं, आसन, प्राणायाम, मुद्राएं अपने आप होती हैं, जो चीजें कभी नहीं सीखी वे भी स्वयं आ जाती हैं। कई लोगों के दृष्टान्त सुने कि उसे अमुक प्रकार की क्रिया होती है। मैं अब गुरुकुल पहुँचकर अक्तूबर महीने की प्रतीक्षा करने लगा। महात्मा गाँधी जी के प्रतिज्ञात स्वराज की अवधि भी पहले 1921 का अक्तूबर महीना ही था। मैं बार-बार मन में कहता था कि भारत को अक्तूबर में स्वराज्य मिले या न मिले, पर मुझे तो अक्तूबर में वह स्वराज्य मिल जायेगा। पर इसकी अवधि भी स्वराज्य की अवधि की तरह से आगे बढ़ती चली गयी। अक्तूबर में बाबा कृष्णानन्द जी ने लिखा कि अभी हम माण्डू में आश्रम बना रहे हैं, उसके बन जाने पर आना। माण्डू भी गंगा के तट पर समीप ही एक तीर्थ स्थान था। वहाँ पर कुछ भक्तों ने रुपया देकर इसी क्रिया के लिए आश्रम बनाने का आयोजन किया था और भवन बनने प्रारम्भ हो गये थे। इस क्रिया के लिए नीचे तहखाने की तरह गुफा बनाना अधिक उपयुक्त समझा जाता था। वैसी गुफा भी माण्डू में बनाई जा रही थी। गाजियाबाद के एक मुंसिफ श्री केदार नाथ तथा मेरठ के आर्य समाजी मित्र श्री मोती लाल जी वकील ने भी यह क्रिया प्राप्त की थी और उन्होंने भी अपने मकान में इस क्रिया के लिए गुफा बनाई थी। फिर जनवरी 1922 में (जबकि मैं गुरुकुल छोड़ चुका था) भी माण्डू जाने की बात बनी, पर फिर मना हो गई। अन्त में सन् 1922 की वर्षा में (जबकि मेरी उत्सुकता नष्ट हो चुकी थी और महाराज जी से यह भी सुन लिया था कि आवश्यक नहीं कि इससे सबको लाभ हो) मैं माण्डू गया और परमेश्वर की कृपा से मुझे यह क्रिया प्राप्त हुई। स्वयं बाबाजी कृष्णानन्द जी ने अपने सामने बिठलाकर क्रिया प्रदान की।

इस बीच बाबा जी के स्वभाव आदि से भी अच्छा परिचय हो गया था। बाबा तो वृद्ध थे अतः मैं उनसे अधिक नहीं खुला। किन्तु तब से ब्रह्मचारी योगानन्द (जो गुजराती थे और इस क्रिया के प्रचार में विशेष उत्साह से भाग लेते थे) से घनिष्टता युक्त स्नेह प्राप्त हो गया था। इन्हीं योगानन्द से मुझे यह भी पता लगा था कि आर्यसमाज के स्वामी सत्यानन्द जी को भी इस क्रिया से विशेष लाभ हुआ है। स्वामी सत्यानन्द जी से हर्रावाला (देहरादून के पास) में योगानन्द जी की भेंट की बात भी सुनाई थी। योगानन्द जी अपने भक्तों के यहाँ जाया करते थे, उनमें से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कईओं से (जैसे मोतीलाल जी के छोटे भाई मुंसिफ रतन लाल जी से) मेरा भी गुरु भाई के तौर पर परिचय हो गया था। सन् पच्चीस-छब्बीस तक मैं माण्डू भी जाता रहा। कुछ समय बाद कृष्णानन्द जी का चोला छूट जाने पर योगानन्द जी ही इस क्रिया की दीक्षा देने वाले हो गये थे। ऋषिकेश में उन्होंने अपना आश्रम बना लिया था।

वे बताया करते थे कि इस क्रिया से कभी-कभी बहुत भूख लगती है, शक्ति पाव-पाव भर घृत भी पी जाती है। कइओं की काम वासना समाप्त हो जाती है, वज्रौली स्वयं होने लगती है। कइओं की काम वासना बढ़ भी जाती है। (स्वयं उन्होंने पीछे से विवाह किया था) वे इस क्रिया की गुरु परम्परा भी बताया करते थे।

मुझे इस क्रिया से क्या लाभ हुआ वह यथा स्थान वर्णन किया जायेगा। पर महाराज दौलत राम जी से मंत्र प्राप्त कर तथा बाबा कृष्णानन्द जी से यह क्रिया प्राप्त कर मेरा प्रवेश योग में अनजाने ही हो गया था जिसे कि भारतीय योग पद्धति में तंत्रयोग कहते हैं।

फिर जागरण

गुरुकुल वैदिक तत्वशोधक के पद पर रहते हुए साढ़े पाँच महीने बीत जाने पर महात्मा गाँधी का जन्म दिन (2 अक्तूबर 1921 का दिन) आया। एक अक्तूबर की सायंकाल भोजन के समय गुरुकुल के कुलमंत्री ने मुझ से पूछा कि कल महात्मा गाँधी के जन्म दिन पर आप कुछ बोलेंगे ? मैंने कुछ सोचकर बोलना स्वीकार किया। यद्यपि मैं अपने अभ्यास में लगा रहने के कारण गुरुकुल के सभा सम्मेलनों में बहुत ही कम सम्मिलित होता था, जाता भी था तो केवल अपना कार्य करके पन्द्रह-बीस मिनट लगाकर चला आता था। पर ऐसा भी दो एक बार ही हुआ था। परन्तु महात्मा जी के गुण वर्णन करने और सुनने में कुछ आत्मिक संतुष्टि सी मिलती प्रतीत होती थी। अतः मैंने महात्मा जी के जन्म दिन की सभा में बोलना स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल उठते ही (प्रतिदिन के चिन्तन नियम के बाद) मैं विचारने लगा कि आज सभा में महात्मा जी पर क्या बोलना है। थोड़ी ही देर में एकदम सूझ गया कि यह बोलना है। मानो बना बनाया भाषण सामने आ गया। वह भाषण पीछे से लेखबद्ध कर लिया था और 'आर्य मित्र' में छपा था। गाँधी जी महात्मा हैं और कर्मवीर हैं, वे अपने अन्दर गये हैं (आत्मा में महान् हुए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं) और फिर अन्दर की शक्ति को साथ लेकर बाहर आये हैं, (कर्म कर रहे हैं) जैसे सूर्य अपनी किरणों को वैसे वे आत्मा से स्वभावतः शक्ति को विकीर्ण कर रहे हैं। इसी बात को उस भाषण में विस्तार से स्पष्ट किया था। अस्तु, जब मैं वह भाषण करके आया और भोजन कर पंचकुटी में एक तख्त पर बैठा तो जाने मुझे क्या हुआ कि मेरे मन में विचित्र विचार उठने लगे। मेरे मन में यह विचार जोर से आने लगा कि इस वर्तमान पवित्र 'असहयोग आन्दोलन' में मुझे भी कुछ न कुछ अपना तुच्छातितुच्छ भाग लेना चाहिये। इस विचार को मैं विचित्र इसलिये कहता हूँ कि इससे पहले बहुत से लोग मुझे भी कुछ देश सेवा का कार्य करने को कहा करते थे, यह आन्दोलन भी एक-दो वर्ष से चल रहा था, परन्तु मेरा यह विचार पक्का था कि बिना तैयारी किये मैं किसी भी सार्वजनिक कार्य में नहीं पड़ूंगा। एक साल में स्वराज्य पाने की जो देश में बातें हो रही थीं, उन्हें इधर-उधर से सुनते हुए भी अभी तक तो मेरे मन में कभी विचार तक भी नहीं आया था कि मैं यह केवल कुम्भक पूर्वक प्रणव जप छोड़कर-इस तैयारी को छोड़कर-किसी कार्य में लग सकता हूँ। पर आज इस महात्मा जी के जन्म दिन पर उस भाषण करने के बाद से न जाने मुझमें क्या नई चीज घुस गई थी—जो कि मुझे इस नये विचार में जोर से ले जा रही थी—उस अपने दिये भाषण से मानों स्वयं वशीकृत (Self Hypnotised) सा हो रहा था। मैं सचमुच हैरान था। इस विचार को मैं दबाता था पर यह फिर जोर से उठता था। मैं भूताविष्ट आदमी की तरह से पंचकुटी के बरामदे में इधर से उधर, उधर से इधर जोर-जोर से घूमने लगा। कभी-कभी आकर तख्त पर बैठता, फिर घूमने लगता। जप प्रारम्भ करने का समय होने वाला था परन्तु आज मुझे एक और ही वस्तु ने पकड़ रखा था। 'मेरा अभी तैयारी का काल है' ऐसा जोर से मन को कहकर इस नये विचार को हटाता था किन्तु कहीं से आने वाला वह भाव कहता था, 'यदि यह पवित्र आंदोलन असफल हो जायगा तो इसका पाप तुझे भी लगेगा यदि तूने इसमें अपना जरा भी हिस्सा न लिया। यह विशेष अवस्था है। अपनी तैयारी भी थोड़े काल के लिए छोड़कर इसमें कुछ न कुछ योग देना चाहिये। यह प्रत्येक भारतवासी का धर्म है।' यह मैंने खूब टटोलकर देखा कि कहीं प्रतिष्ठा पाने की अभिलाषा से तो मुझे असहयोग आन्दोलन में कार्य करने की इच्छा नहीं हो रही, पर उस समय उसका नाम निशान तक नहीं मिला। अन्दर प्रबल भाव 'करुणा' का था। स्वराज्य की एक अवधि (सितम्बर के अन्त तक की) बीत चुकी थी, अब दिसम्बर तक की अवधि नेता ने दिखा रखी थी। इसमें सफलता हो या विफलता इसका भी उस समय मन में विचार नहीं था, क्योंकि गीता का 'सिद्धि और असिद्धि में समता' का भाव मन में गढ़ा हुआ था। केवल कर्त्तव्य है—इस समय प्रत्येक भारतवासी का अपना '30 करोड़वां' भाग लेना कर्त्तव्य है यही प्रेरक भाव था। इस प्रकार युक्ति [तर्क] से तो 'असहयोग आंदोलन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कुछ कार्य करना चाहिये' यह ठीक प्रतीत हो सकता था, परन्तु वह मेरा 'तैयारी के काल' का संस्कार इतना दृढ़ था कि मन इस एकदम परिवर्तन को स्वीकार करने को उद्यत नहीं होता था। इस तरह मन, प्राण डावांडोल था, दोलायमान था, किंकर्त्तव्य विमूढ़ था। मैं कभी टहलता, कभी बैठता, कभी लेटता था पर शान्ति नहीं होती थी। अन्त में एक बात सूझी कि चलो अपने महाराज जी को पत्र लिखो। तुरन्त कलम दवात लेकर लिखने बैठ गया। अपने मन की सब अवस्था लिखकर उनसे पूछा कि आप मेरे कल्याण के लिए समाहित भाव से देखकर बताने की कृपा कीजिए। क्या मुझमें उठा यह विचार ठीक है? कार्य में परिणित करने योग्य है या नहीं है? मैं स्वयं निर्णय करते हुए डरता हूँ कि भूल न कर जाऊँ। मैं डावांडोल हूँ, आप जो कुछ आज्ञा करेंगे वही करूंगा। इस आशय का एक लम्बा पत्र, जवाबी लिफाफे सहित, बन्द करके उसी समय डाक में डाल आया और तब निश्चिन्त हो गया। अब इस विषय में विचार करना छोड़ दिया, विचार उठना भी बन्द हो गया। महाराज जी का जो उत्तर आयेगा वही होगा। तीन अक्तूबर से मेरे दिन फिर वैसे ही जप आदि में बीतने लगे। महाराज जी का जब पर्याप्त समय तक [जब तक कि मेरे अन्दाज में उत्तर अवश्य आ जाना चाहिए था] कुछ उत्तर न आया तो मैंने समझ लिया उनके मौन का अभिप्राय यह है कि मुझे अपने अभ्यास में ही लगे रहना चाहिये, बस सार्वजनिक कार्य में नहीं पड़ना चाहिये। इस प्रकार जब मैं लगभग अपना यह तैयारी का कार्य न छोड़ने का निश्चय कर चुका था और मान लिया था कि उस दिन वह जोर से उठने वाला विचार यों ही था, तब एक दिन रात्रि के समय मुझे यह लिफाफा मिला जिस पर अपने हाथ का लिखा अपना पता देखकर यह समझ गया कि यह वही महाराज जी के यहाँ से आया उत्तर है। उसे पढ़ा तो उसमें इस कार्य को करने की अनुमति थी और लिखा था कि निष्काम कार्य करने से हृदय शुद्धि होती है अतः इसी रूप में तुम यह कार्य करो। यह पत्र योगानन्द जी ने बाबा कृष्णानन्द जी तथा अच्युत मुनि जी की तरफ से ही लिखा था जिसमें उन्होंने मुझे इस कार्य के लिए आशीर्वाद भी दिया था।

मैंने उसी समय गुरुकुल से छुट्टी पा लेने का निश्चय किया और सहायक मुख्याधिष्ठाता (पं० इन्द्र जी) से उसी समय मिला। दस दिन तक गुरुकुल में ही और रहकर उस नये जीवन के लिए तैयार होने के लिए रखे। उसी रात से मन की दिशा बिल्कुल बदल गयी, अब एकान्त छोड़, लोगों में कैसे, क्या कार्य करूंगा, इधर मन घूमने लगा। इन दस दिन गुरुकुल में भी कार्य प्रारम्भ कर दिया। सोचा कि संकल्प सिद्धि के लिए कुछ व्रत लेना चाहिए, ऐसा व्रत लेना चाहिए जिसमें त्याग हो। मैंने स्वयं यह व्रत लिया कि जब तक कि स्वराज्य प्राप्ति का संकल्प पूरा नहीं हो जाता तब तक मैं भोजन पाने के लिए अपने एक लोटे (या इसके स्थान पर कोई एक पात्र) के अतिरिक्त और कोई पात्र प्रयोग नहीं करूंगा तथा भूमि पर ही शयन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूंगा । ईश्वर करे कि यदि इस जीवन में स्वराज्य न मिले (जो कि असम्भव है) तो अगले जन्म में भी इस व्रत की स्मृति हो जाए या ऐसे कंगाल भारतवासी के घर जन्म हो जिसके यहाँ पात्र व खटिया भी न मिल सके । ऐसे व्रत का लाभ औरों को भी समझाया । कुछ सफलता भी मिली ।

इस व्रत को लेने के बाद मैं जागरण काल में प्रविष्ट हो गया । त्रयोदश और चतुर्दश श्रेणी के दो वर्ष तथा स्नातकोत्तर ढाई वर्ष ये साढ़े चार वर्ष सोने के बाद (आत्मोन्नति में रत रहने के बाद) अब साढ़े चार वर्ष के लिए जाग गया (सार्वजनिक कार्य में लगा रहा) ।

महात्मा गांधी मशीनों के विरुद्ध थे । सरकार से पूरा असहयोग करना है, ऐसे भावों से प्रेरित हो, दो मद्रासी युवक दक्षिण से पैदल चलकर (रेल का भी बहिष्कार करके) नागपुर कांग्रेस में आये थे, फिर वे वहाँ से पैदल ही गुरुकुल में आये थे । यह मैंने सुन रखा था । उन्हें देखा भी था । उन्हें देखकर मैं सोचा करता था कि ये मुझसे क्यों नहीं मिलते ? पर वे अन्य विद्यार्थियों के साथ रहते थे । अब जब उन्हें विदित हुआ कि एक स्नातक ऐसे ऐसे अब आंदोलन में भाग लेने वाले हैं तो वे आकर स्वयं मुझसे मिले और मेरे साथ ही चलने का उन्होंने अपना निश्चय बताया ।

स्नातक होने पर मैंने नागपुर मिल की दो स्वदेशी धोतियाँ खरीदी थीं, पर अब स्वदेशी की परिभाषा खद्दर हो गई थी । अतः वे धोतियाँ भी छोड़ दीं । धोती खद्दर की उपलब्ध नहीं थी अतः खद्दर का थान लेकर डेढ़ पाट के दो तम्बे पहिनना प्रारम्भ किया था ।

यद्यपि गाँधी जी ने भी ग्राम सेवा का आन्दोलन कई वर्ष बाद 1925 में प्रारम्भ किया था पर अपने इतिहास अर्थशास्त्र के अध्ययन काल से मेरा विचार बन चुका था कि हमारे देश का उद्धार गाँवों से होना चाहिये । अतः यद्यपि मेरा देश-सेवा कार्य में लगने का विचार सुनकर मुझे देहली में तथा अन्य पास के शहरों में कार्य करने को आमंत्रित किया गया, पर मैंने अपने ग्राम में (जो हमारे बाप दादा का ग्राम था, मेरा जन्म तो हरदोई शहर में हुआ था) चरथावल, जिला मुजफ्फरनगर में जाकर कार्य करने का निश्चय किया जहाँ कि खेती करने का भी प्रारम्भ में विचार किया था । वे दोनों मद्रासी भाई गोविन्दराजन तथा वेंकटाचल मूर्ति भी कुछ दिन बाद ही चरथावल आ गये थे । गोविन्दराजन जी का रुझान आध्यात्मिक अधिक था अतः वे तो कुछ समय बाद ही मुजफ्फरनगर की गोशाला के एक कमरे में भजन करने लगे, परन्तु वेंकटाचल मूर्ति एक वर्ष तक मेरे साथ चरथावल में ही राष्ट्रीय आन्दोलन में मेरे साथी बने रहे । पीछे से वेंकटाचल मूर्ति और पढ़े तथा अन्त में हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में प्राध्यापक भी रहे। पर गोविन्दराजन आज तक आध्यात्मिक जीवन ही बिता रहे हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले वर्ष 1922 में ये दोनों मद्रासी बन्धु मेरे साथ महाराज दौलतराम जी के दर्शन करने अनूपशहर गये। मैं भी उनका साथ होने के कारण पैदल ही गया। प्रतिदिन हम लगभग तीस मील चलते थे। पहले दिन चरथावल से चलकर रात मेरठ श्री प्यारेलाल शर्मा के घर ठहरे। दूसरे दिन दोपहर का भोजन गुलावठी कर रात को बुलन्दशहर सोये। तीसरे दिन दोपहर तक अनूपशहर पहुंच गये। इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व यह भी स्पष्ट कर देना चाहिये कि जागरण काल में जाने के लिए मन किन बातों द्वारा तैयार हुआ।

नये क्षेत्र के नये अनुभव और अभिमान का नाश

जब मैंने देश सेवा का कार्य अपने ग्राम में–चरथावल–में करने का निश्चय किया था तो योजना यह थी कि पहले अपनी वैयक्तिक उन्नति से अपने आस पास के लोगों को–अपने ग्राम के लोगों को प्रभावित करना है (सुधारना है, ऐसा ही तब सोचता था) उसके बाद–अर्थात् अपने ग्राम में आवश्यक परिवर्तन हो जाने पर–अपना कार्य एक परगने तक फैलना चाहिये, फिर क्रमश: तहसील और जिले को अपना कार्य क्षेत्र बनाना चाहिए ऐसा ही एक चित्र मन में रचकर मैं गुरुकुल से चरथावल के लिए चला।

यद्यपि मैंने अपनी तरफ से बड़े नम्र-भाव से इस सेवा कार्य में प्रवेश किया था किन्तु, सार्वजनिक कार्य का अभी तक कुछ भी अनुभव न होने के कारण या किन्हीं अन्य कारणों से मैं कई कार्यों को बड़ा आसान समझता था और मन में, अन्दर, अभिमान (अब तो यही कहना चाहिये) रखता था कि यह कार्य इतनी देर में कर लिया जायेगा। पीछे समझ में आया कि मैं संकल्प शक्ति या आत्म शक्ति के महत्त्व को बेशक ठीक मानता था, परन्तु ये शक्तियाँ समाज में किस तरह कार्य करती हैं, यह मुझे अभी सीखना था। सो इस अज्ञान के कारण अन्दर छिपे हुए उपर्युक्त अभिमान का कैसे-कैसे नाश होता गया, इसी का दिग्दर्शन इस प्रकरण में मैं करना चाहता हूँ।

यह तो कनखल के बाजार में पहुँच कर ही दिख गया कि अभी स्वराज्य दूर है। गुरुकुल में एकान्त कमरे में रहते हुए केवल अखबार की खबरें सुनकर जो लोगों में हुई जागृति की धारणा मन में बैठ गई थी, वह बिल्कुल अशुद्ध निकली। मायापुर वाटिका में पहुंचकर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के दर्शन किये। उनसे इस विषय में हार्दिक बात-चीत सुनकर यह भी जान लिया कि सभी जगह ऐसा ही हाल है। 'हम भारतवासी स्वराज्य लेंगे', यह अभिमान उसी समय टूट गया। टूटते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मेरा मन तो प्रभु की शरण में जा पड़ा। 'हमारे किये क्या होना है ?' यह साफ दीखने लगा।

अगले दिन प्रातः मुजफ्फरनगर पहुंचा। वहाँ भी मुझे स्वराज्य के कोई लक्षण न दिखाई दिये। अभी तक मैं वहाँ के एक वकील साहिब को जानता था और मन में सोच रखा था कि उनकी वकालत छुड़वाऊंगा। उनके घर पर ही ठहरा। किन्तु उनकी दो चार बातें ही सुनकर जान गया कि वकालत छोड़ना लोगों के लिए बड़ा कठिन काम है और सब वकील वकालत छोड़ने की योग्यता व सामर्थ्य नहीं रख सकते। जिले के दो-एक कार्यकर्त्ताओं से परिचय प्राप्त करके सायंकाल ही चरथावल पहुंच गया। चरथावल में भी देखा गांव की पहले जैसी ही गंदी गलियाँ हैं, सब लोग अपने तुच्छ स्वार्थ में ग्रस्त हैं, देखा कि फिकर किसी को भी नहीं। उस वातावरण में स्वराज्य की कल्पना को अपने मन में भी स्थिर बनाये रखने में कठिनाई होती थी। अस्तु।

मैं चरथावल में डेढ़ साल तक रहा। वहाँ 1921 के अक्तूबर में दिवाली से छः सात दिन पूर्व पहुंचा और अप्रैल 1922 में वहाँ से लौट आना हुआ। अभी तक चरथावल के जिन पांच-सात लोगों को मैं जानता था मैंने सोच रखा था कि वे सब देश सेवा में मेरे बड़े सहायक होंगे। पर वहाँ जाकर मनुष्य प्रकृति की जटिलता का अनुभव ज्ञान हुआ। कई दूरस्थ अति परिचित लोगों ने तो निकलकर बड़ा त्याग किया, बड़ा कार्य किया किन्तु बहुत से निकटवर्ती, मिलने वाले, लंगोटिया यारों ने नहीं के बराबर काम किया, साफ साफ दूर रहे। मैंने सोचा था कि चरथावल ग्राम में आवश्यक सुधार, दो चार साथियों द्वारा एक महीने में ही करके अपना विस्तृत क्षेत्र कर सकूंगा। पर वहाँ जाकर जाना कि ऐसे साथी, स्वयं सेवक, वहाँ उपस्थित नहीं हैं, उन्हें भी बनना है ('मैंने बनाना' है ऐसे तब सोचता था)। उसके लिए मुझे गांव की गली-गली में सैंकड़ों बार घूमना पड़ा, बड़े लोगों से, सब चौधरियों से और महाजनों से परिचय में आना पड़ा। उनमें से प्रत्येक का पुराना इतिहास भी जानना पड़ा, पुराने पुराने झगड़े सुलझाने में लगना पड़ा। तब कहीं जाकर छः महीने में मैं इस योग्य हुआ कि कभी कभी कुछ देर के लिए, (अधिक देर के लिए नहीं) अन्य गाँवों में भी जा सकूं। पर वास्तव में अन्त तक चरथावल में ही अपना अभीष्ट कार्य पूरा नहीं कर सका। एक बनाता था तो दूसरा बिगड़ जाता था। लगभग डेढ़ साल तक यही दशा रही।

मैं सोचता था कि मुजफ्फरनगर जिले के कलेक्टर (मिस्टर मार्श) को भी नौकरी छोड़ने को कहूंगा और शायद छोड़ भी देवें, क्योंकि सुना था कि वे एक बड़े सज्जन आयरिश हैं। अतः जब वे एक बार चरथावल में आये तो मैं उनसे मिला, पर उस पहली मुलाकात में तो उन्होंने मुझसे इतने प्रश्न पर प्रश्न पूछे कि मुझे ऐसी बात छेड़ने का अवसर ही नहीं दिया। मैंने फिर पत्र द्वारा लिखा, पर उन्होंने नौकरी नहीं छोड़ी, यह निश्चित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी इन सब आशाओं के टूटने से एवं अन्दर छिपे एक अहंकार के भंग होने से वास्तव में मुझे दुःख नहीं हुआ बल्कि एक प्रकार का आनन्द आया करता था। क्योंकि मैंने इन सब सफलताओं की इच्छा, 'कामना' कभी नहीं की थी, आशा ही किन्हीं कारणों से हो गई थी। आनन्द का कारण यह था कि मेरी ऐसी आशाएं अपूर्ण रहने पर भी जो मेरे मन में निर्धारित सत्य सिद्धान्त थे (जो कि मेरे उस समय के जीवन के आधार भूत थे) उनकी इन घटनाओं से भी, आशा भंगों से भी, पुष्टि ही होती थी। जिन सत्य सिद्धांतों को अभी तक कल्पना में (Theory) माना हुआ था वे व्यावहारिक रूप में इस मनुष्य संसार में किस प्रकार कार्यान्वित होती हैं, यह नया ज्ञान ये घटनाएं मुझे देती थीं, मेरे कल्पित किये हुए तरीके कि इस प्रकार यह कार्य होगा इसी का ही वे खण्डन करती थीं। यह 'अभिमान नाश' का शीर्षक देकर यह प्रकरण मैंने इसीलिए लिखा है कि इसी तरह और बहुत से नव-युवकों के सोचे हुए स्वप्न वास्तविक संसार में पहुँचकर उल्टे होते दीखते होंगे तो उन्हें उनसे घबराना नहीं चाहिए। उन्हें आशावादिता की अति को तो समझना चाहिये, और वह अति क्यों हुई यह भी समझने का यत्न तो करना चाहिये पर अपनी निर्मल अभीप्साओं (शुद्ध महत्वाकांक्षाओं को भी) छोड़कर दुनियावी आदमी नहीं बन जाना चाहिये। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवदर्पण होकर किया कोई भी पुण्य कार्य, सोचा हुआ कोई भी पुण्य स्वप्न व्यर्थ नहीं जाता। इनका जगत् पर अवश्य परिणाम होता है। स्वयं फल की इच्छा जितनी कम होगी, वह कर्म उतना ही अधिक निर्मल होगा और उसका पुण्य परिणाम जगत् पर उतना ही अधिक होगा। मैंने स्पष्ट देखा था कि यद्यपि मेरे किये कार्यों का स्थूल परिणाम ऊपर से बहुत कम, कुछ भी नहीं दिखाई देता था (और बहुत से लोग मेरे वहाँ रहने को शक्ति का अपव्यय अनुभव करते थे, कई उस जगह के लोगों को ही विशेषतया खराब बताते थे जिन पर कि कुछ सत्प्रभाव नहीं होता), परन्तु वास्तव में अन्दर-अन्दर वहाँ भी पर्याप्त लाभ हुआ था (और कई लोगों की दृष्टि में वह बहुत आश्चर्य जनक सफलता भी थी) और जब मैं अपनी शक्तिहीनता निर्बलता की दृष्टि से देखता हूँ तो मुझे भी वहाँ जो सफलता मिली वह अधिक दीखती थी। मैं वहाँ प्रातःकाल महाराज जी के बताये मत्र के अनुसार दिन भर में होने वाले सब कार्य जगन्माता को अर्पण करने की भावना के साथ उठता था और सायंकाल की सध्या में फिर दिन भर के सब धंधे कुछ देर के लिए भुलाकर आत्म स्वरूप को देखकर आनन्दित होता था और यह यत्न करता था कि इस अपने आत्म ज्ञान की अग्नि में इन दिन भर के कर्मों का हवन (यजन) कर सकूं। इसीलिये दिनभर भारी आशा और निराशा के दंगल में रहते हुए भी 'सफलता की कामना' मुझे काबू कर दुःखी नहीं कर सकती थी। मैं सब अवस्थाओं में संतुष्ट रहता हुआ यही समझता था कि मुझे और तीव्रता से, और गहराई से निष्काम कर्म कर करते जाना चाहिये। पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे भी ज्यादा जिनके शांत कर्मों तथा तपस्या का प्रभाव पड़ता था, वे थे वे दोनों मद्रासी युवक जिनको भातृतुल्य साथी के रूप में पाने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इनके जीवन का प्रभाव ये जहाँ भी रहे वहाँ पड़ा इसमें कुछ सन्देह नहीं। मैंने भी कभी बड़प्पन पाने की चेष्ट नहीं की, कभी मुजफ्फरनगर में भी व्याख्यान नहीं दिया। बहुत से लोग अन्त तक यह भी नहीं जानते थे कि मैं अंग्रेजी भी जानता हूँ या पढ़ा लिखा गुरुकुल का स्नातक हूँ। पर ये दोनों मद्रासी भाई मुझसे भी कम 'हल्ले-गुल्ले के कार्य' तक पहुँचते थे और तपस्या में तो मुझसे भी स्पष्ट अधिक थे। अत: इनके केवल जीवन से, शान्त कर्म से जितना अदृश्य [ऐसा अदृश्य नहीं कि जरा गहराई से देखने वाले को भी न दीखे] लाभ हुआ, इतने शोर शराबे के कार्य से नहीं हुआ। मैं फिर दोहराना चाहता हूँ कि स्वप्न देखने वाले अभीप्सा युक्त नवयुवकों को [यदि वे निष्काम होने का यत्न करेंगे, प्रतिष्ठा प्राप्ति की जरा सी भी लालसा से रहित होंगे] संसार में प्रवेश करने पर अपने स्वप्नों को धक्का लगा देखकर घबराना नहीं चाहिये। वे धक्के पवित्र होते हैं, प्यारे होते हैं। जो जितना निष्काम होगा, उसे उतनी ही कम घबराहट होगी। उन्हें जो विफलतायें दीखती हैं वे असल में विफल हो जाना नहीं है। उनके पुण्य प्रयत्नों का परिणाम अवश्य धीरे धीरे हो रहा होता है। संकल्पशक्ति आदि सत्य सिद्धान्त अटलतया कार्य करते हैं, हमें धीरज नहीं त्यागना चाहिये, वे निष्फल नहीं जा सकते। बहुधा हमें जो विफलता दिखाई देती है, वह हमारे अज्ञान में सोचे हुए किसी मन: चित्र के पूरे न होने की विफलता होती है। हम यह नहीं जानते होते कि इस शक्ति की कार्य करने की प्रक्रिया क्या है और कल्पना कर लेते हैं कि इस प्रकार से प्रभाव होगा परन्तु वास्तव में वैसा नहीं होना चाहिये और न वैसा होता है, पर अन्त में पता लगता है कि सब ठीक विधि से ठीक ठाक ही हो गया है।

असहयोग में सेवा कार्य

इस डेढ़ वर्ष में चरथावल में रहते हुए मुझ द्वारा देश सेवा की दिशा में क्या क्या कार्य हुआ, इसका भी कुछ वर्णन कर देना ठीक होगा। संक्षेप में वह यह है:—

चरथावल एक पुराना और बड़ा ग्राम है। कस्बा है। इसकी आबादी उस समय छः हजार थी। इसमें एक छोटा सा बाजार है। शुक्रवार को पेंठ भी भरती है। एक मिडिल तक का सरकारी स्कूल है तथा थाना है। अक्तूबर में वहां पहुंच पहिले मैंने लोगों को विदेशी कपड़ों को जलाने की प्रेरणा की, दिवाली से अगले दिन (जिस दिन 'दलिद्दर' बाहर निकालने का रिवाज था) बड़े उत्साह के साथ ससमारोह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी कपड़ों की होली जलायी। फिर मैंने एक-एक के पास जाकर बहुतों से विदेशी कपड़ा आगे से न पहिनने की प्रतिज्ञा करवायी। एक प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर कराये। फिर बड़े यत्न से, कई बार निराशा की अवस्था आ जाने पर भी, सब बजाजों से प्रतिज्ञा करवायी कि वे आगे से दुकान पर विदेशी कपड़ा नहीं मंगायेंगे। एवं नवम्बर के अन्त तक बुनना सीखने की इच्छा वाले बुनना सीख सकें इसका भी प्रबन्ध करके स्वदेशी, खद्दर को चलता किया। दिसम्बर में अपनी विशेषतया मनः कल्पित वस्तु 'पंचायत' का निर्माण किया। मैंने ग्राम की ठीक प्रतिनिधि सत्ता पंचायत को ही ग्राम का स्वराज्य माना था (और ग्रामीण स्वराज्यों में ही मुझे भारत का पुराना तथा भावी स्वराज्य दीखता था और है)। अतः मैंने संकल्प किया था कि 31 दिसम्बर तक चरथावल में तो पंचायत रूप से स्वराज्य स्थापित हो जाये। यह संकल्प पूरा हुआ और चरथावलवासियों ने 31 दिसम्बर 1921 को अपने यहाँ पंचायत स्थापना का भव्य दृश्य देखा। लोटा नमक की प्रथा द्वारा तथा हृदय पर हाथ रखकर पंचों ने प्रतिज्ञायें कीं। पचायत के दो विभाग थे। पेशे के अनुसार भंगी, चमार, नाई, धोबी से लेकर महाजन, त्यागी तथा ब्राह्मणों तक सब जातियों के संख्यानुसार (100 में से एक) प्रतिनिधि लिये गये। स्वयं सब उपजातियों के यहाँ जा जाकर उन्हें पंचायत की आवश्यकता समझाकर, उनसे उनके प्रतिनिधि चुनवाये। इस तरह कुल साठ प्रतिनिधियों की एक ग्राम पंचायत बनी। इस प्रतिनिधि पंचायत ने फिर अपने में से सात और उच्च पंच चुने जिनसे न्याय पंचायत बनी जो कि सब मुकदमों का फैसला करती थी। आम पंचायत प्रतिमास (प्रायः पूर्णिमा के दिन) तथा न्याय पंचायत प्रति सोमवार को होती थी। पंचायत के अन्य नियम, कार्य संचालन आदि की बातें लिखने का यह स्थान नहीं, वे तो 'ग्राम-सुधार' शीर्षक लेख में लिखी जाने योग्य हैं। यह पंचायत आगे छः महीने तक खूब मजे में चलती रही। बड़े-बड़े मुकदमे ग्राम में ही फैसला होने लगे। इसकी सर्वत्र धूम हो गयी और अन्य ग्राम वाले भी चाहने लगे कि हमारे यहाँ भी पंचायत हो जाये।

चरथावल की एक विशेष प्रसिद्धि यह थी कि वहाँ यद्यपि सरकार की तरफ से शराब का ठेका नहीं तोड़ा गया तो भी डेढ़ साल तक वहाँ ठेकेदार को कोई मकान ही इस कार्य के लिए किराए पर नहीं मिला और न ही किसी ने अपनी जमीन ही दी कि वहाँ वह छोलदारी लगाकर शराब बेच सके। उसने बड़ी कोशिशें कीं, प्रलोभन दिये, पर लोगों ने इस विषय में बहुत एकता दिखलायी।

दिसम्बर की (अहमदाबाद) कांग्रेस में 'सविनय अवज्ञा' का प्रस्ताव स्वीकृत होने पर चरथावल में भी जनवरी में स्वयं सेवक बने और एक दिन 'सविनय अवज्ञा' भी की गई परन्तु हमारे यहाँ के कलेक्टर ने किसी को गिरफ्तार न करने की कसम ही खा रक्खी थी।

इन दिनों पता लगा कि बजाजों ने विदेशी कपड़े न मंगवाने की अपनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिज्ञा तोड़ दी है अतः उन पर स्वयं सेवकों ने धरना धरा। फिर उसे निष्प्रयोजन समझकर छोड़ दिया। होलियों में हमारे परगने में जो और दो दुकानें थीं, उनपर धरना धरा।

चरथावल इतना प्रसिद्ध हो चुका था कि एप्रिल में वहाँ 'अतिरिक्त पुलिस' रक्खी जाने की अफवाह सुनी। महात्मा जी अब जेल जा चुके थे। जून में मुजफ्फरनगर तहसील की राजनैतिक कान्फ्रेंस चरथावल में की जाने की सलाह ठहरी। स्वामी श्रद्धानन्द जी को भी कान्फ्रेंस में आमंत्रित कर उन्हें भी चरथावल की गलियों में घुमा दिया। कुमारी लज्जावती जी को सभानेतृत्व देकर जलूस निकाला। इसी के साथ चरथावल में राष्ट्रीय विद्यालय का प्रारम्भ हुआ। परन्तु इस विद्यालय को प्रारभ में ही छोड़ जब मुझे अपने चचेरे भाई की बीमारी के कारण अलमोड़ा जाना पड़ा, तो भाई वेंकटाचलमूर्ति ने पीछे विद्यालय को खूब उन्नत किया। मेरे उस भाई का राजयक्ष्मा की बीमारी में देहांत हो गया। मैं चरथावल लौटा तो देखा कि मेरे पीछे से एक मुकदमे के कारण पंचायत में एक बड़ा झगड़ा पैदा हो गया था। यह इतना बढ़ चुका था कि मेरे सब यत्न करने पर भी नहीं सुलझा। असल में आन्दोलन के ढीले पड़ जाने का इस पर प्रभाव था नहीं तो ऐसे धक्के पहिले भी कई बार पंचायत को लग चुके थे, पर उनसे रक्षा हो जाती रही। चरथावल पंचायत को बिगाड़ने में जिस बात ने प्रमुख भाग लिया था वह जातपात की ही बीमारी थी जो कि भारत की नस-नस में घुसी हुई है। वहाँ जमीदारों और महाजनों का (तगों और बनियों का) अहंकार और परस्पर द्वेष जाग उठा और पता लगा कि चरथावल अपने मिले मिलाये स्वराज्य को संभालने में असमर्थ है। मैंने यह सोच कर कि यह द्वेषाग्नि धीरे धीरे बुझ जाये उस पंचायत को छेड़ना—कोई आग्रह करना—छोड़कर विद्यालय की उन्नति में कुछ काल अपना समय विशेषतया लगाया। विद्यालयके लिए घरों में हंडिया रखकर मुट्ठी-मुट्ठी भर आटा डालने की प्रथा चलायी। सप्ताह में एक दिन आटा इकट्ठा कर लिया जाता था। अपनी तरफ से एक ही भिखमंगा रहने दिया जो कि हमारे सिखाये राष्ट्रीय गीत घरों में जाकर गाता था। अन्य किसी भिखमंगे को कस्बे में भीख मांगने की अनुमति नहीं थी। इन दिनों ग्राम के छोटे-छोटे बालकों को हिन्दी और रामायण महाभारत आदि पढ़ाने में मैं जो आनन्द लेता था, वह पीछे गुरुकुल विश्वविद्यालय में वेद का उपाध्याय कहलाने के आनन्द से किसी तरह कम न था। मैं सारा जीवन इसी तरह ग्राम पाठशाला का अध्यापक बने रहने को तैयार था। उधर देश में सब आन्दोलन ठंडा हो चुका था। एक दल कौंसिलों में जाने की सोच रहा था, इसलिए 'रचनात्मक कार्यक्रम' इस नाम के सिवाय देश के सामने व्यवहारतः कोई कार्यक्रम न था। मैंने अनुभव किया कि इस समय को रचनात्मक कार्य करने वाले तथा आगे काम आने वाले स्वयं सेवकों को तैयार करने में लगाना ही सर्वोत्तम होगा जैसे बालकों को पाठशाला में शिक्षा दी जाती है वैसी ही एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की शिक्षा युवक कार्यकर्त्ताओं को भी देनी चाहिये। इसके लिये कि सात आठ ही सच्चे आदमी जो कुछ नियत समय प्रतिदिन [अन्य समय में अपना निजी कार्य करते हुए] दे सकें, वे प्रतिदिन प्रातः मुझे मिला करें और मेल द्वारा सम्बन्ध दृढ़ करते हुए प्रतिदिन का कुछ कार्य मुझसे ले लिया करें। उसके साथ ग्राम के कुछ अन्य प्रभावशाली और अच्छे व्यक्तियों को मिलाकर एक ऐसी सभा बनायी जो प्रति रविवार की रात को इकट्ठी हुआ करे और उन्हें मैं देश भक्ति, वीरता, प्रेम आदि दृढ़ करने वाला साहित्य सुना सुनाकर तैयार करूं। इन्हें मैंने 'आनन्द मठ' तथा 'देशभक्तों की कारावास कहानी' सुनाना प्रारम्भ किया। इसी तरह उस ग्राम पंचायत के साठ प्रतिनिधि प्रति पूर्णिमा को इकट्ठे हुआ करें और उन्हें मैं उत्साह-वर्धक समाचार तथा अन्य ऐसी बातें जो प्रत्येक ग्रामवासी तक पहुँचना अभीष्ट हो, बताया करूं। इसी बीच में न्याय पंचायत को भी फिर जोड़ जाड़कर ठीक किया था तथा परगने के 54 ग्रामों में भी फिरने को एक योजना बना ली। परन्तु मुझे गुरुकुल कांगड़ी में वेद का उपाध्याय होकर जाना पड़ा।

गुरुकुल में पंडित विश्वम्भरनाथ जी मुख्याधिष्ठाता हो चुके थे। गुरुकुल में ऐसे वेद पढ़ाने वाले की आवश्यकता प्रबलता से अनुभव की जा रही थी जो स्नातक हो तथा वेद में श्रद्धा उत्पन्न कर सके। मेरी तरफ दृष्टि जाती थी। यद्यपि गुरुकुल में द्वादश श्रेणी तक मैं वेद के घंटे को सबसे निरर्थक घंटा मानता था, पर पीछे से मुझे लाला मुरारी लाल जी की संगति से वेद में श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी। सो मेरे पास वेदोपाध्याय बनने के लिए पत्र तो कई आये थे। स्वयं सहायक मुख्याधिष्ठाता पं० महानन्द जी चरथावल में मुझे मनाने आये। पर मेरी इच्छा ग्राम-सेवा के इस आयोजित कार्य को छोड़ देने की विशेषतया जब कि देश में सर्वत्र देश कार्य ढीला पड़ गया था, उस समय में इसे छोड़ने की, कदापि नहीं होती थी [अतः मैं मना करता रहा]। अन्त में जब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने देहली में मुझे इसके लिए विशेषतया कहा और यहाँ तक कि 'क्या तुम मेरा कहना नहीं मानोगे?' तब मुझे नतमस्तक हो जाना पड़ा। मैं स्वामी जी को स्नातक होने के बाद यह वचन दे चुका था कि आप मुझे जो कार्य बतायेंगे, वह अवश्य करूंगा तो भी ऐसे समय चरथावल ग्राम छोड़कर गुरुकुल जाना मन को अच्छा नहीं लगा। अपने मनः संतोष के लिए मैंने दो कार्य किये [1] चरथावल के विद्यालय को अपने वेतन में से आर्थिक सहायता देना। मैं गुरुकुल से रु० 85 लेता था जिसमें से रु० 60 चरथावल के विद्यालय को भेज देता था। जून 25 तक यह करता रहा फिर 25 रु० ही लेना प्रारम्भ कर दिया। [2] तथा विद्यालय आदि कार्य के लिए महीने में एक बार चरथावल आना। धीरे-धीरे यह भी हट गया। विद्यालय के मुख्याध्यापक जी ने ही मुझे हर महीने आने का कष्ट न करने को कहा।

वास्तव में उस डेढ़ साल के बाद चरथावल का ग्राम-सेवा का बड़ा घेरा समाप्त ही हो गया, यही समझना चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की अवस्था का निरीक्षण

जब तक महात्मा गाँधी जेल नहीं गये थे तब तक तो देश के नेतृत्व के विषय में मन निश्चिन्त रहा। यह श्रद्धा बैठी हुई थी कि देश की अवस्था के अनुसार वे (तथा कांग्रेस) हम कार्यकर्त्ताओं को ठीक कर्त्तव्य बतलाते जायेंगे। उनका अंग्रजी 'यंग इंडिया' तथा हिन्दी 'नव जीवन' पढ़ते रहना पर्याप्त था—इससे पता लग जाता था कि इस समय किस बात पर जोर देना चाहिए, क्या विशेष कर्तव्य है। मेरे लिए तो ये महात्मा जी के दोनों पत्र केवल अखबार नहीं थे, मैं इन्हें साहित्य में गिनता था जिसके अध्ययन ने मेरे जीवन को बनाया है। इनके अध्ययन से बहुत सा नया ज्ञान मिलता था। इस डढ़ साल में मैंने जो उल्लेखनीय साहित्य पढ़ा था, वह यही था। अस्तु। परन्तु महात्मा जी के जेल जाने पर देश के ठीक नेतृत्व होने पर मन शंकित हुआ और मेरा मनभी देशोद्धारकी–स्वराज्य प्राप्ति की–नई-नई योजनाएं सोचने लगा। यहाँ मैं यह भी सुना दूँ कि 1922 फरवरी या मार्च के मास में एक दिन शाम की सन्ध्या में मेरे अन्दर से यह भाव बड़े वेग से उठा कि 'कर न देना' का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। यह भाव का आवेश मुझमें वैसे ही तीव्रता से उठा था जैसी तीव्रता से 1921 की दो अक्तूबर के दिन मुझ में असहयोग में काम करने की इच्छा पैदा हुई थी। परन्तु इस अन्तः प्रेरणा का मैंने पालन नहीं किया। पीछे मैंने अनुभव किया कि यह मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे यह कार्य तुरन्त प्रारम्भ कर देना चाहिए था चाहे यह शुरू में ही विफल हो जाता। परन्तु चूंकि मेरे आवेश का यह नशा संध्या के बाद ही—भोजन मे और उसके बाद की बातचीत में बिलकुल उतर गया था अतः मैं उसे असम्भव देख शुरू करने की ही हिम्मत न कर सका। मैंने सोचा कि लोग हँसेंगे। इन दिनों के बाद से काम ढीला होता गया और मैं बहुत बार अकेले में शीघ्र स्वराज्य प्राप्ति की कई योजनाएं मन में तैयार करने लगा। ये सब योजनाएं किसी न किसी प्रकार के सत्याग्रह के रूप में थीं। पर मैं अपनी योजनाएं किससे कहूँ? इन्हें कौन सुनेगा? लेख लिखूँ तो भी इन पर कौन गम्भीरता से विचार करेगा? इस प्रकार मैं चिन्ता किया करता था। फिर सोचा कि देश के नेताओं से मिलना चाहिए। उनमें से यदि किसी को मेरी योजनाओं में से कोई पसन्द आ जाये तो वे अपने तौर पर इसे फैला सकते हैं, नहीं तो मुझे अपनी सब योजनाओं की गलतियाँ पता लग जायेंगी और मैं विचारने के के अधिक योग्य हो जाऊँगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी तक मैंने कभी किसी नेता से मिलने की, परिचित होने की इच्छा नहीं की थी। नेताओं की आज्ञानुसार करने के लिए कार्य मेरे सामने पड़ा था तो उनका समय खोने की मुझे क्या आवश्यकता थी ? दर्शन करने तक की विशेष इच्छा नहीं होती थी। दिसम्बर 1921 की अहमदाबाद की कांग्रेस देखने का मुझे जरा भी कौतुहल न था, उन दिनों मैं चरथावल में पंचायत रूप से स्वराज्य स्थापन में व्यग्र रहा। अहमदाबाद कांग्रेस की जो आज्ञाएं होंगी, वे मुझे पता लग ही जायेंगी। परन्तु दिसम्बर 1922 की गया कांग्रेस में जाना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा तथा धारा सभा प्रवेश के विरुद्ध अपना एक मत देने ही के लिए मैं वहाँ गया। जब तक चरथावल में और चरथावल के परगने का कार्य मैं पूरा न कर लूं तब तक मुजफ्फर नगर के नेताओं से भी मिलने की विशेष आवश्यकता नहीं समझी। जिला कमेटी में मैं बहुत कम बोलता था, शायद उसके बहुत से सभासद मुझे पढ़ा लिखा विचारशील भी नहीं समझते थे। चरथावल राजनैतिक परिषद् में स्वागत कारिणी के प्रधान की हैसियत से मेरा भाषण सुनकर शायद सबसे पहले मुजफ्फरनगर के प्रतिष्ठित कार्य-कर्त्ताओं ने समझा था कि मैं भी कोई योग्य कार्यकर्त्ता हूँ। अस्तु, अब इस तरह काम ढीला पड़ने पर और आगे क्या करें यह कुछ स्पष्ट न होने पर मैं अपनी सोची हुई योजनाएं मन में लेकर जिले के अच्छे सच्चे कार्यकर्त्ताओं से विशेषतया मिला और बातें कीं। फिर अपनी चरथावल की राजनैतिक परिषद् के लिए आमंत्रित करने के लिए बटाला की पंजाब प्रान्तीय परिषद् और लखनऊ की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के समय नेताओं से मिलने का अवसर मिला। फिर गया में और फिर मुजफ्फरनगर में हुई देहली प्रान्तीय परिषद् में (उन दिनों हमारा मुजफ्फरनगर जिला कांग्रेस की दृष्टि से देहली प्रान्त में होता था) और फिर देहली की Special कांग्रेस में भी मैंने नेताओं से मिलने की चेष्टा की। कइयों तक तो पहुँच ही न हो सकी। जिनसे मिलना हो सका उनमें से कइयों की विचारधारा ऐसी थी कि उन्हें अपनी योजना मन में ही रखकर बातचीत की गई। हाँ, कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने मुझे अपनी योजना सुनाने का अवसर दिया और उनसे अपनी योजना में जो त्रुटि पता लगी, वह अवश्य एक बड़ा लाभ था। सामान्यतया लोगों में निराशा देखी। सर्वत्र एक ही प्रकार के विचार देखे। मुजफ्फरनगर या लखनऊ के लोग जो बातें करते थे, वे ही बातें पंजाब के मुख से सुनी। केवल वे पंजाबी भाषा में उन्हीं भावों को प्रकट करते थे। एक प्रकार के लोग कहते थे कि हम तो पहले ही जानते थे कि यह थोड़े दिन का खेल है। दूसरी प्रकार के लोग जनता को दोष देते थे। बहुत से लोग गाँधी जी को ही सब बिगाड़ने वाला कहते थे। मैंने यह स्पष्ट देखा कि भारतवासियों में अभी धैर्य नहीं है, हम कुछ देर तक भी लगातार नहीं लड़ सकते, बड़ी जल्दी हिम्मत हार जाते हैं, गुलामी के कारण स्वभाव निराशावादी हो गये हैं। तब तक मुख्यतया अपनी जाति की इसी त्रुटि पर मेरी नजर गई। सभी नेता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रचनात्मक कार्य' पर तो सहमत थे। मैंने भी रचनात्मक कार्य में हीं लगना सोचा। यद्यपि रचनात्मक कार्य में सबसे मुख्य खद्दर का कार्य था। पर वह मेरे क्षेत्र में जितना हो सकता था, हो चुका था। अतः मैंने राष्ट्रीय शिक्षा तथा पंचायत पर अधिक ध्यान देना सोचा था।

अब ए० आई० सी० सी० तक मार्ग साफ दीखा, क्योंकि काम ठंडा पड़ गया था। कई मेरे मित्र चाहते थे कि मैं आगे बढ़ूं, प्रान्त या देश के नेताओं में पहुँच जाऊँ। पर मेरे विचार स्पष्ट थे। मेरे विचार में सच्चे कार्यकर्त्ता को अपने को आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। जनता जिसे चाहेगी, स्वयं बढ़ायेगी नहीं तो यह जानकर इतनी या इसी प्रकार की योग्यता मुझमें है उस परिमित क्षेत्र में काम से ही भगवान् की पूजा करनी चाहिए। परमात्मा जितनी शक्ति देंगे उतनी ही उसी के काम में लगानी है। इसमें बड़प्पन या छोटापन कुछ भी नहीं। बड़प्पन भगवान् का सच्चा पूजक बनने में है। कर्मयोगी तो यही देखता है। धन या प्राचीन पद या प्रतिष्ठा के कारण कुछ लोग आसानी से आगे बढ़ जाते हैं और रास्ता रोक लेते हैं, यह ठीक है। पर परीक्षा का समय आने पर सब अशक्त या कम योग्य स्वभावतः निकल भी जाते हैं। आगे बढ़ने का रास्ता असल में कभी नहीं रुकता है। परमेश्वर के कार्य के लिए रास्ता सदा खुला है, हम बस सचमुच परमेश्वर का कार्य करना चाहें। अस्तु।

धीरे-धीरे मन में यह सोचकर 'आजकल रचनात्मक कार्य ही देश में किया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा भी एक बड़ा रचनात्मक कार्य है। सो मैं गुरुकुल सेवा के रूप में स्वभाव प्राप्त इस रचनात्मक कार्य को ही क्यों न देश सेवा का कार्य समझूं', मैं गुरुकुल में पढ़ाने के कार्य में लग गया।

फिर सोने का समय आता दीखने लगा

गुरुकुल के 1923 के जन्मोत्सव में मैं सम्मिलित हुआ तथा गुरुकुल के उत्सव पर वेद का उपाध्याय (प्रोफेसर) होकर गुरुकुल में पूरी तरह (1 चैत्र 1980 से) आ गया। गुरुकुल में पहला आधा वर्ष रहना वैदिक तत्वशोधन कार्य करते हुए तो सार्वजनिक जीवन से रहित (सोने का) था, अब जागते हुए रहा। गुरुकुलीय जीवन में (ब्रह्मचारियों के तथा बाहर के) पूरा भाग लेता हुआ रहा, उसकी कथा तो तीसरे खण्ड में आयेगी जिसमें गुरुकुल में सेवा का मुख्यतया उल्लेख होगा। अभी तो योग प्राप्ति की कथा चलाते हुए यह लिखना है कि गुरुकुल में पहिले तेरहवीं, चौदहवीं श्रेणी को और फिर एकादश श्रेणी को भी वेद पढ़ाने लगा, इतना ही नहीं,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिनों बाद ही मुझे उपाचार्य (Vice Principal) भी बना दिया गया। इन दिनों केवल दो महीने की छुट्टियों में मैं अन्य कार्य (जैसे योग सम्बन्धी या देश सेवा सम्बन्धी) करता था। 1923 की छुट्टियों में मैं विशेषतया देहली में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में (जिसके सभापति अब्बुल कलाम आजाद थे) सम्मिलित हुआ। सन् 1924 की छुट्टियों में गुरुकुल के कार्य से क्वेटा (बिलोचिस्तान) गया तथा कुछ समय रहा। उन्हीं छुट्टियों में गुरुकुल में गंगा की बाढ़ें आयीं और गुरुकुल इमारतें बहुत सी बैठ गयीं और गुरुकुल के लिए धन एकत्रित करने के लिए आचार्य रामदेव जी ने अफ्रीका जाने का कार्यक्रम बनाया। अतएव मुझे उपाचार्य होने के कारण आचार्य का सब कार्य भी 1925 में करना पड़ा। यह कार्याधिक्य के कारण था या क्या, मेरी इच्छा प्रबल हो गयी कि मुझे अपने योगाभ्यास, एकान्त सेवन में लगना चाहिये। इस प्रकार डेढ वर्ष चरथावल के देशसेवा के कार्य के साथ तीन वर्ष गुरुकुल की सक्रिय सेवा के जोड़कर कुल साढ़े चार वर्ष जाग लेने के बाद फिर (सार्वजनिक जीवन के प्रति) सोने का समय आता दीखने लगा।

ऐसा लगता था कि बाहर के सक्रिय जीवन में कहीं मेरी आंतरिक उपलब्धि नष्ट तो नहीं हो जायेगी। विशेषतया अच्युत मुनि जी की कृपा से श्रीयुत कृष्णानन्द जी महाराज से प्राप्त 'क्रिया' को अधिक समय लगा कर डटकर अनुभव पाने की इच्छा होती थी। उस क्रिया को प्राप्त कर लेने के बाद उसके साधन को लगातार करने का अभी तक समय नहीं मिला था। अतएव मैंने सोचा कि आचार्य रामदेव जी के अफ्रीका से लौट आने पर मैं कम से कम एक वर्ष का अवकाश लूंगा। तीसरे वर्ष 1925 की छुट्टियों में मैं माण्डू भी गया। 13 सितम्बर को भेरिया में अच्युत मुनि जी से मिलकर 14 सितम्बर को माण्डू पहुँच गया। वहाँ दस दिन रहा। माण्डू से सम्बन्धित एक दो 'क्रिया' करने वालों के आमन्त्रण पर उनसे भी मिला। इसी सम्बन्ध में अवसर पाकर स्वामी सत्यानन्द जी महाराज से भी मिला। मिलकर प्रसन्नता हुई अभी तक वे आर्य समाज के पूज्य सन्यासी हैं जानते हुए भी उनसे बातचीत करने को रुचि नहीं होती थी। उनकी सब क्रियाओं में एक प्रकार की कृत्रिमता लगती थी। परन्तु इस बार समीपता से मिलने पर उनके प्रति एक प्रेम पैदा हो गया। योगानन्द जी सम्बन्धी बातें भी हुईं। हरिवाला में उन्हें अन्दर से योगानन्द जी के आने की बात पता लग गयी और वे उनके स्वागतार्थ स्टेशन पहुँच गये, यह बात ठीक थी। परन्तु योगानन्द जी के बारे में उन्होंने बताया कि उनकी क्रिया को अन्य प्रकार से ठीक करके बढ़ाना (Supplement करना) होता है उनका तात्पर्य यह था कि योगानन्द जी की अपनी उन्नति रुक गयी है, क्रिया कुण्ठित हो चुकी है, शायद क्रिया का दुरुपयोग करने के कारण। उन्होंने यह भी आश्वासन सा दिया कि कुछ समय बाद जब मैं सहायता करने योग्य हो जाऊँगा तो तुम्हारी सहायता करूँगा। उनकी यह भी इच्छा एकान्तवास करने की, विशेषतया अभ्यास में लगकर कुछ पा लेने की हो रही थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा भी कम से कम एक वर्ष विशेष रूप से साधन करने का विचार दृढ़ होता जा रहा था। उसी दिन की तैयारी के तौर पर अपने पिताजी के तर्पण के रूप में एक अपनी पुस्तक लिखकर उन्हें अर्पित करने का विचार बना। अभी तक मेरी एक पुस्तक 'वैदिक उपदेश माला' स्वाध्याय मंडल औंध द्वारा प्रकाशित हो चुकी थी जो कि मैंने अपने आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी को भेंट की थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी की पत्रिका (श्रद्धा) में मेरे कुछ लेख 'विचार तरंग' करके छपे थे जो प्रायः विद्यार्थी काल के दिनों के लिखे थे। ये 1917 से 1926 तक के लिखे लेख हैं। पुस्तक के प्रथम संस्करण में प्रत्येक लेख का समय भी दिया गया है। 'सताने वाला कौन है ?' यह लेख 'श्रद्धा' में प्रकाशित हुआ तो उसकी प्रशंसा सुनी थी। परन्तु यह लेख तथा इसी तरह 'तेरा कौन है ?' 'बीहड़ मार्ग', 'चातक का वैराग्य' आदि स्वभावतः ही लिखे गये थे और मेरी आत्मा की बेचैनी और शान्ति के बाह्य चित्रण मात्र थे। उस समय की मेरी अवस्था के पूरे सच्चे चित्र थे। जब उदासीनता छोड़ मैं हास्य प्रिय बना तो 'मैं हँसता हूँ' यह लिखा। उन्हीं लेखों का संग्रह प्रकाशित करके पूज्य पिताजी को भेंट करने का संकल्प हुआ। मन में विचार यह था जैसे वाचस्पति मिश्र ने अपनी पत्नी के नाम से 'भामती' टीका लिखी है वैसे ही मैं यदि विवाह नहीं करता तो अपने पिताजी के लिए 'पन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः' यह पुस्तक लिखकर संतोष देने वाला बनूं। इस पुस्तक में विशेषतया लगाने के लिए पिता जी का एक फोटो कानपुर कांग्रेस के अवसर पर कानपुर में ही खिचवाया था। इच्छा थी कि एकान्त में स्थिर रूप से योग साधन में लगने से पूर्व पिताजी को यह पुस्तक छपवाकर अर्पित कर दूं। इसलिए 24 अप्रैल 1926 को मैं पुस्तक छपाने के लिए गुरुकुल से चल दिया। उस दिन बनारस में छपी एक पुस्तक 'अरविंद मन्दिर' मैंने देखी थी जिसका कागज और टाईप मुझे पसन्द आया था अतः अपनी पुस्तक भी उसी प्रैस में छपाने के लिए बनारस जाने का निश्चय किया हुआ था। बनारस में अच्युत मुनि जी के भक्त गौरीशंकर जी गोइनका (अच्युत ग्रंथ माला के सस्थापक जिनका इसी खंड में चौथे प्रकरण में उल्लेख हुआ है) के यहाँ ठहरा। वहाँ से प्रतिदिन लक्ष्मी नारायण प्रैस में जाता था। दो महीने में पुस्तक छप सकी। यह पुस्तक सस्ता साहित्य मंडल की तरफ से (जो कि उस समय अजमेर में था) प्रकाशित की गई।

बनारस में रहते हुए इन दो महीनों की दो बातें सुनाने लायक लगती हैं। आर्य समाजी होने से फलित ज्योतिष में मेरा विश्वास नहीं था। परन्तु भाई रामावतार जी ने आग्रह से विश्वनाथ मन्दिर की कालिका गली में रहने वाले एक ज्योतिषी से मिलने को कहा था। अतः मैं उनसे मिला। कई अप्रसिद्ध व्यक्तियों (पर जिन्हें मैं खूब जानता था) की जन्मतिथि पूछकर जब ज्योतिषी से उसके फल पूछे तो कइयों के फल इतने आश्चर्यजनक रूप से ठीक थे कि मैं प्रभावित हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी जन्म तारीख भी पिता जी से पूछकर मंगाई (जन्म पत्री तो हमने बनवायी नहीं थी) थी, मेरी बातें भी उसने बहुत ठीक बताईं। अतः मैंने दस रुपये खर्च करके अपना जन्म फल उससे लिखवा लिया। वे ब्राह्मण से दस रुपये, क्षत्रिय से पच्चीस रुपये और वैश्य से पचास रुपये लेते थे। वे भी अपने पास असली भृगुसंहिता बतलाते थे। कहते थे कि मैं तो कुछ नहीं करता, कुंडली मिलाकर उसका फल भृगुसंहिता से नकल कर देता हूँ। तब से यह विश्वास हो गया है कि फलित ज्योतिष भी एक विद्या अवश्य है। उसकी सब बातें चाहे ठीक न निकलें, पर जन्म काल की ग्रह दशा के अनुसार मनुष्य के भविष्य की बहुत सी बातें कही जा सकती हैं, यह ठीक है। मेरी जन्मपत्री की ही प्रारम्भ की बातें ठीक हैं, आगे की ठीक नहीं हैं। संसार में बहुत सी शक्तियां काम करती हैं, जिनके कारण भवितव्यता बदली जा सकती है, पर साधारण भवितव्यता बताने वाली भी कई विद्याएं अवश्य हैं और उनका भी सदुपयोग किया जा सकता है।

दूसरी बात बनारस में प्रेमचन्द जी से मिलने की है। जब मैं गुरुकुल में पढ़ता था और हमीरपुर में पिताजी के पास जाता था तो इनसे मिलना होता था। ये तब हमीरपुर में 'सब डिपुटी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल' थे और इनका नाम धनपत राय था। ये मेरे पिताजी के बड़े मित्र थे, जैसे कि राजनारायण मिश्र डिपुटि इन्सपेक्टर मेरे पिताजी के बड़े मित्र थे। मैं इन धनपत राय जी के साथ दौरे पर भी जाया करता था। ये पहले उर्दू में कहानियाँ लिखते थे। 'प्रेम पचीसी' इनकी उर्दू की कहानियों का एक संग्रह देखा था। हिन्दी में सबसे पहली कहानी उन्होंने हमीरपुर में ही लिखी थी। उसका नाम शायद 'परीक्षा' था। उसका एक वाक्य अभी तक याद है कि हाकी के मैच का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा था 'गेंद इस तरह इधर से उधर लुढ़कने लगी जैसे कि सरकारी नौकरी के एप्रेंटिस मारे मारे फिरते हैं।' अस्तु अब बनारस में गुरुकुल का स्नातक हो जाने पर–कुछ बड़े हो जाने पर उनसे मिलने का अवकाश मिला। उन्होंने मुझे यह टिप्पणी की कि 'गुरुकुल में पढ़ने से और कुछ लाभ होता हो या न होता हो, पर वहाँ स्वास्थ्य अवश्य अच्छा हो जाता है।' उन्होंने मुझे बचपन से देखा था अतः वे जानते थे कि पहले मैं कितना दुर्बल शरीर था। उन जैसे आदमी की यह टिप्पणी काम की है। बाकी तो वे बड़े पुरुष थे, उनके विषय में मेरे लिखे जाने की क्या बात हो सकती है?

उन दिनों वे भी बनारस में एक प्रैस चलाते थे। पहले पता होता तो अपनी पुस्तक भी उनके यहाँ छपाता। फिर भी अपनी पुस्तक की जिल्दबन्दी उन्हीं के यहाँ करायी जो कि उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक ठीक समय पर करके दे दी। यह कहने की जरूरत नहीं कि जिन पुस्तकों की जिल्दबन्दी कपड़े की कराई वहाँ कपड़ा खादी का ही लगाया गया था। इस प्रकार 2 जौलाई 1926 को पुस्तक छपवाकर मैं बनारस से लौटा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी सियाराम जी महाराज

मैं लिख चुका हूँ कि जब मेरा एकान्त में रहकर योग साधना करने का विचार हुआ और मैंने इसके लिए गुरुकुल से दो वर्ष की छुट्टी लेने का निश्चय किया (मैं तो त्याग पत्र देने का इच्छुक था परन्तु गुरुकुल के अधिकारियों ने चाहा कि मैं छुट्टी ले लूं) तो उस समय बाबा कृष्णानन्द (योगानन्द) जी वाली क्रिया का ही अभ्यास करने का विचार था। परन्तु उन दिनों गुरुकुल के उपाध्यायों (जैसे लाल-चन्द जी) से तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं से श्री स्वामी सियाराम जी महाराज की प्रशंसा सुनी। स्वभावतः उनसे भी मिला। उनसे मैंने उस क्रिया की बात बता दी थी। उन्हें उस क्रिया के करते रहने में कुछ भी आपत्ति नहीं थी, उनका कहना था कि जब उसमें अपनी तरफ से कुछ करना नहीं होता तो बेशक करो। असल में उन्हें यह क्रिया कुछ भी महत्व की चीज नहीं लगती थी अतएव मुझे भी उनसे लाभ उठाने में कुछ आपत्ति नहीं थी। अतः धीरे-धीरे ऐसा बन गया कि मैं उन्हीं की निगरानी में एकान्तवास ही नहीं परन्तु अज्ञातवास भी करूं। पहाड़ों में वे उत्तराखण्ड की बहुत महिमा मानते थे। अतः उत्तराखण्ड में बदरीनारायण के रास्ते में जो गढ़वाल का श्रीनगर है, उसके एक दो मील ऊपर अलकनन्दा के तट पर एक स्थान पर अज्ञातवास करने का निश्चय हुआ। वह स्थान जिस व्यक्ति का था उसका नाम तारादत्त गैरोला था। ये तारादत्त जी पौड़ी (गढ़वाल जिले का मुख्य स्थान) में वकालत करते थे, एम. ए. थे, परन्तु सन्तों के बड़े भक्त थे। उनका एक स्थान गढ़वाल के इस श्रीनगर के पास भी बना हुआ था। वे प्रत्येक रविवार को पौड़ी से आकर श्रीनगर के अपने इस स्थान पर ही बिताया करते थे। सो इन तारादत्त गैरोला के स्थान पर ही मेरे रहने का प्रबन्ध स्वामी सियाराम जी द्वारा नियत किया गया था। इस समय मैं यह सब लिख रहा हूँ परन्तु उस समय यह सब गुप्त रखा गया था, क्योंकि वहाँ 'अज्ञातवास' करना था। गुरुकुल में किसी को मैंने अपना पता नहीं बताया था। लोग यही जानते थे कि मैं कहीं जंगल में योग-साधना कर रहा हूँ। गुरुकुल में मेरा पता—मेरे बहनोई पं० रामावतार शास्त्री (रतनगढ़, जिला बिजनौर) को पता था। गुरुकुल में यदि कोई चिट्ठी मेरे नाम आये तो वह उन्हें ही भेज दी जाती थी। उन्हें मेरे 'अज्ञातवास' का यह पता विदित था। मेरे नाम आई चिट्ठियों का प्रायः जवाब वे ही दे देते थे कि मैं अज्ञातवास में हूं। अतः मैं 'तरंगित हृदय' छप जाने के बाद बनारस से चलकर महाराज अच्युत मुनि जी से भेरिया आश्रम अनूपशहर में उनके दर्शन करता हुआ (4-6 जौलाई 1926) तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर माण्डू आश्रम (दस जौलाई) में रहकर अर्थात् दोनों गुरुओं के आशीर्वाद लेकर, बारह जौलाई को रतनगढ़ ही रामावतार जी के पास आ गया।

मुझे वह दिन खूब अच्छी तरह याद है जब कि मैं तेरह जौलाई को रतनगढ़ से गढ़वाल के अज्ञातवास के लिए चला। एक बैलगाड़ी पर सवार कराके मुझे शिवहारा स्टेशन के लिए चलता कर दिया गया। मार्ग में खूब वर्षा हुई। आंधी भी चली और निरन्तर मेरी दांयी आँख जोर से फरकती रही। गाड़ीवान ने मेरी बहुत सहायता की। रात की रेल से मैं शिवहारा से बैठ कर कोटद्वार पहुँच गया। 14 ता० को दिन भर दोगड्डे रहा। 15 ता० को पहाड़ पर चढ़ना प्रारम्भ किया, चार दिन की पहाडी यात्रा करके, 18 जौलाई की रात को मैं पौड़ी श्री ताराचन्द जी गैरोला के घर पहुंच गया। उस दिन बीस मील चला था और 19 जौलाई 1926 को मैं अपने नियत स्थान पर श्रीनगर आ पहुंचा और स्वामी सियाराम जी के पधारने की प्रतीक्षा करने लगा।

स्वामी सियाराम जी ने मुझे तीन हिदायतें दी थीं। पहली तो यह थी कि मैं खाना अपने आप पकाऊं। मुझे खाना बनाना नहीं आता था। पकाने के लिए आग जलाना और उसमें जो धुंआ होता है, वह मुझे बहुत नापसन्द था। स्वामी जी ने कृपा करके मुझे एक 'फूंकनी' प्रदान की जिससे फूंक मारकर आग सुलगाने में सहायता होवे। पर स्वयं पकाने पर उनका आग्रह था। मैं तो आग जलाने आदि के झंझट के मारे भिक्षा कर लेना पसंद करता था। पर स्वामी का कहना था कि भिक्षा का अन्न आन्तरिक रूप से तो खराब होता ही है, न जाने किस किस भाव से भिक्षा दी जाती है, परन्तु योगाभ्यासी के लिए वैसे ही प्रतिकूल है क्योंकि उसमें मिर्च आदि पड़ी होती हैं। स्वयं अपने हाथ से बनाया शुद्ध अन्न ही योगाभ्यासी के लिए अनुकूल होता है। स्वामी जी ने मुझे कुकर रखने की भी अनुमति नहीं दी। उनकी सब आज्ञा शिरोधार्य करके मैंने स्वयं ही भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया।

अखबार पढ़ना और कातना भी उन्होंने अभ्यास काल में मना कर दिया। अतः 'यंग इण्डिया' और 'नव जीवन' भी मैंने वर्ष भर नहीं पढ़े। कातने के बारे में केवल चर्खा संघ की सभासदी के लिए जितना सूत कातना जरूरी है उतना सूत कात लेने की पीछे से उन्होंने अनुमति दे दी थी। नहीं तो कहते थे 'अन्दर के सूत को अब नापना है।'

तीसरी बात यह है कि वेद का अर्थ ठीक ठीक न करने से पाप होता है, तुमने भी वेद के अर्थ अनजाने में किये हैं, वे अशुद्ध हो सकते हैं अतः कुछ प्रायश्चित करना चाहिए। मैंने चान्द्रायण व्रत करने का निश्चय किया, व्रत आदि करके शुद्धीकरण हो जाने से वैसे भी योग साधन में जल्दी उन्नति होती है। इसलिए भी यह व्रत किया। सो आषाढ़ शुदि पूर्णिमा (25 जौलाई) से चान्द्रायण प्रारम्भ किया और श्रावण शुदि पूर्णिमा (22 अगस्त) को पूरा किया। इस व्रत में चन्द्रमा की कला के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार ग्रास घटाये बढ़ाये जाते हैं। पूर्णिमा को 15 ग्रास खाकर एक-एक ग्रास घटाना तो अमावस्या को पूरा उपवास फिर एक-एक ग्रास बढ़ाना होता है। मैंने मनुस्मृति के अनुसार अपना ग्रास दो तोले का रखा था। तीन बार अलकनंदा में स्नान करता था, तीन बार ध्यान। 3500 प्रातः और 500 सायं गायत्री जाप प्रतिदिन करता था, जिसमें चार घंटे लगते थे।

कुछ दिन बाद तीन सितम्बर को मुझे बिच्छू ने काटा। पहाड़ का बिच्छू भयंकर होता है। तो मुझे याद आया कि श्रीनगर के बाजार में एक जगह मैंने बिच्छू काटने की दवा का विज्ञापन पढ़ा था। मैं लंगड़ाता-लंगड़ाता दो मील चल कर बाजार में गया। उस दुकान वाले ने कृपा कर मुझे दवा लगा दी। वह सम्भवतः पोटेशियम परमेंगनेट तथा टार्टरिक एसिड थी। पर उससे मुझे कुछ लाभ नहीं हुआ। दर्द वैसा ही बना रहा। मैं अपनी कुटी में लौट आया। वहाँ आकर कुछ मेरे मन में ऐसा आता था कि इस बिच्छू काटे स्थान को गर्मी पहुँचानी चाहिए। वहाँ और कोई तो था नहीं, मैंने मोमबत्ती जलाकर उसी से पैर के उस स्थान को गर्मी पहुँचाई। ऐसा करते ही मेरा दर्द एकदम हट गया। मेरा अनुमान यह है कि उस दवा ने गर्मी पाकर प्रभाव प्रकट किया। स्वामी सियाराम जी ने आकर जब बिच्छू काटने की बात सुनी तो कहा कि अच्छा हुआ, इससे भी पाप क्षय हुआ। चान्द्रायण व्रत के साथ ही यह भी तपस्या जुड़ गई।

मैंने देखा कि अभी स्वामी सियाराम जी के पधारने में देर है तो ताराचन्द जी ने एक गुफा पौड़ी के पास कफल सैन के जंगल में बनाई थी, वहाँ रहने के लिए चला गया। गैरोला जी बताते थे कि उस गुफा में कभी-कभी शेर भी आकर बैठा हुआ देखा गया है। 13 सितम्बर से 20 सितम्बर तक सात दिन मैं उस एकान्त गुफा में रहा। शेर तो उन दिनों नहीं दीखा। पर गुफा में मच्छर बहुत थे। मच्छरों के मारे ध्यान लगाना मुश्किल था। सो इस गुफा में रहने को भी तपश्चर्या कहा जा सकता था।

वहाँ से आने पर 29 सितम्बर को स्वामी सियाराम जी पधारे और लगभग एक महीना भर ताराच-द जी के स्थान पर ठहरे और मुझे अभ्यास करवाते रहे। उनके साथ नारायण हरि आदि दो तीन शिष्य भी थे। सो महीना भर अच्छी रौनक सी रही।

नेति, धोति, वमन, शंख प्रक्षालन, ब्रह्मदातन आदि द्वारा शरीर शुद्धि खूब कराई गई थी। पहले छः दिन शंख प्रक्षालन विशेषतया कराया गया। वस्ती, नेति, धोति तो प्रतिदिन अन्त तक चलती रही। 7 अक्तूबर से प्रातः 5 घंटे (6 से 11) ओर सायं 2 घण्टे (6 से 8) ध्यान में बैठता रहा। 9 अक्तूबर से प्राणोत्थान प्रारंभ हो गया, 19 को प्रकाश हुआ। ध्यान में बैठाने की विधि के तौर पर यह कह देना चाहिए कि वे सिद्धासन पर बैठाकर जीभ उलटा कर आज्ञाचक्र में या ऊपर ध्यान लगाने को अच्छा मानते थे। 'मूर्द्ध ज्योतिषि सिद्धदर्शनम्' इस योग सूत्र की कई बार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनसे चर्चा सुनी थी। वैसे पातंजल योग सूत्रों की दृष्टि से ही अपनी सब योग पद्धति मानते थे। उसमें हठ योग की क्रियाएं तथा जीभ पलटना आदि मुद्रा विधियां उन्होंने अपने अनुभव से जोड़ ली थीं, ऐसा कहा जा सकता है। उनकी शक्ति के दो चमत्कार जैसे अनुभव, मैं यहाँ लिख देना चाहूँगा।

(1) एक बार सायं घूमते हुए यह चर्चा हुई कि देवशर्मा की धोति थोड़ी ही (3, 4 हाथ ही) अन्दर जाती है, मैंने भी यह शिकायत कही। तो स्वामी जी बोले कि 'अच्छा कल मेरे सामने धोति करना।' अगले दिन जब उनके सामने धोति मैंने की तो वह काफी चली गई, जब वह निकल गई तो स्वामी जी ने कहा कि 'अच्छा इसे धो डालो और नापो' और जब मैं धोकर नापने लगा तो प्रारम्भ में ही स्वामी जी ने कह दिया कि मेरा संकल्प था कि धोति आठ हाथ जानी चाहिए। जब मैंने नापी तो उस दिन पूरी आठ हाथ धोति हुई थी।

(2) मुझे ध्यान में बिठाकर ताराचन्द जी के मकान की पास की दूसरी कोठरी में वे स्वयं बैठे रहते थे। मुझे ध्यान मूर्द्धा में प्रकाश (ज्योति) होवे इसका प्रयत्न चल रहा था। स्वामी जी चाहते थे कि उनके जाने से पूर्व मुझे प्रकाश हो जावे। एक दिन ध्यान करते वह प्रकाश हो गया, तो एकदम स्वामी जी अपनी कोठरी से उठकर मेरी कोठरी खोलकर मेरे पास आ गये और बोले 'क्या हाल है?' मैंने कहा 'अभी प्रकाश हुआ है।' तो उन्होंने बताया कि "मेरा प्रोग्राम तो और कुछ दिन ठहरने का था परन्तु अभी अमुक कारण से मुझे कल ही यहाँ से जाना होगा। अत: आज मैं जोर लगा रहा था कि तुम्हें आज ही प्रकाश हो जावे। सो अच्छा हुआ कि यह आज ही हो गया।"

ये दोनों घटनाएं स्वामी जी की संकल्प शक्ति को दिखलाने के लिए पर्याप्त हैं। 25 अक्तूबर को स्वामी जी वहां से चले गये और मुझे प्रति पन्द्रहवें दिन चिट्ठी लिखने को कह गये।

मेरा अभ्यास नियम से चलता रहा, शरीर शोधन और ध्यान में बैठना। पक्ष और महीने बीतते जाते थे। परन्तु कुछ भी आगे उन्नति नहीं होती थी। होता यह था कि आध घंटे में ही प्राण ऊपर चढ़ जाता था, पर तब सिर में पहुँचने पर थूक और डकार आने लगते थे, उनके समाप्त होने पर फिर ध्यान करता था, फिर थोड़ी देर में वे ही डकार और थूकना चलने लगता था। स्वामी जी को सब वृत्तान्त लिखता रहता था। दुःखी होता था कि यह विघ्न कैसे हटेगा? सोचता था कि मेरा एक साल क्या ऐसे ही बीत जावेगा। माता से, जगन्माता से पूछता था, प्रार्थना करता था मेरी उन्नति कैसे होगी। ज्यों-ज्यों महीने बीतते जाते थे त्यों-त्यों प्रार्थना, विनती बढ़ती जाती थी। अन्त में यह सोच लिया था कि अब एक साल की बात तो हो गई, अब मैं बारह साल तक यहीं रहूँगा और जब तक सफलता नहीं मिलेगी, निरन्तर यहीं रहूँगा। गर्मियाँ आने पर और ऊपर 'भविष्य बद्री' में जाकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना सोच लिया था। तब अचानक भगवती माता की कृपा कैसे हुई यह तो अगले प्रकरण में लिखा जायेगा। परन्तु ये दिन कैसे बीते, मैं इस एकान्तवास में क्या-क्या करता रहा, इसकी शेष बातें इसी प्रकरण में लिखी जाने योग्य हैं।

वैसे जब से अच्युत मुनि जी ने मुझे मंत्र दिया था तभी से परमेश्वर को मैं 'माता', 'जगन्माता' के रूप से देखता था। फिर कृष्णानन्द (योगानन्द) वाली क्रिया के द्वारा 'शक्ति सब क्रिया करती है' यह धारणा पुष्ट होती गई थी। और पांडिचेरी के श्रीअरविन्दाश्रम से प्रकट हुई 'योग साधना' नाम की अंग्रेजी पुस्तक कहीं देखी थी और उसे मैंने कलकत्ते से मंगा लिया था। वह इतनी अच्छी लगी थी कि मैंने उसे बाईस बार पढ़ा है, यह याद है। उसमें भी जो 'शक्ति उपासना' का वर्णन है, उसके भी कारण मुझे भगवान् का मातृ रूप में उपासना करना ही प्रिय हो गया था। अतः मुझमें स्वभावतः माता से ही अपने विघ्न नाश के लिए, अपनी ध्येय सिद्धि के लिए प्रार्थना निकलती थी। स्वामी सियाराम जी के पधारने से पहले चार से छः घंटे तक मैं वही शक्ति की 'क्रिया' में बैठता था। कफलसैन में सात दिन भी वही मुख्य थी। स्वामी जी के आने पर शरीर शोधन पूर्वक ध्यान मुख्य हो गया था। पर इस ध्यान में आगे बढ़ना ही नहीं हो पाता था। ज्यों ही समाधि की अवस्था पहुँचती थी तो थूक डकार प्रारम्भ हो जाते थे। अतः भगवती माता से प्रार्थना के सिवाय और क्या कर सकता था? स्वामी जी को पत्र तो लिखता ही रहता था।

अलकनंदा के तट पर इस अज्ञातवास के दिनों में प्रतिदिन मैं क्या खाता था, ध्यान, शारीरिक क्रिया इत्यादि जो भी कुछ करता था वह सब दिनचर्या में लिखता था। सब लिखा पड़ा है। इन्हीं दिनों मैंने अपनी इस आत्मकथा का प्रथम खंड 'योग जिज्ञासा की कहानी' लिखा जो 'वैदिक धर्म' में छपा। पढ़ने को वेदान्त की प्रसिद्ध पुस्तक 'योग वशिष्ठ' पढ़ी, फिर चान्द्रायण के प्रकरण में समग्र 'मनुस्मृति' पढ़ी तथा इन दोनों पुस्तकों के नोट लिए।

गायत्री जप चान्द्रायण व्रत में तो किया ही था। उसके बाद में गायत्री तथा प्रणव जाप भी करता था।

स्वराज्य न हो जाने तक भूमि पर सोने का नियम चलता ही था। सौ एक बार तो बिच्छू ने काटा ही था, पर फिर कभी ऐसा नहीं हुआ। यद्यपि मैं जमीन पर ही सोता था तथा कई बार पास में मेरे कटोरे में पानी पीने के लिए आये बिच्छू और बिच्छू के बच्चे जिन्दे और मरे हुए प्रातः उठने पर मुझे मिले। पर काटा कभी नहीं। सोने से पहले 'पृथ्वीसूक्त' का 'यस्ते सर्पो वृश्चिकः तृष्टदशमा' यह मंत्र मनन पूर्वक पढ़कर ही मैं निश्चिन्त होकर सदा सोता था।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान होने का समाचार मुझे वहाँ जंगल में भी तारादत्त जी द्वारा पता लग गया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपा कैसे हुई ?

स्वामी सियाराम जी महाराज 25 अक्तूबर को चले गये थे। उसके बाद नवम्बर दिसम्बर के महीने बीते। नये वर्ष 1927 के जनवरी फरवरी भी बीत गये। 18 मार्च की दोपहर को वहाँ जंगल में मुझे एक लम्बा तार स्वामी सत्यानन्द जी की ओर से मिला जिसमें उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया था, आश्वासन भी दिया था कि मेरा कार्य दो महीनों में सिद्ध हो जायेगा। उस तार से कुछ समय पहिले एक दिन गुरुकुल के उपाध्याय देवराज सेठी जी का एक पत्र भी मुझे मिला था जिसमें उन्होंने लिखा था कि स्वामी सत्यानन्द जी मेरा हाल पूछते हैं, मैं कहाँ हूँ, यह भी पूछा है और लिखा है कि मैं उनके पास आ जाऊँ तो उसके उत्तर में तो मैंने सेठी जी को यही लिख दिया था कि मेरी उन्नति नहीं हो रही है। डकार और थूक का विघ्न महीनों से चल रहा है, मैं यहाँ से हटूंगा नहीं। स्वामी सत्यानंद जी से निवेदन करें कि मेरे लिये प्रार्थना करें कि मुझे सफलता मिले। यह तार भी स्वामी जी की आज्ञा से सेठी जी का ही दिया हुआ था, यह पीछे अपने भेजे पत्र के विषय में मुझे यह भी बतलाया कि मैं आपको पत्र लिखने बैठा था इतने में डाकिये ने स्वामी सत्यानन्द जी का पत्र दिया। मैंने स्वामी सत्यानन्द जी के उस पत्र को खोला और पढ़ा, तो देखा कि उसमें आपके लिये संदेश है—उसमें काफी कागज खाली भी था तो मैंने उसी स्वामी सत्यानन्द जी की चिट्ठी के खाली कागज पर ही आपको (देवशर्मा को) स्वामी जी का सन्देश दिया था कि स्वामी सत्यानन्द जी आपको बुलाते हैं, अस्तु, उस दिन 18 मार्च का वह तार आने पर कुछ देर बाद स्वामी सत्यानन्द जी के पास जाने की इच्छा बढ़ने लगी, यह भी याद आया कि आज (उसी दिन) प्रातः ध्यान में भी पंडित जी, देवशर्मा जी की ऐसी पुकार सुनाई दी थी। शाम तक स्वामी जी के पास जाने की इच्छा इतनी प्रबल हो गयी थी कि मैंने दो दिन बाद वहाँ से चलने का निश्चय करके स्वामी सियाराम जी को एक लम्बी चिट्ठी लिखी कि ऐसी-ऐसी अवस्था में मैंने हरद्वार जाने का निश्चय किया है, वहाँ से शीघ्र ही लौटकर फिर सब हाल आपको लिखूंगा। 20 मार्च को मैं पौड़ी पहुँचा और तारादत्त जी को बताकर नीचे के लिए चल दिया। कुली एजेन्सी द्वारा चार दिन में कोटद्वार उतरकर पाँचवें दिन 25 मार्च को प्रातः हरद्वार स्टेशन पर पहुँचा। उतर कर गुरुकुल की मायापुर वाटिका में जा रहा था कि स्वामी सत्यानन्द जी मुझे सड़क पर ही मिल गये और मुझे फिर हरद्वार स्टेशन ले आये। मैं भी अपने इस अज्ञातवास में किसी गुरुकुल के व्यक्ति से नहीं मिलना चाहता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी सत्यानन्द जी ने बताया कि आठ बजे की गाड़ी से हम देहरादून जायेंगे, ऐसी व्यवस्था कर रखी है। हरद्वार से चलकर रेल देहरादून कितनी देर में पहुँची, यह उस दिन मुझे नहीं पता लगा। वे दो घंटे मुझे तो दो मिनट जैसे लगे। क्योंकि रास्ते भर स्वामी सत्यानन्द जी मुझे अपनी एकान्तवास की आन्तरिक बातें सुनाते रहे। यहाँ पर काम की बात तो यह है कि स्वामी जी को ध्यान में मेरी अभ्यास की बाधा तथा मेरी दुःखित अवस्था का पता दिया गया तथा बताया गया कि देवराज सेठी को लिखो तो मुझे संदेश पहुँच जायेगा और यह भी आदेश दिया गया कि मुझे अमुक अमुक बातें बताई जायें, करने को कहा जाये तो दो महीने में मुझे (देवशर्मा को) सफलता हो जावेगी। दो महीने में सफलता की बात पर तो मैंने स्वामी जी को यही कहा कि वह हो जावेगी तो मुझे स्वयं पता लग जावेगा, उसके कहने और मानने की अभी कुछ भी बात नहीं है। पर और भी अपने अनुभव उन्होंने सुनाये। उनकी अवस्था इस समय विचित्र थी। उनका बोलना और बर्ताव सामान्य आदमी जैसा नहीं था। पीछे पता लगा कि अन्य लोग भी उन्हें उन दिनों कुछ 'फिरे हुये दिमाग वाला' कहते थे। पर मुझे वे उन दिनों बड़े अच्छे, प्यारे लगते थे। मैं अपने से सम्बन्ध रखने वाली बातों को ही यहाँ लिखूंगा। दस बजे देहरादून पहुँचे। स्टेशन पर यजमान (जिनके घर ठहरना था) लेने आये हुए थे। घर पहुँचते ही स्वामी जी ने मुझे एक कमरे में बैठाकर गंगाजल से आचमन कराया जो कि वे कहते थे कि मेरे लिए विशेषतः अपने थर्मस में भरकर हरद्वार से स्वयं लाये थे। आचमन के बाद जरा सा पिसा हुआ सेंधा नमक प्रतिदिन प्रातः लेना यह मेरे लिए उन्हें औषधि बताई गई थी। फिर उन्होंने मेरे बाँये कान में मुझे वह मंत्र बताया जो कि मेरे लिए उन्हें बताया गया था। यह मंत्र 'राम' नहीं था, यह तो उसके कई वर्षों बाद स्वामी सत्यानन्द जी ने देना प्रारम्भ किया था। यह मंत्र था गीता का 'ओं तत् सत्'। मैं बैठा यह मंत्र जपने लगा। थोड़ी देर में ही बेसुध हो गया, समाधि हो गई यह भी कहा जा सकता है। एक घंटा या पौन घटे के बाद स्वामी सत्यानन्द जी ने ही मुझे जगाया और कहा कि 'देवशर्मा उठो, मुझे भूख लग रही है।' मुझे ऐसा लगा कि मानो मैं किसी की गोद में उठा लिया गया हूँ। स्वामी जी की आवाज सुनकर मैं जाग तो गया पर होश में आने में कई मिनट लगे। तब एक वस्तु का साक्षात् अनुभव हुआ कि 'वाणी' कैसे कार्य करती है। मुझे ऐसा लगा कि नीचे मूलाधार से, नाभि से तो बहुत स्पष्ट, कुछ चीज उठी, स्पनन्दन करती हुई प्राण जैसी वस्तु उठी, उसने जीभ तक ऊपर पहुँचकर जीभ को भी हिलाया और मेरी जीभ से शब्द निकले "मैं कृतार्थ हुआ"। ये शब्द मैंने ऐसे ही सुने जैसे कि किसी दूसरे से कहे गये मैं शब्द सुनता हूँ। यह शब्द मैंने बोले, यह मैं कभी नहीं कह सकता, यह कहना असत्य होगा। इस जीभ द्वारा वाणी शक्ति से प्रेरित उपर्युक्त शब्द निकलते ही स्वामी सत्यानन्द जी ने पृथ्वी पर झुक कर भगवान् को प्रणाम किया और उनकी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीभ से अंग्रेजी में लगभग निम्न शब्द निकले 'You are perfect...I am your Master.' खाली छोड़ी जगह पर शायद Disciple शब्द था। और शायद कृतार्थ हुआ के ब द मेरी जीभ से 'भगवन् तुमने मुझे कृतार्थ किया' यह भी दोहराया गया था। एकदम जगा दिये जाने से जैसे कुछ घबराहट सी थी उसे किसी ने मधुर आश्वासन सा देकर, थापी देकर, हटा दिया। मेरे हाथों में बड़ी झनझनाहट रही जिसके हटने में एक दो मिनट लगे। उसके हटने पर मैं पूरी तरह होश में आया और सोचने लगा कि यह सब क्या हुआ। आश्चर्य सा करने लगा। अस्तु।

देहरादून में तीन दिन स्वामी सत्यानन्द जी के साथ रहा। तीसरे दिन अर्थात् 28 मार्च को मैं मंसूरी के रास्ते पहाड़ पहाड़ ही श्रीनगर में अपने स्थान के लिए चल दिया और स्वामी सत्यानन्द जी भी अपने कार्यक्रम के अनुसार वहाँ से देहली चले गये। उसी चलने वाले दिन प्रातः के उसी जप में 'आत्म प्रकाश' 'आत्म प्रकाश' यह शब्द बहुत ही स्पष्ट दो बार सुना। इसमें भी संदेह नहीं था कि स्वामी सत्यानन्द जी से 'ओं तत् सत्' की दीक्षा प्राप्त करने के बाद मुझ में यह क्रिया (जिसे कृष्णानन्द जी, योगानन्द जी वाली कहना चाहिए) शक्ति क्रिया बहुत बढ़ गई, वेग से होने लगी। वैसे तो यह क्रिया कुछ न कुछ सदा ही चलती रही तथा किस दिन कैसी क्रिया हुई यह मैं अपने एकान्तवास के अभ्यास की दिनचर्या में लिखता रहा हूँ। पर यह अब स्पष्ट रूप से बढ़ गई। पहाड़ी रास्ते में चलते फिरते भी यह जारी रही।

उस दिन रात को मंसूरी ठहरा। अगले दिन 'काण-ताल' में भोजन करता हुआ 22 मील चलकर 'अटूर' पहुंचा। 31 को टिहरी पहुंचा। टिहरी रियासत के चीफ जज पं गंगा प्रसाद जी मुझसे अचानक श्रीनगर (गढ़वाल) में मिले थे। तभी से उनका टिहरी आने का आमंत्रण था। अतः 6 अप्रैल तक उनके पास टिहरी रहा। अपना अभ्यास करता रहा। 7 अप्रैल को टिहरी से चलकर 'पो' होता हुआ 8 अप्रैल को सायं सात बजे अपने स्थान पर श्रीनगर पहुँच गया। स्वामी सियाराम जी महाराज को सब हाल लिखकर अपने भजन में लग गया। स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा मेरे लिए उस मन्त्र तथा सेंधा नमक के अतिरिक्त तीसरी चीज सवा लाख गायत्री जप बताये गये थे। सो अब मुख्यतया गायत्री जप में लग गया। कुछ दिनों बाद गायत्री की संख्या दुगुनी कर दी थी। आजकल शरीर प्राण में बहुत हो तालीय (rhythmic) गतियां होती थीं। इनका होना कुछ-कुछ तो मार्च के प्रारम्भ से प्रारम्भ हो गया था। पर अब ये बहुत बढ़ गई थीं। मैं बन्द कमरे में वस्तुतः नाचता और गाता था। मैं क्या करता था ये चीजें इस मन्त्र मे होती थीं। मैं गायन या नृत्य का कुछ भी नहीं जानता था। पर ये सब अन्दर से उठती थीं और शरीर तथा वाणी में स्वतः अभिव्यक्त होती थीं। इस तरह अभ्यास बड़े आनन्द में इन (अप्रैल और मई) महीनों में चल रहा था। एक रविवार (मई की बात है) को ताराचन्द

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी गैरोला से बातचीत होते हुए श्री अरविन्द की चर्चा चली । उसमें मैंने कहा उनकी एक पुस्तक 'यौगिक साधन' मुझे बड़ी अच्छी लगी है, उसे मैं 22 बार पढ़ चुका हूँ । उन्होंने कहा कि उनकी एक पुस्तक मेरे पास भी पड़ी है, पर हमें तो यह समझ में नहीं आती है । मैंने पूछा 'कौन सी पुस्तक ?' 'Essays on the Gita' है । मैंने कहा 'वह पुस्तक लाइये मैं पढ़ूंगा ।' अगले या उससे अगले रविवार को जब वे पौड़ी से आये तो यह पुस्तक फटी पुरानी हालत में लाये और मुझे दे गये । मैंने यह पुस्तक (29 मई रविवार से) प्रतिदिन एक अध्याय पढ़नी प्रारम्भ की । एक दिन (31 मई) सायं के भजन में कुछ मस्ती, आलस्य या नींद ऐसी आई कि उस सायं मैं भ्रमण भोजन (दूध पीना) भी भूल गया और मुझे वैसे ही, भजन में ही, या नींद में ही सारी रात बीत गई । एक पहाड़ी मेरी कुटी के बाहर के आले में आध सेर दूध रख जाता था जिसे सायं 8 बजे ध्यान से उठकर मैं गरम करके पीता था । उस रात वह नहीं पिया था । अतः प्रातः जब उठा तो भूख लग रही थी । सो प्रातः उस दूध को गरम करके पिया । और चूँकि दूध पीने के बाद एकदम भजन में नहीं बैठना चाहिये अतः उस दिन दूध पीने के बाद वही 'Essays on the Gita' पढ़ने लगा । उसके पढ़ते पढ़ते कुछ ऐसा हुआ कि मैं खड़ा हो गया और बोल उठा 'ओह, मैंने देख लिया, पा लिया ।' उसके बाद मैंने सात बार पृथ्वी पर गिरकर उसे प्रणाम किया और प्रत्येक बार अपने एक-एक अंग को उसके समर्पण किया । यह शरीर तेरे अर्पण है, यह स्थूल प्राण तेरे अर्पण है इस प्रकार सात बार किया । (वे सात अंग क्या बोले गये और अर्पण किये गये सो इस समय याद नहीं है) और फिर रुक गया और आश्चर्य करने लगा कि यह मैंने क्या किया ? जो चीज दीखी थी, वह फिर खोई नहीं गयी, यह कह सकता हूँ । यह घटना 1 जून 1927 बुधवार (18 ज्येष्ठ 1984 विक्रमी) को साढ़े दस बजे के लगभग हुई । रोम रोम से 'नारा-यण' परब्रह्म को नमस्कार करते हुए बार-बार अश्रुपात हुआ । इस दिन डायरी में लिखा 'एक झांकी आज लग गयी । वे दीख से गये ; रोम-रोम से प्रणाम किया (श्री अरविन्द की गीता का चौथा अध्याय पढ़ने के बाद ज्यों ही बैठा तब ऐसा हुआ) अश्रु से पाद प्रक्षालन किया । उसके बाद आगे वह पुस्तक (Essays on the Gita) मैंने आज तक नहीं पढ़ी । वह कहाँ तक पढ़ी थी सो भी इस समय याद नहीं । इतना उपर्युक्त डायरी के कारण कह सकता हूँ कि वह उसका चौथा अध्याय होगा (प्रतिदिन एक अध्याय पढ़ता था और वह चौथा दिन भी था ।)

मेरे हिसाब में अभी गायत्री जप पूरे (सवालाख) होने में कुछ दिन रहते थे पर मैंने हिसाब पूरा लगाया (अर्थात् माला के 108 मनके 108 ही गिने जाएं 100 न गिने जाएं) तो पूरे सवालाख हो चुके थे ।

यद्यपि स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा था कि दो महीने बाद वहाँ से उतर आना, पर यह घटना हो जाने पर और आत्म सन्तुष्टि मिल जाने पर भी अभी नीचे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतरने की इच्छा नहीं थी। कुछ देर ऐसे ही आनन्द में रहने की मर्जी थी। अतः लगभग 20 दिन वहीं रहा। एक दिन (1 मई को) ध्यान में एक बड़ा ही सुन्दर दिव्य गान सुना था जैसा कि इस पृथ्वी पर कभी नहीं सुना। उस गान के समाप्त होते ही आवाज आयी 'अब तुमने आना, भगवान के आनन्द रूप में मग्न हो जाना, कोटद्वार से आना।' इसमें जो 'कोटद्वार से आना' यह कहा गया था उसे यूं ही मान लेने वाला मैं नहीं था, किसी ने कहा होगा तो मैं क्यों वैसा करूं? अतः मैंने कोटद्वार के स्थान पर टेहरी जाने को सोचा। 21 जून को श्रीनगर से चलकर 23 को टेहरी पहुँच गया। वहाँ गंगाप्रसाद जी ने ऊपर पहाड़ पर प्रताप नगर की सरकारी कोठी में मेरे रहने का प्रबन्ध किया था। 26 तक टेहरी रहा। 27 जून से 18 जौलाई तक प्रताप नगर रहा। वहाँ थियासोफिकल सोसायटी की Masters and Path पुस्तक पढ़ता रहा। उसमें अपने कई अनुभवों के विषय में ज्ञान मिला। पर कोटद्वार होकर लौटने की बात सच निकली। कारण यह हुआ कि आगे कहीं पहाड़ गिर जाने से रास्ता बंद हो गया था अतः उस रास्ते नीचे नहीं उतर सकता था। मुझे टेहरी से फिर श्रीनगर और पौड़ी के रास्ते कोटद्वार होकर ही उतरना पड़ा। श्रीस्वामी सियाराम जी से देहरादून में 28 जौलाई को मिला। स्वभावतः वह कुछ प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि उनकी साधना छोड़कर मैं स्वामी सत्यानन्द जी की साधना करने लगा था। पर उन्होंने कोई अप्रसन्नता प्रकट नहीं की। मैंने सब बातें जो भी हुई उन्हें सुना दी, बहुत कुछ तो लिख ही दी थीं।

एक वर्ष भ्रमण किया

उत्तराखण्ड की तपोभूमि से—उस एकान्त और अज्ञातवास से—लौट कर एक वर्ष तक मैंने भ्रमण ही किया। इसके दो कारण थे एक तो यह कि अब मैं क्या कार्य करूं, परमेश्वर की इच्छा क्या है, यह जब तक सामने न आ जाये तब तक मैं किसी कार्य में नहीं पड़ना चाहता था। यद्यपि गुरुकुल से मैं छुट्टी लेकर गया था अतः वहीं मुझे फिर वापिस आ जाना चाहिये यह गुरुकुल के अधिकारियों की इच्छा स्वाभाविक थी, पर मैं अभी देख रहा था कि अन्तर्यामी की इच्छा क्या है। दूसरी बात यह थी कि मुझे कई कारणों से जो भ्रमण करने का अवसर मिल रहा था (जिसका अभी उल्लेख करूंगा) उसका मैं इसलिए लाभ उठाना चाहता था कि इस एकान्त में जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ है, उसे भिन्न-भिन्न स्थानों, अवस्थाओं, परिस्थितियों में रहते हुए मैं पुष्ट कर सकूं, दृढ़ कर सकूं। इसलिये भ्रमण करना मैं पसन्द करता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे तीन जगह से आमन्त्रण मिले थे। सबसे पहले तो गंगा प्रसाद जी चीफ जज से टेहरी में ही एक दिन (3 अप्रैल चैत्र सुदी प्रतिपदा) सायंकाल घूमते हुए यह बात हो गयी थी कि ऐसा लगता है कि इस वर्ष के अन्त में हमें इकट्ठा भ्रमण करना होगा। कुछ महीनों बाद वह बात बन गयी। गंगा प्रसाद जी ने मुझे लिखा कि वे तथा उनके भाई प्यारे लाल जी जाड़ों में द्वारिका की यात्रा करना चाहते हैं कि मैं भी उनके साथ में हो सकूं। उनका महात्मा गाँधी जी के आश्रम साबरमती में भी जाने का कार्यक्रम था। सो यह आमन्त्रण मैंने मान लिया।

दूसरा आमंत्रण राजस्थान की धार रियासत के कानवन नामक स्थान पर रहने वाले एक महात्मा जी (श्री छोटे दास महाराज के शिष्य लक्ष्मण जी) की तरफ से था। उन्होंने कहीं मेरी पुस्तक 'तरंगित हृदय' पढ़ी थी। उसी को पढ़कर ही मुझे पत्र लिखा था। भगवान् के, परमेश्वर के स्थूल रूप में, आँखों से, दर्शन हो सकते हैं ऐसा वे विश्वास रखते थे तथा उन्होंने इस दर्शन के लिए मुझे भी सत्पात्र बताया था। अतः वहाँ जाना मैं कैसे छोड़ सकता था ?

तीसरा आमन्त्रण गुरुकुल के प्रसिद्ध स्नातक श्री व्रतानन्द जी की तरफ से था कि उनके चितौड़ गुरुकुल में आकर उपाधि वितरण उत्सव में प्रमुखतया सम्मिलित होऊं। पर पीछे से उनके सलाहकारों ने उन्हें मेरे राजनैतिक कार्यकर्त्ता होने से मेरा बुलाया जाना शायद राजपूताने के इस गुरुकुल के लिए अहितकर हो सकता है, यह ठीक ही सलाह दी। अतः उन्होंने शिष्टता पूर्वक मना कर दिया और मैंने भी यही उचित समझा। सो मैं चित्तौड़ से गुजरा पर वहाँ गया नहीं।

इन तीन दूर की जगह के आमन्त्रणों के अतिरिक्त चरथावल (जहाँ मैं डेढ़ साल कार्य कर चुका था) तथा महात्मा सुमेर चन्द आदि की तरफ से समीप के आमन्त्रण तो थे ही। अतः मैं पहाड़ से नीचे उतर कर 28 जौलाई को देहरादून में स्वामी सियाराम जी से मिलकर तथा उनके पास तीन दिन रहकर एक अगस्त को हरद्वार आ गया, मायापुर वाटिका भी गया पर गुरुकुल नहीं गया। हठयोग की शोधन क्रियाएं करके उत्तराखंड से इतना दुबला शरीर लेकर आया था कि मायापुर में मास्टर मुखराम जी ने 'मेढ़क जैसा पीला' यह टिप्पणी की थी। अतः गुरुकुल तो कुछ अच्छे शरीर वाला होकर जाने का इरादा था। अतः सीधा चरथावल चला गया। वहाँ सात दिन तक कथा की। चरथावल के पास विरालसी गुरुकुल में महात्मा सुमेरसिंह जी के प्रेम के कारण गया और रहा। महात्मा सुमेरसिंह जी यज्ञ करने में बहुत विश्वास रखते थे। वे राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता तो थे ही। (उनके पुत्र यशपाल जी पीछे राजनैतिक क्षेत्र में प्रसिद्ध हुए) अतः वे तो स्वराज्य की प्राप्ति, इंग्लैंड के राजा का विनाश भी यज्ञ द्वारा साधित करना चाहते थे। उन्हें जेल में 'सत्ययुग' के आने का संदेश भी सुनाई दिया था। उनके विचारों से सहमत न होते हुए भी उनकी यज्ञनिष्ठा और सच्चा भाव मुझे प्रिय था। अतः मैं उनके यज्ञ में कई

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार सम्मिलित हुआ, जैसे 28 अक्तूबर को बिरालसी में किये गये यज्ञ में मैंने मंत्र पाठ किया। उनका यह भी विश्वास था कि हस्तिनापुर से (जहाँ कि महाभारत काल में पतन शुरू हुआ था) भारत का उद्धार होगा। अतः हस्तिनापुर में उन्होंने इसी वर्ष होली पर यज्ञ किया था और जिसमें भाई परमानन्द जी पधारे थे, उसमें भी मैं सम्मिलित हुआ था (2 मार्च से 8 मार्च 1928)। इसी तरह डोरली गुरुकुल, इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल, रामताल गुरुकुल, देहली जमनापार, मेरठ कालेज तथा खादी के कार्य के लिए मुरादाबाद, चाँदपुर, फलावरा, आदि तथा चाचा जी के पास बागपत भ्रमण करते हुए चार महीने बीत गये और 14 दिसम्बर से मैं दूर की यात्रा के लिए चल पड़ा। अजमेर दो दिन हरिभाऊ उपाध्याय के यहाँ ठहरता हुआ कानवन के महात्मा के पास पहुँचने के लिए चला और रतलाम बदनावर होकर बस के द्वारा 17 दिसम्बर को 3 बजे वहाँ पहुँच गया। वहाँ 30 दिसम्बर तक बारह दिन रहा। लक्ष्मण जी ने महात्मा जी से मिलाया। महात्मा जी एक गृहस्थी महाराष्ट्रीय साधु थे। इन्दौर के कमांडिग चीफ श्री भगनी सिंह जी भी इनके एक भक्त शिष्य थे। उनके रचे हुए कुछ गीत व भजन थे जिन्हें कि सत्संगी बाजे के साथ गाते थे। कीर्तन सा होता था। श्री लक्ष्मण जी सूक्ष्म विचारक तथा सुपठित व्यक्ति थे। उन्होंने कृपा की तथा 28 दिसम्बर बुधवार को सायं बाहर एकान्त में ले जाकर मुझे दीक्षा दी। अर्थात् वह दर्शन करा दिया। यद्यपि उस दर्शन को मैं कुछ महत्त्व न दे सका, पर उनकी कृपा का सदा आभारी हूँ। तीन दिन और वहाँ ठहर कर दो जनवरी को मैं अहदाबाद पहुँचकर साबरमती आश्रम जा पहुँचा जहाँ कि गंगा प्रसाद जी तथा प्यारे लाल जी मुझसे मिलने वाले थे। महात्मा गाँधी जी के दर्शन हम तीनों ही ने किये और हम तीनों ही तीन जनवरी को यात्रा पर चल दिये। एक दिन बड़ौदा (बड़ोदरा) देखा। वहाँ का प्राईमरी, किंडरगार्टन, ट्रेनिंग, अन्त्यज स्कूल, प्रदर्शनी, कला भवन, महल, व्यायामशाला देखी। 5 स 8 तक तीन दिन बम्बई ठहरे। अद्भुतालय, अपोलोबंदर, चौपाटी, मालाबार हिल, हैंगिग गार्डन, महालक्ष्मी मन्दिर आदि देखे। और 8 जनवरी 1928 को अपने जीवन में पहली बार (और शायद अन्तिम बार, क्योंकि उसके बाद आज तक तो कभी सिनेमा हाल में गया नहीं हूँ) गंगा प्रसाद जी के साथ सिनेमा देखा। शिवाजी से सम्बन्धित सिनेमा था। 'जय भवानी' नाम था। तब तक भारत में बोलता सिनेमा (टाकीज) नहीं आया था। 9 जनवरी को वीटा नामक जहाज पर बैठकर हम सब द्वारिका गये। पूरे 24 घटे समुद्र में रहे (जहाज की यात्रा भी यहाँ मैंने जीवन में पहली बार की)। 10 जनवरी को 10 बजे किश्ती पर उतरे, ओखा पोर्ट होते हुए 'बेट द्वारिका' पहुँचे। गुजराती भाषा में बेट का अर्थ द्वीप होता है। अगले दिन द्वारिका में शंखताल, पाँच मुख्य मंदिर तथा हनुमान डांडी देखे। फिर 12 जनवरी को 'गोमती द्वारिका' का मुख्य मंदिर देखा और शारदा पीठ के शंकराचार्य जी के दर्शन किये। 13 तारीख को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे लाल जी चले गये पर गंगा प्रसाद जी तथा मैं द्वारिका में 8 दिन तक रहे। हम दोनों 20 जनवरी तक द्वारिका ठहर कर फिर साबरमती आश्रम आ गये। गगा प्रसाद जी भी दो दिन ठहर कर चले गये। पर मैं गाँधी जी के आश्रम में पूरा एक महीना, 22 फरवरी तक ठहरा जिसका विवरण उस प्रकरण में यथास्थान दिया जावेगा।

यहाँ तो यही उल्लेखनीय है कि लौटते समय मैं फिर तीन दिन कानवन ठहरा, क्योंकि लक्ष्मण जी ने कुछ सन्देश महात्मा गाँधी जी को भी मुझ द्वारा भिजवाया था। मैंने वह गाँधी जी को दिया था। उसे पढ़कर गाँधी जी ने इतना ही कहा कि इसमें मेरे लिए कुछ नई बात नहीं है। यह यात्रा समाप्त कर मैं एक मार्च को अपने क्षेत्र में (देहली) पहुँच गया।

स्वामी सत्यानन्द जी महाराज से इन दिनों कई बार मिलना हुआ। 15 मार्च को मैं उनसे मिलने लुधियाना गया। अप्रैल में वे हरद्वार पधारे तो उन्हें स्टेशन पर मिलने हम लोग गये। हरद्वार में एक मास ठहरे। 17 मई को वे विदा हुये। हम उनके साथ थे। फिर 13 अगस्त को अपनी बहन बुद्धिमती को भी स्वामी जी के दर्शन देहरादून मोहनी आश्रम में कराये। यह यात्रा का बंधन रहित जीवन समाप्त हो गया जब कि मैं फिर गुरुकुल में आचार्य रामदेव जी के 'आत्मीय सहायक' के रूप में कार्य करने लगा।

विवाह न करने का अन्तिम निश्चय

एकान्तवास से लौटकर आने पर जब मैं चरथावल ठहरा तब अपने पूज्य पिताजी को मैंने अपना यह निश्चय बता दिया कि मैंने विवाह न करने का अब सोच समझ कर निश्चय कर लिया है।

गुरुकुल में बचपन में तो हम सभी दयानन्द की तरह आजीवन ब्रह्मचारी रहने की बातें किया करते थे और अपने माता-पिता को भी पूछने पर यही कहते थे कि हम ब्रह्मचारी रहेंगे। पर ये बचपन की बातें थीं। इन्हें छोड़ दें, तो भी बड़े होने पर जब हम गुरुकुल में (महाविद्यालय) विभाग में पढ़ते थे तो एक बड़े ब्रह्मचारी युधिष्ठिर जी (जो कि पीछे व्रतानन्द जी हुए और जिनका गत प्रकरण में चित्तौड़ गुरुकुल के सम्बन्ध में उल्लेख भी आया है) हमसे विवाह न करने की प्रतिज्ञा करवाया करते थे। हमारी श्रेणी में करीब 10-12 ने ऐसी प्रतिज्ञा की थी। पर युधिष्ठिर जी जब मेरे पास इस प्रतिज्ञा के लिए आये तो मैंने प्रतिज्ञा लेने से इन्कार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। मैंने क ा कि सुना है कि ब्रह्मचारी रहना बड़ा कठिन होता है, पीछे जाकर गृहस्थ होने की प्रबल वृत्तियाँ जगती हैं, अतः मैं प्रतिज्ञा नहीं करता। उस समय उन्हें यह बुरा भी लगा होगा। यह अब सब जानते हैं कि हमारी श्रेणी में जिन्होंने विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी, उन सबने विवाह कर लिया। न प्रतिज्ञा लेने वाले इस देवशर्मा ने ही विवाह नहीं किया।

सच्ची बात यह है कि मेरे पिताजी ने (एकमात्र पुत्र सन्तान होने पर भी) मुझे विवाह कर लेने को कभी नहीं कहा। और सम्बन्धी ही इसके लिए कहते थे (वैसे तो गुरुकुल में प्रविष्ट होने से पहले ही 6-7 वर्ष की उम्र में ही) मेरी सगाई एक थानेदार की पुत्री से हो चुकी थी। वह सगाई गुरुकुल में प्रवेश करते समय तोड़ दी गई थी। यह बात मुझे चाचा प्रताप नारायण जी ने पीछे सुनाई थी। जो लोग मेरे पिताजी को मेरे विवाह के लिए कहते थे उन्हें वे सदा यही जबाब देते थे कि मेरा कर्त्तव्य उसे पढ़ा लिखा देना था, आगे विवाह करना या न करना यह उसकी इच्छा है।

जब मैं गुरुकुल में पढ़कर बिल्कुल पहली बार गाँव में आया तो कुछ सम्बन्धियों ने (पिताजी ने या चाचा जी ने नहीं) मेरे ब्याह की बातें कीं। गाँव के जीवन में शायद यही विषय बातचीत का होता है। वे शायद किसी अन्य या विस्तृत जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। पर मैं उनकी बातें सुनकर हँस देता था। मुझे ये विचित्र लगती थी। पर एक बार मेरी चचेरी बहन भगवान देवी ने अपनी गाँव की मजेदार बात कही। उसने कहा 'देसरमा तो ढेर पढ़ा लिखा है वह तगाली वगाली से क्या ब्याह करेगा, वह तो किसी फिरींगन से ब्याह करेगा। इस बहन भगवानदेई के कहने का मजा वे लोग ले सकेंगे जो यह जानते थे कि (1) यहाँ देवशर्मा की जगह 'देसरमा' कहा गया है (2) 'तगा' त्यागी ब्राह्मण का स्त्रीलिंग 'तगाली' कहा गया है तथा (3) योरोपियन को 'फिरंगी' नाम से पुकारा गया है। पर जब मैं डेढ़ साल चरथावल में राजनैतिक कार्य करता हुआ लगातार रह चुका था तब भी लोगों को मेरे विवाह कर लेने के विषय में कहने को कुछ रह गया था। यह मैं तब नहीं जानता था। किन्तु जब स्वामी श्रद्धानन्द जी राजनैतिक परिषद में चरथावल पधारे थे तो मालूम होता है कि मेरे विवाह हो जाने के बारे में उन्हें भी कइयों ने कहा था। क्योंकि उस परिषद् के बाद जब पहली बार मैं देहली नये बाजार में उनसे मिला तो उन्होंने एकदम मुझसे पूछा कि तुम्हारा विवाह हो गया? मैंने पूछा, क्यों? तब उन्होंने बताया कि चरथावल में मुझे जो बातें कही गयीं, उनसे पता लगता था कि तुम पर विवाह करने को बहुत जोर डाला जा रहा है। जब मैंने बताया कि मेरा तो कोई विचार विवाह करने का नहीं है तो उन्होंने मुझे अपने निश्चय के लिए पूरी तरह उत्साहित किया। इसी तरह अच्युत मुनि जी को जब पता लगा कि मेरा विचार विवाह करने का नहीं है तो उन्होंने निम्न श्लोक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलकर मुझे इसके लिये उत्साहित ही किया था—

स्त्रियं त्यक्त्वा जगत् त्यक्तम्,
जगत् त्यक्त्वा सुखी भव।

जगत् छोड़ने का अर्थ मैं 'संसारीपन को' दुनियादारी को छोड़ने का ही लेता हूँ। सामान्य संसारी जीवन (विवाह करना, गृहस्थी चलाना, पेट पालना) मुझे सदा ही अपने लिए विजातीय लगा है। तो भी विवाह न करने का जो निश्चय अभी तक नहीं किया था वह इसलिए नहीं किया था कि एक तो हमारे शास्त्रों में 'प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सी'का उपदेशहै और 'पुन्नरकात्त्रायते इतिपुत्र:' कहा है दूसरे बड़ी उम्र में जाकर कामवेग के जागने की भी सम्भावना रहती है, यह सुना हुआ था। सो दुनियावीपन के कारण विवाह करने की तो मुझमें कभी इच्छा नहीं थी। पर कई लोग जब यह कहते थे कि आगे संततिक्रम जारी रखना भी तो धर्म है, तब कुछ सोचना होता था। एक मेरे सम्बन्धी चाचा (सगे चाचा नहीं) श्री छज्जूसिह जो चरथावल में बड़े सच्चे दिल से मुझे इस सम्बन्ध में कहा करते थे। उन्हें सचमुच दुःख होता था कि पं० रामप्रसाद के बाद देवशर्मा के आने पर क्या प्रजातन्तु विच्छिन्न ही हो जायेगा? तो मैंने भी सचमुच गम्भीरता के साथ उनके सामने यह प्रस्ताव रखा था कि अच्छा, यदि कोई ऐसी कन्या आप ला दें जो केवल एक बार सन्तान के लिये ही मिले, नहीं तो फिर घर के साथी के तौर पर रहने को तैयार हो तो मैं विवाह कर लूंगा। तब उन्होंने दुःख से कहा था, ऐसी कन्या मिलना तो सम्भव नहीं। इस तरह वह बात समाप्त हुई। पर इस पहली बात का तो मैंने इलाज भी कर लिया कि पिताजी को अर्पण करते हुए 'तरंगित हृदय' पुस्तक लिखकर प्रकाशित कर दी। यह मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि 'पुंनरक' यदि कुछ होता भी है तो मेरा उससे त्राण खूब अच्छी तरह हो गया है। भौतिक पुत्र पैदा करने की अपेक्षा 'पुस्तक' के रूप में या अपनी अन्य रचनाओं के रूप में अपनी 'प्रजा' जगत में देना हजारों गुणा अच्छा है दूसरी बात का भी मुझे ऐसा डर तो कभी नहीं था। जैसा कि ताराचन्द गैरोला कहा करते थे—'रात को यदि मेरे पास में कोई स्त्री भी सोवे तो मेरा क्या हाल होगा, सो मैं कह नहीं सकता।' सचमुच मुझे तब उनकी यह बात समझ में ही नहीं आती थी, केवल अनुमान करता था, मैं मन में कहता था कि कोई स्त्री भी उस कमरे में सोवे, तो वह भी सोवे, इसमें कठिनाई क्या है? पर मेरे लिए जो विचारणीय बात थी वह यह थी कि यह अनुभवियों से सुन रखा था कि पीछे जाकर भी कई बार कामवासना भड़का करती है, तब क्या होगा? इस विषय में हाथ देखने और जन्मपत्री देखने वालों ने भी भय उत्पन्न कर रखा था। कांग्रेस के एक कार्यकर्त्ता वेंक्टेशनारायण तिवारी ने मेरा हाथ देखकर लखनऊ में बताया था कि मेरे पीछे पाँच स्त्रियाँ पड़ी हुई हैं। यह उन्होंने मजाक में कहा था या सचमुच मेरा हाथ यह कहता था, सो पता नहीं। पीछे से एक बहन का तो पता लगा कि उसने अन्त में मुझसे निराश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर बड़ी उम्र में अपना विवाह किसी अन्य से किया। इसी तरह जब मैं बनारस में 'तरंगित हृदय' छपवा रहा था तब काशी के एक ज्योतिषी से मैंने अपना जन्मफल लिखवाया था, उसमें भी बड़ी उमर में ऐसी बात होनी लिखी थी। सो उस सम्भावित सम्भावना पर मैं निश्चित विजय कैसे पाऊँगा, यह विचारणीय था।

सो यह बात उस अज्ञातवास के जीवन के उपरान्त समाप्त हो गई। कैसे समाप्त हुई ? इस पर जब मैं विचार करता हूँ तो दो बातों की तरफ मेरा ध्यान जाता है। पहली बात यह है कि गुरुकुल में वेदोपाध्याय होने पर मैंने अथर्व वेद का 'ब्रह्मचर्य सूक्त' पढ़ा और पढ़ाया। उसका मुझ पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा था। उसमें ब्रह्मचर्य का जो उदात्त, व्यापक, विशाल रूप वर्णन हुआ है उसने जहाँ हृदय मन प्राण को विशाल बनाया, वहाँ ब्रह्मचर्य के प्रति प्रगाढ़ प्रेम पैदा कर दिया। यह समझ में आ गया कि किसी भी महान् ध्येय, उद्देश्य के लिए ही ब्रह्मचारी रहा जा सकता है। 'ब्रह्म' में 'चर्या' होना ही ब्रह्मचर्य है। छोटे उद्देश्य, ध्येय वाला अन्य बाहरी उपायों से ब्रह्मचारी रहे, यह चलने वाला नहीं है। जैसे महात्मा गाँधी कहते थे कि जब तक देश स्वाधीन न हो जाये तब तक बच्चे न पैदा करने चाहिएँ। गुलामों की संख्या न बढ़ानी चाहिए। वहाँ भी ध्येय इतना बड़ा नहीं हुआ है जिसे 'ब्रह्म' कहा जा सके। जब तक देश स्वाधीन नहीं हुआ तब तक वीर्य का भोग में उपयोग न किया जावे, इतने से मेरा मन सन्तुष्ट नहीं होता था। वैसे तो मेरा दुर्बल शरीर है इसलिए मुझे विवाह नहीं करना चाहिए, शरीर के आन्तर पोषण में वीर्य लगाना चाहिए यह ठीक भी है। और कइयों को अपने विवाह न करने का कारण यह भी बताता था, पर ये मौलिक बातें नहीं हैं। मौलिक बात का अनुभव हुआ था वेद के ब्रह्मचर्य सूक्त का अध्ययन करने से। उससे कुछ ऐसी चीज मिलती थी सहज में मुझे तुच्छता से ऊपर उठाती थी। पीछे इस वैदिक सूक्त की व्याख्या भी मैंने लिखी थी जो 'वैदिक ब्रह्मचर्य गीत' इस नाम से प्रकाशित हुई थी। सो मुझ पर पहला विशेष प्रभाव जिसने मुझे इस निश्चय के लिए विशेष प्रबल प्रेरणा दी वैदिक ब्रह्मचर्य सूक्त का था। यों कहना चाहिए कि ब्रह्मचर्य के विषय में भी यह सत्य है कि ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान (प्रकाश) बढ़ता है त्यों-त्यों इसका (ब्रह्मचर्य का) अर्थ भी हमारे लिए विस्तृत होता जाता है। और अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में (मेरे अनुभव के अनुसार) यह शक्ति है कि हमारे ज्ञान प्रकाश को बढ़ावा दे सके।

दूसरी चीज एकान्तवास से प्राप्त हुआ प्रकाश था। वह प्रकाश जिसे 'आत्म प्रकाश' कहके सुनाया गया था, जिसने मुझे ब्रह्मचर्य के लिए पक्का कर दिया, पक्का दिया था। यह साफ था कि मुझे कुछ मिल गया है, योग की प्राप्ति हो गई है, अब उसी के अनुसार चलना है। उसे मैं छोड़ नहीं सकता। उसके बिना और कुछ नहीं कर सकता। जैसे उसके पश्चात् एक वर्ष तक मैंने किसी विशेष कार्य में अभी तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने को नहीं लगाया, गुरुकुल का प्राप्त कार्य भी नहीं पकड़ा क्योंकि अब प्रत्येक कार्य को उसी प्रकाश में करने की इच्छा थी । उसी तरह स्वभावतः इतनी बात तो असंदिग्ध हो गई थी कि कम से कम विवाहित जीवन की संभावना अब समाप्त है, काम वासना के भड़कने का भय अब निर्मूल हो चुका है अतएव मैंने विवाह न करने का अन्तिम निश्चय पिताजी को बता दिया ।

1 जून 1927 को जो अनुभव हुआ था जिसे मैं योग का प्राप्त हो जाना कहता हूँ—उसके साथ अन्दर से कुछ ऐसा स्पष्ट भाव हुआ कि अब तेरा अन्दर का कार्य तो पूरा हो गया है, बाहर का काम धीरे-धीरे होता रहेगा, आत्म प्रकाश हुआ है शरीर का ठीक होना रहता है जो धीरे-धीरे होता जावेगा । उसकी कुछ चिन्ता करने की जरूरत नहीं है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग-साधना की कहानी
(गुरुकुल कांगड़ी की सेवा)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी श्रद्धानन्द जी

गुरुकुल में पहले भी मैं दो बार आ चुका था। दोनों बार स्वामी श्रद्धानन्द जी की विशेष प्रेरणा से ही आया था। 1921 में तत्व शोधन का कार्य करने के लिए उन्हीं के बुलाने से आया था। पर आधे वर्ष बाद ही असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए चला जाना पड़ा था। फिर 1923 में वेदोपाध्याय होकर जो आया था वह भी उन्हीं के अलंघ्य आदेश के कारण आया था अन्यथा कभी न आता—यह मैं बता चुका हूँ। तीन वर्ष तक न केवल वेदोपाध्याय अपितु उपाचार्य का (बल्कि आचार्य रामदेव जी के अफ्रीका जाने से उनकी जगह आचार्य का भी) कार्य करके एकान्त में योगसाधन करने के उद्देश्य से गढ़वाल चला गया था। अब तीसरी बार 1928 में आया तो यद्यपि स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज स्थूल शरीर में उपस्थित नहीं थे, अपने भौतिक शरीर का बलिदान कर 23 दिस० 1926 को दिवंगत हो चुके थे, पर मेरा गुरुकुल सेवा का निश्चय इस बार भी (और आगे भी 1942 तक, जब तक मैंने गुरुकुल की प्रत्यक्ष सेवा की) उन्हीं की प्रेरणावश हुआ था यह कहना उचित ही होगा। अब से छह वर्ष उपरान्त 1934 के गुरुकुलोत्सव के बाद मैंने जो भाषण गुरुकुल से विदाई लेते हुए गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में किया था (और जो 'अलंकार' पत्रिका के उसी वर्ष के जौलाई के अंक में छपा था) उसमें मैंने सबसे पहले अपने अन्दर के पवित्र भाव को स्वप्न की बात सुनाकर वाणी द्वारा प्रकट भी किया। मैंने तब कहा था जब मैं एकान्त में एक वर्ष रहा हूँ तो वहाँ भी स्वामी श्रद्धानन्द जी की मृत्यु की महत्त्वपूर्ण खबर मुझे पहुँच गई। उस रात्रि एक स्पष्ट स्वप्न में मैंने देखा कि श्रद्धानन्द जी मुझे गंगा के किनारे घूमते हुए गुरुकुल का आचार्य बनने को कह रहे हैं। पर वह तो केवल एक स्वप्न था, असल में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ जो मेरा आन्तरिक सम्बन्ध था (और जो ही इस स्वप्न का भी उत्तरदाता था) उसी से प्रेरित होकर— इस बार फिर नये सिरे से सोचकर—मैंने गुरुकुल सेवा का ही निश्चय किया था। मैं कह चुका हूँ कि अब मैं क्या करूं, परमेश्वर की इच्छा क्या है, जब तक यह सामने न आ जाय, तब तक मैं किसी काम में पड़ना नहीं चाहता था सो स्वामी श्रद्धानन्द जी की आन्तरिक प्रेरणारूप सहज भाव से यह कार्य अब सामने आ गया और मैंने अप्रैल 1928 में आचार्य रामदेव जी के आत्मीय सहायक (क्रियात्मक रूप से सहायक आचार्य) का कार्य साधना रूप में करना प्रारम्भ कर दिया जो कि बीच में छिन्न होता हुआ भी 1942 तक चला।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जो मैंने लगभग 21 वर्ष तक (1921 से 1942 तक)—बीच-बीच में बाहर रहने के वर्ष छोड़ दिये जायें तो लगभग 14 वर्ष तक—गुरुकुल की सेवा साधना के रूप में की (जिसकी कि इस खण्ड के प्रकरणों में चर्चा की जायेगी) वह स्वामी श्रद्धानन्द जी की सेवार्थ थी—यह कहा जा सकता है । क्योंकि यह गुरुकुल सेवा वस्तुत: उनके वैयक्तिक प्रेम के प्रत्युत्तर रूप थी या उनके ऋण से आनृण्य पाने के स्वाभाविक यत्न रूप थी, यही कह सकता हूँ । सो इस तीसरे खण्ड का प्रारम्भ उनके विशेष उल्लेख के बिना कैसे किया जा सकता है ?

अपने योग के गुरुओं की जब मैंने आगे जाकर गिनती की, उसमें बेशक मैंने महात्मा मुन्शीराम जी (श्रद्धानन्द जी) को नहीं गिना, पर श्रद्धानन्द जी तो हमारे जीवन के बनाने वाले ही थे । वे हमारे कुल के प्रथम आचार्य ही नहीं किन्तु कुल के संस्थापक थे । वे महापुरुष थे । आचार्य थे । व्यक्तिगत रूप से जो उनका मुझ से प्रेम था उसका कुछ उल्लेख कई जगह मैं कर चुका हूँ ।

चौथी पांचवीं श्रेणी की बात है कि एक बार खिड़की में अकेले बैठे हुए रो पड़ा था यह याद करके कि यदि हमारे प्रधान जी मर जायेंगे तो क्या होगा ? बालकपन का प्रेम उसी तरह प्रकट होता है ।

जब हम विद्यालय विभाग में ही थे तो एक बार उत्सव पर एक प्रसिद्ध गायक (विष्णु दिगम्बर) आये थे । हमें छोटे विद्यार्थी होने से वहाँ उस समय पंडाल में जाना मना था पर हमारी श्रेणी के एक गान प्रिय विद्यार्थी ने मुझसे आग्रह किया कि प्रधान जी से पंडाल में जाने की आज्ञा लेनी चाहिये । हम दोनों बंगले पर गये । हमारी प्रार्थना मानते हुए प्रधान जी ने कह दिया 'चले जाओ' । हमें लगा शायद उन्होंने नाराजगी से कह दिया है । हम फिर लौटे । प्रधान जी बाहर निकले तो मैंने अपना भाव कह दिया तो वे बोले—'हत पगलो ! मैंने नाराजगी से नहीं कहा उनका यह 'पगलो' कहना कितना प्यारा था !

महाविद्यालय पहुँच कर उस आश्रम का पीछे बना वही कमरा उन्होंने प्रेमपूर्वक हमें रहने को दे दिया जिसको कि ईंटें ढोकर और गारा बनाकर (चिनाई तो स्वामी जी के भक्त मोहम्मद हुसैन राज की थी) बनाने में हम (स्वामी पार्टी वालों) ने हिस्सा बंटाया था ।

मुझे स्वामी जी महाविद्यालय में 'एकान्त प्रिय' नाम से पुकारते थे । मुझे पंचकुटी में एक कमरा उन्होंने दे ही रखा था । कभी-कभी अपने पास आया मेवा आदि मुझे भी खाने को भेज दिया करते थे ।

स्नातक होने पर चरथावल की राजनैतिक कान्फ्रेंस में जब मैंने उन्हें बुलाया तब वे न केवल उस गांव में स्वयं अपना डंडा हाथ में लिये जा पहुँचे पर अन्य कई नेताओं को भी लाने का यत्न किया । और कान्फ्रेंस के अन्त में अपने भाषण में उन्होंने 'कुम्हारी को अपने बनाये बर्तन अच्छे लगते हैं' यह उपमा देकर जो मेरा और अपना सम्बन्ध प्रदर्शित करते हुए बहुत कुछ कहा, वह कितना मार्मिक था !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहली में मैं जब भी जाता था नये बाजार में उन्हीं के पास ठहरता था। उनके कमरे की ऊपर की मंजिल मैं एक लकड़ी की कोठरी थी जिसे वे 'देवशर्मा' के लिए सुरक्षित, कहा करते थे। अन्य स्नातक उनके पास ठहरते हुए शर्माते थे। पर मैं जब तक वे रहे, देहली में सदा उन्हीं के पास ठहरा।

इन्हीं दिनों उनकी हृदय की महत्ता का तब विशेष अनुभव किया जबकि उन्होंने पं० विश्वंभर नाथ जी के कहने पर मुझे विवश किया कि मैं गुरुकुल में वेदोपाध्याय होकर जाऊं। मुझे पता था कि स्वामी जी पं० विश्वंभर जी के मुख्याधिष्ठातापन की आलोचना करते हैं, मेरे सामने भी आलोचना उन्होंने की थी। परन्तु यह उनकी महत्ता थी कि गुरुकुल के उच्च हित में उन्हीं विश्वंभर नाथ जी के कहने को इतना मान लेने में उन्होंने किसी मतभेद को बाधक नहीं होने दिया।

उन्होंने मेरी 'तरंगित हृदय' पुस्तक पर जो अपनी सम्मति लिखी है, वह उनकी महत्ता ही नहीं किन्तु आत्मा की दिव्यता की सूचक है।

सार्वजनिक रूप से उनकी महत्ता को अनुभव करने वाले अनगिनत थे। बहुतों के जीवन को उन्होंने पलटा। उनके भक्तों की संख्या बहुत थी। ऐसे महापुरुष को अपना आचार्य पाकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। अतएव अपनी पहली (सर्वप्रथम) पुस्तक 'वैदिक उपदेश माला' मैंने उन्हीं के आचार्य-चरणों में अर्पित की थी। उन्होंने अपने उपदेशों से ओर उससे भी कही अधिक अपने जीवनप्रद आचरणों से, जो हमें सिखाया (श्रेय मार्ग पर चलना, वीरता, दृढ़ता, आदर्श से न डिगना, प्रण पालन, शत्रु से भी प्रेम करना, उदारता, दलितों-पीड़ितों का सहारा होना, देश सेवा, स्वातंत्र्य संग्राम में सैनिकता, त्याग, बलिदान, अभयता आदि) है और बनाया है, उसस कभी उऋण नहीं हुआ जा सकता। पर उनका सबसे बड़ा कार्य उस जमाने में गुरुकुल की स्थापना ही था। इसी के लिए वे जन्मे थे। दुनिया के जो भी सच्चे महान् पुरुष उन दिनों भारत में आते थे वे गुरुकुल को जरूर देखते थे। अंग्रेज एंड्रयूज, रेमजे मेकडानल, होबर्ट (जिन्हे हम गुरुकुल का पंडा कहा करते थे) आदि, फ्रेंच पाल रिशार, अमेरिकन फेलिप्स, डच केरियर आदि बहुत से विदेशी हमारे जमाने में ही गुरुकुल में आकर रहे, उनके भक्त थे। ये सब गुरुकुल के संस्थापक के रूप में ही श्रद्धानन्द जी के भक्त थे। अत: उनकी सच्ची यादगार गुरुकुल ही है और यही हो सकती है। अतः जब उनकी स्मृति में श्रद्धानन्द स्मारक निधि स्थापित हुई तो उसमें सर्वप्रथम अपनी पुस्तक 'ब्राह्मण की गौ' को छपने के लिए देकर इसका श्रीगणेश मैंने ही किया। मेरे जीवन में जो गुरुकुल और आर्य समाज की भावना तथा देश-सेवा की उमंग और आध्यात्मिक उन्नति की अभीप्सा का मिश्रण था, वह उनकी शिक्षा का फल था।

महात्मा मुंशीरामजी तो आर्य समाज को ही विदेशी सरकार से बिल्कुल स्वतन्त्र देखना चाहते थे। कम से कम उन्होंने गुरुकुल को तो सरकार से सर्वथा स्वतन्त्र एक शिक्षा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की महान् संस्था बना दिया था। लोग गंगा के पत्थरों, रेती और जंगल पार करके पाँच मील चलकर जब गुरुकुल पहुंचते थे तो जंगल में मंगल देखकर आश्चर्यचकित होते थे। बरसात के दिनों में तमेड़ों के द्वारा प्रतिदिन डाक का तथा अन्य यातायात का प्रबन्ध चलता रहता था जिसे देखकर लोग दाँतों तले उंगली दबाते थे। गुरुकुलोत्सव के दिनों में फूस की झोंपड़ियों की पंक्तियाँ बन जाती थीं और स्वयंसेवक लोग उस आर्य नगरी का दिन-रात प्रबन्ध करते थे। महात्मा गांधी ने एक बार कांग्रेस के अधिवेशन के सम्बन्ध में लिखा था कि उसे गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव जैसा प्रबन्ध करना चाहिये। एक बार जब अंग्रेजों की नीति आर्य समाज और गुरुकुल को फुसलाने की हुई और भारत के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड गुरुकल मे आये तो हमारे प्रधान जी ने कहा था कि वे पुलिस को गुरुकुल की हद में नहीं आने देंगे, वायसराय की रक्षा का हम ही सब प्रबन्ध कर लेंगे। सरकार ने यह माना, यद्यपि कुछ सिपाही पास के जंगल की झोंपड़ियों के पीछे छिप कर बैठे थे। चेम्सफोर्ड के चले जाने के बाद जब मैं जंगल में शौच गया तो मुझे याद है कि झाड़ी के पीछे एक सिपाही बैठा था जो मुझे देख उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि मैं अभी चला जाता हूँ, लाट साहब की वजह से हमें भेजा गया था, किसी को बतलाना नहीं कि मैं यहाँ था। उनके पीछे तो विश्वम्भर नाथ जी के जमाने में, जरा सी डाकुओं की धमकी पर गुरुकुल में पुलिस बुलाई गई थी और दरोगा जी अपना हुक्का लेकर आचार्य के कमरे में आकर डटकर बैठे थे। प्रधान जी के जमाने में तो कई मशहूर डाकुओं ने गुरुकुल से गुजरते हूए भी गुरुकुल को जरा भी नहीं छेड़ा, बल्कि भक्ति भाव से सिर झुकाया था। गुरुकल में डाक बहुत आती थी तो सरकार की तरफ से ही कहा गया कि गुरुकुल का अपना डाकखाना हो जावे। हमारे प्रधान जी ने यह शर्त लगाई कि गुरुकुल का पोस्ट मास्टर निरामिष भोजी ही होना चाहिये क्योंकि गुरुकुल में मांसपाचन की अनुमति नहीं दी जा सकती। सरकार ने यह शर्त मानी और गुरुकुल का अपना पोस्ट (जि०—बिजनौर) में बना। यह सब हमारे प्रधान जी की महापुरुषता के कारण था। उनके संकल्प बल ने सब विरोधी अवस्थाओं पर विजय पाई थी।

गुरुकुल तो स्वामी श्रद्धानन्द जी के कारण न केवल भारत भर में (इस देश के सभी प्रान्तों में) ख्याति-प्राप्त था अपितु विदेशों तक में प्रसिद्ध था, तो इस संस्था का केवल पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा के अधीन होना जरा अखरता था। गुरुकुल केवल एक शिक्षा संस्था भी नहीं थी, शिक्षा संस्था में क्रांति थी। यह बेशक आर्य समाज के सार्वभौम रूप से बल्कि दयानन्द से—अनुप्राणित संस्था थी, पर आर्य समाज की सांप्रदायिकता से बहुत ऊपर थी। उदाहरण के तौर पर कई कट्टर (सांप्रदायिक) आर्यसमाजी गुरुकुल में तुलसी रामायण पढ़ाये जाने के विरोधी थे, पर स्वामी श्रद्धानन्द जी को यह बहुत प्रिय थी। गुरुकुल के शिक्षा संस्था होने के कारण इतनी उदा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रता चाहिये ही थी, इतना ही नही, किन्तु आर्य समाज के विषय में भी श्रद्धानन्द जी का दृष्टिकोण विशाल था। बहुत से लोगों को तो पता भी नहीं था कि गुरुकुल 'पंजाब व बिलोचिस्तान' की आर्य प्रतिनिधि सभा को संस्था है परन्तु भक्त लोग, सभी प्रान्तों के भक्त लोग, बल्कि विदेशी लोग भी, सनातनी हिन्दू भी, राष्ट्रीय शिक्षा के पक्षपाती भी, बल्कि सभी क्षेत्रों के आदर्शवादी लोग श्रद्धानन्द जी के गुरुकुल को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। आशा है इसी भाव से पाठक इस खंड के आगामी प्रकरणों को पढ़ेंगे, तभी वे गुरुकुल के साथ न्याय कर सकेंगे।

ब्रह्मचारियों से निकट सम्बन्ध

गुरुकुल में 14 वर्ष पढ़ने (ब्रह्मचारी रहने) के पश्चात् लगभग 14 वर्ष ही मैंने गुरुकुल की सेवा में बिताये। उसकी तालिका निम्न प्रकार है:—

(1) 1921 में—प्रारम्भ अप्रैल से मध्य अक्तूबर तक—वैदिक शोध-कार्य
(अक्तूबर 1921 से फरवरी 1923 तक चरथावल में सेवा कार्य)—डेढ़ वर्ष
(2) 18 मार्च 1923 से अप्रैल 1926 तक वेदोपाध्याय तथा उपाचार्य-3 वर्ष
(अप्रैल 1926 से मार्च 1928 तक गढ़वाल में एकान्तवास तथा देश भ्रमण)—2 वर्ष
(3) अप्रैल 1928 से जुलाई 1930 तक—सहायक आचार्य—सवा दो वर्ष
(1 आषाढ़ 1987, जुलाई 1930 से मार्च 1932 तक सहारनपुर तथा कान्पुर जेल में तथा गाँधी आश्रम में)—2 वर्ष
(4) 1 अप्रैल से अप्रैल 1934 तक-आचार्य—2 वर्ष
(अप्रैल 1934 से जून 1935 तक गाँधी सेवाश्रम कनखल में)—सवा वर्ष
(5) 16 जुलाई 1935 (गुरु पूर्णिमा) से 13 अप्रैल 1938 तक आचार्य—पौने चार वर्ष
(अप्रैल 1938 से फरवरी 1939 तक पांडिचेरी आश्रम आदि में रहा)—
(6) 3 मार्च 1939 से अगस्त 1942 तक—आचार्य—4 वर्ष

इसमें पाठक देखेंगे कि मैं छह बार गुरुकुल में—कुछ हट हट कर आया हूँ। प्रथम बार के छह महीने तो मैं प्रायः अलग ही एकान्त में रहा। पर दूसरी बार के तीन वर्ष न केवल उन्हें वेद पढ़ाने के कारण किन्तु उपाचार्य हो जाने के कारण भी ब्रह्मचारियों की कठिनाइयों, समस्याओं से मैं सुपरिचित हुआ। एक दुर्घटना हो जाने के कारण मैंने विशेषतया बड़े ब्रह्मचारियों से मार्मिक अपील की थी कि उन्हें कुछ भी कष्ट हो तो वे मुझें निस्संकोच कहें : तब कई ब्रह्मचारियों से विशेष सम्बन्ध

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित हुआ। इन्हीं दिनों मैंने अनुभव किया कि ब्रह्मचारियों को केवल विद्या-स्नातक ही नहीं बल्कि व्रत स्नातक भी बनना चाहिये और गुरुकुल में व्रताभ्यास चलाया। तीसरी बार एकान्तवास से जब आया तब अपना यह गुरुकुलीय कार्य विशेषतया साधना रूप हो गया था अत: स्वाभाविकतया मैं तब और अन्दर बैठा। इस बार तो मेरा विशेष कार्य ही (सहायक आचार्य के रूप में) महाविद्यालय के बड़े ब्रह्मचारियों के आश्रम की देखरेख तथा ब्रह्मचारियों (प्रथम से पंचम तक जो कि अब पार के गुरुकुल के ध्वस्त हो जाने से मायापुर वाटिका में रहते तथा पढ़ते थे) की तरफ ध्यान देना था। मैं बड़े ब्रह्मचारियों से सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप में खूब मिलता था। छोटे ब्रह्मचारियों तथा अध्यापकों से भी बार-बार मिलना होता था। यह कार्य मैंने स्वयं ही चुना था। मायापुर वाटिका और पार के गुरुकुल में आना-जाना और रहना मेरा बना ही रहता था। फिर चौथी बार जेल से लौटकर तथा गाँधी आश्रम स्थापित करके भी जब मैं गुरुकुल में आचार्य (तब गुरुकुल की नई इमारतें इस पार नहर के किनारे बन चुकी थीं।) बनना हुआ, तब मैंने यह नियम बना लिया था कि सायंकाल एक घन्टा नियमित रूप से बड़े ब्रह्मचारियों के आश्रम में जाकर ब्रह्मचारियों से आन्तरिकतया बातचीत किया करूं। यह नित्य का मेरा एक आवश्यक कर्त्तव्य था। पीछे यह एक घन्टे की जगह दो घन्टे हो गया था। इसे मैं मुख्य पढ़ाई का वास्तविक अंग समझता था। महाविद्यालय के प्रत्येक ब्रह्मचारी से, उसके घर बार से, उसकी प्रवृत्ति और आकांक्षाओं से खूब परिचित था और उन्हें शक्ति भर सब प्रकार की सहायता देने का यत्न करता था। अतएव अप्रैल 1934 में जब मुझे (अन्तरंग सभा के कारण या पं० चमूपति जी के आ जाने के कारण) गुरुकुल छोड़ना पड़ा और जुलाई 1935 में फिर आ जाना पड़ा तो यह इसी कारण था कि ब्रह्मचारी सचमुच मुझे अपने निकट अनुभव करते थे। 1938 में जब मैं पांडिचेरी का होकर भी गुरुकुल में छठी बार विशेष सकल्प के साथ आचार्य बना तब तो पांडिचेरी में भी अपने ब्रह्मचारियों का प्रतिदिन स्मरण करता था। मेरे पास वहाँ महाविद्यालय विभाग के सभी ब्रह्मचारियों की सूची होती थी जिसके द्वारा मैं उनका दैनिक स्मरण किया करता था। इस प्रकार प्रत्येक बार जब मैं हटकर फिर गुरुकुल में आया तो मेरा ब्रह्मचारियों से अधिक अधिक निकट और आन्तरिक सम्बन्ध होता गया।

गुरुकुल की चार विशेषताओं में जो एक ब्रह्मचर्य नियम की विशेषता का आगे उल्लेख आयेगा, उसी पर विशेष ध्यान देते हुए मेरा यह ब्रह्मचारियों से आंतरिक सम्बन्ध बना था।

इस सम्बन्ध की कुछ बातें यहाँ कह देनी उचित होंगी—

(1) प्राय: ब्रह्मचारी अपनी आन्तरिक बातें मुझे विश्वास के साथ बताते थे। केवल मेरे मौखिक आश्वासन से नहीं किन्तु अनुभव से वे जान गये थे कि मुझे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतायी गई वैयक्तिक बातें कहीं और नहीं जायेंगी। सत्य तो यह है कि मुझे बताई ये वैयक्तिक बातें मैं स्वयं (सुन लेने के पश्चात्) भूल सा जाता था। ऐसी बहुत सी बातें है जो मुझे बहुत से ब्रह्मचारियों ने निःसंकोच बताई थीं और मैं उन्हें खूब जानता था, बताने वाले तो ब्रह्मचारी से स्नातक हो गये, दुनिया में कार्य करने लगे, कई स्थूल शरीर भी छोड़ चुके, पर वे बातें मेरे सिवाय और किसी को पता नहीं लगीं।

आचार्य और ब्रह्मचारी का हृदय एक होना चाहिये—उनके बीच कोई पर्दा नहीं रहना चाहिये—यह वैदिक आदर्श मेरे मन को बहुत प्रिय था अतः मैं अपने आपको ऐसा बनाने का आन्तरिक प्रयत्न करता था कि मैं अपने ब्रह्मचारियों के प्रति सच्चा, दर्पण जैसा स्वच्छ तथा सहृदय बना रह सकूं।

(2) मुझे अनुभव ने यह बहुत शीघ्र सिखाया कि किसी को 'बुरा' या 'अच्छा' कहना बड़ा कठिन है। 'बुरा', 'अच्छा' ये बहुत सापेक्षिक शब्द हैं। जिन्हें 'शरारती' समझा और कहा जाता था, वे 'बड़े काम के' या 'होनहार' सिद्ध होते थे या हो सकते थे। विद्यालय विभाग के (इन्द्रप्रस्थ से जो श्रेणी महाविद्यालय में आती थी उसके) बारे में, उसके प्रत्येक ब्रह्मचारी के विषय में सम्मति मैं उनके मुख्याध्यापक मास्टर गोपाल जी से लेता था। मैंने आश्चर्य से देखा कि जिन विद्यार्थियों को 'बड़े शरारती' की टिप्पणी लगी होती थी वे मेरे लिए—तुरन्त नहीं तो दो-तीन वर्ष बाद—बड़े काम के, उपयोगी, क्षमता वाले, भक्त विद्यार्थी निकलते थे। प्रायः एकादश श्रेणी में तो परिवर्तन नहीं होता था। कइयों का द्वादश में, कइयों का त्रयोदश में और चतुर्दश में परिवर्तन होता था। जिनमें बदलने की क्षमता है यह प्रायः पहले ही भास जाता था। पर धैर्य की जरूरत होती थी। कई पीछे से मुझे कहते थे, पछताते थे कि उनके कारण मुझे बहुत तंग होना पड़ा। यहाँ कई स्नातकों के नाम लिखने का प्रलोभन रोकता हूँ, पर इतना ही लिखता हूँ कि वे चौदहवीं श्रेणी तक मेरे इतने प्रिय या भक्त हो गये थे कि स्नातक हो जाने पर उन्होंने मुझसे जीवित सम्बन्ध बनाये रखा है यद्यपि जब वे एकादश श्रेणी में प्रविष्ट हुए थे 'शरारती', 'खतरनाक', 'गुरुकुल में न रहने योग्य' आदि विशेषणों के साथ लिये गये थे।

(3) सभी बातें दिखावट के लिए भी की जा सकती हैं पर हृदय हृदय को तुरन्त पहचान लेता है, वह दिखावे के लिए किया जा रहा है, बनावट है या सचमुच है, निष्कपट भाव से यह पहचान लेता है। जब मैं ब्रह्मचारियों से परिचित होता था, तब इन नवयुवकों के सुख-दुख से, उमंगों, अपेक्षाओं तथा निर्बलताओं से, उनकी घरबार की सब परिस्थितियों से परिचित होता था। जहाँ उनको सहायता दे सकता था वहाँ देता था, भौतिक सहायता न दे सकता होता था तो आंतरिक आश्वासन तो उन्हें मुझसे मिलता ही था। इस प्रकार कइयों को आर्थिक सहायता देने में भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमित्त होता था। किन्हीं के घर से शुल्क नहीं आ सकता था और वे पात्र होते हुए भी छात्रवृत्ति (उसमें गुंजाइके न होने से) की सहायता भी प्राप्त नहीं कर सकते थे, तो उन्हें मैं ही किन्हीं मित्रों से थोड़े-थोड़े मासिक रुपये मांग कर उनकी शुल्क की कमी पूरी करने का प्रबन्ध करता था। कइयों को अपने पास कुछ कार्य देता था जिसके बदले में उनके शुल्क की कमी का वह अंश मुझ द्वारा पूरा कर दिया जाता था। उनकी बीमारियों को दूर करने में भी मैं सहायता देना, सलाह देना, अन्य प्रबन्ध करना अपना कर्तव्य मानता था। वे ही नहीं, उनके मित्र और सम्बन्धी भी अपनी-अपनी कठिनाईयों का समाधान प्रेमवश मुझसे पाना चाहते थे।

मेरे लिए यह सह्य नहीं था कि गुरुकुल का आचार्य होकर मैं अपने (महाविद्यालय के) ब्रह्मचारियों से इतना अपरिचित होऊं कि मैं उन्हें नाम से भी न जानता होऊं (जैसे कि कई आचार्य उन्हें नाम से भी न जानने वाले हुए हैं)। मैं तो प्रत्येक ब्रह्मचारी को खूब अच्छी तरह जानना अपने कर्तव्य के लिए आवश्यक समझता था।

(4) प्राय: जो नई एकादश श्रेणी आती थी, उसके विद्यार्थियों से परिचित होने में ही एक सत्र बीत जाता था। और फिर जो 'शरारती' विद्यार्थी होते थे, उनसे बार-बार मिलना होता ही था। सो इस प्रकार अच्छे, सीधे, विनय वाले विद्यार्थियों से मिलने का अवसर बहुत कम मिलता था। उन्हें मैं अपना सम्पर्क अपने साप्ताहिक उपदेश में सामूहिक रूप से ही देकर सन्तोष मानता था। क्योंकि मेरे ये साप्ताहिक उपदेश, यों ही खानापूर्ति के लिए, रिवाज पूरा करने के उद्देश्य से नहीं होते थे। ये उपदेश ब्रह्मचारियों से हुई एकान्त बातों के परिणाम स्वरूप, उस प्रतिदिन के सायंकाल के एक घन्टे में हुए वार्तालापों से उठे भावों को सामूहिक रूप में उनके हितार्थ व्यक्त करने के उद्देश्य से होते थे। उन उपदेशों का एक-एक शब्द पहले से मानसिक वाणी में साकार बन चुका होता था। उपदेश का विषय मैं एक दिन पहले बता देता था। पीछे से अपने इन साप्ताहिक उपदेशों में मैंने अन्य सभी उपाध्यायों का आना आवश्यक नहीं रखा था। जिनकी इच्छा हो वही आवें, पर सब ब्रह्मचारियों के साथ आश्रमाध्यक्ष, उपाचार्य का आना अपेक्षणीय मानता था क्योंकि उन्हें तो पता होना चाहिये कि ब्रह्मचारियों को क्या सिखाया जा रहा है। ये साप्ताहिक उपदेश पीछे से 'गुरुकुल' पत्रिका या 'आर्य' में प्रकाशित भी होते रहे हैं। उपदेशों के शीर्षकों से कुछ पता लग सकता है कि ब्रह्मचारियों को मैं क्या सिखाता था, अतः प्रकाशित उपदेशों के कुछ शीर्षक नीचे देता हूँ।

[1] अंग्रेजी उपाधि का मोह
[2] गुरुकुल में वैदिक वायुमंडल
[3] पूर्ण अहिंसक बनने का यत्न
[4] यज्ञोपवीत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[5] गुरुकुलीय आयुर्वेद महाविद्यालय की ठीक दिशा
[6] अपने झूठे बर्तन मांजा करें
[7] मैत्री साधना
[8] सूत्रयज्ञ
[9] मौन संध्या
[10] वर्णों का संकल्प
[11] वर्णों का चुनाव (ब्राह्मण वृत्ति, ब्राह्मण कार्य, क्षत्रिय वृत्ति, क्षत्रिय कार्य, वैश्य वृत्ति, वैश्य कार्य ।)
[12] गुरुकुल के स्नातक बाहर की परीक्षा क्यों न दें
[13] शान्ति निकेतन
[14] धर्ममेघ बरसो
[15] खेल, व्यायाम और श्रम
[16] कुल भावना
[17] उद्योग द्वारा स्वावलम्बी शिक्षा
[18] अन्दर की आवाज
[19] दिनचर्या लेखन
[20] आचार्य मृत्यु है
[21] परस्पर प्रेम
[22] शिष्यता का आनन्द
[23] ओ३म् की ध्वजा या यज्ञीय अग्नि
[24] हम सब बच्चे हैं।
[25] संकल्प को सफल करने की विधि

इन उपदेशों के बारे में पीछे अनेक स्नातक अनुभव करते थे कि वे उनके आगामी जीवन में भी बड़े काम के सिद्ध हुए हैं।

छोटे ब्रह्मचारियों (प्रथम से पंचम तक) से सम्बन्ध प्रारम्भ में उनकी पढ़ाई (व्याकरण, संस्कृत आदि की) के द्वारा किया। स्नातक अमीचन्द जी ने विद्यालय के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम तथा रहन सहन पर विशेष विचार कर रखा था, अतः विशेषतया उनके निर्देश सुनकर छोटे ब्रह्मचारियों के पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तन किये क्योंकि ये परिवर्तन आचार्य स्वयं ही कर सकता था।

इन ब्रह्मचारियों से सम्बन्ध इनके अध्यापक तथा अधिष्ठाताओं द्वारा करता था। अध्यापक सभा बहुत बार बुलाता था। वे इन ब्रह्मचारियों को शारीरिक दंड न दें, इस पर बहुत बार चर्चा की गई। पीछे से पक्ष में एक बार (पूर्णिमा के दिन) रात्रि के समय मैंने इन छोटे ब्रह्मचारियों के यहाँ भी जाना प्रारम्भ किया। इनकी इच्छा कहानी सुनने की होती थी अतः कहानी तैयार करके जाता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे तो बात स्वभावत: छिड़ जाये, उसी द्वारा उनके अन्दर घुसने की चेष्टा करता था।

(6) हमारा मध्य विभाग गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में था। वहां भी महीने में एक बार अवश्य जाता था। वह तो गुरुकुल कांगड़ी का एक भाग ही था। पर गुरुकुलों की सब शाखाओं में भी मैं गया हूँ। हमारी दशम् तक की तीन शाखाएं थीं, एक गुरुकुल मुल्तान (जो पीछे अष्टम तक ही रह गई थी), गुरुकुल कुरुक्षेत्र, गुरुकुल सूपा (बम्बई के पास)। इन तीनों शाखाओं में मैं कई बार गया हूँ और कई दिन तक रहा हूँ। गुरुकुल सूपा की तरह गुजरात में सोनगढ़ भी था। यद्यपि वह हमारी शाखा नहीं था, पर हमारे गुरुकुल के स्नातकों ने उसे एक समय बहुत अपनाया हुआ था अत: वहाँ भी 1934 में 18 से 21 अक्तूबर तक चार दिन रहा था। इसके अतिरिक्त [1] गुरुकुल बेट सोहनी में 15 सितम्बर 1933 को [2] गुरुकुल कमालिया में 28 अगस्त 1935 को [3] गुरुकुल भटिंडा में 11 अप्रैल 1935 तथा 8-9 जनवरी 1936 को गया था।

इन शाखा गुरुकुलों का अध्ययन करके मेरे मन में यह धारणा बन गई कि इनका अपने विशेष ढंग से विकास होना चाहिये।

अग्निहोत्र और यज्ञोपवीत

1919 में जब हम स्नातक हुए थे और आचार्य रामदेव जी ने हम सब स्नातकों को घर जाने के पूर्व एक दिन बुलाकर निजी उपदेश व सलाह के तौर पर कहा था "तुम्हें दैनिक संध्या हवन नहीं छोडना चाहिये, नहीं तो आर्य जनता पर स्नातकों के विषय में बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।" तो उस उपदेश को सामूहिक रूप से सुन लेने के पश्चात् मैं उनसे एकान्त में मिला था और मैंने उनसे कहा था "मैं सन्ध्या इतनी लम्बी करता हूँ कि उसके कारण, यदि मैं हवन न करूं तो जनता पर उसका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।" और यह कहकर मैंने उनसे हवन न करने की छूट माँग ली थी। मुझे हवन में कोई विश्वास न था। वायु शुद्धि की दलीलें निस्सार लगती थीं। वायु शुद्धि ही अभीष्ट है, तो आग जलाकर उसमें शुद्धि कारक द्रव्य डालना एक नौकर से भी कराया जा सकता है। सब ब्रह्मचारी चारों तरफ बैठें, मंत्र पढ़ें, अपना समय देवें, इसकी कुछ जरूरत नहीं। पर अब जब मैं गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के सम्पर्क में आया तो यह कैसे कर सकता था कि जिस बात में मुझे स्वयं विश्वास नहीं, वह मैं उन्हें करने को बाध्य करूं। कुछ समय मैं अपने मन को यह समझा कर चलता रहा कि यह (हवन करना) गुरुकुल का नियम है अत: ब्रह्म-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारियों को चाहे विश्वास न भी हो तो भी नियम के रूप में इसे पालना ही चाहिये। पर यह बात देर तक नहीं चल सकती थी। कुछ दिनों बाद ही मेरे सामने दो टूक प्रश्न खड़ा हो गया—

"या तो हवन आवश्यक नहीं है, तो गुरुकुल में इसे अनिवार्य रखना मुझे हटाना चाहिये, या यह आवश्यक है तो न केवल उसमें ब्रह्मचारियों को श्रद्धा उत्पन्न करना बल्कि स्वयं भी नित्य हवन करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है।"

यह 1928 की बात है, जब मैं गुरुकुल में बनने वाले (ब्रह्मचारियों) में नहीं रहा था किन्तु बनाने वाले (गुरुओं) में हो चुका था और ऐसा सहायक आचार्य था जो कि वेदोपाध्याय भी था। हवन के विषय में वेद, शास्त्र आदि में जो कुछ लिखा है सब जानता था। जानता ही नहीं था उस पर आन्तरिकतया विचार करता था। अतएव उपर्युक्त प्रकार से इधर या उधर एक समाधान कर लेने के लिए प्रश्न मेरे सामने उपस्थित हो गया था।

तब एक दिन अन्दर से मुझे यह उत्तर मिला 'तू तीन वर्ष तक श्रद्धा पूर्वक अग्निहोत्र कर, तुझे अग्निहोत्र का रहस्य पता लग जावेगा।'

मैंने अगले दिन से ही नित्य नियमित अग्निहोत्र करना प्रारम्भ कर दिया और 13 अप्रैल 1938 तक (जब तक संन्यास की, वाह्य अग्नियों को अन्दर स्थापित करने की प्रक्रिया नहीं कर ली, अर्थात् 10 वर्ष तक) जारी रखा। रेल में भी, जेल में भी जारी रखा। रेल में अग्नि जलाना आपत्तिजनक माना जा सकता है अत: उसका ध्यान रखकर एक कोने में बैठ कर हवन (समिध् होम) रेल में भी करता रहा। बिना हवन किये भोजन नहीं खाता था। तीन चार बार ऐसा हुआ कि हवन में बाधा पड़ जाने के कारण हवन बहुत देर में कर सका और भोजन भी शाम को ही कर सका। कानपुर जेल में भी पहले दिन मुझे मेरा हवन का सामान शाम को चार बजे बार-बार खबर पहुँचाने पर दिया गया अत: उस दिन भी तब तक भोजन नहीं किया था। श्री अरविन्दाश्रम में भी अपना अग्निहोत्र आनन्द प्रेम से करता रहा।

वे प्रतिज्ञात तीन वर्ष तो 1931 में ही बीत गये थे जब तक कि अग्निहोत्र का रहस्य पता लग जाने की आशा मुझे दी गई थी। सो 1930 में सहारनपुर जेल में मैंने अग्निहोत्र पर बल्कि अग्निदेव पर लिखना भी प्रारम्भ किया था। तो 'अग्निहोत्र में मेरी श्रद्धा होने का क्या स्वरूप था' ऐसे विषय में संक्षेप में यहाँ कुछ लिख देना भी आवश्यक सा है।

स्थूल अग्नि, आन्तरिक अग्नि का बाह्य स्वरूप है। पं० चमूपति जी अपने सुन्दर ढंग से कहा करते थे कि अग्निहोत्र आर्य समाज की मूर्तिपूजा है। बाह्य अग्नि के प्रतीक से हम अन्दर की नित्य अग्नि को प्राप्त कर सकें इसीलिये अग्निहोत्र किया जाना चाहिये। अतएव संन्यासी के लिए बाह्य अग्निहोत्र की आवश्यकता नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है, क्योंकि वह तो तब अग्निमय हो जाता है, आत्माग्नि को पा जाता है । जैसे नक्शे के प्रतीक से हम भारत देश को या दुनिया को समझते हैं, वैसे ही अग्निहोत्र की सब प्रक्रिया जीवन का ही एक जीवित जागृत नक्शा है। हृदयस्थ आत्मा की अभीप्सा रूपी अग्नि का मर्त्य में दिनोंदिन, जन्म में अधिकाधिक प्रज्वलित होते जाने का ज्वलंत नक्शा दिखाता हुआ अग्निहोत्र उसे अमर्त्य अग्नि को दिखाने का साधन बनता है। यही बात मैं ब्रह्मचारियों को समझाता था और यह अग्नि का प्रतीक आजकल वर्तमान में भी व्यवहार्य है । यह प्रतीक अब कोई त्याग देने लायक हो गया है, यह भी नहीं है केवल ज्ञानमय श्रद्धा द्वारा उसे जीवन्त करने की आवश्यकता है। यह बात भी मैं उन्हें कहता था ।

अग्निहोत्र प्रतीकोपासना है, इसका हठात् ध्यान तब आ गया जब कि मैं एक बार शान्ति निकेतन गया हुआ था । बिधुशेखर भट्टाचार्य जी से जब मैंने अग्निहोत्र करने की बात की तो उन्होंने कहा कि महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर इस विशिष्ट स्थल पर कोई प्रतीकोपासना करना निषिद्ध कर गये हैं, अत: मुझे इस विशिष्ट घेरे को छोड़कर बाहर कहीं भी अग्निहोत्र कर लेने की छूट है।

और कर्मकाण्ड के अनुसार ब्रह्मचारी के लिए समिधाधान (समिध् होम) ही विहित है। अतएव स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ही पीछे से 'अग्नये समिधामाहार्ष'...मंत्र से समिधा डालने का भाग उपनयन संस्कार से लेकर हम ब्रह्मचारियों के हवन में जोड़ दिया था। मैंने इसी भाग पर विशेष रूप से जोर दिया था । गुरु की अग्नि में ब्रह्मचारी अपनी तीन समिधाएं रख कर उनके द्वारा अपने शरीर, प्राण, मन को प्रज्वलित करने की प्रार्थना करता था। मेरी दृष्टि में यही ब्रह्मचारी का समिध् होम था ।

इसमें मुख्य बात 'गुरु-अग्नि' की है। इसे ही मैं पीछे गुरुकुलाग्नि, आचार्याग्नि बल्कि कौलपत्याग्नि कहता था । प्रत्येक परिवार में जैसे कि एक गृहपति की अग्नि (गार्हपत्याग्नि) की स्थापना का विधान है, इसी तरह गुरुकुल के परिवार की इस अग्नि को कुलपति की अग्नि (कौलपत्याग्नि) के नाम से पुकारा जा सकता है। गार्हपत्याग्नि से उद्धृत कर जैसे आहवनीय अग्नि बनाई जाती है, वैसे ही हम कौलपत्याग्नि से लेकर अपनी आहवनीय अग्नि बना कर उसी में ब्रह्मचारी समिधाधान किया करें—यह मेरा आशय था।

ऐसा मैंने चलाया भी । 1932 में आचार्य बनने पर उस वर्ष का नव सत्र का प्रारम्भ पहली अप्रैल को यज्ञशाला में बृहत् यज्ञ से किया । उसमें सब कुल वासी, सब छोटे ब्रह्मचारी (पाचक, कहार, सभाई करने वाले भंगी आदि सभी) सम्मिलित हुए थे । सम्पूर्ण कुल ने एकत्रित होकर यज्ञशाला में उस दिन जिस अग्नि मा सत्यापन किया था, उसे भण्डार में (अन्य स्थान ठीक न बन जाने के कारण) एक जगह सुरक्षित किया था। विचार यह था कि इस गुरुकुलाग्नि, कौलपत्याग्नि के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए एक विशेष अग्नि स्थान बनाया जायेगा। (बिरला जी द्वारा गुरुकुल में वेद भवन बनाये जाने का निमित्त मैं ही बना था सो इसी वेद भवन में यह अग्नि स्थान बनाने का संकल्प था।) वहाँ यह अग्नि सदा जलती, सदा जगती रहेगी। इसे मैं वास्तव में गुरुकुल का झंडा कहता था।[1] मेरी दृष्टि में गुरुकुल का या आर्य समाज का झंडा सदा प्रज्वलित अग्नि ही होना चाहिये, न कि कपड़े का कोई झंडा। प्राचीन परम्परा तो यही थी, और यही प्रतीक हमें शोभा भी देता है। अभी कुछ दिन हुए सुना था कि शाहपुराधीश जी में स्वामी दयानन्द जी जलाई हुई अग्निहोत्र की अग्नि सुरक्षित रखी थी और उसी को लाकर उसमें मेरठ के आर्य सम्मेलन में यज्ञ किया गया था। कम से कम यही ठीक दिशा की भावना है। 'आर्या ज्योतिरग्राः' (ऋ-7-33-7)। बम्बई में बने किसी स्वयं सेवक दल का नाम अग्निदल रखा गया था। इसी तरह कांग्रेस के नई जगह किये जाने वाले अधिवेशन पर गत वर्ष के अधिवेशन स्थल से ज्योतिशिखा लाई जाने की परम्परा कभी-कभी सुनी थी। ये ठीक दिशा में, ठीक भावना में आर्य संस्कृति की भावना के कार्य हैं, यह कहूंगा। गुरुकुल में कम से कम मेरी यही इच्छा थी। एक अग्निस्थान हो जहाँ अग्नि सतत् जलती रहे और उसी से लेकर ब्रह्मचारी अपना दैनिक हवन किया करें। तो अग्निहोम के प्रतीक का सच्चे अर्थों में पुनरुद्धार करना होगा, वही गुरुकुल का सच्चा झंडा होगा जो कि कभी झुकेगा नहीं, कभी मरेगा नहीं, सदा प्रज्वलित रहेगा। उसी अग्नि को लक्ष्य करके ब्रह्मचारी को कहा जा सकेगा कि अग्निराचार्यस्तव। अग्नेः ब्रह्मचारी असि।

यज्ञोपवीत के विषय में जिज्ञासु नवयुवकों को समझना कुछ कठिन न था। यह यज्ञ का उपवीत है, चिह्न है। यह गुरु का, आचार्य का दिया हुआ चिह्न है। उसके तीन धागे ऋणों को स्मरण कराने के लिए, उस आनृण्य के लिए जिस यज्ञ (यज्ञ जीवन) की आवश्यकता है उस यज्ञ को स्मरण कराने के लिए हैं। उस यज्ञ को भी गुरु द्वारा प्रदत्त, हृदय के साथ प्रेम से लगे त्रिवृत सूत से सदा स्मरण रखना, यह सब कितना सुन्दर प्रतीक का आयोजन है।

सब बात प्रतीक को सजीव रखने की है। यदि यज्ञोपवीत को, कहीं से भी लेकर (चाहे जर्मनी से बनाकर भेजा गया वह धागा हो) मृत प्रतीक की तरह, या केवल कुंजियाँ बाँधने का साधन बनाने को, पहिना जावे तो वह बेकार है। अतएव मैं तो अपने ब्रह्मचारियों के लिये प्रेम से स्वयं कात कर फिर स्वयं या अपने साथी गुरुओं से बनवाकर, हर हालत में, अन्तिम ग्रन्थि गायत्री मन्त्र पढ़कर मैं स्वयं लगा कर जो यज्ञोपवीत देता था, उसे ही यज्ञोपवीत मानता था। स्नातक होते समय यज्ञवेदी पर बैठते हुए तथा नव प्रविष्ट बच्चों का उपनयन करते हुए ऐसे यज्ञोपवीत देना

(1) 'गुरुकुल का झंडा' इस शीर्षक से उस अवसर पर मेरा दिया भाषण भी छपा था तथा विद्वानों को भेजा गया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विशेष अर्थ रखता था। जिस 1927 के विशेष गुरुकुलोत्सव पर (जब गुरुकुल की जयन्ती मनाई गई थी और महात्मा गाँधी गुरुकुलोत्सव पर आये थे) मैं एकान्त में गढ़वाल था, गुरुकुल में नहीं था, तो भी उस बार के नव स्नातकों की इच्छा से मैंने उस एकान्त में भी स्वयं कात कर, स्वयं बनाकर यज्ञोपवीत भेजे थे। ऐसे यज्ञोपवीत से ही विद्यार्थी 'पास लाया हुआ' (उपवीत) होता था, गुरु का अपना बनता था, उस यज्ञोपवीत द्वारा तो ब्रह्मचारी में आचार्य की शक्ति का संचार भी हो सकता था।

एक बार 'गुरुकुल' पत्रिका में मैंने श्री प्रभु आश्रित जी की बताई हुई यज्ञोपवीत बनाने की पूरी विधि प्रकाशित कराई थी। श्री प्रभु आश्रित जी द्वारा आर्य समाज में 'अग्नि होत्र' की महिमा भी बढ़ी है, यह देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। अस्तु।

इस प्रकार गुरुकुल में अग्निहोत्र और यज्ञोपवीत धारण करने को मैंने एक नई और जीवित जागृत भावना के साथ चलाने का प्रयत्न किया था।

गुरुकुल का स्वरूप

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने 31 मई 1931 के साधारण अधिवेशन में एक गुरुकुल कमीशन की स्थापना की थी। उसके प्रधान महात्मा नारायण स्वामी जी थे। उसका एक सदस्य मैं भी था। आचार्य राम देव जी भी थे। पं० विश्वम्भर नाथ जी भी उसके सदस्य बनाये गये थे पर उन्होंने प्रारम्भ में ही उससे त्यागपत्र दे दिया था। नौ सदस्य कार्य करते रहे। 1934 में उसका विवरण प्रकाशित हुआ।

उस समय पहली बार गुरुकुल के स्वरूप पर, गुरुकुल के गत तीस वर्षों के क्रियात्मक चलने के आधार पर, विचार करने का अवसर हुआ। गुरुकुल का स्वरूप क्या है? गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली क्या है? इस पर विचार करते हुये हम गुरुकुल की निम्न तीन या चार विशेषताओं पर एकमत हुये थे—

(1) गुरु का केन्द्रभूत होना। प्राचीन काल में कोई गुरु (ऋषि) किसी विशेष विद्या या ज्ञान के लिये प्रसिद्ध होते थे। उनसे वह ज्ञान पाने के लिए शिष्य उनके चारों तरफ एकत्रित होते थे तो गुरु का मुख्य या केन्द्रभूत होना इस शिक्षा प्रणालिका की पहली विशेषता है। (2) वह गुरु शिष्यों को अपने परिवार या कुल का अंग बनाकर रखता था। तो कुलपना दूसरी विशेषता है। (3) तीसरी विशेषता ब्रह्मचर्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, क्योंकि बिना ब्रह्मचर्य के, तपस्या के, ज्ञान पाना सम्भव नहीं है। यह ऋषियों का अनुभव था।

इनमें एक चौथी चीज वेद ज्ञान और जोड़ दिया जाए (क्योंकि गुरु द्वारा कुल में ब्रह्मचर्य पूर्वक निवास करते हुए जो कुछ प्राप्त करना है वह है वेद ज्ञान) तो यह आर्य समाज की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पूरी हो जायेगी, जिसकी चार विशेषतायें हैं। पर वैसे उदाहरणार्थ जैन गुरुकुल भी हैं। वहाँ शिक्षा प्रणाली के तौर पर पहली तीन बातें (गुरु, कुल (कुलपना), ब्रह्मचर्य) तो हैं पर वेद ज्ञान की जगह वहाँ जैन शास्त्रों का ज्ञान कराया जाता है। वह भी असल में वेद ज्ञान ही है। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार के गुरुकुल में चार विशेषतायें होती हैं जो इस शिक्षा प्रणाली की विशेषता है—यह कहना चाहिए।

गुरुकुल की उपर्युक्त चार मौलिक बातों को जब हम जगत् की वर्तमान अवस्थाओं में लागू करते हैं तो जो परिणाम निकलते हैं, वे ही हमारे लिए व्यावहारिक हो सकते हैं।

तो पहली बात पर गुरुकुल कमीशन की रिपोर्ट में जो कहा गया है, उसकी तरफ मैं पाठकों का ध्यान खींचना चाहता हूँ—

"परन्तु हमारा यह गुरुकुल प्रायः प्रारम्भ से ही वर्तमान अवस्थाओं के कारण एक सभा द्वारा संचालित राष्ट्रीय विद्यालय की तरफ अधिक चला है। प्राचीन उपर्युक्त प्रकार के गुरुकुलों की तरफ उतना नहीं चला, जिसमें गुरु का उच्च प्रभावशाली असाधारण जीवन ही आकर्षक व संचालक शक्ति होता। यह ठीक है कि जैसे शान्ति निकेतन में डा० रवीन्द्रनाथ की स्थिति है या साबरमती आश्रम में महात्मा गांधी की स्थिति थी वैसी ही स्थिति वाले एक महान व्यक्ति महात्मा मुंशीराम द्वारा हमारा यह गुरुकुल प्रवर्तित था। यह भी ठीक है कि गुरुकुल का मुख्य गुरु (आचार्य) वह व्यक्ति होना चाहिये जिसका जीवन वैदिक संस्कृति से स्वभावतः भरपूर हो, जो किसी उद्देश्य को लेकर उत्पन्न हुआ अपने को अनुभव करता हो, जिसकी आत्मा एक जलती हुई अग्नि हो जो कि सम्पर्क में आने वालों की प्रदीप्त कर सकती हो। परन्तु हमारे गुरुकुल में गुरु का केन्द्रत्व चल नहीं सका है। गुरुकुल कोई वैयक्तिक संस्था नहीं है। यह एक सभा की संस्था है। अतएव यों कहना चाहिए कि गुरुकुल का असली गुरु उसका आदर्शवाद (idealism) है और सभी को अपनी तरफ से अच्छे से अच्छे उपलब्ध व्यक्ति को आचार्य बनाना चाहिये जिसमें कि गुरुकुल का आशीर्वाद मूर्त रूप में विद्यमान हो। इसी प्रकार आचार्य के सहयोगी जो अन्य गुरु होते हैं, उन्हें ही यह देखकर नियुक्त करना चाहिये कि उनके जीवन में गुरुकुल का आदर्श पर्याप्त उच्च रूप में विद्यमान है। गुरुकुल के गुरुओं का जीवन उच्च होना चाहिये। उसका मापदण्ड (standard) हमें बहुत ऊँचा रखना चाहिए। ऐसा करने से पहली विशेषता रखने में हम अग्रसर हो सकेंगे।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मेरा भी गुरुकुल में सदा यही यत्न रहा कि गुरुकुल में अच्छे से अच्छे, ऊंचे से ऊंचे गुरु (अध्यापक) आयें और रहें। तभी गुरुकुल रह सकता है। इसीलिये मैंने गत प्रकरण में आदर्श की अग्नि को ही असली आचार्य कहा है जो कि व्यवहार में इसी रूप में परिणित होती है कि गुरुकुल में आचार्य एक प्रदीप्त अग्नि की तरह आदर्श से जाज्वल्यमान व्यक्ति होना चाहिए तथा अन्य अध्यापक उसके साथ पूरा सहयोग करने वाले वैसे ही आदर्शयुक्त व्यक्ति होने चाहिएँ। इसी प्रकार गुरुकुल की जो दूसरी विशेषता 'कुलपना' है उसे भी गुरुकुल में लाने का मैंने प्रयत्न किया। उसका मैं जुदा प्रकरण में गुरुकुल माता शीर्षक से उल्लेख करूंगा।

गुरुकुल की जो तीसरी विशेषता 'ब्रह्मचर्य है, उसके लिए जो मैंने यत्न किया उसका उल्लेख मैं दूसरे प्रकरण में 'ब्रह्मचारियों से निकट सम्बन्ध' शीर्षक से कर चुका हूँ।

गुरुकुल के स्वरूप को निर्धारित करने वाली जो चौथी विशेषता 'वेदज्ञान' है, उस पर यद्यपि 'गुरुकुल कमीशन की रिपोर्ट' में कुछ संतोष प्रकट किया गया है और इस बात पर ही जोर दिया गया है कि गुरुकुल में वेदों के तत्वशोधन (research) का अवश्य विभाग होना चाहिए, तो भी उसके व्यावहारिक रूप अर्थात् गुरुकुल में वैदिक वायु मण्डल होने पर भी 'गुरुकुल कमीशन' ने जोर दिया है। मेरा जोर विशेषतय इस बात पर प्रारम्भ से ही रहा। गुरुकुल में वेदों के पठन-पाठन का तो वायुमंडल होना ही चाहिए। गुरुकुल को न केवल इस देश में पर संसार भर में वेद ज्ञान का प्रामाणिक स्थान होना चाहिए। पर उसके लिए गुरुकुल में वैदिक जीवन का वायुमंडल होना आवश्यक है। वैदिक जीवन का गुरुकुल में वायुमंडल नहीं होगा तो वैदिक पठन-पाठन का भी सफल वायुमंडल गुरुकुल में नहीं हो सकेगा। इसी आशय से मैंने 1934 में एक लेख 'साधना गुरुकुल' नाम से लिखा था। आचार्य रामदेव जी ने भी लिखा था 'मैं इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि वायुमंडल साधना का तथा आर्य सामाजिक हो।

वैदिक जीवन का वायुमंडल गुरुकुल में लाने के लिए मैंने जो प्रयत्न किये और जिन में कुछ सफल भी हुआ, उनमें दो प्रयत्न उल्लेखनीय हैं—(1) व्रताभ्यास का गुरुकुल में लागू करना (2) गुरुकुल में गौशाला की स्थापना।

मेरा प्रारम्भ से (1923) से ही लगातार यह कहना था कि विद्याभ्यास (सब विद्याभ्यास वेद ज्ञान के लिए ही हैं) के साथ व्रताभ्यास (वेद ज्ञान के अनुसार, क्रिया करना, जीवन बिताना) भी आवश्यक है। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार विद्या स्नातक तथा व्रत स्नातक दोनों होने चाहियें। केवल विद्या पढ़ कर स्नातक हो जाना पर्याप्त नहीं है, गुरुकुल में ब्रह्मचारी को वेदानुसार व्रतों का अभ्यास करके व्रत स्नातक भी होना चाहिये। 1923 में वेदोपाध्याय और उपाचार्य हो जाने पर ही मैंने इसका यत्न प्रारम्भ किया और तीन वर्ष की सक्रिय चर्चाओं के (बाद में शिक्षा पटल में सिद्धान्त और क्रियाविधि स्वीकार करवा के) आखिर में 1925 में गुरुकुल में मेरे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताये ढंग से व्रताभ्यास लागू कर दिया गया । इस विषय में मुझे कुछ बातों की प्रेरणा गुरुकुल के स्नातक स्वामी व्रतानन्द जी से भी प्राप्त हुई थी और मुझे वह भी याद है कि प्रारम्भ में एक ब्रह्मचारी ने मेरे सामने व्रताभ्यास पत्रिका फाड़ कर उसका विरोध प्रदर्शित किया था । पीछे से तो अच्छे ब्रह्मचारी व्रताभ्यास को (क्योंकि इसके अंक पढ़ाई के अंकों में जुड़ते थे ।) अपना विभाग ऊँचा करने में सहायक मानते लगे थे । इसके द्वारा ब्रह्मचारियों में अनुशासन रखने में भी बहुत सहायता मिलती थी (विशेषतया नियम पालन व समय पालन के अंक दिये जाने से) । पं० विश्वंभर नाथ जी ने व्रताभ्यास की मुख्य उपयोगिता यही मानी थी । मैंने तो ब्रह्मचारियों के महाविद्यालय में प्रविष्ट होने का सस्कार भी चलाया था । महाविद्यालय में प्रविष्ट होते हुए ब्रह्मचारी को पाँच व्रत लेने होते थे । (1) धर्म, देश व जाति की सेवा के लिए तैयार होने का (2) नियम पालन का (3) आज्ञा पालन का (4) ब्रह्मचर्य का (5) सत्य व्यवहार का । एक-एक व्रत को पढ़कर 'व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' मंत्र से आहुति देना होता था । जो ब्रह्मचारी इस व्रत के अभ्यास में निर्बल होते थे, उनके माता-पिता को भी इसकी सूचना दी जाती थी जिससे यदि संभव हो, उनका सहयोग भी ब्रह्मचारी की आगे प्रगति में मिल सके ।

गुरुकुल में दूध प्रारम्भ से ही भैंसों का मिलता था । एक सलीमुल्ला नामक ठेकेदार ने जंगल में रखी भैंसों का दूध गुरुकुल को प्राप्त कराने का ठेका ले रखा था । गुरुकुल के इस पार आने पर भी वही दूध कनस्तरों में उस पार से आता था । मेरा सदा यह कहना था कि ब्रह्मचारियों को दूध शुद्ध अपनी गौशाला का ही मिलना चाहिये । सात साल तक अन्तरंग सभा में गुरुकुल की अपनी गौशाशा बनाने का प्रस्ताव स्वीकृत कराने का यत्न करता रहा । गुयुकुल में बरुसात में टाइफाइड ज्वर प्रायः हर वर्ष फैल जाने की शिकायत पर विचार करने के लिए डाक्टरों की कमेटी बैठी थी । उसने जब इस रोग का मुख्य कारण दूध का शुद्ध न मिलना बताया जब तो मेरे पक्ष को विशेष बल मिला । सात वर्ष के संघर्ष के बाद गुरुकुल में गौशाला की योजना सभा ने स्वीकृत की । परमेश्वर की कृपा से मेरी अपील पर डेढ़ लाख रुपया गुरुकुल में गौशाला के लिए मिला और गोशाला का निर्माण हुआ तथा गुरुकुल के उत्सव पर गौशाला का उद्घाटन (जुगल किशोर जी बिड़ला के न पधार सकने पर) स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के कर कमकों से कराया गया ।

यह भी बता दूँ, मेरे मन में योग, ब्रह्मचर्य के साथ गौपालन का सम्बन्ध प्रारम्भ से जुड़ा है अतः मैंने गुरुकुल में अपनी निजी गौ (1934) रखी हुई थी । मुझे देख कर और भी कई गुरुकुल के अध्यापक, कर्मचारियों ने गौ रखी। मुख्याधिष्ठाता चमूपति जी गौ रखने को नापसन्द इसलिये करते थे कि ये जानवर यहाँ तहाँ गोबर कर देते हैं अतः सफाई नहीं रह पाती । इस पर भी मैं उन्हें कहता था यदि गुरुकुल की अपनी गौशाला हो जाय तो मैं निजी गौ रखना छोड़ दूंगा । वैसे मेरा यह भी कहना था कि सफाई तो सफाई रखने से ही होगी, गोबर की सफाई भी उसके ढंग से रखी जा सकती है, और उसी पर हमें बल देना चाहिये ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने सदा अपनी गौ का पूरा-पूरा हिसाब रखा है। महात्मा गाँधी ने जब गौ सेवक संघ स्थापित किया तो उसका, बल्कि उसकी कार्यवाहक समिति का भी, मैं सदा सभ्य रहा हूँ।

मेरा विश्वास है कि गुरुकुल में (विद्याभ्यास के साथ-साथ) व्रताभ्यास जारी होने से तथा गुरुकुल की अपनी गौशाला बन जाने से गुरुकुल में गुरुकुलीयता बढ़ी है, गुरुकुलीयता का वायुमण्डल स्पष्ट रूप में बढ़ा है।

पं० विश्वम्भर नाथ जी

पं० विश्वम्भर नाथ जी एक ऐसे व्यक्ति थे जो कि अपने समय में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के मुख्य सदस्य थे। इस सभा में कोई कार्य उनकी इच्छा या संकल्प के बिना होना सम्भव नहीं था। एक समय में पं० विश्वम्भर नाथ, आचार्य रामदेव तथा महाशय कृष्ण, ये तीनों पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा में 'प्रकाश पार्टी' के मुखिया थे, तीनों मिल कर खूब कार्य करते रहे। इन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द जी को भी कार्य क्षेत्र से बाहर कर दिया, यह भी एक रूप में कहा जा सकता है। इनमें से पं० विश्वम्भर नाथ जी और आचार्य रामदेव जी द्वारा गुरुकुल में आकर मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य के उच्च पदों पर सेवा करना गुरुकुल के लिए सौभाग्य की बात थी। पर यह सौभाग्य देर तक नहीं रह सका। शायद गुरुकुल अपने आप में व्यक्तिशः इन दोनों से बड़ी वस्तु थी।

इन दोनों की मुझ पर कृपा दृष्टि थी यों कहना चाहिये कि किसी गुरुकुल के स्नातक को गुरुकुल के लिए ढूंढते हुए इनकी दृष्टि मुझ पर गई और जमी। पं० विश्वम्भर नाथ जी मुझे (स्वामी श्रद्धानन्द जी से कहकर) वेदोपाध्याय के तौर पर गुरुकुल में लाये और कुछ देर में उन्होंने मुझमें एक नियन्त्रणकर्त्ता (disciplinarian) होने की भी क्षमता देखी। अतएव मुझे शीघ्र ही उपाचार्य भी बना दिया गया।

पं० विश्वम्भर नाथ जी से जो मैंने सीखा उसे एक शब्द में 'सार्वजनिक नैतिकता' कह सकता हूँ। वैयक्तिक नैतिकता तो मैंने गुरुकुल में पढ़ते हुए विद्यार्थीपन में ही उसके वायुमंडल से सीखी थी, पर 'सार्वजनिक नैतिकता' जैसी चीज जो मैंने उनके अन्दर देखी, वह मैंने तब तक और कहीं नहीं पाई थी। मिल कर कार्य करने वाले लोगों को सामूहिक बर्त्ताव में, आपस में अपनी सभा समाज में जिस नैतिकता का पालन करना चाहिए (जिसे मैं अपनी संस्कृति के अनुसार 'यज्ञ भावना' कहता था) उसे ही मैं यहाँ सार्वजनिक नैतिकता कहता हूँ। हम लोगों के लिए यह कितनी आवश्यक वस्तु है और नैतिकता का यह अंश हम लोगों के लिए, हमारे देश के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों के लिए कितना आवश्यक है, यह बात मैंने पं० विश्वम्भर नाथ जी के जीवन से, उनके व्यवहार से और उनसे बार-बार बात करके सीखी और समझी है। इसके लिये मैं उनका सदा कृतज्ञ रहूँगा।

वे जहाँ बड़े चरित्रवान तथा दृढ़ थे (अतएव उन्हें मेरी भी दृढ़ता पसन्द आती थी।) वहाँ वे बहुत प्रेम करने वाले भी थे। दूसरों को अपने घर खाना खिलाना, मिलकर खाना उन्हें बहुत प्रिय था। ऐसे लोग बहुत से हैं, गुरुकुल के स्नातकों में, विद्यार्थियों में, आर्य समाजियों में जिन्हें वे पिता के वात्सल्य के साथ बड़े स्नेहपूर्वक घंटों समझाया करते थे। उनका यह घंटों बैठ कर बातें करते हुए समझाना प्रसिद्ध था।

पर उनके विचार सब को अनुकूल नहीं बैठते थे। उनकी प्रकृति कुछ कट्टर (rigid) ढंग की थी। वे ब्रिटिश पार्लियामेंट की परम्पराओं के बड़े भक्त थे, वे वहाँ के दृष्टांत बहुधा दिया करते थे। रस्किन के बहुत प्रशंसक थे और उससे प्रभावित थे। गुरुकुल के विषय में भी उनके बने हुए विचार थे जिनका कि वे स्नातकों में तथा होनहार विद्यार्थियों में खूब समझा समझा कर प्रचार करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। गुरुकुल में एक कालेज उस समय की विदेशी सरकार की परीक्षाएँ देने वाला भी होवे, उनके इस विचार को मैं कभी नहीं स्वीकार कर सका। वे इस विचार को मुझे नाना तरह समझाते रहे, पर मैं नहीं मानता हूँ, यह शिकायत उनकी रही। आचार्य रामदेव जी भी उनकी यह शिकायत मुझे बताते रहे।

दूसरी तरफ आचार्य रामदेवजी स्वामी श्रद्धानन्द जी की तरह आदर्शवादी अधिक थे। हम लोग आचार्य रामदेव, महाशय कृष्ण तथा पं० विश्वम्भर नाथ जी के त्रिगुट का क्रमशः सत्य, रज और तमोगुणी भेद भी किया करते थे। सो आचार्य रामदेव जी आसानी से और स्वभावतः सत्वगुणी लोगों के साथ रहते थे। ये राष्ट्रीय आन्दोलन से, महात्मा गाँधी से खिंचते थे। गुरुकुल में राष्ट्रीयता, खादी आदि को अधिक पसंद करते थे और गुरुकुल की पढ़ाई में अष्टाध्यायी को भी अधिक महत्त्व देते थे। 'गुरुकुल कमीशन' के सदस्य के तौर पर भी आचार्य रामदेव जी ने तथा मैंने जो अपनी असहमतियाँ प्रकट कीं, वे कमीशन की रिपोर्ट में प्रकाशित हो गई थीं। वहाँ आचार्य रामदेव जी ने मेरी चार असहमतियों के नीचे यही लिख दिया था 'जो कुछ मैं पहले लिख चुका हूँ, उसके अतिरिक्त मैं पं० देवशर्मा जी से भी पूर्णतः सहमत हूँ।'

अंत में पं० विश्वम्भर नाथ जी से उनकी नहीं बन सकी और पं० विश्वम्भर नाथ जी ने मुख्याधिष्ठाता पद को छोड़ देने का निश्चय कर लिया।

इस पार का गंगा की नहर के पास का—गुरुकुल सब पं० विश्वम्भर नाथ जी के अनथक परिश्रम का फल है। आदर्शवाद की अपेक्षा व्यावहारिक दृष्टिकोण होने से उस पार की भूमि उन्हें कम पसन्द थी। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का भी स्थान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी वे त्याज्य समझते थे। उन्हीं के भाग्य से (उन्हीं के मुख्याधिष्ठातृत्व में और उनकी उपस्थिति में छुट्टियों में) 1914 में उस पार के गुरुकुल में बाढ़ आई और उन्हीं के नेतृत्व में सभा ने इस पार गुरुकुल बनाने का निश्चय स्वीकृत किया। इतना ही नहीं किन्तु दिन भर पैदल 10-15 मील घूम कर वे नित्य आते थे, पटवारियों से मिल कर एक एक भूमि गुरुकुल के नाम कराने में पूरा शारीरिक परिश्रम करते थे। उनका हँसता हुआ हृष्ट-पुष्ट चेहरा अब तक सजीव रूप में स्मरण आता रहता है। उनके गुरुकुल का मुख्याधिष्ठातृत्व छोड़ देने पर (जिसका मुख्य कारण आचार्य रामदेव जी से उनका मतभेद हो जाना था) आचार्य रामदेव जी मुख्याधिष्ठाता भी होगा। आचार्य रामदेव जी मुझ में एक आध्यात्मिक चमक (Spiritual Glow) कहा करते थे, अतएव वे चाहते थे, कि मैं गुरुकुल का आचार्य स्थिर रूप से बन जाऊँ। वे मुझे गुरुकुल का आजीवन सदस्य बन जाने को भी कहते थे, जो कि मैंने कभी पसन्द नहीं किया। 1930-31 में जेल में रहने के पश्चात् जब मैंने गाँधी सेवाश्रम की स्थापना कर ली तथा गाँधी सेवा संघ का आजीवन सदस्य भी बन गया तब भी वे मुझे गाँधी सेवाश्रम में मिलते रहते थे और मुझे गुरुकुल का आचार्यत्व फिर मानने की प्रेरणा करते रहते थे। उनका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता था। इस दृष्टि से भी अपील करते थे। मेरे गुरुकुल के कार्य पर आने में जो बाधायें थीं उन्हें दूर करने में वे तथा पं० विश्वम्भर नाथ जी सच्चे दिल से उद्यत थे।

गुरुकुल के आचार्य के लिए स्वामी दयानन्द के स्वामन्तव्यामन्तव्य को पूर्ण रूप से मानना आवश्यक था। स्वामी श्रद्धानन्द जी तो स्वामी दयानन्द जी की यह महत्ता बताया करते थे कि उन्होंने उन मन्तव्यों को 'स्व' करके कहा, सब पर थोपना पसन्द नहीं किया पर मैं इतना मानता था कि कम से कम वर्तमान में आर्य समाज के उच्च कार्यकर्त्ताओं को उनके स्वामन्तव्यामन्तव्य को भी मानने वाला होना चाहिये। जब वेद के ईश्वरीय होने के तरीके के प्रचलित आर्य समाज के विश्वास से मैंने अपना मतभेद बताया तो पं० विश्वम्भर नाथ जी ने कहा 'ये पंडितों की बातें हैं इन बातों को आम पब्लिक में लाना उचित नहीं है। बल्कि इस विषय पर स्पष्टता के लिए जब मैं एक लेख लिखने वाला था तो उसे भी लिखने से पं० विश्वम्भर नाथ जी ने मना कर दिया। उन्होने कहा इससे स्पष्टता की जगह भ्रम फैलेगा, ये बातें केवल विद्वानों में और परस्पर ही होनी चाहियें, जनता में नहीं। पं० विश्वम्भर नाथ जी अवश्य चाहते थे कि मैं स्थिर आचार्य बन जाऊँ।

आचार्य रामदेव जी प्रतिनिधि सभा सम्बन्धी मेरी कठिनाइयाँ भी दूर करने को उद्यत थे जिससे मैं गुरुकुल का आचार्यत्व स्वीकार कर लूँ। उन सरकारी दमन के दिनों में आचार्य रामदेव जी धार्मिक तौर पर उस सरकारी दमन का भी विरोध करने को तैयार थे। अन्त में वे मेरे गुरुकुल का आचार्य बन जाने को स्वीकार कराने के लिए स्वयं जेल जाने तक को तैयार हो गये। यह उनका मेरे लिए—गुरुकुल के लिए परम-त्याग था, सच्चा और महान् त्याग था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य रामदेव जी जेल गये

एक अप्रैल 1932 को आचार्य रामदेव जी ने गुरुकुल छोड़ दिया और उस दिन से मैंने (जैसा कि तीसरे प्रकरण में लिख चुका हूँ) एक सम्मिलित यज्ञ करके—गुरुकुलाग्नि को स्थापित कर—गुरुकुल के आचार्य का कार्य प्रारम्भ कर दिया। मैं गाँधी सेवाश्रम का स्थान छोड़ कर गुरुकुल में ही आकर रहने लगा। गाँधी सेवासंघ (जिसका कि आजीवन सदस्य मैं बन चुका था) ने मेरी सेवाएं गुरुकुल को अर्पित कीं।

गुरुकुल छोड़ने के लगभग दो मास बाद ही आचार्य रामदेव जी जेल-यात्री हो गये। आर्य प्रतिनिधि सभा के मुखपत्र मासिक 'आर्य' में आषाढ़ 1989 के अंक में 'आचार्य रामदेव जी की गिरफ्तारी' शीर्षक से जो संपादकीय टिप्पणी प्रकाशित हुई, वह निम्न है।

'गुरुकुल के भूतपूर्व आचार्य प्रो० रामदेव जी गत 3 जून को अमृतसर में होने वाली पंजाब प्रांतीय राजनैतिक परिषद् के सभापति मनोनीत किये गये थे। लाहौर के मजिस्ट्रेट की ओर से आपको सूचना दी गई थी कि आप मजिस्ट्रेट से आज्ञा प्राप्त किये बिना 5 जून की आधी रात तक लाहौर से बाहर नहीं जा सकते। आचार्य जी ने मजिस्ट्रेट की आज्ञा का पालन नहीं किया और 3 जून की शाम को 5 बजे अमृतसर जाने के लिए लाहौर से प्रस्थान कर दिया। रास्ते में लाहौर से 12-13 मील की दूरी पर जल्लो स्टेशन पर उन्हें पुलिस ने, जो कि लाहौर से ही रेल में साथ लगी हुई थी, गिरफ्तार कर लिया। आप पर मुकदमा चलाया गया जिसमें आपने कोई सफाई पेश नहीं की। गत 12 जून को आपको डेढ़ वर्ष की कड़ी कैद और एक सौ जुर्माना और जुर्माना न दे सकने पर 3 मास की और सख्त कैद का दण्ड दिया गया। आपको जेल में 'बी' विभाग में रखा गया है।'

'आचार्य रामदेव जी की आर्यसमाज में जो स्थिति है, आर्यसमाज के अनेक कामों का उन पर जो भार है, वह किसी आर्यपुरुष से छिपा नहीं है। आप आर्य समाज के कुछ थोड़े से गिने चुने नेताओं में से एक हैं, इसलिए आर्य समाज आपको सीध, आर्यसमाज के कार्यों के अतिरिक्त कार्य करने की अनुमति नहीं दे सकता। इसीलिए आर्यसमाज के प्रायः सभी प्रेमियों की यह सलाह थी कि आचार्य जी आर्य समाज का काम छोड़कर राजनैतिक क्षेत्र में न जावें। पर आचार्य जी एक पुराने देशभक्त और राष्ट्रवादी (Nationalist) हैं जैसा कि आर्यसमाज का धर्म—वैदिक—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक व्यक्ति को देशभक्त बनाता है इसलिये आप देश की वर्तमान विकट परिस्थिति में अपने आपको राजनैतिक क्षेत्र से अलग न रख सके। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं ने उन्हें उधर कार्य करने के लिए बाधित कर दिया। और इस प्रकार वह बूढ़ा सिंह अपने स्वास्थ्य की अवस्था के प्रतिकूल होते हुए भी, राष्ट्रकार्य के लिए सब प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार हो गया।'

आचार्य रामदेव जी ने न्यायालय में जो बयान दिया वह बिलकुल उनके उपयुक्त था। वह इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

"मैं इस जमाने के सबसे बड़े महात्मा ऋषि दयानन्द का अनुयायी हूँ। अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम संस्करण में उन्होंने अन्याय नमक कर, अत्याचारी जंगल कर, शराब के एकाधिकार, खर्चीले न्याय प्रबन्ध का और ब्रिटिश भारत में नियम द्वारा संस्थापित कहे जाने वाले नौकरशाही विदेशी दुःशासन की अन्य बातों का विरोध किया है। इसी चिरस्मरणीय ग्रन्थ की द्वितीय आवृत्ति में उन्होंने 'अच्छा शासन स्व-शासन का स्थान नहीं ले सकता' इस आधुनिक राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसे उसके बाद मिल, कैपवैल, वैनरमैन आदि अनेक राजनीतिशास्त्रज्ञों ने तथा राजनीतिज्ञों ने पुष्ट किया है। अतः आर्यसमाज के संस्थापक द्वारा स्थापित मत के अनुयायी होने का अभिप्राय ब्रिटिश सांस्कृतिक तथा आर्थिक लूट (Exploitation) से और राजनैतिक दासता से विद्रोह करना है।"

महाशय कृष्ण जी ने साफ-साफ कहा था कि आचार्य रामदेव जी के जेल जाने के जिम्मेवार आप हैं, आपको आचार्य बनाने के लिए वे स्वयं जेल गये हैं। यह बात झूठी नहीं थी। परन्तु दूसरी तरफ से मुझे कुछ देर बाद ही पता लग गया कि अन्तरंग सभा उतना ही अधिक मुझे नहीं चाहती थी जितना कि आचार्य रामदेव जी चाहते थे। सभा की तरफ से मेरे आचार्य कार्य में निरन्तर बाधायें डाली जाती रहीं। आचार्य रामदेव जी के स्थान पर मुख्याधिष्ठाता के तौर पर श्री देवराज सेठी कार्य कर रहे थे। पर उनसे या मुझसे बिना सलाह लिए सभा ने पं० चूमपति जी को (जो लाहौर में रहते थे और 'रंगीला रसूल' के लेखक होने के कारण शायद खतरे में थे) गुरुकुल भेज कर मुख्याधिष्ठातृ समिति का प्रधान बना दिया एवं देवराज सेठी जी को छोटे बच्चों के बड़े सर्वप्रिय तथा कर्त्तव्य-परायण मुख्याध्यापक श्री विश्वम्भर सहाय जी को गुरुकुल छोड़ने को बाधित किया गया। आचार्यत्व कार्य करते हुए लगभग 8 मास बीत जाने पर नवम्बर सन् 1934 में मैंने अपनी सभा के प्रधान को जो पत्र लिखा, वह इस सम्बन्ध में अपनी सब कहानी स्वयं कहता है वह पत्र निम्न है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

सेवा में,

श्री मान्य प्रधान जी,

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ।

श्री माननीय प्रधान जी,

सादर नमस्ते ।

मुझे गुरुकुल में कार्य करते हुए लगभग आठ महीने हो गये हैं । इस बीच में और विशेषत: अन्तिम तीन-चार महीनों में सभा के अधिकारियों का मेरे साथ जो बरताव रहा है मैं खेद पूर्वक कहना चाहता हूँ कि कुछ अच्छा नहीं रहा है। मैंने अनुभव किया है कि यह अशोभाजनक बरताव मुझ पर अविश्वास रखने के कारण तथा मैं जिस उत्तरदातृत्व के पद पर हूँ उसको भुला देने के कारण हुआ है ।

"(क) सभा के मुख्य उपप्रधान तथा कार्यकर्त्ता प्रधान श्रीमान्य पं० विश्वम्भर नाथ जी ने सभा की बैठक में मुझ पर एक प्रश्नावली पूछ कर एक दृश्य उपस्थित किया ।। उन्होंने इसकी कुछ आवश्यकता नहीं समझी कि वे मुझसे ये बातें पहिले अकेले में पूछ लेते, उससे असन्तोष रहता तो भले ही सभा में भी रख देते । यह कहा गया कि मेरा इस सभा में Impeachment हुआ । अस्तु । फिर भी मेरे लिए यह मामूली बात थी ।"

"(ख) फिर एक दूसरी बैठक में मेरी कल्पना से बिल्कुल नये तौर पर श्री पू. रामदेव जी के स्थान के मुख्याधिष्ठाता पद का निर्णय कर दिया गया, इसमें मेरी राय तक न पूछी गयी । श्रीयुत देवराज जी सेठी जो कि मुख्याधिष्ठाता का कार्य कर रहे थे और श्री पं० चमूपति जी तक से पहिले कुछ नहीं पूछा गया । हम तीनों में से कोई भी इसे पसन्द नहीं करता था तो भी सभा के निर्णय का मान रखने के लिए हमने इसे पूर्ण रूप से निभाया । इस मुख्याधिष्ठातृ समिति की योजना को स्वीकार करते हुए भी इसके विरुद्ध मुझे जो कुछ कहना था वह मैंने आपकी सेवा में श्री पं० चमूपति जी के हाथ लिख भेजा था । वह आपके पास मौजूद होगा ।"

"(ग) अब सेठी जी के चले जाने पर और मुख्याधिष्ठातृ समिति की समाप्ति हो जाने पर मेरी दृष्टि में स्वाभाविक यह था कि आचार्य को (जो कि निश्चित हो चुका है) ही पहिले की प्रथा के अनुसार मुख्याधिष्ठाता का कार्य भी अस्थायी तौर पर दे दिया जाता जबकि वह यह बोझ उठाने को तैयार भी हो । किन्तु आपको स्वाभाविक यह लगा कि श्री चमूपति जी को (जो कि मुख्याधिष्ठाता के स्थान पर हमारी बिना इच्छा के बनी अस्थायी समिति के प्रधान थे) अस्थायी मुख्याधिष्ठाता बना दिया जाये ।"

"(घ) पर सबसे अधिक गम्भीर बात यह हुई कि जब मुख्याधिष्ठातृ समिति ने यह निश्चय कर दिया था कि मान्य देवराज जी सेठी तथा मास्टर विश्वम्भर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहाय जी को छुट्टी दे दी जाये और इनकी जगहों का प्रबन्ध हो जायेगा तो भी आपने इनकी छुट्टी नामंजूर करने को ही आवश्यक समझा। अन्त में इस सम्बन्ध में आपके घर पर जो आपसे मेरी बात हुई है उससे मुझ पर यह असर पड़ा है कि आप जिन्हें राजनैतिक विचार कहते हैं उन विचारों को रखने वाले अच्छे से अच्छे गुरुकुल के लिए अधिक से अधिक उपयोगी उच्चकोटि के पुरुषों के भी गुरुकुल से चले जाने में गुरुकुल की हानि नहीं देखते, पर अपनी समझ में इसे राजनीति से अछूता रखना परम आवश्यक समझते हैं। मैं यह नहीं समझ सका कि केवल छुट्टी स्वीकार न करने से गुरुकुल उससे कैसे अछूता रहेगा? तब एक बार मेरे जी में यह भी आया कि कहीं आप ऐसे (राजनीति के) विचार वालों को गुरुकुल से हटा देने में ही तो गुरुकुल का भला नहीं समझ रहे हैं? इस अन्तिम घटना से मेरे चित्त को बड़ी ठेस लगी है। अस्तु! मैं तो अब भी आपसे प्रार्थना करता हूँ और आशा लगाता हूँ कि आप श्री सेठी जी तथा श्री मा० विश्वम्भर सहाय जी की छुट्टी स्वीकृत कर सकेंगे।"

"यह मैंने अपना दिल खोलकर आपके सामने रख दिया है। इन उपर्युक्त बातों का यह मतलब नहीं है कि इनकी वजह से मैं कोई त्यागपत्र देने की सोचने लगा हूँ। क्योंकि इनकी वजह से मैं आशा करता हूँ कि आप में (सभा में) और मुझमें कुछ गलतफहमी हो रही हैं, हमने आपस में एक दूसरे को अच्छी तरह समझा नहीं है। मुझे अभी यह बतलाना और दिखला देना बाकी है कि मैं पूरा विश्वास योग्य व्यक्ति हूँ और मेरे आचार्यत्व के हाथों में गुरुकुल किसी तरह असुरक्षित नहीं है।"

पं० चमूपति जी के मुख्याधिष्ठाता होने पर भी यथाशक्ति उनसे सहयोग करता हुआ मैं अपना आचार्य कर्त्तव्य करता रहा। इस तरह पूरे दो वर्ष अप्रैल 1934 तक कार्य करके मैंने "चूंकि वर्तमान मुख्याधिष्ठाता जी से (तथा उनके कथनानुसार सभा से) मेरे विचारों का भेद और दृष्टिकोण का भेद इतना अधिक हो गया है कि अब मिलकर कार्य करना सम्भव नहीं रहा है" यह लिखकर त्यागपत्र दे दिया और गुरुकुल से मुक्त हो फिर गांधी सेवाश्रम चला आया।

आचार्य रामदेव जी भी जेल से छूटने पर फिर गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता नहीं बने। मुलतान जेल में मैं उनसे 22 फरवरी 1933 को मिला। गुरुकुल का हाल तथा सभा का हाल वे जानते रहे, अतएव उन्होंने फिर गुरुकुल आना पसन्द नहीं किया।

13 मई की अन्तरंग सभा में (जिसका कि मैं तब भी सदस्य था) मैंने अपने गत दो वर्ष के (1932 से 1934 तक) के आचार्यत्व के अनुभव सुनाये। ये अनुभव जिन चार बातों के रूप में थे, उनका बहुत थोड़ा अंश नीचे उद्धृत कर देना उचित होगा—

(1) मेरा पहिला अनुभव यह है कि अन्तरंग सभा ने मुझ आचार्य पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतना विश्वास नहीं रखा जितना कि अपने बनाये (सर्व सम्मति से बनाये) आचार्य पर रखना चाहिये। इनका एक दृष्टान्त दूँगा। श्री पं० चमूपति जी अन्तिम निश्चय के लिए लाहौर जाते समय यही इरादा करके गये थे कि वे इस पद को अस्वीकृत कर देंगे। परन्तु वहाँ इन्होंने अपना कर्त्तव्य यही पाया कि वे इसे स्वीकार कर लें।

(2) दूसरी बात यह है कि मैंने अनुभव किया है कि सभा अनजाने गुरुकुल की कई बातों में हद के अधिक दस्तदांजी करती है। सेठी जी को तो आप लोग कुछ जानते हैं पर मा० विश्वम्भर सहाय कभी आपके सामने नहीं आये। उन्हें गुरुकुल वाले ही जानते हैं। उन जैसा आदमी दुर्लभ होता है। मैंने उन जैसा कर्त्तव्यनिष्ठ, सच्चा, योग्य पुरुष गुरुकुल में और कोई नहीं देखा। छोटे बालकों के मुख्याध्यापकत्व के लिए उन जैसा योग्य पुरुष और कोई नहीं आया। परन्तु सभा ने उन्हें भी गंवा दिया। और अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य रामदेव जी जो जेल से लौट कर फिर गुरुकुल में मुख्याधिष्ठाता नहीं हुए हैं, उसका कारण भी शायद सभा की उपर्युक्त नीति ही हुई है। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सभा गुरुकुल से इतनी जुदा रहती है कि वह गुरुकुल के हृदय को नहीं पहिचान सकती। स्वामी श्रद्धानन्द जी जो अन्तरंग सभा से दिक थे और कहा करते थे कि सभा काम नहीं करने देती, उसका मैं भी स्पष्ट परिचय पा गया हूँ। निःसन्देह सभा की इस नीति ने गुरुकुल की बहुत ही भारी हानि की है।

(3) तीसरी बात मैं यह कहूँगा कि मैंने एक यह भी अनुभव किया है कि सभा भी उस रोग से ग्रस्त है जिसे 'दफ्तरीपन' कहते हैं। इसका भी मैं एक ही अत्यन्त स्पष्ट उदाहरण सुनाऊंगा।

(4) चौथी वह मुख्य बात है जिस विषय में मुझ पर दोषारोपण किया जाता रहा है कि मुझ में आवश्यकता से अधिक राष्ट्रीयपन है। सभा बहुसंख्यक ऐसी ही मनोवृत्ति के सज्जन हैं। बनारस की हिन्दू यूनिवर्सिटी में (जो कि सरकार के अधीन है) मैंने सैंकड़ों राष्ट्रीय झंडे देखे हैं। वहाँ के कम से कम डेढ़ सौ विद्यार्थी (सुना तो 500 विद्यार्थी भी जाता है) राष्ट्रीय आन्दोलन में जाने के लिए सन् 32 में निकले थे। उन विद्यार्थियों को उन्होंने न केवल फिर दाखिल किया पर उन्हें सब तरह की सहूलियतें दीं, जहाँ संभव था अगली श्रेणी मे चढ़ाया (Promotion) भी गया। वहाँ का 'वाइस चाँसलर' वाइस चाँसलर रहता हुआ (उससे इस्तीफा देकर नहीं) राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का प्रधान बनने जाता रहा और गिरफ्तार होता रहा, यह हम सब जानते हैं। परन्तु या तो पंजाब का वायुमण्डल ही संयुक्त प्रान्त की अपेक्षा अधिक सरकारपरस्त है या किसी अन्य कारण से हमारी यह गुरुकुल की स्वामिनी सभा गुरुकुल में हिन्दु-यूनिवर्सिटी जितनी राष्ट्रीयता को भी पसन्द नहीं करती है।

अन्त में मैंने सभा को छः दृष्टान्त देकर मुख्याधिष्ठाता (चमूपति) जी के विचित्र से दृष्टिकोण की और उनकी जबरदस्ती की बातें सुनायीं जिनके कारण मैंने गुरुकुल से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागपत्र देना उचित समझा था। और सभा ने आचार्य और मुख्याधिष्ठाता दोनों चमूपति जी को बना दिया।

उसके बाद का घटना चक्र गुरुकुल के इतिहास में प्रसिद्ध है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने चमूपति जी के विरुद्ध भूख हड़ताल की और जब तक कि उन्हें गुरुकुल से फिर लाहौर नहीं ले जाया गया, तब तक जारी रखी।

मुझे फिर (गाँधी सेवाश्रम से लाया जाकर) गुरुकुल का आचार्य जौलाई 1935 में बनना पड़ा इसकी चर्चा नवम प्रकरण में की जावेगी।

आर्य समाज को जगाना

आचार्य रामदेव जी को आगे बढ़कर जेल जाना इसलिये करना पड़ा था चूंकि सन् 1932 और 33 में नये वाइसराय लार्ड वेलिंगटन ने हुक्मनामे (Ordinance) लागू करके पूर्ण दमनचक्र चला रखा था। गांधी जी आदि जेल में डाल दिये गये थे। उन ऑर्डिनैन्सों द्वारा कुछ भी सत्याग्रह की चर्चा करना या देश सेवा की दिशा में कुछ भी चेष्टा (हलचल) करना दण्डनीय कर दिया गया था बल्कि हम अपने धार्मिक कर्त्तव्य भी पालन नहीं कर सकते थे, जैसा कि मैं आगे लिखूंगा। उस समय मेरे विचार में आया कि इस सबका हमें विरोध (आर्य समाज की तरफ से, धार्मिक तौर, राजनैतिक तौर पर नहीं) करना चाहिये। आचार्य रामदेव जी इससे पूर्णतया सहमत थे। उनकी पथप्रदर्शकता में मैंने या हम (कुछ मित्रों) ने आर्यसमाज को इस दिशा में जगाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया।

बरेली में आर्य महा सम्मेलन होकर चुका था। उसके पश्चात् गुरुकुल डोरली (मेरठ) के वार्षिकोत्सव में शिवरात्रि (6 मार्च 1939) के अवसर पर मेरे सभापतित्व में मेरठ जिला आर्य सम्मेलन रखा गया। उसमें जो पांच प्रस्ताव स्वीकृत हुए और छापकर वितरित किये गये उनमें पहला निम्नलिखित था—

"(क) यह सम्मेलन एक धार्मिक संस्था के तौर पर अपना यह कर्त्तव्य समझता है कि इस समय सरकार को सन्मार्ग दिखावे और उसे सावधान करे। इसलिये यह सम्मेलन वाइसराय (इंग्लैंड के महाराज के भारत अवस्थित प्रतिनिधि) को सलाह देता है कि उसे महात्मा गांधी जैसे परम धार्मिक पुरुषों को तुरन्त कारावास से मुक्त कर देना चाहिये तथा हुक्मनामों (Ordinance) के शासन का अन्त कर प्रजा को सुखी करना चाहिये।"

"(ख) राजकृत यह अन्याय तथा घोरदमन यदि इसी तरह बढ़ता ही गया तो यह सम्मेलन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से प्रार्थना करता है कि वह इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश तथा अन्य देशों की आर्य समाजों को सामूहिक रूप से इस महान् अधर्म का धार्मिक उपायों द्वारा विनाश करने के लिए पथप्रदर्शकता प्रदान करे।

फिर गुरुकुल काँगड़ी के उत्सव पर रविवार (27 मई 1932) को आर्य सम्मेलन किया गया जिसके स्वागताध्यक्ष के रूप में मैंने लगभग वही भाषण (वह भाषण 'आर्य समाज का वर्तमान कार्यक्रम' इस नाम से गुरुकुल कांगड़ी की तरफ से प्रकाशित भी हुआ था) दिया, जैसा कि गुरुकुल डोरली में दिया था। इस सम्मेलन में भी वैसे ही ऑर्डिनैन्स शासन का विरोध किया गया तथा अन्य प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

फिर जून में (तब आचार्य रामदेव जी जेल चले गये थे) हमने आर्य सन्यासियों तथा नेताओं की तरफ से एक विज्ञप्ति प्रकाशित कराई जिसका प्रारम्भ इस प्रकार होता था "हम नीचे हस्ताक्षर करने वाले जिनमें बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने धार्मिक, सामाजिक सुधार, संस्कृति के पुनरुद्धार के कार्यों में ही अपने को परीसीमित कर रखा है।" मध्य में ऑर्डिनैन्स शासन की निन्दा करते हुए अन्त में यह आशा की गई थी कि इन ऑर्डिनैन्सों को आगे फिर लागू नहीं किया जायेगा तथा महात्मा गांधी को छोड़ दिया जायेगा। इनके नीचे जिन 25, 26 आर्य नेताओं के हस्ताक्षर थे, उनमें 18 निम्न हैं—

1. महात्मा नारायण स्वामी जी
2. रायबहादुर दीवान बद्रीदास
3. स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी
4. आचार्य रामदेव
5. पं० विश्वम्भर नाथ
6. महाशय कृष्ण
7. महादेव शरण मंत्री (आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार)
8. चांदकरण शारदा (अजमेर)
9. नरदेव जी शास्त्री
10. पं० चमूपति जी
11. पं० बुद्धदेव विद्यालंकार
12. विद्यावती सेठ (आचार्या कन्या गुरकुल)
13. रास बिहारी तिवारी (मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी०)
14. डॉ० धर्मवीर जी (प्रधान आर्य सभा लन्दन)
15. स्वामी शुद्धबोध तीर्थ
16. घनश्याम सिंह गुप्त (मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा, सी० पी०)
17. अयोध्या प्रसाद जी (कलकत्ता)
18. सेठ सूर जी वल्लभदास (बम्बई)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विज्ञप्ति गुरुकुल से निकलने वाली अंग्रेजी पत्रिका 'वैदिक मैगजीन' में तथा अन्य आर्य सामाजिक पत्रों में प्रकाशित हुई थी।

14 अक्तूबर 1932 को मैं देहली में 'इंडिया लीग डेलीगेशन (India League delegation) के सदस्यों से आर्य समाज के प्रतिनिधि (प्रवक्ता) के तौर पर मिला और उन्हें ऑर्डिनैन्स शासन के अन्यायों की सप्रमाण बातें बतायीं और अंकित करायीं। कई बातें उन्हें गुरुकुल जाकर लिखकर भेजीं।

इन्हीं दिनों अखबारों में "स्कॉट धर्म प्रचारकों की इंगलैंड के पार्लियामेण्टरी मैम्बरों से अपील" छपी थी। उसका हवाला देते हुए मैंने लिखा था कि क्या आपको मालूम है कि स्कॉटलैंड के पादरियों ने तो इस भारतीय आर्डिनैन्स शासन के विरोध में भी अपना धर्मरक्षा का कार्य शुरू किया है। उन्होंने स्कॉटलैंड से आने वाली ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सभासदों से भारत में होने वाली इस अन्धेरगरदी को मिटाने की कोशिश की है। क्या यह लज्जा की बात नहीं कि विदेश की धार्मिक संस्थाएं हमारे आर्डिनैन्स शासन के अधर्म को अनुभव करें पर हम देश की धार्मिक संस्था वाले (और अपने धर्म को सार्वभौम धर्म कहने वाले) चुप रहें?"

1932 के अन्त में मैंने प्रयत्न किया कि आर्य नेताओं की उपर्युक्त विज्ञप्ति के आधार पर आर्यसमाजों में "आर्डीनैन्स-दिवस" मनाया जाय (जिसमें आर्य नेताओं की वह विज्ञप्ति पढ़ी जाए, उसकी व्याख्या की जाए तथा आर्डीनैन्सों से पीड़ित व्यक्तियों की सहायता का भी प्रयत्न किया जाए)। पंजाब प्रतिनिधि सभा में एक जनवरी 1933 रविवार इसके लिए रखने को निश्चित किया गया। पर हमारे प्रधान राय बहादुर दीवन बद्रीदास जी ने इसकी अनुमति नहीं दी।

इन्हीं दिनों पता लगा कि आर्य समाज के नेताओं की आशा के विपरीत ये आर्डीनैन्स न केवल फिर जारी कर दिये गये हैं अपितु इन्हें स्थिर (3 वर्ष के लिए) करने का कानून बनने वाला है और कुछ दिनों में ही वह कानून पास भी हो गया। तब यह सोचते हुए कि अब क्या करना चाहिए आर्य प्रतिनिधि सभाओं से तथा सभी धार्मिक आर्य-पुरुषों से अपील करते हुए मैंने एक लेख "अतिथि यज्ञ में बाधा" नाम से लिखा, जिसमें जहाँ यह निवेदन किया कि वे इस आर्डिनैन्स कानून का (अब यह कानून बन गया था) घोर विरोध करें और तब तक दम न लें जब तक यह कानून रद्द न हो जाये, वहाँ यह भी कहा—

"पर मैं इस स्वेच्छाधारी काले कानून के जिस भाग की तरफ आर्य भाइयों का विशेष ध्यान खींचना चाहता हूँ वह यह भाग है जिसके कि अनुसार सरकार से कथित 'गैर कानूनी जमात' के लोगों को घर में ठहराना या आर्थिक मदद करना भी दण्डनीय अपराध है। आर्य या हिन्दू सभ्यता में अतिथि-यज्ञ बहुत ऊंचा स्थान रखता है। आर्यों का यह दैनिक महायज्ञ है। तो क्या यदि कांग्रेस का कार्य करने वाले कोई महानुभाव, देश के लिए स्वयं सब कष्ट सहन करते हुए भी किसी पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ तक न उठाने का संकल्प किये हुए अहिंसक महानुभाव, हमारे घर में आये तो हम उन्हें ठहरायेंगे भी नहीं ? यदि वे भूखे, नंगे, अशरण हों तो क्या हम अपने उन पूज्य वीर पुरुषों की आर्थिक सहायता न कर उन्हें घर से निकालने का पाप करेंगे ? ऐसे समय उनको सहायता व शरण देना कोई कानून तोड़ना नहीं है किन्तु पवित्र यज्ञ करना है ? ऐसा करना राजनीति के क्षेत्र में जाना नहीं है किन्तु राजनीति जो कि हमारे धर्म में हस्तक्षेप करती है, उसकी उपेक्षा करना है। यदि कोई सरकार हमारे यज्ञ को अपराध कहने लगेगी तो क्या हम यज्ञ करना भी छोड़ देंगे ? इसलिये मेरी आर्य भाइयों से प्रार्थना है कि वे हजारों कि संख्या में निम्न प्रकार की घोषणा करके अपने कर्त्तव्य का पालन करें। ''

इसके नीचे एक घोषणा का फार्म देकर अन्त में लिखा था "कई सहस्र नर-नारियों के हस्ताक्षरों सहित ऐसे पत्र सरकार के पास पहुँचने चाहियें और सरकार को बाधित करना चाहिये कि ऑर्डिनैन्स एक्ट में से कम से कम इस अत्यन्त धर्म विहीन हिस्से को हटा देवे।"

मेरे इस लेख को तो किसी अखबार ने छापने की हिम्मत नहीं की।

अन्त में बहुत सोच विचार कर यह निश्चय बना कि निम्न प्रकार के एक प्रस्ताव को आर्य समाजों व आर्य प्रतिनिधि सभाओं द्वारा स्वीकृत कराया जावे जिसमें 'सविनय अवज्ञा' धार्मिक अधिकार घोषित किया गया हो—

"सत्याग्रह व सविनय अवज्ञा एक ऐसा धार्मिक व आत्मिक हथियार है जिसके प्रयोग का स्वाभाविक अधिकार प्रत्येक आत्मवान् पुरुष को है। अतः भारतवर्ष के राजनैतिक क्षेत्र में जो सविनय अवज्ञा इस समय चल रही है, उसके समयोचित होने व न होने में मतभेद की गुंजायश मानते हुए भी यह स्पष्ट है कि वाइसराय का महात्मा गाँधी से शान्ति चर्चा की बात करने के लिए सविनय अवज्ञा सर्वथा छोड़ देने की शर्त लगाना और सरकार का बार बार सविनय अवज्ञा छोड़ देने पर जोर देना न केवल पीड़ित भारतीय जाति पर और अत्याचार करना तथा भारतीय धार्मिकता पर प्रहार करना है किन्तु **मनुष्यता का अपमान करना है**। अतः आर्यसमाज एक धार्मिक संस्था के तौर पर सरकार को सचेत करता है और सलाह देता है कि उसे अपना यह आग्रह त्याग देना चाहिये और महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित (सर्वधर्मानुमोदित) सविनय अवज्ञा मानवीय अधिकार को स्वीकार करना चाहिये।"

सबसे पहिले तो पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान जी ने ही प्रस्ताव को (जौलाई 1933) प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रस्तुत किये जाने की अनुमति नहीं दी। यद्यपि बिहार, आ० प्र० नि० सभा के प्रधान मन्त्री श्रीवेदव्रत जी ने (18-9-33 को) लिखा कि इस प्रस्ताव को अन्तरंग में रख कर स्वीकृत करायेंगे जिससे प्रान्त भर में पूरा आन्दोलन किया जा सके, तो भी मैंने (आ० प्र० नि० सभाओं के अनुभव के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर) यही ठीक समझा कि इस प्रस्ताव पर वैयक्तिक रूप से ही आर्य सभासदों के सस्ताक्षर कराये जायें। इसके लिये मैंने यह प्रस्ताव छपवा कर, "एक छपे पत्र के साथ" प्राय: सभी प्रसिद्ध आर्य समाजों को 12-8-33 के दिन देश भर में भिजवा दिया। छपे पत्र मैंने लिखा था कि आज 12 अगस्त (कृष्णाजन्माष्टमी) से लेकर 12 अक्तूबर तक दो महीनों में कम से कम 2500 भाई अवश्य हस्ताक्षर करने की कृपा करें। और फिर लिखा था "वैसे तो मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि आर्यसामाजिक भाइयों के 2500 हस्ताक्षर इस आवश्यक प्रस्ताव पर बड़ी आसानी से हो जायेंगे तो भी मुझे अपने संकल्प का यह अंश प्रकट कर देना उचित है कि यदि 12 अक्तूबर तक 2500 हस्ताक्षर न हो सकेंगे तो मुझे 13 अक्तूबर से प्रायोपवेशन (उपवास) प्रारम्भ करना होगा।"

वैसे तो मेरे इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर के सम्बन्ध में बहुत जगह से (जैसे बनारस से प० शरण जी, फतहपुर से उमाशंकर जी, मेरठ से शिवदयालु जी, देहरादून से वैद्य अमरनाथ जी, काशी से रणजीत सिंह जी एवं गुजरात के मित्रों के तथा बहुत से स्नातकों तथा अन्य आर्य भाइयों के) उत्साहवर्द्धक प्रत्युत्तर मिले, बहुत से हस्ताक्षर हुवे फार्म भी मिले, परन्तु दूसरी तरफ मेरे प्रायोपवेशन की सम्भावना पर कई प्रकार की टिप्पणी भी सुनने को मिली। मैं अपनी प्रायोपवेशन की बात का स्पष्टीकरण अखबारों में देना चाहता था, देता था पर कोई अखबार छापता नहीं था। अन्त में मैंने 'आर्यसमाज के लिए आत्माहुति की आवश्यकता' नाम से एक छोटा सा पैम्फलैट आठ पृष्ठ का स्वयं छपवाकर वितरण किया। उसके निम्न अंश उद्धरण कर देना ठीक समझता हूँ—

"बात यह है कि मैं आर्यसमाज को जिस असंकुचित और सार्वभौम रूप में देखता हूँ, राजनैतिक बातों आदि से ऊपर उसका जो विशाल धार्मिक रूप देखता हूँ, उसमें उसे अधर्म करने वाले राजा को भी वैसे ही ताड़ना करनी चाहिये जैसे अधर्म-प्रवृत्त प्रजा का आर्यसमाज खण्डन आदि करता है। और क्योंकि पिछले दो वर्षों से देश पर राजा की ओर से बड़ा संकट आया हुआ है, अत: मेरी गुरुकुल में पली हुई और वैदिक धर्म के संस्कार को रखने वाली आत्मा इन राजकीय अनर्थों के खिलाफ उभरती रही है। इन वर्षों में मैंने दो बार प्रभु–स्मरण–पूर्वक अपने शरीर–त्याग का शान्त संकल्प किया था। दोनों बार आर्यसमाज की लाज बचाना प्रेरक कारण था।"

"पहली बार की बात तो कुछ थोड़े ही महानुभावों को ज्ञात है। जब आर्य समाज के नेताओं की 'ऑर्डिनैन्स शासन' के विरुद्ध निकली हुई घोषणा का सरकार पर कोई असर न हुआ, बल्कि ये दुबारा लगा दिये गये और तीन साल के लिए स्थिर किये जा रहे थे। तब भारतवर्ष में आर्यसमाज जैसी उच्च संस्था के होते हुए, यह सहा जावे, यह मुझ से नहीं देखा जाता था। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने धौलपुर के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा के विरुद्ध अनशन किया था या जैसे पुराने संन्यासी कुमार्ग-प्रवृत्त राजाओं को राह दिखाया करते थे, वैसे आर्यससाज के एक आध प्रतिनिधि वायसराय को सदुपदेश करें और उसके न मानने पर अनशन करें, ऐसा प्रस्ताव मैंने सार्वदेशिक सभा में रखा। पर सार्वदेशिक सभा के सदस्यों ने इसको निरा पागलपन समझा। मुझे यह नहीं करने दिया गया। बिना आ० सा० सभा के नाम के मैं यह कर नहीं सकता था, क्योंकि मेरी आर्यसमाज की सेवायें इतनी नहीं हैं कि मैं आर्यसमाज को बिना बनाये प्रतिनिधि बन सकूं, और न मैं सन्यासी ही था जो जनता का सदा प्रतिनिधि होता है। अतः मैं यह समझ कर कि मेरी छवि अभी पकी नहीं है, दुःखी और उदास होकर चुप हो गया।''

''दूसरी बार की बात तो बहुत से आदमी जानते हैं। परन्तु उसमें मेरे उपवास के विषय में कुछ भ्रम हुआ है। पर वह स्वाभाविक ही था, क्योंकि उसके स्पष्टीकरण को उस समय प्रकाशित करने वाला कोई न था। सत्याग्रह (जो कि उच्च प्रकार का धार्मिक बल्कि आत्मिक साधन है), उसका मूलोच्छेद जब सरकार अपने पशुबल द्वारा कर देना चाह रही है तब उसके धार्मिक रूप की घोषणा न करना आर्यसमाज के लिए निर्जीवता का सूचक था। अतः सत्याग्रह की धार्मिकता को स्वीकार करने वाला एक प्रस्ताव मैंने रखा। उसे आर्य प्रतिनिधि सभायें व्यावहारिक (दुनियावी) बुद्धि के कारण नहीं स्वीकार करेंगी, यह भय होने के कारण मैंने स्वयं ही उस पर वैयक्तिक हस्ताक्षर कराने का विचार रखा था। इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कराने पर मेरे मरने की तथा प्रायोपवेशन की कोई आवश्यकता न थी। परन्तु क्योंकि मैं देखता था कि हो सकता है कि सरकार इस प्रस्ताव के हस्ताक्षरित होने में भी बाधा डाले (यथा इस प्रस्ताव को जब्त करे या मुझको जेल में डाल दे) अतः उसके मुकाबिले में मुझे मर कर भी यह सिद्ध करना चाहिये कि आर्य समाज ने सत्याग्रह की धार्मिकता को अपनी बलि देकर स्थापित किया। अतः इसके लिये मैंने 2500 हस्ताक्षरों की कम से कम संख्या रखी। मैंने देखा कि सरकार बाधा डालेगी तभी यह हो सकता है कि 2500 हस्ताक्षर न हो सकें। यदि बाहरी बाधा सरकार ने न डाली तो भी इससे कम हस्ताक्षर सरकरी भय के कारण ही होंगे। सरकारी बाधा न हो तो 2500 हस्ताक्षर साधारण बात थी। अतः यह स्पष्ट है प्रायोपवेशन की बात यों ही आर्य भाईयों से जबरदस्ती हस्ताक्षर कराने के लिये न थी। वैसे 'सभी आरम्भ दोषयुक्त होते हैं।' अतः यदि इसमें जबरदस्ती का कुछ अंश था भी तो वह क्षन्तव्य था।'' अपने स्पष्टीकरण में, जिसे कि किसी ने छापा तक न था, मैंने अपने प्रायोपवेशन के विषय में निम्न प्रकार से लिखा था :—

''प्रायोपवेशन का संकल्प मुझको क्यों करना पड़ा है, इस विषय में इतना कह देना पर्याप्त है कि मैं देखता हूँ कि सरकारी भय के कारण लोग इस प्रस्ताव को सत्य समझते हुए भी अपनी जायदाद तथा अन्य सम्पत्तियों के नष्ट होने के भय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इस पर हस्ताक्षर न करेंगे, अतः मैंने अपनी एकमात्र अवशिष्ट जायदाद, अपने भौतिक शरीर, को समर्पित करके भी इसका प्रतिविधान करने की ठानी है। इस प्रायोपवेशन की क्रियात्मक वाणी से मैं आर्य भाइयों को यह सुनाना चाहता हूँ कि सर्वस्व स्वाहा करके भी सत्य की रक्षा करनी चाहिये। अतः मैं यह भी आशा करता हूँ कि जो आर्य भाई किसी दृष्टि से इस पर हस्ताक्षर करना सत्यानुकूल नहीं समझते हों, वे मेरे मरने के भय से इस पर कदापि हस्ताक्षर नहीं करेंगे। मुझे अपने इस संकल्प का दुःख है। यदि राजकीय भय का मुकाबिला न होता तो मुझे कदापि ऐसे संकल्प करने की आवश्यकता न होती।"

अब महात्मा गाँधी जी छोड़ दिये गये थे। (आचार्य रामदेव जी भी अस्वास्थ्य के कारण बीच में छोड़ दिये गये थे) अतः उस 'प्रस्ताव' पर हस्ताक्षर कराने के बारे में मेरा गाँधी जी से पत्र व्यवहार हो रहा था (महात्मा जी ने 31–8–33 के पत्र में लिखा था 'जिस ढंग से प्रस्ताव बनाया गया है उसमें हस्ताक्षर देने में कोई राजनैतिक बाधा मैं नहीं देखता। व्यवहार दृष्टि से ऐसा प्रस्ताव अनुचित माना जाये यह दूसरी बात है', पर प्रायोपवेशन पर भी उन्होंने टिप्पणी की थी और उस पर फिर मैंने उन्हें पत्र लिखा था कि 11 अक्तूबर को अर्थात् मेरा प्रायोपवेशन प्रारम्भ होने की सम्भावना से एक महीना पूर्व सर हैरी हेग होम मैम्बर ने लेजिस्लेटिव असेम्बली में सविनय अवज्ञा पर जो वक्तव्य दिया उससे सब बात पलट गयी। उससे प्रायोपवेशन की बात तो जाती ही रही पर प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने की बात भी एक प्रकार से नहीं रही। तब मुझे एक और विज्ञप्ति आर्य समाजों को भेजनी पड़ी, जिसमें लिखा था :—

"परन्तु अभी 11 सितम्बर को शिमले से जो सरकारी वक्तव्य निकला है उसमें होम मैम्बर ने प्रकाशित कर दिया है कि कुछ समय से सरकार जो 'सविनय अवज्ञा छोड़ देने' के शब्द प्रयोग करती रही है उससे उसका आशय यह नहीं था कि सविनय अवज्ञा ही कोई त्याज्य वस्तु है और सरकार किसी से (अर्थात महात्मा गाँधी या कांग्रेस के अन्य लोगों से) अगले 100 या 50 वर्ष के लिए इसे सर्वथा छोड़ देने की कोई प्रतिज्ञा करवाना चाहती है परन्तु उसका आशय इतना ही है कि इस समय सरकार के साथ सविनय अवज्ञा करने को सचमुच और स्पष्टतया छोड़ देना उचित है। (अर्थात् इस समय यह समयोचित नहीं है।) एवं मुझ द्वारा रखे गये प्रस्ताव में सरकार को जो स्वीकार करने को कहा गया था वह सरकार ने इस वक्तव्य द्वारा स्वीकार कर लिया है। अतः मैंने जो उस प्रस्ताव पर आर्य सामाजिक भाइयों के लाखों—कम से कम 2500—(2500 हस्ताक्षर तो शायद हो भी चुके होंगे)—हस्ताक्षर कराने का संकल्प किया था अब उसकी आवश्यकता नहीं रही है।

"अब इस प्रस्ताव का पहला वाक्य अर्थात् "सविनय अवज्ञा एक ऐसा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक व आत्मिक हथियार है जिसके कि प्रयोग का अधिकार प्रत्येक आत्मवान मनुष्य को है" ही का काम रह गया है केवल इस वाक्य पर अब भी हस्ताक्षर कराये जा सकते हैं। परन्तु अधिक अच्छा यह है कि सरकार के इस एलान से लाभ उठाते हुए लोगों में से सविनय अवज्ञा का भय हटाया जावे। इसके लिए इस विषय पर व्याख्यान देना, आर्य सम्मेलनों में इस पर प्रस्ताव स्वीकृत करना आदि के द्वारा सत्याग्रह के सिद्धान्त की पुष्टि की जानी चाहिये।"

इन्हीं दिनों साप्ताहिक 'विकास' सहारनपुर से प्रारम्भ हुआ था। उसने मुझसे सन्देश मांगा था तो मैंने 'भारत-आत्मा का विकास' इस शीर्षक से जो लिखा था, उसके कुछ अंश निम्न हैं :—

"आज भारत की आत्मा विकसित होना चाह रही है...पर विदेशी सरकार का पशुबल प्रत्येक दिशा में भारतीय विकास में पग-पग में बाधा डाल रहा है...इस समय देश की सर्वश्रेष्ठ धार्मिक संस्था आर्यसमाज को अपने कर्त्तव्य पालन के लिए जागना चाहिये...इया इस समय प्रत्येक धार्मिक पुरुष का यह कर्त्तव्य नहीं कि वह घोषणा करे सत्याग्रह करना प्रत्येक आत्मवान् पुरुष का अधिकार है ? सत्याग्रह आत्मा का एक स्वाभाविक धर्म है।"

अन्त में मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर आदि किये जाने के सम्बन्ध में मुझे, सलाह देकर तथा अन्यों को प्रेरित करके खूब उत्साहित किया था।

आर्यसमाज की अवस्था

इन दिनों आर्य समाज की अवस्था का दर्शन मुझे स्पष्टतया हो गया। आर्य समाज की हलचलों से सीधा सम्बन्ध तो मेरा था ही नहीं, मैं आर्य समाज के शिक्षा क्षेत्र के एक केन्द्र—गुरुकुल काँगड़ी—में, शिक्षा संस्था में (एक बार प० विश्वम्भर नाथ जी ने गुरुकुल में 'शुद्धि' करने की अनुमति नहीं दी थी और कहा था कि यह शिक्षा संस्था है) अपना जीवन अर्पण किये रखना अपने लिए बहुत पर्याप्त कार्य समझता था। आर्यसमाज का साधारण सभासद बना रहा, पर आर्यसमाज में कभी कोई पद मैंने स्वीकार नहीं किया। (एक बार की बात है कि मैं रुड़की में आया हुवा था और यह जानकर एक मित्र जो बाहर से मिलने आये थे, उस दिन रुड़की ही आ गये। पर उन्हें यह पता न था कि मैं रुड़की में किस जगह ठहरा हूँ। अतः वे रुड़की के आर्यसमाज में गये और वहां मेरे विषय में पूछा, तो मंत्री जी ने कहा—वो कांग्रेसी देवशर्मा जी ! यह 1936 की बात है। तब मैं कांग्रेस का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मैम्बर नहीं था। सन् 1935 से मैंने कांग्रेस की मेम्बरी बिल्कुल छोड़ दी थी। पर आर्यसमाज का मैम्बर सदा निरन्तर रहा हूँ। परन्तु चूंकि मैंने आर्यसमाज में पद कभी नहीं ग्रहण किया अतः मुझे लोग कांग्रेसी करके जानते रहे, उतना आर्य समाजी करके नहीं जानते रहे तो भी आर्यसमाज की अवस्था का प्रभाव गुरुकुल पर पड़ता था, यह तो था ही। इसी लिए गुरुकुल का आचार्य, शिक्षा संस्था का आचार्य शिक्षा क्षेत्र का एक व्यक्ति होता हुआ भी आर्यसमाज से घनिष्टतया जुड़ा हुआ था अतएव आर्यसमाज को ठीक दिशा में प्रभावित करना गुरुकुल के आचार्य का कर्त्तव्य भी हो जाता है। इसी दृष्टि से मैं आर्यसमाजों में बुलाये जाने पर जाता था और वहाँ भाषण भी देता था।

पंजाब की प्रायः सभी बड़ी आर्यसमाजों में मैं उत्सव पर, या वैसे भी गया हूँ। कई जगह सात दिन लगातार भाषण भी दिये हैं जैसे लायलपुर, रावलपिंडी, क्वेटा आदि। पंजाब से बाहर भी आर्यसमाजों में जाना होता था। अपनी डायरी देखकर कह सकता हूँ कि 1933 फरवरी में गुरुदत्त भवन, सितम्बर में सियालकोट की, अक्तूबर में देहली की, दिसम्बर में जालंधर की आर्यसमाजों में गया। 1934 अप्रैल में सहारनपुर (नई मंडी) की, अगस्त में जयपुर, डेरागाजी खाँ की, सितम्बर में पानीपत की, अक्तूबर में ब्यावर (राजस्थान) की, नवम्बर में लाहौर (बच्छोवाली) की, समाज में गया। 1935 अगस्त में लायलपुर, चकझूमरा, सितम्बर में सिरसा, रामामंडी सरगोधा में, 1936 जनवरी में पेशावर (नौशेहरा, रिसालपुर, कैम्बलपुर), फरवरी में रावलपिंडी, तलागंग, लायलपुर, जडाँवाला, ताँदला, जौलाई में होशियारपुर साधु आश्रम, अक्तूबर में झंग, मघियाना, टोबाटेकसिंह और मिटगुमरी और झुग्गी वाला गया। मुलतान तो बहुत बार गया।

आर्यसमाज की स्थिति देख कर 1934 के प्रारम्भ में ही बैसाख के दिन ईश्वरदत्त जी (मेधार्थी) स्नातक से मिल कर हमने आर्यसमाज के अन्दर एक श्रद्धानन्द दल बनाया था। इस दल के सभासद (i) नित्य संध्या तथा स्वाध्याय (ii) जात–पात को नहीं मानना (iii) खादी ही पहिनना ये तीन व्रत लेते थे। मैं बहुत बार आर्यसमाजों में इस दल का बिना जिक्र किये इन तीन बातों पर जोर देता हुआ भाषण करता था। इन तीन बातों पर मैंने गुरुकुल में लेखमाला भी लिखी थी।

आर्यसमाजों को विशेष अवसर पर सन्देश भी देने होते थे। शिमला आर्य समाज वाले मेरे सन्देश छापकर बाँटते थे। (एक बार मेरी 'वैदिक उपदेश माला' पुस्तक भी उन्होंने आर्यसमाज शिमला की ओर से छापी थी)। नई देहली में जब नये बने आर्य समाज मंदिर का उद्घाटन हुआ तो उस अवसर पर (2-12-33) मैंने 'धर्म की शान' शीर्षक से अपना सन्देश भेजा था, जिसमें कहा था :—

"नई देहली जैसे शाही शहर की शान तथा आर्य समाज जैसी धर्म संस्था की शान बिल्कुल उलटे प्रकार से गठती हैं···तो क्या नई देहली के राजसिक ठाट-बाट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बीच में, आर्य समाज का वैदिक धर्म अपनी सात्विक, आध्यात्मिक शान में चमकता रहेगा ? न केवल चमकता रहेगा किन्तु इस राजधानी में यह वैदिक धर्म भी शाह की तरह हुकूमत करेगा ? अपनी निराली फकीरी शान में सचमुच हुकूमत करेगा।''

आर्यसमाज पर जो लेख मैं लिखता था, उनके शीर्षकों से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि मैं आर्यसमाज से क्या आशा करता था जैसे (1) वर्तमान युग का असुर और उसका संहारक आर्यसमाज 'आर्यमार्तण्ड' के शिवरात्रि (1929) के अंक में छपा था। यह असुर था "महायत्रं प्रवर्त्तन" (2) आर्यसमाज का समय अब आ रहा है, यह मैंने कानपुर जेल से 1930 में लिखा था। 'आर्य' के माघ 1987 के अंक में छपा था। मेरी दृष्टि से आर्य समाज का समय बीत नहीं गया किन्तु आ रहा है।

बड़ौदा के आर्य कन्या महाविद्यालय (जो किसी आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध नहीं है) के मामले में भी मुझे कई वर्ष तक उलझना पड़ा, जबकि श्री आनन्दप्रिय जी आदि ने मुझे कई वर्ष तक तार देकर अपने विद्यालय में आमन्त्रित किया, क्योंकि उन्हें पता लगा था कि उस विद्यालय की शिकायतें मुझे भी पता लगीं हैं। पीछे उसमें सरदार बल्लभ भाई तथा महात्मा गाँधी भी पड़े। मुझे दुःख है कि श्री आनन्दप्रिय आदि उस संस्था के संचालकों का मुझसे बार-बार यह आग्रह होते हुए भी कि मैं महात्मा गाँधी को ही उस संस्था के मामले का अकेला निर्णायक बनने को मना लूं, जब गाँधी जी ने इतने कार्य व्यग्र होते हुए भी निर्णायक होना मान लिया तो उन्होंने बहाना बना कर उसे अस्वीकार कर दिया। इससे मेरे हृदय को बहुत आघात पहुँचा। इससे पहिले गाँधी जी ने (सरदार की इच्छा के विरुद्ध) मेरे कहने से बड़ौदा जाकर इस संस्था को देखने का निश्चय किया था और वहाँ गये थे। तब उन्होंने मुझे भी साथ रखा था और कहा था "मैं तुम्हारी आँखों से इस आर्य संस्था को देखूंगा", तो भी इन लोगों ने गाँधी जी के साथ ऐसा बर्त्ताव किया। आनन्दप्रिय आदि लोगों की नीति यही रही कि वे आर्यसमाज के नाम की अपील कर नए-नए आदमी को अपनी बुराइयों को प्रकट करने से बचाने के लिए आड़ बनाये रखें। अन्त में 1938 में मैंने "बड़ौदा के आर्य-कन्या महाविद्यालय के विषय में" इस शीर्षक के एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित करके, इस विषय में मुझे जो वक्तव्य था वह लिख दिया था।

जहाँ आर्यसमाज के नेता बड़ौदा के आनन्दप्रिय जी जैसे (अविकसित आत्मा) व्यक्ति थे वहाँ हैदराबाद के नरेन्द्र जी तथा बंसीलाल जी जैसे भी थे। नरेन्द्र जी से मेरा परोक्ष संबंध कैसे हुआ, उसकी एक कहानी है। 1939 में जब हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह चला था, तब श्री घनश्याम सिंह गुप्त तथा देशबन्धु गुप्त आदि इस सत्याग्रह को महात्मा गाँधी जी की सलाह ले लेकर ही चलाते थे। जनवरी 1940

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात है। मैं पाँडिचेरी के लिए जाते हुए एक दिन के लिए (जैसा कि तब में हमेशा किया करता था) वर्धा ठहरा था। तब इन दोनों 'गुप्त' आर्य नेताओं ने गाँधी जी के सामने रखा कि आर्य समाज के अन्य सब कैदी तो छोड़ दिये गये हैं पर नरेन्द्र जी तथा बंसीलाल जी को नहीं छोड़ा गया है। उन्हें बहुत लम्बी सजायें निजाम ने दे रखी हैं। अतः इसके लिए अभयदेव जी को (तब मैं देवशर्मा की जगह अभयदेव हो चुका था) हैदराबाद भेजकर प्रयत्न करना चाहिये। ये लोग जानते थे कि मेरी हैदराबाद के प्राइम मिनिस्टर अकबर हैदरी से जान-पहिचान है। इससे पहिले भी मैं एक बार हैदराबाद में अकबर हैदरी साहिब के आमन्त्रण पर गया था, यह बात भी इनको विदित थी। मेरा अपना स्वभाव लोगों से यूं ही परिचित होने का नहीं है पर श्री अरविंदाश्रम पांडिचेरी में ही उन दिनों अकबर हैदरी आते थे जबकि हैदराबाद का सत्याग्रह चल रहा था। वहाँ आश्रम में ही किसी के कहने से अकबर हैदरी साहब ने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की। पहली मुलाकात के अन्त में ही अकबर हैदरी ने मुझे हैदराबाद आने को प्रेमपूर्ण आमन्त्रण दिया और उसके अनुसार अगली बार पांडिचेरी आते हुए मैं और मेरे पूज्य पिता रामप्रसाद जी हैदराबाद में राज-अतिथि की तरह ठहरे थे। क्योंकि पांडिचेरी से लौट कर ही आर्य समाज से हुए समझौते के अनुसार अकबर हैदरी ने सब आर्य बंदियों को छोड़ दिया था अतः हैदराबाद के लोग तो समझते थे कि मानों पांडिचेरी के प्रभाव से ही अकबर हैदरी ने यह किया है। तो मुझे उस दिन (22 जनवरी 1940) वर्धा में आया देख कर ये दोनों 'गुप्त' बन्धु प्रसन्न हुए। इन्होंने पहिले मुझ से बात की, फिर गाँधी जी से। अन्त में गाँधी जी के सन्मुख यह तय हुआ कि मैं पांडिचेरी की जगह हैदराबाद जाऊँ और अकबर हैदरी से मिल कर नरेन्द्र जी तथा बंसीलाल जी को भी छुड़ाने का यत्न करूं। गाँधी जी ने भी अकबर हैदरी को मेरे आने का तार दिया। मैंने भी तार दिया। हैदराबाद पहुँच कर, उसी तरह राज्य अतिथि (State guest) बनकर, शाम को अकबर हैदरी से मिला। अकबर हैदरी ने कहा कि इन्हें तो "हजूर आला" ने सजा दे रखी है, मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता। अगले दिन विनायकराव जी के घर भी गया। वहाँ से मैं नरेन्द्र जी के घर भी गया। वहाँ मैंने नरेन्द्र जी की एक फोटो देखी। बंसीलाल जी को तो मैं एक बार महाशय कृष्ण जी के घर लाहौर में देख चुका था पर नरेन्द्र जी को कभी नहीं देखा था। नरेन्द्र जी का फोटो देख कर यह व्यक्ति मुझे बहुत ही अच्छे लगे। मेरे अन्दर से प्रार्थना निकली कि यह व्यक्ति तो जेल में पड़े रहने योग्य कभी नहीं है। रोज शाम को अकबर हैदरी से मिलता था, बाकी समय मुख्य कार्य इन दोनों को छुड़ाने के लिए प्रार्थना और ध्यान ही होता था। परमेश्वर की कृपा हुई। 16 जनवरी को मैंने जहाँ पाँडिचेरी का अपने आने के सम्बन्ध में तार दिया वहाँ महात्मा गाँधी तथा घनश्याम सिंह गुप्त तथा देहली में देशबन्धु गुप्त को इन दोनों को छोड़ दिये जाने के हुक्म हो जाने की शुभ सूचना के भी तार दिये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैदराबाद के सत्याग्रह के बाद वहाँ की आर्यसमाज में पहला व्याख्यान मुझे ही देने का अवसर मिला। विनायकराव जी (जो कि गुरुकुल में मेरे महाध्यायी रहे हैं) ने मेरे भाषण की इसी प्रकार घोषणा की कि निजाम सरकार द्वारा आर्यसमाज के भाषणों पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाने के बाद यह पुनः आर्यसमाज की ओर से पहला भाषण है। लगे हाथ यह भी सुना दूँ (जो बात उन दिनों की रियासतों में ही हो सकती थी) कि मेरे लिए सर अकबर हैदरी ने फोन करके निजाम स्टेट रेलवे की गाड़ी भी रुकवाई थी। पहली बार जब मैं हैदराबाद आया था तब मैंने विनायकराव जी तथा अकबर हैदरी में मेल कराने का यत्न किया था। उस बात-चीत के देर तक होते रहने से जब मेरे गाड़ी छूटने का समय आ गया तो मैंने हैदरी साहब को याद दिलाया। तब उन्होंने तुरन्त फोन उठा कर रेलवे स्टेशन पर फोन किया कि एक हमारी सवारी इस गाड़ी से जाने वाली है, उसके पहुँचने तक आप प्रतीक्षा करें। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मेरे पिता जी ने भी हैदरी साहब को अपनी बात-चीत में आर्य समाज के सम्बन्ध में खरी बातें कहीं थीं। अस्तु ! यहाँ इतना ही कहना है कि नरेन्द्र जी और बंसीलाल जी को आर्य समाज के सच्चे नेता (विकसित आत्मा) मानता हूँ।

हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह भी मेरे आचार्यत्व में हुआ और उसमें गुरुकुल काँगड़ी ने पूरा भाग लिया (जिसका वर्णन क्षितीश जी ने गुरुकुल से प्रकाशित पुस्तक में किया है), जैसे कि 1925 में मथुरा की दयानन्द शताब्दि भी मेरे आचार्य का कार्य करते हुए मनायी गई थी और उसमें गुरुकुल काँगड़ी ने पूरी तरह भाग लिया था (सारा गुरुकुल मथुरा दयानन्द शताब्दी मे गया था)।

मैं कह चुका हूँ कि आर्यसमाज को ठीक दिशा में प्रभावित करना गुरुकुल के आचार्य का कर्त्तव्य हो जाता है। सो यह कार्य मथुरा जन्म शताब्दि से जब से गुरुकुल कांगड़ी का उपाचार्य और कार्यकर्त्ता आचार्य था प्रारम्भ हुआ था। क्योंकि मथुरा शताब्दि से लौट आकर मैंने एक लेख "आर्यसमाज का आगामी 100 वर्षों का कार्यक्रम" शीर्षक से लिखा था। मेरे लिए शताब्दि मनाने का अर्थ ही यह था कि आर्यसमाज आगामी 100 वर्षों तक देख कर अपना कर्त्तव्य निश्चित करे। जब व्यापारी और इंग्लैंड जैसे देश दूर तक सोच कर कार्यक्रम बनाते हैं तो आर्यसमाज जैसी सार्वभौम संस्था दूर तक न देख सके यह मुझे बहुत बुरा लगता था। मेरा वह लेख बहुत से आर्य पत्रों में छपा था और मैंने सार्वदेशिक सभा का ध्यान भी इस तरफ विशेषतया खींचा था। यद्यपि उसका उस समय कोई दृश्य प्रभाव नहीं पड़ा पर उसके आठ वर्ष बाद सार्वदेशिक सभा ने "आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम क्या हो" उस पर आर्यसमाजों की सम्मति जानने के लिए प्रश्नावली समाचार पत्रों में प्रकाशित करवाई थी। तब मुझे फिर अवसर मिला और "आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम" इस शीर्षक से वे प्रश्न तथा उन पर मेरे उत्तर 'अर्जुन' में तथा अन्य पत्रों में प्रकाशित करवाये थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहारनपुर से निकलने वाले 'विकास' साप्ताहिक में (30-13-33 के अंक में) यह अविकल रूप में छपे थे। सो 1933 में मैंने आर्यसमाज का आगामी सौ वर्षों का क्या कार्यक्रम होना चाहिये, यह पुनः स्पष्टतया लिखा था। उनके अनुसार पहले 15 वर्ष मुख्तया देश की स्वाधीनता प्राप्त करने में लगाने को थे। और उसके बाद 10 वर्ष स्वराज्य की स्थिरता अर्थात शाशन प्रणाली को वैदिक आदर्शानुकूल करने को रखे थे। परमेश्वर की कृपा से 1933 के तो 15 वर्ष बाद ही स्वराज्य हमें मिल गया है, चाहे आर्यसमाज ने इस दिशा में यथेष्ट कार्य किया हो या न किया हो। मेरा अब भी यही विचार है कि आर्यसमाज को अवश्य ही शतवर्षीय कार्यक्रम बना कर अपना कार्य करना चाहिये, फिर तात्कालीक 20 या 10 वर्ष के खण्ड-काल का कार्यक्रम, फिर उसी के अनुसार वार्षिक कार्यक्रम बना कर चलना चाहिए। जो संस्था जितनी विशाल और दूर दृष्टि से सोच सकती है, वह उतने समय को व्याप्त और उतने समय तक सजीव रह सकती है। दयानन्द के आर्यसमाज में तो बहुत देर सजीव रहने की क्षमता है। बल्कि 'व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः' के अनुसार परमेश्वर के समान ही सदा रहने की भी क्षमता है, यदि वह समय और अवस्था अनुसार अपने बाहरी ढाँचे को अपनी आत्मा के अनुसार बदलता रह सके। पर वह क्षमता व्यावहारिक रूप धारण करेगी कि नहीं, यह उसके नेताओं पर निर्भर करता है। आम लोग तो समझते हैं आर्यसमाज का समय बीत चुका है पर मेरी ऐसी धारणा नहीं है। मुझे दीखता है कि आर्यसमाज के फैलने का ठीक समय, अनुकूल समय तो अभी आया है।

सार्वदेशिक सभा द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में जो मैंने तब कहा था वह भी बहुत कुछ अभी तक ठीक है। हमारी सब त्रुटि 'ऋषि दृष्टि' न होने की तथा वर्णाश्रम धर्म को (उसे विशाल विस्तृत रूप में देखकर) स्वयं आर्यअमाज में लागू न करने की (या न कर सकने की) रही है। आर्यसमाज एक ऋषि द्वारा प्रवर्तित हुआ है अतः वह ऋषि की दृष्टि द्वारा ही संचालित किया जा सकता है। जब वर्ण धर्म या आश्रम का पालन आर्य समाज के संगठन में नहीं होगा तो यह संगठन आर्य समाज के रूप में कैसे टिक सकता है? अभी तक आर्यसमाज के संगठन में धनिकों तथा सरकार परस्तों की (अर्थात् वैश्यों और अवसरवादियों की) प्रभुता रही है अतएव समाज सदा धर्म को न देख सका और न पालन कर सका है। यदि अब भी यह पलट नहीं जाता है अर्थात् आर्यसमाज का धन (वैश्य) तथा उसकी लड़ाका वृत्ति (क्षत्रिय), उसके ऋषियों, ज्ञानियों, (ब्राह्मणों) के अधीन नहीं हो जाते हैं तो दुनिया को आर्य समाज की कोई आवश्यकता नहीं है। उसकी मृत्यु निश्चित है। तो उसका पलट जाना (अतएव उसका जीवित रहना) तभी हो सकता है जबकि वह परमेश्वर के विधान के अनुकूल अपने को ढालने की दृष्टि को प्राप्त कर सके, जबकि वह सब जगत् को चलाने वाली दिव्य शक्ति, अदिति, को आत्मसमपर्ण कर सके। ऐसा करने की क्षमता आर्य समाज में विद्यमान है, यह ठीक है, पर तो भी वह ऐसा कर सकेगा या नहीं, यह बातः शीघ्र ही भविष्य बता देगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर गुरुकुल का आचार्य बना

मैंने अपना त्याग-पत्र तो 5 सितम्बर 33 से दे रखा था पर सभा ने उसे छः महीने तक लटकाये रखा। सभा मंत्री महाशय कृष्ण जी से एक बार बीच में मैंने पूछा कि मेरे त्यागपत्र का क्या हुआ तो वे हँसकर बोले कि आप तो गलघट्टू बेर हैं, उसे खाये बिना भी नहीं रहा जाता और खाते हैं तो वह गला पकड़ लेता है, आप भी इतने अच्छे हैं कि आपको आचार्य बनाने को सभी का जी चाहता है पर आपको बनाकर हम मुश्किल में भी पड़ जाते हैं। मैंने कहा कि आपकी मुश्किल बचाने के लिये ही तो मैंने त्यागपत्र दे दिया है। अस्तु। अन्त में 28 फाल्गुन 1990 (अर्थात् 13 मार्च 34) को मेरा त्यागपत्र सभा ने स्वीकार किया तथा साथ ही यह कहा "सभा की प्रबल इच्छा है कि वे गुरुकुल के उत्सव तक आचार्य का कार्य करते रहें।" अतः मैं एक महीना और विधिवत कार्य करता हुआ गुरुकुलोत्सव के के बाद ही गुरुकुल से विदा हुआ। ब्रह्मचारी अभिनन्दन-पत्र देने की बात सोच रहे थे पर मैंने इसे पसन्द नहीं किया परन्तु जब मुझे पता लगा कि मेरे अभिनन्दन-पत्र न लेने से ब्रह्मचारी दुःखी हुए हैं और अमुक ब्रह्मचारी तो रो ही पड़ा तो मैंने उनकी सभा में आना और कुछ बोलना स्वीकार कर लिया। तब जो भाषण मैंने किया था वह 'अलंकार' पत्रिका में छप गया था और उसका उल्लेख मैं इस खण्ड के पहले प्रकरण में कर चुका हूँ।

तब से पं० चमूपति जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य दोनों हो गये और मैं गाँधी सेवाश्रम में जाकर रहने लगा।

पर एक वर्ष भी नहीं बीता था कि फिर आचार्य रामदेव जी ने (जो कि जेल से छूट आये थे) तथा अन्यों ने मुझे आचार्य बन जाने को कहना प्रारम्भ किया। पर मैं 34 के अन्त में कांग्रेस के अधिवेशन बम्बई की तरफ और जनवरी 35 में प्रथम बार पांडिचेरी की तरफ चला गया, जहां से 1935 अप्रैल में गुरु-कुलोत्सव पर ही लौटा। गुरुकुलोत्सव के बाद ही अल्मोड़ा चला गया और मई के अन्त में लौटा। तब मुझे जोर से आचार्य बन जाने को कहा जाने लगा। गुरुकुल की प्रवन्धकर्त्री सभा अन्तरंग सभा के स्थान पर एक विद्या-सभा हो इसका आन्दोलन कुछ समय से चल रहा था जो अब सफल हो गया अर्थात् 26 मई 1935 के आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक अधिवेशन में विद्या-सभा का बन जाना स्वीकृत हो गया। सभा में गुरुकुल स्नातक मण्डल की विजय हुई है, यह भी माना जा रहा था। अब जून

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पं० इन्द्र जी ने (जो स्नातकों के माने हुए मुखिया थे) मुझे विशेषतया अपील की। तब मैंने कुछ शर्तों के साथ गुरुकुल का फिर आचार्य बनना स्वीकार कर लिया।

यह तो मैं सदा कहता था कि आ० प्र० नि० सभा की अन्तरंग सभा गुरुकुल का संचालन करने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त सभा है पर उसके स्थान पर जो विद्या सभा होने का प्रस्ताव चला था उसके लिए भी मेरे मन में पीछे से कुछ उत्साह नहीं रहा था। मैं तो असल में गुरुकुल कांगड़ी को एक सार्वदेशिक सभा जैसी कोई अखिल भारतीय सभा की वस्तु मानता था। पर कम से कम उसके संचालक शिक्षा विज्ञ तो होने ही चाहियें। पर जो विद्या सभा बनी थी, वह यद्यपि पहले से अच्छी थी, उसमें स्नातकों, संरक्षकों तथा शिक्षा-विज्ञों के लिए स्थान रखे गये थे पर उतने से मेरी सन्तुष्टि नहीं होती थी। अतएव गुरुकुल कमीशन की रिपोर्ट में जहाँ आचार्य रामदेव जी ने विद्या सभा होनी चाहिए इसकी जुदा अपनी सम्मति लिखाई थी (क्योंकि कमीशन ने विद्या-सभा की सिफारिश नहीं की थी) वहाँ मैंने वैसा नहीं किया था। मैं इस विद्या-सभा के विषय में उदासीन था अतः विद्या सभा हो गयी है इसलिये मुझे पुनः आचार्य बन जाना चाहिए—यह अपील मुझे कुछ लगती नहीं थी। अस्तु। आचार्य रामदेव जी ने गाँधी जी को मेरे आचार्य बन जाने के सम्बन्ध में पत्र लिखा। मेरे लिए तो यह आवश्यक ही था कि मैं गांधी सेवा संघ से पूछकर गुरुकुल में आऊँ और चूंकि गांधी जी को पत्र लिखकर पूछा। तो मुझे गांधी जी की तरफ से महादेव देसाई के निम्न दो पत्र मिले:—

(1)

वर्धा
14.6.35

प्रिय देवशर्मा जी,

आचार्य रामदेव जी का पत्र आया है। वे लिखते हैं कि अभी आपको गुरुकुल का आचार्य पद संभाल लेना चाहिए। बापू जी को उनकी राय माकूल मालूम होती है। आप ही ने उनको प्रधान पद दिया है। अब वे कहते हैं सो ठीक है। उसका अमल करना चाहिये। आप आचार्य का पद ले लें।

आपका
महादेव देसाई

(2)

वर्धा
16.6.35

श्री देवशर्मा जी,

बापू को पत्र मिल गया। उसका उत्तर तो आपको दिया जा चुका है। बापू अत्यावश्यक समझते हैं कि आप आचार्य पद ग्रहण करें। किशोर लाल जी से आज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें कर लेंगे। उनका भी यही निर्णय समझ लीजिए।

आपका
महादेव देसाई

इस दूसरे पत्र पर ही किशोरलाल जी ने लिख दिया था 'मैंने आपका पत्र तथा यह उत्तर दोनों पढ़े हैं। प्रो० इन्द्र का पत्र नहीं आया है। बापू जी की सलाह से मैं सहमत हूँ।" किशोर लाल म०

अपने गुरु के तौर पर मैंने स्वामी सत्यानन्द जी महाराज को भी पत्र लिखा था। उनका निम्न उत्तर आया:—

ओम् करांची
14.6.35

कोठी धनपतमल ज्वालादास
समीप गांधी गार्डन
श्रीयुत् अभय जी,
प्रेम सहित आशीर्वाद।

आपके मिलाप को मन बहुत चाहता था परन्तु भावी का हाथ प्रबल ही रहा। देखें देव कब सुअवसर देता है।

आपका आचार्य बनना एक अनिवार्य विधान ही दीखता है। जो होता जाता है, भगवान के विधान में भद्र ही है यह समझ कर भाइयों का कहना मान लेने में आपको पश्चाताप करना नहीं पड़ेगा।

आपकी योग्यता को स्वीकार करके कहना चाहता हूँ कि ऐसे पदों पर आरूढ़ होकर संग्रह की और मेल की नीति अवलम्बन करना उचित होता है। कभी-कभी अपना पक्ष शिथिल करना भी उचित होता है।

मेरा निश्चय है कि गुरुकुल का आचार्य पद आप स्वीकार करेंगे तो आपकी सच्ची, निःस्वार्थ सेवा से कुल को अवश्य लाभ होगा।

आपके ज्ञान, ध्यान में बाधा आने की सम्भावना नहीं है। विघ्नविनाशक ईश आपकी सहायता करेगा। निश्चिन्त चित्त से रहिये।

मैं यहाँ कोई दो मास तक रहना चाहता हूँ।

मैं सुख सहित हूँ।

आशा है आप कुशल-पूर्वक होंगे।

आपका
मंगलाकांक्षी
सत्यानन्द

इस प्रकार गुरुजनों की अनुमति प्राप्त करने पर भी मैंने विद्या-सभा से स्पष्ट बातचीत कर लेना उचित समझा। उससे पहले अपनी स्वीकृति नहीं दी। इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार 26-6-35 की विद्या सभा की बैठक में मैंने निम्न वक्तव्य उपस्थित किया:---

"श्रीमान्य प्रधान जी विद्यासभा तथा अन्य सभासद महानुभाव,

आपने मुझे गत अधिवेशन में सर्वसम्मति से आचार्य चुना था। पर अब तक मैं इसे स्वीकार न कर सका था। अब विशेषतया मान्य भाई इन्द्र जी के आग्रह से तथा अन्य गुरुजनों की अनुमति प्राप्त हो जाने से मैंने इसे स्वीकार करने का निश्चय कर लिया है। परन्तु इससे पहले मैं आपसे कुछ स्पष्ट बातें निवेदन कर देना चाहता हूँ जिससे आप मुझे खूब समझ-बूझ कर आचार्य बनायें, मेरे विषय में आपको कोई भ्रम न रहे।

(1) पहिले तो यह कह दूं कि मेरे विषय में यह भारी भ्रम है कि मैं गुरुकुल को चालू राजनीति में घसीट ले जाने वाला हूँ। पर मेरा सदा से यह सिद्धान्त रहा है कि शिक्षा संस्थाओं को चालू राजनीति (Active politics) से सदा जुदा रहना चाहिये। पर यह एक साधारण नियम है। असाधारण अवस्थाओं में अपवाद भी हो सकता है, और विशेषतः हमारे जैसे देश में जो स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहा है। पर उस अवस्था में भी मैं आपकी ही सेवा करूंगा। यदि आपको सहमत न कर सकूंगा तो गुरुकुल छोड़ दूंगा, पर आपकी आज्ञा के विपरीत नहीं चलूंगा।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि गुरुकुल में पूरी-पूरी राष्ट्रीयता (Nationalism) रहनी चाहिये। राष्ट्रीय झंडा फहराता रहना चाहिये। अब तक गुरुकुल में जितनी राष्ट्रीयता है, वह तो कायम ही रहनी चाहिये, बल्कि यदि कहीं कुछ त्रुटि हो तो वह भी ठीक होती रहनी चाहिये।

(2) मैं गुरुकुल के गुरुओं में विद्वत्ता की अपेक्षा आचरण को अधिक महत्त्व देता हूँ कि यदि कभी किसी विषय का विद्वान गुरुकुलीय आदर्श के अनुकूल आचरण वाला उपलब्ध न हो सके तो उस विषय का अध्यापन बेशक स्थगित रखा जाये किन्तु आचरण से हीन विद्वान को न रखा जाये [जैसे कि आज यदि हमें किसी विषय का विद्वान (कल्पना करता हूँ) न मिले तो हम उस विषय के अध्यापन को स्थगित करने को बाधित अनुभव करेंगे]।

(3) एवं किताबी शिक्षा की अपेक्षा क्रियात्मक शिक्षण को अधिक महत्त्व दूंगा। विद्यार्थियों को वेद पढ़ाऊं इसकी अपेक्षा इनका आचरण वैदिक हो, इस पर अपनी शक्ति व्यय करना अधिक पसन्द करूंगा जैसे हम विज्ञान (Science) और आयुर्वेद के विषयों में क्रियात्मक पढ़ाई पर जोर देते हैं, वैसे मैं यह चाहूँगा कि गुरुकुल में जो कुछ किताबें कुलचारी पढ़ते हैं, उसका क्रियात्मक ज्ञान वे पा सकें, उसे क्रिया में लाना सीख सकें, इसका कुछ प्रबन्ध होना चाहिये। इसी उद्देश्य से मैंने गत बार यह प्रथा डालने का यत्न किया था कि ब्रह्मचारी अवकाश के समय में, अपने गुरुओं की पथ प्रदर्शकता में आस पास के ग्राम आदि में जाकर रचनात्मक सेवाकार्य (हरिजन सेवा, चिकित्सा, सफाई, स्वदेशी प्रचार, मद्य-निषेध आदि) की शिक्षा प्राप्त करें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(4) मैं ब्रह्मचारियों में अधिक तपस्या, अधिक सादगी, अधिक आत्मनिर्भरता लाने की सख्त जरूरत समझता हूँ। गत बार स्वयं बर्तन मांजने की प्रथा मैंने इसीलिये डालने का यत्न किया था।

(5) मैं गुरुकुल में साम्प्रदायिकता को नहीं पसन्द करूंगा। मुझे ऐसा कहना प्रिय है कि गुरुकुल में आर्य समाज का नहीं किन्तु वैदिक-धर्म का वायुमण्डल होना चाहिये। आर्यसमाज का भी कहीं उचित स्थान है, पर वह शिक्षा संस्था (गुरुकुल) में नहीं होना चाहिये। गुरुकुल में तो गुरुकुल की साम्प्रदायिकता (अच्छे अर्थों में) होनी चाहिये, जैसे अग्नि में समिधाधान, गुरु द्वारा प्रदत्त यज्ञोपवीत का यथावत् धारण आदि।

(6) मैं यह भी स्पष्ट निवेदन कर दूं कि मेरे जीवन में तीन बातें जुड़ गई हैं, इनको मुझसे जुदा नहीं किया जा सकता (i) आध्यात्मिक प्रवृत्ति (ii) वेद पर विचार व लेखन (iii) तथा गाँधी जी के ढंग से देश सेवा कार्य। इन तीनों में मेरा कुछ न कुछ समय जाना आवश्यक है। शायद आपको मालूम न होगा कि मैं जब गाँधी-सेवा-संघ का आजीवन सदस्य बना तो यह तीनों बातें मैंने जमनालाल जी बजाज* के सामने रखीं और पूज्य गाँधी जी के सामने भी रखी थीं। अध्यात्मिक (योगानुष्ठान) में तो उन्हें कुछ आपत्ति थी ही नहीं किन्तु वेद के विषय में भी पूज्य गाँधी जी ने मुझे लिखा कि वेद का कार्य भी मैं गाँधी-सेवा-संघ का ही कार्य समझता हूँ। उसी तरह मैं आशा करता हूँ कि आप भी यह समझेंगे कि यदि मैं इन तीनों कार्यों को, इनमें मुझ द्वारा सम्बन्ध हुए भाइयों को सलाह और समय देने के रूप में करता रहूँगा तो यह गुरुकुल का ही कार्य होगा। गुरुकुल के ही हित के लिए होगा। यह तो स्पष्ट ही है कि जब मैंने गुरुकुल का कार्य संभाला है तो मैं इन कार्यों को गौण रूप में ही करूंगा, गुरुकुल का कार्य ही मुख्य होगा और यह कार्य अप्रत्यक्ष रूप में उसके सहायक हों इसी प्रकार से करूंगा।

ऐसा कहने की भी इस धार्मिक सभा में आप मुझे इजाजत देंगे कि मैं इस संसार में जिस दृष्टि, दर्शन (Philosophy) से रहता हूँ वह यह है कि यह शरीर, मन, बुद्धि आदि परमेश्वर ने मुझे अपने कार्य के लिये दिये हैं, उन्हीं का काम करने को हैं। आपने मेरी आवश्यकता समझी है तो मैं निरभिमान भाव से आपके पास सेवा के लिए आ गया हूँ। जब मेरी आवश्यकता न रहे तब मुझे कह दीजियेगा, इशारा कर दीजियेगा, मैं दूसरे रूप में सेवा-कार्य करने लगूंगा। अतः यह कहने की जरूरत नहीं कि मैं किसी पार्टी का आदमी नहीं हूँ। मुझे स्नातक पार्टी का या आचार्य रामदेव जी की पार्टी का समझा जा सकता है। पर जिस अर्थ में यह शब्द बोला जाता है, मैं किसी पार्टी का नहीं हूँ, मेरा व्यवहार भी ऐसा ही दीखेगा। वैसे इसमें कुछ शक नहीं कि विद्या सभा बने, सफल होवे इत्यादि विचारों मे तथा गुरुकुल में गुरुकुलत्व रहे, इस सम्बन्धी विचारों में मेरा आप बहुतों से

*पहिले गाँधी-सेवा-संघ के अध्यक्ष जमनालाल जी ही थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकमत है और इन अच्छे अर्थों में उनकी पार्टी का कहा जा सकता हूँ। पर उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में यह शब्द प्रचलित है। अतः गुरुकुल के आचार्यत्व जैसे ऊँचे पद को स्वीकार करते हुए मैं स्पष्टतया घोषित करना चाहता हूँ कि मुझे किसी पार्टी का व्यक्ति समझना बड़ी गलती होगा।

अपना कथन मैंने समाप्त कर लिया है। इस सबको सुनकर, समझकर, जान बूझकर, मुझे आचार्य बनाना स्वीकार करेंगे तो मुझे आपकी आज्ञा मानने में कुछ आपत्ति न होगी।"

23 जून की विद्या सभा में यह वक्तव्य सुना देने और इसकी प्रति सभा के लेखे में रख दिये जाने के भी कुछ समय बाद 16 जौलाई को (गुरु-पूर्णिमा के दिन) मैं गुरुकुल में आ गया। 17 जौलाई को मैंने स्वयं उपवास रखा तथा महाविद्यालय के सब ब्रह्मचारियों ने उपवास रखा। यह उपवास ब्रह्मचारियों को मैंने उस अपराध के प्रायश्चित रूप में कराया था जो कि उन्होंने पं० चमूपति जी के विरुद्ध भूख-हड़ताल करके किया था। यह उपवास सबने प्रसन्नतापूर्वक किया। इसके साथ ही मैंने महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों को प्रेरणा की कि वे अपने जूठे वर्तन स्वयं मांजा करें, जो कि उन्होंने उस समय सहर्ष मान लिया। तभी मैंने उन्हें उपदेश किया।

पिछली बार के आचार्यत्व काल में मैं कई वर्षों से ब्रह्मचारियों को यह समझाता रहा था कि वे स्वेच्छा से नियम अपने पर लें कि वे भोजन थाली और अपने कटोरे स्वयं माँज लिया करें। पर वे मानते नहीं थे। इस तरह के तर्क होते रहे। पीछे से मैंने इसी कार्य के लिए प्रत्येक मंगलवार को उपवास रखना प्रारम्भ किया था। उस दिन "श्रम की प्रतिष्ठा" के सम्बन्ध में चार पन्ने की एक साप्ताहिक पत्रिका अपने हाथ से लिखकर ब्रह्मचारियों को दिया करता था। कई बार मैंने उनके बर्तन स्वयं माँजे या मेरी प्रेरणा से किसी अन्य उपाध्याय या ब्रह्मचारी ने यह कार्य किया। यह सब प्रेम का युद्ध उन्हें यह बात सिखाने के लिए मेरी तरफ से चल ही रहा था, समाप्त नहीं हुआ था कि मैंने गुरुकुल छोड़ दिया था। अतः पुनः आचार्य बनने पर युद्ध का फिर प्रारम्भ होना स्वाभाविक था। पर अब युद्ध की जरूरत नहीं थी। मैंने उन्हें इतना ही कहा था कि मैं तब तक उन्हें साप्ताहिक उपदेश के रूप में नहीं कहूँगा जब तक कि यह पहले इतनी बार कही हुई मेरी बात उन्हें हजम नहीं हो जाती है। ब्रह्मचारियों ने तुरन्त बर्तन माँजना स्वीकार कर लिया और अगले शनिवार तक भी मेरे उपदेश की प्रतीक्षा न करके उसी दिन मेरा उपदेश हो जाने की इच्छा प्रकट की। मैंने भी उनकी सक्रिय और सच्ची इच्छा पूरी की और उसी दिन उन्हें विशेष रूप से उपदेश किया।

मैंने सदा देखा कि मुझे अपने आचार्यत्व निभाने में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की तरफ से कभी कठिनाई उपस्थित नहीं हुई, जो हुई वह सदा ऊपर से गुरुकुल की स्वामिनी सभा की तरफ से हुई। ब्रह्मचारी तो बनने वाले थे, उन्हें गुरु जैसा बनायेंगे वैसे ही बनेंगे। वे यदि बिगड़ते हैं तो वह गुरुओं की लापरवाही से उनकी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ यथोचित ध्यान न दिये जाने से ही यह होता है, उनमें स्वयं अपनी कोई खराबियाँ नहीं होती। यह बात हम अगले प्रकरण में शायद और अधिक अच्छी तरह देख सकेंगे।

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए पाठकों के ध्यान में दो बातें ले आना चाहता हूँ कि इस बार का आचार्यत्व मैंने तब प्राप्त किया जब 1935 के प्रारम्भ में ही मैं दो मास तक पांडिचेरी के श्री अरविंदाश्रम में निवास करके आया था और यह 16 जौलाई (गुरुपूर्णिमा) 1935 पर प्रारम्भ हुआ। पाँचवीं बार का आचार्यत्व 1938 के 13 अप्रैल (कुम्भ) तक चला जबकि मैं स्वामी सत्यानन्द जी के द्वारा देवशर्मा की जगह अभयदेव हो गया।

गुरुकुल माता

गुरुकुल को 'माता' कहते हैं। देश को माता तो बहुत से लोग कहते हैं—भारत माता। और मैंने जब से अच्युत मुनि जी से वह तांत्रिक मंत्र प्राप्त किया तब से "जगन्माता" की तरफ विशेष ध्यान हो गया था। असल में जब परिवार को भावना आती है तो उसमें 'माँ' का स्थान, और शायद सर्वप्रिय स्थान बनता ही है। गुरुकुल में अपने कुल सम्बन्धी उत्सवों के प्रारम्भ में कुल वंदना गाने की और अन्त में कुल गीत गाने की पद्धति भी बन गयी थी। प्रारम्भ में जो कुल वंदना गायी जाती है, वह 'गुरुकुल माता' की ही स्तुति होती है।

यह गुरुकुल के प्रति माता की भावना कुलवासियों में ऊँची और पवित्र प्रेरणा उत्पन्न करती है। कर सकती है यह तो निःसंदेह कहा जा सकता है। पारिवारिक सम्बन्धों में से 'माता और पुत्र का सम्बन्ध' जैसा एक ऊँचाई और पवित्र प्रेम को लिये हुए है वैसा शायद अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है। कम से कम बहुतों के लिए ऐसा ही है। अतएव गुरुकुल में प्रारम्भ से ही जब कुल की भावना आई तो कुल माता, कुलदेवी मान लेने की प्रवृत्ति हुई। मुझे तो यह कुल माता की भावना अच्छी लगती ही थी और वह मंत्र लेने के बाद उसमें एक विशाल भाव आ गया था तथा पांडिचेरी आश्रम से सम्बन्ध हो जाने पर उसमें एक पवित्र प्रेम और भक्ति का भाव भी जुड़ गया और भक्ति का भाव बढ़ गया था। यह बिल्कुल सत्य है कि जब हम कुल को माता करके मानते हैं, उसे एक देवी के रूप में उपास्य समझते हैं तो उसके पीछे एक 'अधिष्ठातृ देवता' आ जाती है, गुरुकुल की एक वैयक्तिक आत्मा की उपस्थिति हो जाती है, जो कि हमारा पथ-प्रदर्शन करती है, हमें संकटों से बचाती तथा ऊँचा ऊँचा उठाती है। अस्तु।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हो गुरुकुल में यह मातृ-भाव कुलपने की भावना के कारण आना सम्भव हुआ है। यदि हम कुलपन न अनुभव करें, पारिवारिक रूप गुरुकुल में न आवे तो माता-वाता कुछ नहीं है। पर यह कुलपना तो गुरुकुल की एक मौलिक विशेषता है, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का एक बहुत आवश्यक अंग है। इसके बिना गुरुकुल नहीं रहेगा।

एक बार गुरुकुल जन्मोत्सव की सभा में प्रो० सेवाराम जी ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को 'कुलभूषण', उपाध्याय अध्यापक आदि सब कर्मचारियों को 'कुल सेवक' तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी को 'कुलपिता' अथवा 'कुलपति' कह कर विभाग किया था। प्राचीन साहित्य में 'कुलपति' शब्द व्यवहृत भी है जो कि आजकल चाँसलर के लिए बोला जाने लगा है। पर 'कुलपिता' में एक माधुर्य है जो कुल माता शब्द से संयुक्त होकर ध्वनित होता है।

गुरुकुल के स्नातकों की तरफ से जब सबसे पहिले 'अलंकार' पत्रिका निकली थी तो मैंने 'नमस्कार' नाम से पहिला लेख दिया था। वह माता को ही नमस्कार था। वह पीछे मेरी 'तरंगित हृदय' पुस्तक का भी पहिला लेख बन गया। पाँडिचेरी आश्रम के एक आर्यसमाजी गुजराती साधक ने जब गुजराती 'तरंगित हृदय' में मेरा यह 'नमस्कार' लेख पढ़ा तो कहने लगे कि आपमें यह माता इतने पहले कहाँ से आ गई? तब मैंने बताया था कि हम तो बचपन से गुरुकुल को माता करके मानते रहे हैं।

गुरुकुल माता का स्मरण कर तथा गुरुकुल की, परिवार की भावना से प्रेरित होकर बहुत से चमत्कारिक कार्य हुए हैं। बहुत से ब्रह्मचारियों ने इससे प्रेरित होकर प्रलोभनों पर विजय पाई है, उनके जीवन का कांटा बदला है, उन्होंने वेग से उन्नति की है।

जब कभी हम लोग 'लड़के' या 'विद्यार्थी' शब्द स्वामी श्रद्धानन्द जी के सामने बोल देते थे तो वे कहते थे "लड़के विद्यार्थी क्या होता है, तुम तो ब्रह्मचारी हो।" जैसे अपने को ब्रह्मचारी (अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त का 'ब्रह्मचारी' तो बहुत ही उदात्त वस्तु है) मानना, कहना हमें ऊँचा उठाता है, उसी तरह कुल, परिवार, कुल माता आदि रूप से ख्याल करना भी हमें अद्‌भुत शक्ति और पवित्रता प्रदान करता रहा है।

तो यह भी स्पष्ट है कि गुरुकुल का अनुशासन और किसी स्कूल का अनुशासन भिन्न प्रकार के होंगे। कई स्कूल कालेजों में पढ़े हुए और वायुमण्डल में पले हुए अधिकारी इस बात को नहीं समझ पाते थे। गुरुकुल में जो गुरुकुल का जन्मोत्सव मनाया जाता था या जो एक विद्यार्थी कुलमंत्री के रूप में चुना जाता था, उसके प्रसंग में यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो सकेगी।

प्रारम्भ में गुरुकुल का जन्मदिन बहुत भाव से मनाया जाता था। तब उसमें कुछ ब्रह्मचारी सच्चे भाव से आलोचना भी कर जाते थे। लोग कहते थे कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मोत्सव पर भाषण कर्त्ताओं की आत्माएँ बोलती हैं पर पीछे से यह बढ़ गया। यहाँ तक कि जन्मोत्सव की सभा में बोलना बदला निकालने का अवसर समझा जाने लगा। कुछ समय बाद जिसमें इस तरह बोलने की छूट हो ऐसा जन्मोत्सव का पारिवारिक भाग जुदा रात को किया जाने लगा, दिन की सभा में बाहर के लोग यथेच्छ सम्मिलित होते थे और वही जनता के लिए जन्म दिन का उत्सव होता था। पं० विश्वम्भर नाथ जी उस रात के पारिवारिक सम्मेलन के विषय में बहुत प्रतिकूल चर्चा किया करते थे। पर मैं उन्हें कहा करता था, इसे रोकने की जरूरत नहीं है। इसे सुधारना बेशक चाहिये। वे श्रद्धानन्द जी तक जाते थे कि उन्होंने ऐसी बुरी प्रथाएं डाल दी हैं—'किस बुरी घड़ी में ऐसी कुल सभायें प्रारम्भ हुईं।'

उस रात की पारिवारिक सभा में पीछे मैंने मुख्याधिष्ठाता जी का उपस्थित होना भी छुड़वा दिया, मैं ही अकेला ब्रह्मचारियों से निपट लेता था। मैं उनकी सब आलोचनाओं का उत्तर दे देता था और साथ में यह भी कहता जाता था कि "इस बात को आज के दिन के लिए रखने की क्या जरूरत थी, जब यह बात हुई थी तभी मुझे कह देते, मैं तो प्रतिदिन ही तुम्हारे पास आकर बैठता हूँ।" दो-चार वर्ष स्वयं कुलमंत्री ने आकर मुझसे कहा कि अब हम रात्रि का पारिवारिक सम्मेलन नहीं करना चाहते। इस तरह यह सम्मेलन स्वयं समाप्त हो गया। हमारे चाँसलर (कुलपति) दीवान बद्रीदास जी ने जब यह सुना कि वह पारिवारिक सम्मेलन अब बन्द हो गया है तो उन्होंने एक चैन की सांस ली। पर उन्हें शायद यह पता नहीं कि इसे कितने धैर्य से, लगन से, सदा प्रेम से समझाते हुवे, इन झंझटों में कोई तकलीफ न मानते हुए यह अवस्था लाई गई कि ब्रह्मचारियों ने स्वयं इसे बन्द कर देना ठीक समझा। मैंने कभी इसे आज्ञा द्वारा बन्द नहीं किया (न करना चाहा), जैसा ऊपर के अधिकारी चाहते थे। मैं अब भी मानता हूँ कि ब्रह्मचारियों को अपने अन्दर की बात जी खोलकर कह सकने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिये। यही एक कुल के (जहाँ माता और पुत्र का सम्बन्ध होता है) तथा स्कूल के [जहाँ केवल पढ़ाने वाले (Teacher) और पढ़ने वाले (Taught) का सम्बन्ध होता है] अनुशासन का भेद है। स्कूली अनुशासन वाले चाहते दीखते हैं कि उनके (अध्यापक के, अध्यापक चाहे जितना असंयमी क्यों न हो) एक हुक्म से विद्यार्थी चुप, शान्त, सीधे, विनम्री हो जाने चाहिये (या कम से कम दीखने चाहियें)।

इसी तरह छोटे बच्चों को शारीरिक दण्ड न दिया जाये, उन्हें पीटा न जाये इस सम्बन्ध में उनके अध्यापक, अधिष्ठाताओं से मेरी बड़ी लम्बी-लम्बी तथा बार-बार की चर्चायें होती थीं। मैं उनके अध्यापक अधिष्ठाताओं को हृदय से यह मानने वाला बना देना चाहता था कि मारने पीटने से कोई वास्तविक लाभ नहीं होता। मुझे याद है कि एक शाखा-गुरुकुल में संध्या करते समय एक अधिष्ठाता डंडा हाथ में लिए घूमते रहते थे कि जिस विद्यार्थी ने मंत्रोच्चारण में जरा आवाज कम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाली कि उस पर दण्ड प्रहार किया। वे इसे ही ठीक गुरुकुलपना समझते थे। शारीरिक दण्ड न देने का नियम करने पर—(i) जिनको दण्ड भय से ही कार्य करने की आदत बन गयी है, उनका क्या किया जाये ? (ii) जब क्रोध आ ही जाता है तब क्या किया जाये ? (iii) एक अध्यापक दण्ड देता है दूसरा नहीं देता, दण्ड देकर कार्य कराने वाला अपने को अधिक सफल दिखा सकता है इत्यादि—बहुत सी सच्ची समस्याएँ उपस्थित होती थीं, लगभग प्रतिदिन उपस्थित होती थीं, पर उनका भी धैर्य से समाधान करना होता था क्योंकि मेरे लिए यह साफ था कि कुल में अनुशासन के कुल-भावना के अनुसार ही चलना चाहिये।

मैंने एक बार एक प्राथमिक विभाग के स्नातक अध्यापक को लिखा था "यह स्पष्ट ही है कि बिना शारीरिक दण्ड दिये काम चलाना चाहिये। परन्तु मैं जानता हूँ कि कई अच्छे-अच्छे सात्त्विक स्नातकों को भी कभी-कभी शारीरिक दण्ड देने के लिए विवश सा होना पड़ता है। यह विवशता मैंने स्वयं अनुभव की है। पर मेरा विश्वास है कि तुम कुछ समय में अपने अनुभव से 'बिना शारीरिक दण्ड दिये नियन्त्रण रखने के' उपायों को ढूंढ निकालोगे। असली बात तो इतनी है कि मन में बच्चों के लिए वास्तविक प्रेम होना चाहिये और बच्चों में न जाने कितनी ऊँची ऊँची आत्माएँ हैं इसका ध्यान बना रहना चाहिये। जब विद्यार्थियों को शारीरिक दण्ड द्वारा ही वश में होने की आदत पड़ चुकी होती है तब उन्हें बिना इसके वश में करना अवश्य कठिन होता है और हमारी नियन्त्रण की नई विधि कुछ काल तक विशेष प्रभावजनक प्रतीत नहीं होती बल्कि विफल होती भी प्रतीत होती है। परन्तु वास्तव में वह प्रयत्न विफल नहीं जाता है और कुछ समय बाद सब ठीक हो जाता हैं।"

बड़े विद्यार्थी तो अन्य प्रकार से विरोध कर सकते थे, बेचारे छोटे, असहायों पर हाथ उठाकर, उन्हें दबा कर कार्य लेना, यह मुझे बिल्कुल असह्य लगता था।

महाविद्यालय के ब्रह्मचारी ऐसा समझते थे कि कोई आचार्य भी किसी बड़े ब्रह्मचारी को गुरुकुल से निकाल नहीं सकता। परन्तु मेरे आचार्य रहने से यह अवस्था दो-एक वर्षों में ही पलट गई। विद्यार्थी जान गये कि मैं जिस विद्यार्थी को निकल जाने को कह दूँ, वह तत्काल गुरुकुल से बाहर हो जाये, इसी में उसका सब प्रकार का भला है। मेरे गुरुकुल छोड़ देने पर एक अध्यापक कहते थे कि यदि आज गुरुकुल में यह खबर फैल जाये कि देवशर्मा जी फिर गुरुकुल के आचार्य हो गये हैं तो केवल इस खबर का ही यह प्रभाव होगा कि आधे अनियम तो उसी समय होने बन्द हो जायेंगे। पर इसका यह अर्थ नहीं कि मेरा कोई आतंक ब्रह्मचारियों पर था। मेरा तो यह सहज विश्वास है कि सख्ती वही मनुष्य कर सकता है, निभा सकता है जो हृदय से सच्चा प्रेम भी करता हो। एक बार एक स्नातक ने मेरे जन्म दिन पर एक लेख लिखा था जिसमें उसने कालिदास के इस श्लोक की मुझ पर (उदाहरण देते हुए) घटाने की चेष्टा की थी—वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दपि । मैं इसे अग्निषोमीय साधना कहा करता था। मेरी सम्मत्ति में गुरुकुल का अनुशासन बहुत भारी प्रेम और बहुत बड़ी दृढ़ता का सम्मिश्रण होना चाहिये।

मैंने जिन-जिन ब्रह्मचारियों को गुरुकुल से निकाला, उन्हें कुछ समय बाद ठीक हो जाने पर रख भी लिया या, कम से कम फिर रख लिये जाने का अवसर अवश्य दिया।

एक बार द्वादश के एक ब्रह्मचारी ने मेरे कमरे में आवेश में अपना यज्ञोपवीत तोड़ कर यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं आपको shoot न कर दूंगा, तब तक यज्ञोपवीत न पहनूंगा। कुछ देर बाद वहीं खड़े-खड़े मुझे कहा कि क्या आप मुझे यह लिखकर देने को तैयार हो सकते हैं कि मैं यदि आपको मार दूँ तो भी आप मुझे क्षमा कर देंगे? तो मैंने तुरन्त एक कागज उठाकर उस पर ऐसा लिखकर "यदि अमुक (उस विद्यार्थी का नाम) मुझे मार दे तो भी उसे कोई दण्ड न दिया जाये, यह मेरी हार्दिक इच्छा है।"—उस विद्यार्थी के हाथ में पकड़ा दिया। यह वह जानता था कि जब मैंने उसे निकाल दिया है तो वह महाविद्यालय आश्रम में रात को नहीं सो सकता। अतः वह ज्वालापुर में जाकर सोया और कई दिन वहाँ फिरता रहा, फिर अपने घर चला गया। उसके घर वाले बताते हैं कि वह छः महीने तक रोता रहा। उसके आँसू बन्द नहीं होते थे। उसकी तरफ से बहुत सी चिट्ठियाँ आने पर छः महीने बाद उसे कुछ शर्तों से मैंने गुरुकुल में पुनः स्थान दे दिया। उसे मेरा प्रेम भी मिला। पीछे से चौदहवीं श्रेणी में उसको मैंने कई अत्यन्त विश्वास के और संकट के कार्य सौंपे जो कि उसने अपनी जान खतरे में डालकर भी पूरे किये। उसको मैंने गुरुकुल से निकल कर जाने की आज्ञा इसलिये दी थी कि उसने एक चोरी की थी, पर जब पूछा गया तो एक झूठी कहानी घड़ कर सुनाई। जब वह मुझे अपनी बात सुना रहा था तब मुझे निःसदेह यह लग गया कि यहाँ से उसने जो सुनाया है, वह बिल्कुल झूठ है। अगले रोज मैंने उसे यह बात कही कि यहाँ से लेकर तुमने सब झूठ कहा है। पर वह नहीं माना। फिर मैंने उसे समय दिया। तब तक नहीं स्वीकार किया तो मैंने उसे गुरुकुल से चले जाने को कह दिया।

ब्रह्मचारी मुझे कहते थे कि मैं बाहर से आता हूँ और आते ही ठीक बात का पता लगा लेता हूँ। पर मैं कह सकता हूँ कि इसमें मेरी कुछ महिमा नहीं है। मुझे परमेश्वर बता देता है या गुरुकुल-माता बता देती है। मेरा सच्चा हृदय होता है, मैं गुरुकुल का हित चाहता हूँ इसलिये मुझे पता चल जाता है।

एक बार दो रसायन के ब्रह्मचारियों ने मिलकर एक उपद्रव (पढ़ाई के कमरे में रासायनिक द्रव्य डाला जिससे पढ़ाई न हो सके) किया। उन दो के सिवाय उसका किसी को पता नहीं था। उन्होंने पीछे से मुझे लिखकर कह दिया 'षट् कर्णो भिद्यते मन्त्रः चतुष्कर्णः स्थिरो भवेत्' इस कारण हमने किसी तीसरे को नहीं बताया था। पर उनके नाम—दो नाम बरामदे में खड़े हुए मेरे सामने स्वयं आ गये। मैंने उन्हें बुलाकर जुदा-जुदा बैठाकर पूछा तो सब बात खुल गई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार चौदहवीं श्रेणी के सब विद्यार्थियों ने परीक्षा का एक पर्चा पता लगाकर बाँट दिया और आपस में प्रतिज्ञा ली कि हम किसी को इस विषय में कुछ नहीं बतायेंगे। उस श्रेणी के एक विद्यार्थी ने प्रतिज्ञा लेते हुए यह कहा "यदि आचार्य जी पूछेंगे तो मैं बताऊँगा, नहीं तो कभी किसी अन्य को कुछ नहीं बताऊँगा।" तो पर्चा उठा लाने वाले विद्यार्थियों ने यह कहकर "आचार्य जी खास तुझसे ही क्यों पूछेंगे" उसकी प्रतिज्ञा भी मान ली। पर हुआ यह कि मुझे पांडिचेरी में ही पता लगा कि परीक्षा के प्रश्न पत्र खुले हैं। गुरुकुल में साढ़े नौ बजे वाली गाड़ी से पहुँचा तो रात को ही अचानक (ऐसा ही मेरे मन में आया) उसी विद्यार्थी को बुलाया जिसने मेरे सिवाय अन्य किसी को न बताने की प्रतिज्ञा की थी। सो मेरे पूछने पर उसने सब बात बता दी। मैंने रात को ही परीक्षा स्थगित कर दी।

इन बातों में मेरी सच्चाई और प्रेम के अतिरिक्त और किसी भी बात का जादू नहीं था।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ शरारतों के लिए प्रसिद्ध था। वहाँ पंचम से दशम तक के विद्यार्थी रहते थे। वह उम्र ही शरारतों की होती है। वहाँ हड़ताल हो जाती रहती थीं। मैं जाता था तो ठीक कर आता था, मैं इनकी हड़तालों की परवाह नहीं करता हूँ अत: किन्हीं की सलाह पर एक बार बड़े (नवम-दशम के) विद्यार्थियों ने किसी बात पर भूख हड़ताल कर दी। मुझे गुरुकुल काँगड़ी में तार मिला। मैंने वहाँ जाकर उन्हें समझाया, नहीं माने, तो यह कहा—अच्छा तुमने उपवास ही करना है तो ठीक प्रकार से उपवास करो, इससे भी लाभ होगा, नींबू का पानी पीते रहो।" इसका प्रबन्ध भी कर दिया और चला गया। गुरुकुल काँगड़ी के एक बड़े विद्यार्थी ने मुझे यह कहा "वहाँ इन्द्रप्रस्थ के विद्यार्थी भूखे मर रहे हैं, आप कुछ भी परवाह नहीं करते, यदि कोई मर जायेगा तो क्या होगा ?" मैंने उसे शांति से कहा 'मुझे सब पता है, मेरे से बिना पूछे वहाँ कोई कैसे मर जायेगा ?" महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों को शनिवार का उपदेश करके चुका था कि वहाँ से खबर आ गई कि इन्द्रप्रस्थ की भूख हड़ताल समाप्त हो गई है सकुशल। तो उस ब्रह्मचारी को भी यह समाचार मैंने कह दिया।

बात यह होती थीं कि विद्यार्थियों को अपनी सच्ची या झूठी, अधिकाँश में झूठी-शिकायतों को पूरा करने के लिए ऐसे ही उपाय अवलम्बन करने की (प्राय: बाहर के स्कूल-कालेजों की नकल में) प्रवृत्ति होती थी। वे हड़ताल आदि के रूप में अपनी संघ शक्ति के बल का सफल उपयोग करना चाहते थे। विद्यार्थियों की संघ शक्ति को जोड़ने का कार्य कुलमंत्री करता था। मैं उन्हें समझाया करता था कि तुम अपनी संघ शक्ति को अच्छे कार्य में क्यों नहीं लगाते ? जब कोई निरर्थक, स्वार्थपरायण आन्दोलन करना हो तब तो कुलमंत्री विद्यार्थियों की सभा बुला लेता है और उसे 'कुलसभा' कहा जाता है पर कोई गुरुकुल हित का, स्वार्थ रहित, रचनात्मक कार्य करने के लिए तुम विद्यार्थियों की सभा कभी नहीं बुलाते।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० विश्वम्भरनाथ जी बहुत सुन्दर कहा करते थे कि "कुलमंत्री यह शब्द ही बताता है कि कोई कुलप्रधान भी है। बिना प्रधान के वह मन्त्री किसका है ?"

इन बातों से ब्रह्मचारी समझ गये थे कि कुल मन्त्री का उत्तरदायित्व बहुत अधिक है। उसका कार्य अधिकारियों के विरुद्ध विद्यार्थियों के आंदोलनों को संगठित करना नहीं है अपितु अधिकारियों के साथ सहयोग करने के लिए विद्यार्थियों को संगठित करना है। इसलिए पीछे अच्छे, सुशील विद्यार्थी को ब्रह्मचारी कुलमन्त्री चुनते थे और उसके भी पीछे तो कुलमन्त्री बनने को ही कोई मुश्किल से राजी होता था।

मेरे जमाने में एक बार कुलमन्त्री का झगड़ा चला था और गुरुकुल के वार्षिकोत्सव तक उसकी गूंज रही थी। उसका वास्तविक कारण उपर्युक्त बात ही थी। एक कुलमन्त्री ने बीच में छोड़ दिया, तो दूसरा कोई बनने को तैयार नहीं होता था, तब एक विद्यार्थी सत्यदेव (जो कि अब तक "कुलमन्त्री" नाम से अन्य सत्यदेवों से भेद करते हुए बोला जाता है) ने अपने को कुलमन्त्री के तौर पर प्रस्तुत कर दिया तो छोड़ने वाले कुलमन्त्री के पक्ष वालों ने विरोध किया। सत्यदेव को पीटा तक गया। पर वह अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहा।

मैं ब्रह्मचारियों की संघ शक्ति को कभी कमजोर करने की बात सोच नहीं सकता था। कई शासक फूट डालना और शासन करना (Divide and Rule की नीति को मानते हैं। मैंने इसे कभी नहीं माना। मैं इसे पवित्र कुल भावना के बिल्कुल विपरीत और विरोधी समझता था। मैंने तो ब्रह्मचारियों की परस्पर फूट हटाने के लिए उपवास तक किया था। पर मैं यह चाहता था कि ब्रह्मचारियों की संघ शक्ति अच्छे, रचनात्मक कार्यों में लगे, निरर्थक तोड़ फोड़ में न लगे।

और केवल ब्रह्मचारियों की संघशक्ति नहीं, किन्तु सारे गुरुकुल की भी संघशक्ति प्रबल होनी चाहिए—यह मैं देखना चाहता था। गुरुकुल-माता के पुत्र केवल ब्रह्मचारी ही नहीं हैं किन्तु बड़े छोटे सेवक भी गुरुकुल माता के पुत्र हैं। ब्रह्मचारी गुरुकुल में चाहे कितनी मुख्यता रखते हों पर वे ही एकमात्र गुरुकुल-माता के पुत्र नहीं हैं, यह बात अच्छी तरह सबकी समझ में आ जानी चाहिए। ब्रह्मचारियों का संघ गुरुकुलमाता के कार्य को पुष्ट करने वाला होना चाहिये, न कि उसका विघातक।

गुरुकुल के 'छोटे' कहे जाने वाले कर्मचारी

एक बार पं० चमूपति जी ने बातचीत करते हुए मेरे घर पर (जिन्हें प्रोफेसर क्वार्टर कहते थे) बैठे हुए किसी प्रसंग में कहा "इन घरों का वह दरवाजा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मीनियल्स (Menials) के लिये है" मैंने उनसे तो नहीं कहा पर 'मीनियल' शब्द मुझे बहुत बुरा लगा, मुझे अब तक बुरा लग रहा है। मेरी कुल-भावना किसी भी गुरुकुल के सेवक को 'मीनियल' कहना सहन नहीं कर सकती थी। वैसे भी 'आत्म-भूत भावना' या गरीबों के साथ सहानुभूति (जो कि गांधी शिक्षा से भी प्राप्त हुई थी) भी किसी को छोटा, नीचा, अधम मानने से विद्रोह करती थी। गुरुकुल—मैं सचमुच मानता हूँ—इन 'छोटे' कहे जाने वाले कुल के सेवकों पर ही खड़ा था। इन छोटे कहे जाने वाले सेवकों में कई 'रत्न' थे। वे चाहे पढ़े-लिखे या ऊँचे रहन-सहन के या धनी न हों, पर वे एक ऊँचे आदर्श से प्रेरित होकर गुरुकुल में आये थे। वे नौकरी तो कहीं और भी कर सकते थे पर वे गुरुकुल में एक आदर्श की (उस आदर्श की व्याख्या भी वे चाहे पढ़े-लिखे लोगों के शब्दों में न कर सकें) सेवा करने की भावना से आये थे, महात्मा मुंशीराम के पागलपन से खिंच कर आये थे। इन्हें ही मैं कहता हूँ कि इन्हीं के आधार पर असल में गुरुकुल टिका हुआ था। तो उनका कुछ वर्णन किये बिना मैं गुरुकुल की कहानी नहीं पूरी कर सकता। कुल-भावना के प्रकरण में भी उन्हें भुलाया नहीं जा सकता।

उनमें एक थे 'गुरु जी।' उनका नाम तो रामजीदास था। पर सब लोग (हम आचार्य मुख्याधिष्ठाता भी) उन्हें 'गुरुजी' नाम से जानते थे। यह नाम उन्हें इसलिए मिला था कि कुछ छोटे, नौकर-चाकरों को वे पढ़ाते भी रहे थे और उन द्वारा 'गुरुजी' कहाते थे। कहते हैं कि श्री राधाकृष्णन (जो कि भारत के उप-राष्ट्रपति भी रहे हैं, गुरुकुल में मेरे काल में दीक्षान्त भाषण भी दे चुके हैं) मामूली दर्शक के रूप में जब पहिली बार गुरुकुल में आये थे तो उन्होंने स्वभावतः पूछा 'यहाँ के गुरुजी कहाँ हैं ?' (गुरुकुल में जिसका वह कुल है कोई गुरु ही होगा, मुख्या-धिष्ठाता या आचार्य नाम से उसे यहाँ बोला जाता है यह राधाकृष्णन क्यों कल्पना करते) तो उन्हें इन्हीं 'गुरुजी' अर्थात् रामजीदास जी के सामने खड़ा कर दिया गया था। मैं मानता हूँ कि अच्छा ही हुआ कि राधाकृष्णन जी को रामजीदास जी के दर्शन हो गये।

सो इन गुरुजी ने (रामजीदास जी ने) सच्चे अर्थों में गुरुकुल को जीवन दे रखा था। उनसे गुरुकुल कुछ भी कार्य करवा लेवे, वे उसके लिए तैयार थे। साधारणतया मजदूरों से कार्य लेने का कार्य उनके जिम्मे आ पड़ा था। उसे वे अन्तिम दिन तक करते रहे। वे गुरुकुल के भंडार में भोजन कर लेते थे और वे गुरुकुल से कुछ नहीं चाहते थे। पीछे से उन्होंने तीन रुपये मासिक लेना और स्वीकार कर लिया था जिससे छोटे-मोटे खर्चे के लिए उन्हें दिक न होना पड़े। ऐसी ब्रह्मचारियों की बहुत सी श्रेणियाँ गुजरी हैं जिन्होंने प्रथम श्रेणी से लेकर चौदहवीं और पन्द्रहवीं श्रेणी तक गुरुजी को उसी तरह सफेद दाढ़ी वाले, नाटे कद के, त्यागी, निरहंकार, सदा प्रसन्न चेहरा गुरुकुल की सेवा करते जाते देखा है। एक बार की बात मुझे नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूलती। एक ब्रह्मचारी शायद शाम की संध्या हवन की घंटी का समय जानने के लिये दफ्तर के सामने आया, वहाँ गुरुजी को खड़ा देख कर उनसे ही पूछ लिया 'गुरुजी क्या बजा है?' तो गुरुजी बोले 'घबराओ नहीं धीरे-धीरे सब बज जायेंगे।' उनके इस वाक्य में उनके सदा प्रसन्न कर्त्तव्यपरायण रहने की कुंजी छिपी मुझे दीख गयी थी।

एक 'भगवन्' थे। उनका नाम तो कुछ और होगा। पर हम उन्हें 'भगवन्' ही कहकर पुकारते थे, क्योंकि वे जिसके पास जाकर बोलते थे उसे 'भगवन्' सम्बोधन करके बोलते थे। उन्हें पीछे से गुरुकुल से हटा दिया गया था, ऐसा सुना है। ऐसे सच्चे आदमी कुछ अक्खड़ भी प्रायः होते हैं अतः हो सकता है कि उन्हें निकाल दिया गया हो। तब वे हरिद्वार में ही तांगा चलाने का कार्य करने लगे थे और प्रायः अपना तांगा लेकर गुरुकुल भी पहुँच जाते। एक बार काशी के पं० गोपाल शास्त्री दर्शन केसरी (जिन्होंने अपना पुत्र मेरे समय में गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट कराया था) भी उन 'भगवन्' जी के तांगे पर कहीं चढ़े थे पर भगवन् जी ने उन्हें गुरुकुल की लगातार स्तुति ही सुनायी थी। (यद्यपि बातों में उन्होंने गुरुकुल से उन्हें पृथक् कर दिया गया है, यह भी बता दिया था) मुझे तो दर्शन केसरी जी ने यह बात गुरुकुल की बड़ाई में सुनायी थी कि गुरुकुल से निकाले लोग भी (तांगे वाले) जिस गुरुकुल की स्तुति करते हैं, वह गुरुकुल अवश्य धन्य है। पर मेरी समझ में यह 'भगवन् जी' की बड़ाई है, स्तुति है। साधारण लोग तो जरा सी अपनी पसंद से विपरीतता होने पर निन्दा ही करने लगते हैं पर भगवन् जी उन साधारण लोगों में नहीं हैं। फिर भी जो बातें मैं भगवन् जी की बताना चाहता हूँ वह यह है कि ये 'भगवन्' जी ब्रह्मचारी थे और ब्रह्मचर्य का प्रचार करते थे तथा संस्कृत पढ़ने के इच्छुक थे, इसीलिये गुरुकुल में आये थे।

एक मुरलीधर थे। वे भी ब्रह्मचारी रहने की उमंग से गुरुकुल आये थे। वे मेरे पास (आचार्य के चपरासी के तौर पर) रहते थे। मैंने जो अपनी गौ रखने का उल्लेख चौथे प्रकरण में किया है, वह उन्हीं के भरोसे रखी थी। मुरलीधर जी गौ की पूरी सेवा करते थे।

हमारा 'झण्डू' था जिसने बीसियों बरस तक पढ़ाई की घंटी बजाई है। उस पर लेख लिखने को तो अनेकों स्नातकों के मन में आया था। वह गाजीवाली ग्राम से रोज आता जाता एकरस योगी सा था।

'जीवन' नाम के भोजनशाला के एक कर्मचारी थे जिन पर बहुतों की दृष्टि खिचती थी। उनके पुत्र को लोगों ने उच्च शिक्षा तक दिलायी थी।

एक सूचीकार (दर्जी) थे, जो ब्रह्मचारियों से गीता आदि पढ़ते रहते थे। मैंने विद्यार्थी काल में उन्हें गीता के श्लोक के अर्थ बताये हैं। उनका पुत्र भी गुरुकुल का एक योग्य स्नातक बना है। एक गुरुकुल में द्वारपाल थे, वे जाते-आते विद्यार्थियों से संस्कृत पढ़ते थे, बड़े लगन के थे, पीछे शास्त्री पास हुए थे। उनसे मेरी भेंट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावलपिंडी आर्य समाज में उसके वे पुरोहित जी के रूप में हुई थी। एक पद्मगिर थे जो फुर्सत के समय में सितार जैसा बाजा बजाया करते थे।

ये तथा और ऐसे ही गुरुकुल के छोटे सेवक थे जो आदर्श से खिंचकर गुरुकुल में आये थे और वस्तुतः 'कुल' के सेवक थे।

गुरुकुल की सफाई करने वाले सेवकों (जिन्हें हम 'भंगी' कहते हैं) से भी मेरा विशेष संबंध रहा है। एक समय जब गुरुकुल कांगड़ी की आर्य समाज में भी हाजिरी होने लगी तब मैंने समाज के अधिकारियों से कहा कि यहाँ एक घंटा भजन व्याख्यान सुनने की जगह (ये सत्संग तो प्रति सप्ताह मैं ब्रह्मचारियों के साथ कर ही लेता हूँ) मुझे गुरुकुल के हरिजनों में एक घटा कार्य करने की अनुमति दीजिये, वह आर्य समाज की ही एक सक्रिया सेवा है। तब से मैंने प्रति सप्ताह गुरुकुल के हरिजनों के स्थान पर जाना प्रारम्भ कर दिया था। मैंने देखा कि उन पर बहुत कर्ज है। उसे उतारने में मैंने बहुत परिश्रम किया था। 'गुरुकुल'पत्र में इस विषय पर एक लेख भी लिखा था। उनमें अन्य जो कुरीतियां तथा व्यसन थे, उनसे मेरा तभी परिचय हुआ था।

इन छोटे कर्मचारियों की आर्थिक दशा देख कर ही मैंने सोचा था कि गुरुकुल में कम से कम वेतन की भी एक सीमा होनी चाहिये। मैं जो पच्चीस रुपये मासिक वेतन लेता था वह इसलिये था क्योंकि मेरी सम्मति में उन दिनों यही कम से कम वेतन था जो कि किसी को दिया जाना चाहिये। गुरुकुल में (जैसे कि हमारे समाज में, और गुरुकुल को समाज के लिए क्रियात्मक आदर्श उपस्थित करना ही चाहिये) अधिक से अधिक और कम से कम वेतन में बहुत अन्तर नहीं होना चाहिये। भौतिक आवश्यकताएँ तो प्रत्येक शरीरधारी की एक समान ही होती हैं, वे सबकी ही पूरी होनी चाहियें। अधिक से अधिक 75 रुपये की जब मैं बात करता था तो उपाध्याय जो तब 150 रुपये पाते थे बहुत उखड़ते थे। मुझे यह बात कभी समझ में नहीं आयी कि गुरुकुल के ही एक स्नातक को जब वह विद्यालय में अध्यापक हो, 50, 60, 80 रुपया मिले, और वही गुरुकुल का स्नातक जब उपाध्याय हो तो उसे 150 रुपये मिलें। मेरी दृष्टि में तो छोटों को पढ़ाने वाले अधिक योग्य व्यक्ति होने चाहियें। मैंने एक बार एक स्नातक अध्यापक से पूछा कि तुम्हारा वेतन भी उपाध्यायों जितना हो जाय तो तुम क्या करोगे ? उसने चट से कहा कि हम भी हर की पौड़ी पर जाकर चाट आदि खूब खा लिया करेंगे। आर्य समाज के वर्णाश्रम धर्म के अनुसार तो जो शूद्र और वैश्य हैं, उनके यहाँ ही अर्थ की महत्ता है, क्षत्रिय, ब्राह्मणों में जो महत्ता है वह आंतरिक महत्ता है, भौतिक नहीं। बड़प्पन से रुपयों-पैसों को नापना यह बिगड़ी हुई भारतेतर सभ्यता से हमने सीखा है। भौतिक, शारीरिक अवस्थाएँ तो सबकी समान हैं, उसमें छोटे-बड़े का भेद बनावटी है, अतः भौतिक वेतन भी सबका समान ही क्यों नहीं होना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार दूधली ग्राम के एक संरक्षक (जो आकर मेरे यहां ही ठहरा करते थे) रो पड़े थे। कारण पूछने पर पता लगा कि उनका पुत्र (जो हमारे गुरुकुल के महाविद्यालय का ब्रह्मचारी था और हाकी का खिलाड़ी था) उनसे हॉकी माँगता है जो कि तीन रुपये में मिलती है पर उनके पास तीन रुपये नहीं हैं। तभी मैंने 'खेल, व्यायाम और श्रम' पर उपदेश दिया था जो पीछे कई समाचार पत्रों में छपा था।

भाग्य के कारण कहो, समाज रचना में एक विशेष प्रकार का अंश होने के कारण कहो, यदि किसी को कम वेतन मिलता है या कोई गरीब है, उसी कारण उसे छोटा समझना मुझसे नहीं होता था, जैसे कि इसके विपरीत प्रकार के व्यक्ति को 'बड़ा' समझना भी नहीं होता था। छोटा बड़ा अन्दर की आत्मा के (या मन प्राण के) क्षुद्र या विशाल होने से होता है। वैसे एक आदर्श के प्रेरित सभी कुलवासी समान हैं, एक बराबर हैं। आचार्य गुरुकुल-माता का वैसे ही एक पुत्र है जैसे कि एक ब्रह्मचारी या सफाई करने वाला गुरुकुल का एक सेवक।

गुरुकुल—एक प्रमुख राष्ट्रीय विद्यालय

मैं गुरुकुल को राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में प्रमुख इसलिए कहता हूँ क्योंकि वह उस जमाने में एक महान् आदर्श के द्रष्टा (ऋषि) द्वारा देखी जाकर बनायी गयी थी जबकि साधारण लोगों के लिए स्वप्न में भी सरकार से असम्बद्ध शिक्षणालय चलाना सोचना मुश्किल था। महात्मा मुंशीराम को कई बार लाखों रुपयों का प्रलोभन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सरकार द्वारा दिया गया, पर उसने उस जाल में फंसने से सदा इन्कार किया। उसने परमेश्वर पर भरोसा रखा, गरीब भारतीय जनता के आगे दर-दर फिरते हुए झोली पसारना स्वीकार किया पर सरकारी रुपयों की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। उस समय में चारों तरफ के घोर अन्धेरे और तूफान के बीच में राष्ट्रीय शिक्षा की इस ज्योति—गुरुकुल—को जलाये रखना महात्मा मुंशीराम जैसे तपस्वी तथा उनके कुछ विरले साथियों का ही काम था। अन्य राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएं तो गुरुकुल से लगभग आधी शताब्दी बाद उत्पन्न हुईं जबकि एक दूसरे महात्मा ने जन्म लेकर देश में असहयोग आन्दोलन चलाया था।

हमें याद है कि एक बार (यह 1915 की बात होगी) गुरुकुल के उत्सव पर अपने व्याख्यान में महात्मा मुंशीराम ने, यह कहते हुए कि लोग चर्चा करते हैं कि हमें चार्टर्ड यूनिवर्सिटी चाहिये, नीचेका वेदमन्त्र व्याख्या सहित प्रस्तुत कर अपने प्रभावोत्पादक ढंग से बताया था कि मेरे पास विदेशी सरकार का बेशक चार्टर नहीं है पर वेद का चार्टर तो यह है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनां। धिया विप्रो अजायत।" ऋ० 8। 6। 28॥ इस उत्सव पर महात्मा मुंशीराम जी के इस भाषण की विशेष चर्चा थी और यह वेदमन्त्र बहुतों की जिह्वा पर था।

अत: यदि वे दूसरे महात्मा (गाँधी जी) गुरुकुल को 'देश का जड़ से सुधार करने वाली संस्था' कहा करते थे तो इसमें क्या आश्चर्य ?

सन् 1930 और 1931 में जाकर यह हुआ कि देश की राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं को एक सूत्र में बाँधे जाने की आवश्यकता अनुभव की गयी। सर्वप्रथम 13, 14, 15 जनवरी 1930 को अहमदाबाद में गाँधी जी के नेतृत्व में गुजरात विद्यापीठ के आमन्त्रण पर एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् बुलायी गयी। उसमें जिन बारह राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं को सम्मिलित होने का आमन्त्रण देना स्वीकार किया गया, वे निम्न थीं :—

(1) गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
(2) काशी विद्यापीठ, अटक
(3) बिहार विद्यापीठ, पटना
(4) तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना
(5) जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली
(6) गुरुकुल कांगड़ी
(7) गुरुकुल वृन्दावन
(8) कन्या महाविद्यालय, जालंधर
(9) प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन
(10) दक्षिणा मूर्त्ति विद्यार्थी-भवन, भावनगर
(11) बंगीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्, कलकत्ता
(12) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

अहमदाबाद में जो यह प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् तीन दिन तक हुई, उसमें प्रतिदिन नये सभापति रखे गये—प्रथम दिन काका कालेलकर, द्वितीय दिन आचार्य नरेन्द्र देव, तृतीय दिन देवशर्मा (मैं)। उस परिषद् की जिस बात का उल्लेख करना गुरुकुल की दृष्टि से मैं आवश्यक समझता हूँ, वह यह है कि उसमें प्रारम्भ में ही राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं का क्या कार्य हो, इस विषय का एक प्रस्ताव रखा गया। उस प्रस्ताव में 'स्वराज्य के सैनिक या स्वराज्य परायण सेवक' तैयार करना राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं का कार्य बताया गया था। मैंने एक रूप से इस प्रस्ताव का विरोध किया, मोटे तौर पर राजनैतिक स्वराज्य, आर्थिक स्वराज्य और सांस्कृतिक स्वराज्य ये तीन भेद स्वराज्य के करते हुए मैंने कहा कि स्वराज्य का अर्थ केवल राजनैतिक या आर्थिक स्वराज्य है तो गुरुकुल इसका विरोध करता है। गुरुकुल इसे तभी मान सकता है जबकि स्वराज्य का अर्थ सांस्कृतिक स्वराज्य भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। जब मैं भाषण कर रहा था तभी हमारी सभा में महात्मा गाँधी जी पधार गये और उन्होंने भी मेरे भाषण की बात सुनी थी। अतएव उन्होंने अपने भाषण में इसे लिया और स्पष्टतया कहा कि बस्कृतिक स्वराज्य ही मुख्य वस्तु है। उस दिन के सभापति काका साहब ने तो मेरे समाप्त करने पर इतना ही कह दिया था 'हाँ, सांस्कृतिक स्वराज्य की बात यह परिषद् मानती है।' पर गाँधी जी ने इस संस्कृति की बात को विस्तार से कहा था।

मार्च 1936 में 'अर्जुन' का एक विशेषांक 'गुरुकुलाङ्क' नाम से निकला था। उसमें मैंने एक लेख 'गुरुकुल और राष्ट्रीय शिक्षा' इस शीर्षक से दिया था। उस लेख में मैंने उपर्युक्त बात (सांस्कृतिक स्वराज्य की) लिखी थी। वहाँ श्री जाकिर हुसैन साहब के एक कथन का जवाब भी दिया था। 'जामिया मिलिया इस्लामिया' के श्री जाकिर हुसैन साहब ने (जो कि मेरे समय में अपने विद्यार्थियों सहित गुरुकुल में पधारे थे और वहाँ कई दिन हमारे ब्रह्मचारियों के साथ हिल मिल कर रहे थे) ऐसा कुछ कहा था कि गुरुकुल राष्ट्रीय शिक्षा संस्था नहीं है। मैंने अपने लेख में बताया था कि गुरुकुल अवश्य ही 'असहयोग आन्दोलन' की उपज नहीं है। उसकी नींव बहुत गहरी है। उसकी नींव भारतीय संस्कृति में है। गुरुकुल की ब्रह्मचर्य, वैदिक संस्कृति आदि विशेषताएँ भारत संस्कृति की ही चीजें हैं। अतः गुरुकुल बहुत गहरे अर्थ में राष्ट्रीय संस्था है। इसीलिये इतने वर्षों से, इतनी विपरीत अवस्थाओं में भी सफलता पूर्वक चलता रहा है।

अहमदाबाद की उस राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् में द्वितीय प्रस्ताव जो स्वीकृत हुआ वह यह था :—

"इस परिषद् की राय में अब वह समय आ गया है जबकि राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार करने और उसके मार्ग में आने वाली प्रत्येक प्रकार की बाधाओं को दूर करने के लिए एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था स्थापित की जाये जिसमें देश की समस्त गैर सरकारी शिक्षा संस्थाओं के प्रतिनिधि रहें।"

"अतः यह परिषद् नीचे लिखे सज्जनों की एक उपसमिति नियत करती है और उसे आदेश करती है कि वह एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा मण्डल की योजना तैयार करके काशी में होने वाली अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् में स्वीकृति के लिए उपस्थित करे। समिति के सदस्य ये सज्जन हैं : श्री काका कालेलकर, श्री नरेन्द्रदेव, श्री देवशर्मा, श्री नृसिंह भट्ट, श्री जुगलकिशोर, श्री रा०ग० हर्षे, श्री छगनलाल जोशी, श्री राम निरीक्षण सिंह, श्री कन्हैयालाल।"

"समिति को अधिकार होगा, कि वह समिति में दो सदस्य और बढ़ा ले।"

इस उपसमिति में मैंने पूरा और सक्रिय भाग लिया। इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट वहीं अहमदाबाद में ही तीसरे दिन दे दी। मंडल के संगठन के सम्बन्ध में मोटी-मोटी बातें निश्चय करने के बाद उपसमिति की यह भी राय हुई कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डल की स्थापना तुरन्त हो जानी चाहिये, इसके लिए परिषद् के आगामी अधिवेशन तक ठहरने की आवश्यकता नहीं।

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं को एक सूत्र में बाँधने वाले इस स्थायी 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा मण्डल' के उद्देश्य निम्न प्रकार रखे गये :—

क:—राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार।

ख:—राष्ट्रीय संस्थाओं के स्नातकों की सूची रखना और उन्हें राष्ट्रीय कार्यों में लगाने का प्रयत्न करना।

ग:—पाठ्य पुस्तकों के निर्माण की व्यवस्था और सुविधा करना।

घ:—भिन्न संस्थाओं के बीच अध्यापकों के परिवर्तन की सुविधा करना।

ङ:—राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार और राष्ट्रीयता संस्थापित करने के लिए अन्य आवश्यक कार्य करना।

इस मण्डल में प्रतिनिधित्व के लिये यह निश्चय हुआ कि विश्वविद्यालय या महाविद्यालय के दर्जे की शिक्षा संस्थाओं का एक-एक प्रतिनिधि इसमें लिया जाये। यह भी निश्चय हुआ कि सम्मिलित होने वाली प्रत्येक राष्ट्रीय शिक्षा संस्था मण्डल को वार्षिक पचीस रुपये दिया करे।

अन्त में इन शिक्षा संस्थाओं द्वारा चुनकर आये हुए प्रतिनिधियों को यह अधिकार दिया गया था कि वे चार अन्य सदस्य अपने में सम्मिलित कर लें।

इस प्रकार इस राष्ट्रीय शिक्षा मण्डल का अप्रैल 1931 में ही संगठन हो गया जिसके निम्न बारह व्यक्ति सदस्य हुए :—

1	आचार्य नरेन्द्र देव	(काशी विद्यापीठ के प्रतिनिधि)
2	काका कालेलकर	(गुजरात विद्यापीठ के प्रतिनिधि)
3	राम निरीक्षण सिंह	(बिहार विद्यापीठ के प्रतिनिधि)
4	देवशर्मा	(गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिनिधि)
5	आचार्य जुगल किशोर	(प्रेम महाविद्यालय के प्रतिनिधि)
6	श्री सत्यनारायण जी	(द.भा. हिन्दी प्रचार सभा के प्रतिनिधि)
7	....	(तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ के प्रतिनिधि)
8	....	(दक्षिण मूर्त्ति के प्रतिनिधि)
9	बाबू राजेन्द्र प्रसाद	
10	श्री शिव प्रसाद गुप्त	
11	आचार्य रामदेव	उपर्युक्त प्रतिनिधियों द्वारा चुनकर लिये गये 4 व्यक्ति
12	....	

27 अगस्त 1931 को काशी विद्यापीठ में इस मण्डल की प्रथम बैठक हुई थी। उसमें मैं उपस्थित हुआ था। आचार्य रामदेव जी नहीं आ सके थे।

इन राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में ग्राम सेवा-शिक्षा का पाठ्यक्रम आदि बताने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए एक उपसमिति बनायी गई थी जिसके एक सदस्य 'गुरुकुल कांगड़ी के गांधी अर्थशास्त्र के अध्यापक' भी रखे गये थे।

1934 में गुरुकुल से निवृत्त होने के बाद मैंने तथा स्नातक भीमसेन जी ने मिल कर लाहोर से 'अलंकार' पत्रिका फिर से प्रारम्भ की थी। 'फिर से' इसलिए कहा कि यह पत्रिका चार वर्ष और पाँच महीने श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार के सुयोग्य सम्पादकत्व में पहिले निकलती रह चुकी थी, बाद में बन्द हो गयी थी। पर पहले यह गुरुकुल के स्नातकों की पत्रिका के रूप में निकलती थी। अब हमने इसे राष्ट्रीय शिक्षालयों की पत्रिका के रूप में अधिक बड़े आकार में तथा नये रंग ढंग में निकाला था। इसमें एक स्थिर स्तम्भ 'हमारे राष्ट्रीय शिक्षणालय' नाम से रहता था जिसमें जहाँ गुरुकुल कांगड़ी या उसकी शाखाओं के समाचार व विवरण होते थे, वहाँ काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ आदि के मासिक समाचार भी प्रकाशित होते थे। आचार्य नरेन्द्रदेव जी, काका कालेलकर आदि अन्य विद्यापीठों के आचार्यों के लेख भी यत्न पूर्वक प्राप्त किये जाते थे। पर यह पत्रिका हमें नौ महीने बाद ही बन्द करनी पड़ी थी, क्योंकि सरकार ने 'सावरकर' पर प्रकाशित एक लेख के कारण जमानत मांग ली थी। इस पत्रिका का एक विशेषांक हमने 'श्रद्धानन्द अंक' के रूप में प्रकाशित किया था जिसमें देश भर के नेताओं द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति श्रद्धांजलि दी गयी थी। शायद स्वामी श्रद्धानन्द पर लिखे गये सन्देशों व लेखों का इतना सुन्दर संग्रह और कहीं नहीं मिल सकेगा। हमारा विचार एक और विशेषांक निकालने का था जो कि 'राष्ट्रीय शिक्षणालयों के स्नातक कैसे अपनी आजीविका करें ?' इस विषय के लेखों का होना था। उसका विज्ञापन भी हमने कर दिया था। पर सरकार नहीं चाहती थी कि यह पत्रिका आगे चले।

गुरुकुल के राष्ट्रीय शिक्षा संस्था होने के नाते मैं यह भी सूचित कर दूं कि मैं गुरुकुल में अन्य धर्मावलम्बियों के बालकों को भी प्रविष्ट करने को सदा तैयार था। एक बार बिहार के डा० सैय्यद महमूद से बातचीत करते हुए मैंने उनके बालक को गुरुकुल में प्रविष्ट करने की तथा उन्होंने उसे भेजने की बात कर ली थी। इसी प्रकार एक बार सहारनपुर के मुसलमान मित्र (नाम इस समय याद नहीं आ रहा) के बालक को भी प्रविष्ट कर लेने का मैंने वचन दे दिया था। दोनों को ही मैंने यह आश्वासन दिया था कि मैं आपके बालकों को 'नमाज पढ़ना' भूलने नहीं दूंगा।

एक बार कलकत्ता यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर (एक मुसलमान सज्जन) अचानक गुरुकुल में पधारे। जब उनके विजिटिंग कार्ड (visiting card) पर 'वाइस चांसलर' लिखा मैंने पढ़ा तो मैं उन्हें प्रेम से अन्दर लिवा लाया और बातें कीं। बल्कि उसी समय एक विशेष सभा करके ब्रह्मचारियों में उनका भाषण कराया। हमें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वे अपने भाषण में ऐसे ऐसे संस्कृत के शब्द बोलते थे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हम भी अपनी बोली में नहीं बोलते। तब हमें अनुभव से पता लगा कि बंगाली मुसमान भी कितनी संस्कृतनिष्ठ भाषा बोलते हैं। अन्त में विदा होते हुए उन्होंने मुझे यह भी बताया कि मुझे तो यह कहा गया था कि तुम्हें मुसलमान होने के कारण वहाँ गुरुकुल में घुसने भी नहीं दिया जायेगा, पर यहाँ तो मैंने उल्टा ही देखा।

एक बार लाहौर के नेशनल मैडिकल कालेज के विद्यार्थियों को हमने गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेदिक कालिज में कुछ महीने कुछ विषय (शरीर विज्ञान तथा शवच्छेदन) पढ़ने की अनुमति दे दी थी। वे पढ़ाई के समय गुरुकुलीय ब्रह्मचारियों के नियत वेश में आते थे। उनमें भी सब सम्प्रदायों (मुसलमान, सिक्ख) के विद्यार्थी थे।

जामिया मिलिया इस्लालिया के विद्यार्थी तथा अध्यापकों में गुरुकुल में आकर रहने की बात मैं ऊपर लिख ही चुका हूँ। पर इतना ही नहीं किन्तु मेरे समय में दूसरे देशों के बालक भी गुरुकुल में प्रविष्ट होने प्रारम्भ हुए थे। एक 'राम' नामक बालक जिसकी माता अमेरिकन थी और जिसके पिता सीलोन (लंका) के सुप्रसिद्ध डाक्टर आनन्द कुमार स्वामी थे, गुरुकुल के प्राथमिक विभाग में डेढ़ साल तक पढ़ता रहा है। उसकी अमेरिकन माता भी उन दिनों गुरुकुल में रहती रही थीं। उसी के उच्चारण के अनुसार अन्य भी उस बालक को 'रामा रामा' ही पुकारते थे।

एक पोलैंड की महिला (जिनका भारतीय नाम 'उमा' था) भी कई बार गुरुकुल में आकर रहती रही हैं। मुझसे खूब परिचित थीं।

हालैंड के श्री केरियर (जिन्होंने अपना नाम अपनी रुचि से उपेन्द्र रखा था) लगभग आठ वर्ष तक गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की तरह पीली धोती पहन कर, शिखा और यज्ञोपवीत धारण करके रहते रहे हैं। वे गुरुकुल के एक विद्यार्थी (अब स्नातक आयुर्वेदालंकार) श्री सुरेन्द्र जी के घनिष्ठ मित्र थे। लगभग 1922 में गुरुकुल पहुँचे थे और 1930 में अपनी वृद्धा माता को (जिनका आपरेशन होने वाला था) देखने के लिए हालैंड वापिस गये थे। उनका शीघ्र लौटने का इरादा था पर वापिस नहीं आ सके। मेरा अनुमान है वे नाजियों द्वारा मारे गये। उनका फोटो तथा सुरेन्द्र जी के नाम हालैंड से आये उनके हिन्दी में और अंग्रेजी में पत्र हमने 'अलंकार' में प्रकाशित किये थे। वे मुझसे भक्ति पूर्वक योग भी सीखते रहे थे। उन्होंने हालैंड जाकर एक पुस्तक डच भाषा में लिखी थी जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'A wanderer from sea to sea' नाम से हुआ था और जो मुझे भेजी गयी थी। उसमें लिखा है कि दस वर्ष भटकने के बाद उन्हें कैसे गुरुकुल में शान्ति मिली। उस पुस्तक का पिछला आधा भाग लगभग उनके गुरुकुल वास पर ही है। उसमें स्वामी श्रद्धानन्द जी पर भी एक अध्याय है तथा उसमें 'My Guru' करके जो लिखा है, वह मेरा उल्लेख है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अब तो देश में अपनी सरकार हो चुकी है अतः अब तो सभी शिक्षणालय राष्ट्रीय माने जायेंगे। तो अब भी गुरुकुल की क्यों आवश्यकता है और उसका भविष्य क्या होना चाहिये, इस विषय पर मैंने 1937-38 में देश में कांग्रेसी सरकार बनने पर तीन लेख 'गुरुकुल' पत्रिका में लिखे थे जिनका सामान्य शीर्षक 'कांग्रेसी सरकार में गुरुकुल की स्थिति' यह था। इसका तीसरा लेख 'गुरुकुल प्रणाली का भविष्य' 7 जनवरी 1938 के अंक में छपा है। इस विषय में रुचि रखने वाले भाइयों को मैं वह लेख अद्योपांत पढ़ने की सलाह दूंगा। संक्षेप में, उसका जो चित्र मेरे सामने खिंचा है, वह यह है कि भारत के प्रत्येक ही ग्राम में एक स्थानीय गुरू के अधीन (सरकारी या गैर सरकारी) एक विद्यालय (गुरुकुल) होगा। प्रत्येक जिले में कई गुरुकुल महाविद्यालय (कालेज) होंगे। पर प्रत्येक राज्य में कम से कम एक विशेष गुरुकुल होना चाहिये जो कि मुख्यतया शिक्षक तैयार करने का कार्य फिर एक केन्द्रीय गुरुकुल ऐसा होना चाहिये जो कि अपनी स्वराज्य सरकार के भी अधीन न हो और जिसमें गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की चारों विशेषताएं आदर्श रूप में विद्यमान हों और जो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का संसार के लिए एक पूर्ण नमूना हो।

पिटते पिटते बचा

यह कहने की तो जरूरत ही नहीं कि मैं यह सब सेवा कार्य, यह सब सभाओं में भी भाग लेना अपनी तरफ से योग-साधना, कर्मयोग की साधना रूप में कर रहा था। परन्तु अपना निजी अभ्यास, भजन, ज्ञान-ध्यान (जैसा कि स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने लिखा था 'आपके ज्ञान-ध्यान में बाधा नहीं आवेगी') भी प्रातः या रात को करता ही था। इन दिनों मैंने बिहार के एक सन्त श्री ठाकुर दीपनारायण सिंह जी से महामन्त्र लेकर उसका अभ्यास भी कर डाला था। हमारे एक ब्रह्मचारी के पिता शाहजहाँपुर के पुराने एम. एल. ए. श्री साधु सिंह भी उनके भक्त थे। उन्हीं की इच्छा से उन्हीं के द्वारा मैं श्री दीपनारायण सिंह जी से मिला था। वे योग द्वारा बीमारी का इलाज करते थे। साधुसिंह जी स्वयं अच्छे हुए थे। मेरे भेजे भी कई मरीज उनके पास रहे थे। ये गला दबा कर मरीज को देखते थे। कहते थे कि ऐसा करने से मुझे उस आदमी में कहाँ किस तत्त्व की कमी है, यह पता लग जाता है और मैं वहाँ उसी की पूर्ति कर देता हूँ। कइयों की रोग मुक्ति सचमुच आश्चर्य-जनक होती थी। गुरुकुल में कई लोग उन्हें 'गला घोंट डंडा मार' डाक्टर कहते थे। यह रोग-निवारण शक्ति उनमें महामुद्रा से आयी है ऐसा वे कहते थे। वह महामुद्रा उन्होंने मुझे भी बतायी थी। उनके कथनानुसार पाँच साल तक उसका

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यास मैंने किया था। यह महामुद्रा वही है जो कि हठयोग की पुस्तकों में लिखी (उनके पास पागल भी इलाज के लिए आते थे। उनको बश में रखने के लिए वे डंडे का भी उपयोग करते थे। मतलब यह कि गुरुकुल का आचार्य होकर भी मैं साधु सन्तों से मिलता रहता था। इसी तरह एक और सन्त थे। मैं गुरुकुल में रहते हुए ही उनसे मिलने गया था और वहाँ पिटते पिटते बचा था। उसकी कहानी निम्न प्रकार है :—

मुझे पागल अच्छे लगते हैं, यह लोग जानते थे। पागल होने की अवस्था में मनुष्य का अपना कृत्रिम नियन्त्रण अपने पर से हट जाता है अतः वह स्वभावतः अन्दर से बेबनावट कार्य करता है— इसी कारण शायद पागल मुझे अच्छे लगते हैं। यह बात ब्रह्मचारी भी जानते थे। अतः जब कोई पागल गुरुकुल में आ जाता था तो उसे वे मेरे पास ले आते थे। ऐसे ही एक बार एक पागल को ब्रह्मचारी मेरे पास छोड़ गये। मैं उससे बातें करता रहा। मैं पागलों को अध्ययन करने का यत्न किया करता था। मैंने उसे तीन दिन अपने पास ही रखा। बातों में उसने कहा कि दुनिया में तीन व्यक्ति 'त्रिकालदर्शी' हैं। तीनों के नाम-धाम भी उसने बताये। उनमें से एक गुरुकुल के पास ही 'नागल' ग्राम में रहने वाले सीताराम जी बतायें। मैंने उस पागल से (जो पीछे पता लगा कि पास के गाँव का रहने वाला था) यह वायदा कर लिया कि सीताराम जी से मैं मिलूंगा। मैंने सोचा कि अगली छुट्टी के दिन उनके दर्शन करने जाऊँगा, पास ही तो हैं।

सो छुट्टी के दिन मैं नागल ग्राम के लिए चल दिया। लक्सर स्टेशन से गाड़ी बदलनी थी और उसमें देर थी अतः लक्सरी ग्राम में अपने मित्र चौ० रत्न सिंह जी से मिलने चला गया। रत्नसिंह जी को जब मैंने बताया कि मैं पास ही नागल जा रहा हूँ और एक साधु के दर्शन करने जा रहा हूँ तो वे भी मेरे साथ हो लिये। शायद, यह अच्छा हुआ कि वे साथ हो लिये, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

लक्सर से दो एक स्टेशन आगे ही बालावाली आता है जहाँ गंगा का प्रसिद्ध पुल है। बालावाली उतर कर नागल गाँव जाते हैं। यह नागल गाँव भी गंगा तट पर है। इस गाँव में मैं पहिले भी एक योगी से मिलने (प्रथम खण्ड 13वां प्रकरण) आ चुका था। रास्ता जानता था अतः मैं और रत्नसिंह जी आसानी से नागल गांव पहुँच गये थे। वहाँ पहुँच कर लोगों से सीताराम साधु की कुटिया पूछने लगे। किसी ने कहा कि हमें पता नहीं, किसी ने टाल दिया। एक ने बता दिया कि उस बगीचे में जाकर देखना एक पेड़ की टांट पर सीताराम बैठा होगा। हम उस बगीचे में पहुँचे। वहाँ खोजने से एक साधु से दिखाई दिये। वे साधु हमें देखते ही बिगड़ पड़े और बुड़बुड़ाने लगे। पूछने लगे तुम यहाँ क्यों आये हो ? तुम्हें किसने भेजा है ? मैंने नम्रता से कहा 'हम आपके दर्शनार्थ आये हैं।' मैंने रत्नसिंह जी का भी परिचय दिया। पर वे लोगों कोबुरा-भला कहते हुए "हमें चैन से नहीं बैठने देते, तंग करते हैं" इस तरह बुड़बुड़ाते हुए हमें कहने लगे कि तुम्हें किसने बताया कि मैं यहाँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। हमने कहा कि "गाँव वालों से पता लगा है।" "गाँव के किस आदमी ने पता बताया है?" हमने कहा कि उसका नाम तो हम नहीं जानते। साधु जी ने मेरा झोला (वही जो मैं इस यात्रा पर लेकर चला था) छीन कर अपनी टांट के सामने ही एक पेड़ की शाखा पर बांधकर लटका दिया और हमें कहा "उस आदमी को ले आओ जिस आदमी ने मेरा पता बताया है। तभी यह झोला मिलेगा।" हम एक दूसरे की तरफ देखने लगे। फिर मैंने रत्नसिंह जी को कहा "कुछ बात नहीं, उस आदमी को खोज कर जरा यहाँ ले आओ, आप उसे पहिचान तो लेंगे ही, मैं इतने यहीं हूँ।" तो रत्नसिंह जी चले गये। मैं उन साधु जी की तरफ मुख किये खड़ा था साधु सीताराम जी वैसे ही बुड़बुड़ा रहे थे, कभी कुछ कहते थे कभी कुछ, साफ-साफ सुनाई तो देता था नहीं, इतना स्पष्ट था कि वे नाराज थे कि उनका पता किसी ने क्यों बताया। वे पेड़ पर बनी अपनी टांट पर भी जाकर बैठते थे, नीचे भी आ जाते थे। मैं उन्हें 'त्रिकालदर्शी' महात्मा हैं, इस दृष्टि से देखता रहा। बहुत देर के बाद रतनसिंह जी लौटे, पर उनके साथ और कोई (पता बताने वाला) नहीं था। उन्होंने लौट कर बताया कि उस आदमी का कुछ पता नहीं लगा है। पर साधु जी उसी बात पर अड़े थे कि "उस आदमी को लाओ।" रतनसिंह को वहाँ छोड़ मैं भी गाँव में खोज के लिए गया, पर मुझे तो कुछ भी पता नहीं लगा। फिर हम दोनों साधु सीताराम जी की तरफ देखते रहे। और क्या करते? जब कई घंटे बीत गये और बालावाली में लौटने की गाड़ी पकड़ने का भी समय आ गया तब हम बहुत तंग हो रहे थे कि अब हम क्या करें? कहाँ आ फंसे? अब क्या किया जाये? सीताराम जी एक टंडी (पेड़ की शाखा की एक छड़ी) हाथ में लिये इधर से उधर घूम रहे थे। हमारा झोला भी उनके पास था, नहीं तो लौट ही जाते। अन्त में मेरे मन में आया "चलो, अब चलते हैं।" यही कह कर मैंने पेड़ की शाखा पर बंधे अपने झोले को उतारा और उसे लेकर मैं चल पड़ा और रतनसिंह भी। साधु सीताराम यह देख कर उठे और टंडी हाथ में लिये धीरे-धीरे हमारे पीछे आये। हमें लगा कि ये कहीं हमें पीटें नहीं। अब जो हो, हमने रास्ता पकड़ लिया था। वे लगभग दो फर्लांग तक टंडी हाथ में लिए हमारे पीछे आये। हम डरते-डरते आगे बढ़ रहे थे, पीछे मुड़ मुड़ कर भी बीच में देख लेते थे। जब हम गाँव में पहुँच गये, तब साधु जी भी पीछे नहीं थे।

लक्सर पहुँचने तक रेल में भी हम दोनों आज की इस यात्रा की ही चर्चा करते रहे।

उन साधु सीताराम जी का चेहरा अब भी मेरे सामने है। पीछे एक बार पांडिचेरी आश्रम में उनसे मिलती-जुलती शक्ल वाले एक साधक को देखकर मुझे इन सीताराम जी की याद आ जाती थी। तब एक-दो मित्रों को यह कहानी पांडिचेरी आश्रम में भी सायं भोजन शाला से लौटते हुए सुनायी गयी थी।

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए अपनी आन्तरिक साधना के सम्बन्ध में जो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक व्रत मैंने इन्हीं दिनों लिया था, उसकी चर्चा कर दूं। उसके बताने का और कहीं सहज प्रसंग नहीं मिलेगा।

साधु लोग भिक्षा करते हैं। ब्रह्मचारी के लिए भी भिक्षा का विधान है। आजकल तो हम गुरुकुल में वेदारम्भ के अवसर पर कुछ नव-प्रविष्ट ब्रह्मचारियों से करा लेते हैं, बस इतना ही है। बल्कि ब्रह्मचारियों की अपेक्षा तो आजकल गुरुकुल के गुरु लोग ही ब्रह्मचारियों के लिए भिक्षा करते हैं। "भगवन् भिक्षा देहि" उन्हें ही करना पड़ता है। शायद गुरुकुल की भिक्षा का यही रूप वर्तमान काल में उचित समझा गया होगा। किन्तु इस विषय पर गम्भीर विचार करते हुए मैंने अन्त में 'भिक्षा' का अर्थ "योग क्षेम के लिए भी परमेश्वर पर ही एकमात्र निर्भर होना" यह किया था। गीता में जो कहा है :—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ गीता 9—22 ॥

इसका तत्त्वार्थ भी यही समझा है कि भक्त पूर्ण विश्वास रखे कि भगवान उसका योगक्षेम करेंगे ही। भक्त की दृष्टि से यों कहा जायेगा कि उसे योगक्षेम के लिए भी केवल भगवान पर निर्भर रहना चाहिये।

मैंने ऐसी भिक्षा (अर्थात् भोजनाच्छादन के लिए भी भगवान पर ही निर्भरता) कई बार करने का यत्न भी किया, पर वह बना नहीं। अन्त में अप्रैल 1934 से (जब मैंने गुरुकुल छोड़ दिया था) मैंने यह शिक्षा प्रारम्भ कर दी। दो एक दिन तो मेरे पास चने आदि पड़े थे, उनसे काम चलाता रहा। कच्चे चने भिगो भिगो कर खाता रहा। जब वे समाप्त हो गये तो पास के अन्न क्षेत्र से रोटी मांग लाता था (उनके शाक-दाल में तो बहुत मिर्च होती थीं अतः एक दिन बाद वह नहीं ली। केवल रोटी)। यह भी चार-पाँच दिन ही चला था कि कुछ लोगों को पता लग गया। तब मैंने गुरुकुल के दो उपाध्यायों से 7-7 रुपया मासिक लेना स्वीकार कर लिया, उन्हें यह कहा कि मैं यही समझूंगा, कि ये सात रुपये मुझे परमेश्वर देता है, तुम देते हो, ऐसा नहीं। फिर एक समय आया कि इन दो व्यक्तियों से 7-7 रुपये भी नहीं लेने चाहिये, ऐसा लगा। गुरुकुल से पच्चीस रुपये लेने तो छोड़ ही दिये थे। तब एक विचित्र बात हुई। मैंने जिस महीने से (शायद माघ से) कुछ न लेने का निश्चय मन में किया था। उससे 8-10 दिन पहिले मैं लाहौर में विद्यासभा की बैठक में बैठा था। बाहर के एक सज्जन ने मुझे दो मिनट के लिए मिलने की आज्ञा मांगी। मैं सभा से उठकर उनसे मिलने दरवाजे पर गया। उन्होंने कहा कि मैंने 5000 रुपये की पोलिसी सभा के द्वारा आपके नाम की है। जब तक वह Mature नहीं होती, तब तक उसका सूद पैंतीस रुपये प्रति मास आपकी सेवा में भेजा करूंगा। एक माघ से यह पैंतीस रुपये आपको मिलने लगेंगे। बस दो मिनट में इतनी बात कह कर वे चले गये। मुझे आश्चर्य सा हुआ कि ठीक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब से मैंने अन्य, कहीं से न लेने का निश्चय किया था, उसी दिन से परमेश्वर ने पैंतीस रुपये माहवार प्रबन्ध कर दिया। भगवान् ने जो कहा है—'योगक्षेमं वहाम्यहम्' उसका स्पष्ट उदाहरण सामने आ गया।

एक बार मैं शाम को इन्द्रप्रस्थ से रेल में आ रहा था। देहली पहुँचकर रात की गाड़ी से चलकर अगले दिन प्रातः गुरुकुल पहुँच जाना था। उस सायं मेरे पास (या तो बटुआ नहीं था या किसी अन्य प्रकार) एक भी पैसा नहीं था। भूख लगी तो मुँह से निकला "क्या माँ आज भूखा रखेगी ?" पर आनन्दपूर्ण आश्चर्य हो गया, जब मैं देहली जंक्शन पर पहुँचा तो एक मित्र मेरे लिए गौ के दूध-घृत में बना भोजन लेकर मुझे मिल गये। उन्हें कहीं से पता लग गया था कि मैं इस गाड़ी से इन्द्रप्रस्थ से आ रहा हूँ।

ऐसी घटनाएं जीवन में बहुत हुई हैं। यह तो अटल विश्वास हो गया है कि माँ भूखा नहीं रखती है या जो कुछ करती है वह भलाई के लिए होता है। अतः उसी पर निर्भरता (अर्थात् भिक्षा वृत्ति) पर भी अटल विश्वास बन गया है, बल्कि बना दिया गया है, यह कहना चाहिये।

सच्ची शिक्षा

मेरा एक उपदेश "आर्य" (आषाढ़ 1989 के अंक में) में प्रकाशित हुआ था। उसका शीर्षक था 'सच्ची शिक्षा'। उपनिषदों में (सत्यकाम जाबाल, उपकोसल आदि की कथाओं द्वारा) शिक्षा के विषय में जो मार्ग दिखाया है, वह मेरे मन में बड़ी अच्छी तरह बैठा हुआ है। उसी की बातों पर वह मेरा लेख है। उसी के अनुसार गुरुकुल में मैं सदा किताबी शिक्षा की जगह जीवन की शिक्षा को बहुत अधिक मूल्य देता रहा। उसे ही मैं ठीक सच्ची शिक्षा कहता हूँ। बहुत बार बाह्य नियमों की भी अहेलना करके (नियम हमें बांधने के लिए नहीं हैं, हमें यह सहायता पहुँचाने के लिए होते हैं। नियम नियम के लिए तो हैं ही नहीं) ब्रह्मचारियों को जीवन की शिक्षा, सच्ची शिक्षा प्राप्त हो इस तरफ ध्यान देते हुए मैं कार्य करता था।

शिक्षा का उद्देश्य ब्रह्मचारी का, विद्यार्थी का, आत्म विकास करना है। इसलिए जिस प्रकार किसी विद्यार्थी का आत्मा विकसित होता हो उसके लिए, उसी प्रकार का मार्ग हमें अवलम्बन करना चाहिये। मैं यथाशक्त वैसा ही प्रयत्न करता था। उदाहरण के लिए:—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1) एक ब्रह्मचारी की गणित में स्पष्ट और बहुत रुचि थी। पर उन दिनों (यह 1926 की बात है) महाविद्यालय में ऐच्छिक विषय के रूप में गणित नहीं था। उस एक विद्यार्थी के लिए गणित का उपाध्याय तो रखा जा ही नहीं सकता था। उसकी तीव्र इच्छा, आवश्यकता देख कर मैंने उसका विशेष प्रबन्ध किया। मेरठ के एक प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री धर्मवीर त्यागी के पास उसे पढ़ने भेजा और सब प्रबन्ध किया। उसकी पढ़ाई, परीक्षा और उपाधि तक का सब प्रयत्न किया और वह गणित के विद्यार्थी के रूप में ही स्नातक हुआ।

(2) कुछ ब्रह्मचारियों में जंगल में जाना, घूमना और जंगली पशुओं से सम्बन्ध स्थापित करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। मैंने उन्हें न केवल इससे नहीं रोका किन्तु इसके लिए उत्साहित किया। मैं देखता था कि इससे उनकी आत्मा को भोजन मिलता है, जीवन बनता है। कई 'बुद्धिमान' साथी मुझे सलाह देते थे कि इन बातों से ब्रह्मचारियों को बचाना चाहिए, कहीं किसी को शेर ने मार खाया तो हम क्या जबाब देंगे ? पर यह केवल बुद्धिमानी थी। किसी विद्यार्थी को शेर ने नहीं मारा किन्तु विद्यार्थियों ने ही एक बार चीते को हाकियों से मार डाला था।

मुझे घोटू विद्यार्थी, जो घोट-घोट कर पहिला नम्बर पढ़ाई में प्राप्त करने वाले होते थे, कभी पसन्द नहीं थे। मैं उन्हें जीवन में सफल होने वाले नहीं मानता था। उनकी अपेक्षा तो वे जंगल में घूमने वाले अच्छे लगते थे। उनमें आत्मा जागता दिखाई देता था। इन जंगल में जाने वालों को उत्साहित करने के लिए मैं भी इनके साथ जंगल गया हूँ। रात मचान पर जंगल में ही बिताई है। शेर आदि की आहट आवाज होने पर ये हमारे ब्रह्मचारी चौकन्ने होकर जो जो करते थे, वह सब देखा है।

(3) एक बार कुछ ब्रह्मचारियों की इच्छा कैलाश, मानसरोवर की यात्रा करने की बनी। मैंने इसे अच्छा समझा और अपनाया। इस यात्रा में हिमालय के भी पार जाना होता है। कुछ दिन कुछ भी खाद्य भोजन नहीं मिलता। मैंने इनके साथ एक अनुभवी स्नातक (जो कि वहाँ की एक बार यात्रा कर आया था) कर दिया। इनको पढ़ाई से छुट्टी दी। पढ़ाई की उपस्थितियां ठीक करा दीं। परीक्षा देने का अवसर भी पुनः दे दिया। अन्य भी अप्रत्यक्ष आन्तरिक प्रकार की सहायताएं दीं। इसलिए कि उन्हें जीवन का एक बहुमूल्य अनुभव मिले, जो किताबों से कभी नहीं मिल सकता है।

(4) एक महाविद्यालय का ब्रह्मचारी था जो हरिद्वार के जाड़ों में भी गर्म कपड़ा नहीं पहिनता था। मुझे कइयों ने कहा है कि इसे गर्म कपड़ा पहिनने को कहिए, इसे न्यूमोनिया हो जायेगा तो क्या होगा ? वह भी डरता था कि यदि आचार्य जी को यह पता लगेगा तो वे मुझे गर्म कपड़ा आदि पहिनने की आज्ञा देंगे तो मुझे यह करना होगा। पर मैंने उससे बातें करके जान लिया कि उसकी यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्या ठीक दिशा में है। अतः उसे कभी नहीं रोका। उसे कभी न्यूमोनिया भी नहीं हुआ।

कई ब्रह्मचारियों को प्रातः चार-पाँच बजे जाड़ों में नहर में स्नान करने को भी मैंने अनुमति दे रखी थी।

(5) एक बार महाविद्यालय के सात-आठ ब्रह्मचारियों को मैंने यह दण्ड दिया था कि वे प्रातः साढ़े चार बजे मेरे पास आकर मिला करें और मैं उन्हें प्रतिदिन एक छोटा सा उपदेश बोलकर दिया करूंगा, उसे वे रोज जाकर लिख लिया करें। एक भी दिन साढ़े चार से देर में आयेंगे तो यह प्रक्रिया फिर प्रारम्भ करनी होगी। इस प्रकार 21 दिन का दण्ड था। ये 21 वचन (जो प्रतिदिन उन्हें सुनाये गये) पीछे से मेरी पुस्तक 'वैदिक ब्रह्मचर्य गीत' में प्रकाशित भी हुए थे।

जब महात्मा गांधी ने सन् 1933 में 21 दिन का (8 मई से 29 मई तक) उपवास हरिजन कार्य के लिए किया था तो उसे सुन कर मैंने उन 21 दिन के लिये मामूली पढ़ाई बन्द कर दी। महाविद्यालय के लगभग 80 ब्रह्मचारियों को पढ़ाई के अन्तरों में जाने की जगह आस पास के इलाकों में हरिजन सेवा के लिए जाने की व्यवस्था कर दी थी। संक्षेप में 8 दल बनाये थे। प्रत्येक दल में 10-12 विद्यार्थी और एक उपाध्याय रखे गये थे। चार दल ऐसे थे जो आस पास ही सेवा कार्य करते थे और गुरुकुल में ही भोजन करते तथा सोते थे। उनके चार कार्य केन्द्र हरिद्वार, कनखल, ज्वालापुर तथा नजदीकी (जगजीत पुर आदि) ग्रामों के थे। कार्य के छः घन्टों में से दो घन्टे हरिजनों की अवस्था की जाँच (उसके लिए एक प्रश्नावली बना दी गयी थी) तीन घन्टे उच्च हिन्दुओं में (प्रतिज्ञा पत्र भरवाने द्वारा) प्रचार और कम से कम एक घन्टा रात को सभा करने में व्यय किया जाता था।

जो चार केन्द्र बाहर के थे वे रुड़की तहसील के चार परगनों के अनुसार बनाये थे जिनके केन्द्र स्थान (1) बहादुर जट्ट (2) लिब्बर हेड़ी (3) लुकसरी (4) रुड़की थे। प्रत्येक केन्द्र में प्रारम्भ में एक हरिजन सम्मेलन की तैयारी के निमित्त गाँव-गाँव घूमना, समझाना और अन्त में क्रियात्मक दृश्य उपस्थित करते हुए सम्मेलन करना होता था। अन्तिम रुड़की परगने के दल के साथ (जिसका केन्द्र स्थान रुड़की था) मैं स्वयं था।

इन 21 दिनों में हमने जो कार्य किया था उसका विवरण भी तैयार किया गया था। उसकी एक प्रति आ० प्र० सभा को भेजी गयी थी एक प्रति महात्मा गांधी को भी। उस विवरण के भूमिका भाग का निम्न अंश उद्धृत कर देना ठीक लगता है।

"गुरुकुल के लिए तो यह कोई नयी बात नहीं है। गुरुकुल से पहिले भी कई बार ऐसे ऐसे खास अवसरों पर किताबी शिक्षा की जगह क्रियात्मक शिक्षा को महत्त्व दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सबसे पहले महात्मा मुंशीराम जी की प्रेरणा से दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह में मदद करने के लिए ब्रह्मचारियों ने दूधिया बन्द मजदूरी की थी। फिर गढ़वाल के दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा के लिए बहुत से ब्रह्मचारी सायं स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ सम्पूर्ण गढ़वाल में फिरे थे और इसके लिए छुट्टियां जल्दी कर दी गई थीं। एवं गुरुकुल का बन्ध बांधने के लिए कई बार पढ़ाई छोड़ कर भी ब्रह्मचारियों में गुरुकुल रक्षा के कार्य में लगने के उत्तम भाव को प्रोत्साहित किया गया। मुझे स्मरण है कि श्रीमान पं० विश्वम्भर नाथ जी के मुख्याधिष्ठातृत्व में एक बार फिर बंगले के सामने खटोले डालने के लिए सात दिन की पढ़ाई की जगह यह शारीरिक श्रम का ही कार्य किया गया था। एवं 1930 के सत्याग्रह के आन्दोलन के दिनों में विवश होकर एकदम दो महीने की छुट्टी पहिले ही कर दी गयी थी और इस छुट्टी को और भी बढ़ाना पड़ा था। मथुरा की जन्म-शताब्दी के लिये भी 10 दिन की छुट्टी की गयी थी और सम्पूर्ण गुरुकुल मथुरा शताब्दी में सम्मिलित हुआ था। इसलिए यदि इस बार 10-11 दिन की छुट्टी (यह विदित होना चाहिये कि इन 21 दिनों में से 10 दिन वार्षिक छुट्टियों में से काटे जाटे जायेंगे इसलिये 21 दिन के लिए नहीं अपितु 10-11 दिन के लिए ही पढ़ाई बन्द रखी गयी है) इस महान अवसर पर हरिजन सेवा के लिये कर दी गई है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"

सभामंत्री महाशय कृष्ण जी ने 21 दिन के लिए पढ़ाई की जगह बड़े ब्रह्मचारियों को हरिजन सेवा मे लगा देने के इस कार्य को यद्यपि Grand (जिसका अनुवाद मैं उदात्त करता हूँ) कहा, पर साथ ही कहा कि पर यह सभा से पूछ कर करना चाहिये था। मेरा उत्तर था एक तो पूछने का समय ही कहाँ था, दूसरे पूछने पर शायद सभा सोच में पड़ जाती।

(7) एक बार गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में नवन् दशम् के बड़े ब्रह्मचारियों ने अन्तिम हथियार के तौर पर 'हम सबके सब इकट्ठे गुरुकुल से चले जायेंगे'—इस धमकी का ब्रह्मास्त्र छोड़ा। मैंने उन्हें समझाया कि इसमें गुरुकुल छोड़ देने की तो कोई बात नहीं है। पर वे तो अधिकारियों को अपनी मर्जी पर झुकाने के लिए तुले हुए थे। नहीं माने तो मैंने कह दिया—'अच्छा चले जाओ'। इन्द्रप्रस्थ के सहायक मुख्याधिष्ठाता जी को भी उनके घर जाने के लिए अगाऊ पैसे देकर उन्हें बिदा कर देने को कह दिया। तब वहाँ के एक पुराने अध्यापक ने मुझे साग्रह कहा 'यह कदम उठाने से पहिले मुख्याधिष्ठाता जी से तो पूछ लीजिये, वे यहाँ पास ही देहली में है, कुछ देर नहीं लगेगी'। मैंने उन्हें कहा 'मुख्याधिष्ठाता (पं० इन्द्र) जी से इसमें पूछने की क्या बात है, ये तो स्वयं घर जाना चाहते हैं, मुख्याधिष्ठाता जी इनका क्या कर लेंगे?' मैंने इन सबके घर जाने का उसी समय प्रबन्ध कर दिया। बहुत से तो मेरे साथ ही उसी बस में जिससे मैं देहली गया था, देहली तक गये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब पं० विश्वम्भरनाथ जी को इस घटना का पता लगा तो उन्होंने मुझे शाबाशी दी और कहा कि यह आपने बहुत ठीक किया, इन्हें सीधे रास्ते लाने का यही तरीका था।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कुछ तो फिर घर गये ही नहीं, आस-पास जाकर लौट आये, जो गये थे वे भी सब के सब (दो एक को छोड़कर जिन्होंने वैसे भी जाना ही था) मुझ द्वारा नियत किये एक क्षमा-याचना पत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद अपने माता-पिता के साथ दुःखी होकर वापिस आ गये—तथा अपने घर आने जाने का किराया भी उन्होंने उनसे व्यर्थ खर्च करवाया। पर लाभ यह हुआ कि उन्होंने एक पाठ पढ़ लिया। इस तरह एक सच्ची शिक्षा प्राप्त कर ली जो अन्य तरह उन्हें प्राप्त नहीं होती थी।

देवशर्मा की जगह अभयदेव

1935 से अब (1938) तक गुरुकुल का आचार्यत्व कर रहा था। कई कारणों से (जैसे (1) पांडिचेरी आश्रम में रहने की इच्छा (2) मुझमें गुरुकुल के आचार्य बने रहने की महत्त्वाकांक्षा का अभाव (3) अन्य कई व्यक्तियों में इस महत्त्वाकांक्षा की विद्यमानता आदि) मैंने 1938 के गुरुकुलोत्सव के बाद गुरुकुल छोड़ देने का निश्चय कर लिया था। यह सर्वविदित था। उस उत्सव पर मैंने श्री गोविन्द बल्लभ पंत जी को दीक्षान्त भाषण के लिए बुला रखा था। यह कुम्भ का वर्ष था। पन्त जी ने गुरुकुल में आना मान कर भी एकदम न आ सकने का तार दिया। पता लगा कि उन्हीं दिनों सरदार पटेल ने कांग्रेस के प्रधान मन्त्रियों की बैठक बुला ली थी अतः वे नहीं आ सकते थे। तो मैंने सरदार पटेल को तार दिया। वह प्रधान मन्त्रियों की बैठक स्थगित हुई और पन्त जी कुम्भ के अवसर पर हुए इस गुरुकुलोत्सव पर पधार सके। उन्होंने अपने भाषण में जो यह कहा था कि देवशर्मा जी की जीत हुई, सो उपर्युक्त ही बात थी। कुछ ऐसी बात हो गई कि दीक्षान्त भाषण के बाद से रात्रि में उनके विदा होने के समय (अपनी गाड़ी पर चढ़ने) तक मुझे लगातार उनके साथ रहना पड़ा।

उसी उत्सव पर ठीक कुम्भ के दिन (अर्थात् 13 अप्रैल 1938) मैंने गंगा पार जाकर नीलधारा के तट पर एकान्त स्थान में स्वामी सत्यानन्द जी महाराज से संन्यास की विधि कराके अपना नाम बदल लिया। देवशर्मा के स्थान पर 'अभय' हो गया। 'संन्यासी' हो गया, यह मैंने न कभी कहा और न माना ही है। मुझे 'स्वामी' कहलाना या गेरुआ पहिनना कभी पसन्द नहीं था। अतएव मैंने वह संस्कार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकान्त में किया, लोगों के सामने, जनता में नहीं किया। जो कुछ किया वह अपने लिए किया, दूसरों की दृष्टि से कुछ नहीं किया, यह स्पष्ट है।

इसे मैं अपना नया जन्म लेना मानता हूँ। यह भी बतला दूं कि उस दिन का, तथा 'अभय' इस नाम का, निश्चय मैंने श्री अरविन्द से पूछ कर किया था। बल्कि पांडिचेरी आश्रम से तीन समिधा इसी संस्कार के लिए लेकर आया था। श्री अरविन्द की शिक्षानुसार भी 'संन्यास' (संसार को त्यागना) अविहित है। अतएव उस दिन से मैं 'सेवक' की जगह स्वामी हो गया (जैसा किशोरी लाल जी मुझसे पूछते थे) यह बात नहीं है। मेरा कोई साथी मुझे स्वामी कह कर नहीं पुकारता। फिर जो वह संस्कार (चाहे सार्वजनिक रूप में न हो) मैंने कराया उसका प्रयोजन एक तो यह था कि मेरे पूज्य पिता जी ने मेरे बचपन से सब संस्कार किये हैं, उन्हें संस्कारों में बहुत श्रद्धा थी। तो यह मेरा अन्तिम संस्कार भी हो जाए यह इच्छा थी। मेरे पूज्य पिता जी इस संस्कार में सम्मिलित थे। मेरी इस विषयक चिट्ठी श्री केशवदेव ज्ञानी (स्नातक) ने पढ़ ली थी। अतः उन्हें भी इसका पता लग गया था सो उन्हें भी संस्कार में साथ में ले लिया था। दूसरी बात यह थी कि जीते जी 'दूसरा जन्म' लेने की भावना से मेरी अभीप्सा यह थी कि मेरे हृदय में 'आत्माग्नि' जल जाए। और यही मेरी समझ में सच्ची सन्यासी होने की विधि है अर्थात् बाहर की अग्नि को अन्दर धारण कर लेना। गेरुआ रंग अग्नि का ही वर्ण है। संन्यासी अग्नि रूप हो जाता है अतएव उसे बाह्य अग्नि की (अग्निहोत्र करने की) आवश्यकता नहीं रहती। उसके अन्दर 'अखण्ड ज्योति' जल जाती है। मैंने एक बार 'माँ मेरा दीप जला दे' ऐसा लेख दीपावली पर लिखा था। वह 'वेदवाणी' में भी छपा था। उसमें उसी 'अखण्ड ज्योति' का मैंने उल्लेख किया है। स्नातक केशव ज्ञानी जी ने उस 13 अप्रैल 1938 के संस्कार पर एक लेख 'आर्यमित्र' में 'आचार्य का संन्यास' इस शीर्षक से लिखा था। उसमें उन्होंने मेरे चेहरे के हाव भाव का उल्लेख करते हुए कुछ ऐसा लिखा है कि तब मेरे अन्दर एक संघर्ष चल रहा दीखता था जो कि पीछे मेरे एकदम खिल जाने पर समाप्त भी हो गया। उन्हें पता नहीं था कि यह क्या बात है। असल में मैं ऐसी आशा और प्रतीक्षा कर रहा था कि मेरे हृदय में कोई अनुभूति होवे, जब वह संस्कार प्रारम्भ होने तक भी नहीं हुई तो वही संघर्ष प्रतीत होता था। पर वह हृदय की जगह सिर के ऊपर विशालता के रूप में जब मन्त्र पाठ करते करते हो गई तो मेरा चेहरा खिल उठा। संस्कार के बाद स्वामी जी हरिद्वार चले गये पर मैं उसी जगह रहा और शाम को गुरुकुल पहुँचा। तब पता लगा कि मेरे आश्रम बदलने का समाचार सब जगह फैल गया है।

उन्हीं दिनों वह घटना हुई जिसके कारण धीरे-धीरे मेरे गुरुकुल के आचार्य बन जाने की बात बन सकी। कुम्भ पर बहुत साधु लोग इकट्ठे होते हैं। एक महाराष्ट्रीय साधु (जिनका शुभ नाम गडनिस (सीताराम गडनिस था) गुरुकुल के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातक प० देशबन्धु जी के यहाँ ठहरे हुए थे। पीछे पता लगा कि ये गडनिस जी कभी पहिले देशबन्धु जी के खेल (मोटर रोकना, छाती पर पत्थर तोड़ना, तीरन्दाजी आदि) के प्रबन्धक रहे थे अतएव उनसे परिचित थे। एक दिन देशबन्धु जी ने मुझसे कहा कि मेरे पास एक साधु ठहरे हुए हैं, वे आपसे मिलना चाहते हैं। बताया तो यह भी गया कि गडनिस जी ने उस मकान को देखकर जिसमें मैं रहता था कहा कि 'इस मकान में कौन रहता है, उसके प्रति आकर्षण होता है, वह शक्तिशाली (Powerful) आदमी है' तो देशबन्धु जी ने कहा कि इस मकान में तो हमारे गुरुकुल के आचार्य श्री देवशर्मा जी (अभय जी) रहते हैं। मुझसे मिलने जब श्री गडनिस जी आये तो मैंने (जैसा कि मैं प्रायः पहले से साधुओं को बता देता हूँ जिससे और निरर्थक बातें न होवें) उन्हें कह दिया कि मैं तो श्री अरविन्द का शिष्य हूँ। तो उस पर वे बोले 'श्री अरविंद तो हमारे गुरु भाई हैं।' मैंने पूछा कैसे? 'मैं लेले महाराज का शिष्य हूँ।'—उत्तर मिला। लेले महाराज का नाम श्री अरविन्द के सम्बन्ध में खूब सुन रखा था। इस प्रकार श्री गडनिस जी से घनिष्ठता हो गई। मैं गुरुकुल तो छोड़ ही चुका था। मैंने सितम्बर में गडनिस जी के यहाँ सातारा जाने का कार्यक्रम बना लिया। लेले महाराज के दर्शन की बात भी ठहर गई। परन्तु दुःख की बात है कि कुछ मास बाद ही 25 अगस्त को लेले महाराज के स्वर्गवास हो जाने का समाचार गडनिस जी से मिला। मैं सितम्बर में श्री गडनिस जी से मिलने सातारा गया, दो दिन (19, 20 सितम्बर) उनके 'अवधूत आश्रम' में ठहरा और इसी अवसर पर मैं पहली बार और अन्तिम बार पं० सातवलेकर जी के औंध के स्वाध्याय मण्डल में भी गया।

पर गडनिस जी के साथ गुरुकुल में ही जो एक उल्लेखनीय बात हुई थी, वह यह थी कि गडनिस जी से जब यह जिक्र आया कि मैं अब गुरुकुल छोड़कर पांडिचेरी आश्रम जा रहा हूँ तो उन्होंने कहा कि मेरी समझ में आपको वहाँ आश्रम में ठहरने की आवश्यकता नहीं है, आपकी साधना यहाँ रहते हुए भी चल सकती है। उनके ऐसा कहने से गुरुकुल के मित्रों को पोषण मिल गया। गुरुकुल वाले तो पहले से ही कहते थे कि आप पांडिचेरी हो आया कीजिये, पर रहिये गुरुकुल में ही। इन दोनों बातों पर मैंने एक पत्र श्री अरविंद को लिखा (जिसका पूरा उल्लेख तो पाँचवें खण्ड में आयेगा) जिसमें पूछा कि मैं छः मास गुरुकुल में और छः मास पांडिचेरी में रहूँ यह ठीक होगा? इस पर उनका स्वीकृति का उत्तर आया और उन्होंने वर्ष का कुछ भाग गुरुकुल और कुछ भाग पांडिचेरी रहने की सहर्ष अनुमति दी। गुरुकुल वालों ने इससे प्रसन्नता प्रकट की और मैंने भी इस प्रकार श्री अरविन्द के तीनों दर्शनों पर पांडिचेरी हो सकने का कार्यक्रम बनाकर (जिसके अनुसार अगस्त का दर्शन तो छुट्टियों में पड़ता था, दूसरे सत्र के प्रारम्भ में डेढ़ दो महीना गुरुकुल में ही रहकर फिर नवम्बर दर्शन पर पांडिचेरी जाना और परीक्षा की तैयारियों पर ब्रह्मचारियों के लगने पर तीसरी बार फरवरी दर्शन पर जाना और गुरुकुलोत्सव तथा नव-सत्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ होने पर प्रथम सत्र भर गुरुकुल में ही रहता) गुरुकुल का आचार्य बन जाने की अनुमति दे दी। तो भी चिट्ठी-पत्री करते अगला वर्ष प्रारम्भ हो गया। पहिले तो आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री पं० भीमसेन जी ने मुझे पांडिचेरी लिखा कि गुरुकुल सेवा सम्बन्धी विचार के लिए जो एक उपसभा बनी है, उसका मैं सदस्य बन जाऊँ। मैंने कुछ बातें जान लेने और कह लेने पर इसे स्वीकार कर लिया। उसके अनुसार उस योजना में मैं क्या संशोधन चाहता हूँ? ये संशोधन क्यों आवश्यक हैं? मेरे जीवन का आगे इस सम्बन्ध में क्या ध्येय है? ये तीनों बातें स्पष्टता के साथ मंत्री जी को लिख भी भेजीं। मेरे संशोधनों पर पं० इन्द्र जी (जो कि सभा के गुरुकुल सम्बन्धी उपप्रधान थे) ने भी मंत्रीजी को लिख दिया कि वे मेरे 'प्रस्तावों से पूर्णतया सहमत' हैं। पं० सत्यव्रत मुख्याधिष्ठाता जी ने भी मुझे अपने 7-10-38 के पत्र में लिखा—"मेरी यह धारणा है कि गुरुकुल में आचार्य का कार्य आप जैसा दूसरा कोई व्यक्ति नहीं कर सकता इसलिये मैं चाहता हूँ कि आपका गुरुकुल में आना जिन बातों से सुगम हो सके, उन्हें कर देना चाहये।" गुरुकुल सेवा संघ की एक योजना छपवा कर वितरित की गयी थी, जो मुझे पसन्द नहीं थी (इस नाम को तथा इसकी कई बातों को विद्यासभा ने भी स्वीकृत नहीं किया)। अपने 27-2-39 के पत्र में गुरुकुल संचालन नीति (जो कि हमारे 'गुरुकुल' पत्र में अविकल रूप में प्रकाशित हुई थी) लिख कर मैंने सभी को भेजी। इस समय सभा के प्रधान पं० बुद्धदेव जी तो उद्-घोषित रूप में मेरे समर्थक थे। अन्त में विद्यासभा के 3-3-39 (2-11-95) के चतुर्थ अधिवेशन में मेरी इन बातों के विषय में निम्नलिखित छठा निश्चय हुवा :—

"6—गुरुकुल सेवा के नियमों पर विचार करने निमित्त नियत उपसभा की रिपोर्ट तिथि 17-11-95 पेश हुई। विद्यासभा तिथि 5-9-95 के प्रस्ताव संख्या 3 द्वारा स्वीकृत नियम पढ़कर सुनाये गये।

(क) स्वामी अभयदेव जी का गुरुकुल संचालन नीति सम्बन्धी पत्र तिथि 27-2-39 को पढ़ा गया। निश्चय हुवा गुरुकुल संचालन सम्बन्धी यह नीति ठीक है और गुरुकुल के प्रारम्भ से यही नीति रही है।

(ख) उक्त स्वामी जी का गुरुकुल में कार्य करने सम्बन्धी पत्र-व्यवहार पेश हुआ और उनसे विचार विनिमय भी हुआ। स्वामी अभयदेव जी का विचार है कि उक्त नीति को अधिक बलपूर्वक चलाया जावे, क्योंकि इस सभा को भी यही अभीष्ट है इसलिये यह सभा स्वामी जी से प्रार्थना करती है कि वे गुरुकुल के आचार्य पद को ग्रहण करके गुरुकुल को अपने आदर्श तक पहुँचाने के लिये सभा की सहायता करें। श्री स्वामी जी ने कृपा पूर्वक इसे स्वीकार किया। निश्चय हुआ कि स्वामी अभयदेव जी गुरुकुल विश्वविद्यालय के आचार्य नियुक्त किये जायें।

(ग) निश्चय हुआ कि यह सभा गुरुकुल के वर्तमान कार्यकर्त्ताओं से दृढ़ आशा रखती है कि वे उस नीति के कार्य रूप में परिणत किये जाने में अधिक से अधिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक होंगे। यदि कोई सज्जन अपने उद्योग के बावजूद अपने आपको उक्त नीति के अनुकूल न ढाल सकेंगे तो दो साल के बाद सभा को उनकी सेवाओं से लाभ उठा सकने या न उठा सकने के विषय में सोचने को वाधित होना पड़ेगा।"

विद्या सभा द्वारा यह निश्चय कर लिये जाने पर विशेषतया दो व्यक्तियों अर्थात् श्री बुद्धदेव जी और श्री पं० प्रियव्रत जी से मैंने आचार्यत्व ग्रहण करने के विषय में परामर्श किया। क्योंकि वे दो भाई ही सम्भावित आचार्य थे। जब इन दोनों ने मुझे स्थिर रूप से आचार्य बन जाने की सलाह दी तभी 'गुरुकुल सेवा का संकल्प' नाम से एक लेख 'गुरुकुल' पत्र में लिखा। और उसकी प्रतियां विशेष तौर से कुछ व्यक्तियों को निजी रूप में भिजवायीं जिससे उन सबका सहयोग और सहमति प्राप्त हो सके।

तब मैंने एक वैशाख से (सभा के प्रस्ताव हो जाने के सवा महीने के बाद) गुरुकुल कार्य संभाला। इस बार ऐसे संकल्प के साथ संभाला कि जीवन पर्यन्त अब यही कार्य करना है। जब गुरुकुल संचालन नीति सभा ने मान ली, इस पद के सम्भावित इच्छुकों ने भी मुझे अनुमति दे दी, अन्दरूनी तौर पर भी सभा के अधिकारियों ने मेरी तीनों मांगें पूरी कर दीं, गुरुकुल के कार्यकर्त्ताओं को एक प्रकार से दो वर्ष का नोटिस दे दिया गया और दूसरी तरफ मेरी आध्यात्मिक प्रवृत्ति की सन्तुष्टि के लिए चार महीने तक पांडिचेरी रहने की छूट मिल गयी और सबसे बड़ी बात आध्यात्मिक गुरु 'श्री अरविंद' का गुरुकुल–सेवा के लिए अनुमति बल्कि आशीर्वाद मिल गया, तो फिर मुझे और क्या चाहिये था ? सचमुच मैंने जीवन भर गुरुकुल का कार्य ही करते रहने का संकल्प कर लिया।

मालिश कैसे प्रारम्भ हुई ?

एक दिन मैं देहली में श्री पं० इन्द्र जी के घर ठहरा हुआ था। वहाँ भोजन कर रहा था तो बाएं हाथ से खा रहा था। इसे देख कर वयोवृद्ध श्री डा० सुखदेव जी (वे ही डा० सुखदेव जी जो कि बचपन में हमारे गुरुकुल कांगड़ी के प्रसिद्ध डाक्टर थे) मुझे बाएं हाथ से खाते देख कर बोले "आचार्य जी, आप यह बहुत अच्छा करते हैं कि बाएं हाथ से भी कार्य करते हैं। जो लोग दोनों हाथों से कार्य करते हैं, उन्हें अर्द्धांग नहीं होता, सिर की दायें तरफ की नसें (nerves) बायें अंग अंग में आ जाती है और सिर की बाएं तरफ की नसें (nerves) दायें अंग में जाती हैं ?" उनके ऐसा कहने से मानों मुझे एकदम प्रकाश सा हो गया, मुझे सूत्र (clue) मिल गया। मुझे याद आ गया कि बचपन में मेरे सिर में दायें तरफ चोट लगी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। बरसात के दिन थे और मैं छः वर्ष का बालक बाहर लघुशंका करने बैठा था कि एक हमारी पागल सी बहन ने मुझे धक्का दे दिया और मेरे सिर में आगे पड़ी एक ईंट गड़ गई थी। मुझे याद है कि हरदोई में मुझे एक डाक्टर के यहाँ हर रोज ले जाया जाता था। डाक्टर हर रोज पट्टी करता था। कुछ चीर फाड़ भी की थी। उसका गड्ढा अब तक भी मेरे सिर में दो जगह दाईं तरफ बना हुआ है। तो मुझे एकदम बिजली की चमक की तरह सूझ गया कि मेरे शरीर में जो बचपन से बाएं अंग की कमजोरी है, बाएं प्राण (इडा नाड़ी) का न चलना है, जिसके लिए मैं बचपन में इतने दिन दुःखी रहा हूँ, उसका कारण यह सिर में दायीं तरफ लगी चोट है। मुझे यह भी याद आया कि गुरुकुल में पढ़ते हुए एक बार सामूहिक व्यायाम करते-करते मेरी गर्दन मुड़ गयी थी जिसे कि इन डा० सुखदेव जी ने ही क्लोरोफार्म सुंघा कर, बेहोश करके सीधा किया था। इन्हीं डा० सुखदेव जी के मुख से आज परमेश्वर ने मुझे उसे ठीक करने का उपाय भी सुझा दिया दीखता है।

यह लगभग 1940 की बात है। इन दिनों मैं प्रायः बायें हाथ से कार्य करता था, लिखना भी बायें हाथ से करता था। यह प्रवृत्ति मुझे पांडिचेरी में 1937 में प्रादुर्भूत हुई थी। इसके बारे में मैंने श्री अरविन्द से पूछा था। उन्होंने इसे ठीक बताया था। मुझे ऐसा लगता था कि मानों कोई दायें हाथ के चलाने से रोके हुए है। जैसे दायां हाथ चलाऊंगा तो पाप हो जायेगा, ऐसा जोर का हटाव दायें हाथ के हिलाने के प्रति होता था और मैं प्रायः बायें हाथ का उपयोग करता था। डा० सुखदेव जी के उस कथन से यह समझ में आ गया कि यह बायें हाथ से कार्य करने की प्रवृत्ति इसी लिये है चूंकि सिर के दायें भाग में लगी चोट के कारण जो क्षति पहुँच चुकी है, प्रकृति उसका सन्तुलन करना चाहती है। यदि प्रकृति ऐसा न करे तो मुझे आसानी से अर्द्धांग का रोग हो जाये। तब मैंने पहिले पहल सिर पर और शरीर पर तेल मलना, मालिश करना प्रारम्भ किया। उससे पहिले तो मैं मालिश करने को आरामतलब लोगों का काम, विलासिता का काम मानता था। महात्मा गांधी प्रतिदिन मालिश करते हैं, यह मुझे पता था तो भी मेरी इच्छा मालिश करने की कभी नहीं हुई थी।

1940 में पांडिचेरी आश्रम में ही कई मित्रों से पता लगा कि मालाबार में मालिश का इलाज होता है अतः मुझे वहाँ जाकर अपना मालिश का इलाज कराने की फिक्र हुई, नहीं तो मुझे अर्द्धांग हो जाने की प्रबल आशंका थी।

सिर पर अच्छी तरह मालिश करने के प्रयोजन से ही मैंने अगस्त 1940 में अपने बाल कटा लिये थे। तब तक मैं बड़े बाल तथा दाढ़ी रखता था। मालाबार में चिट्ठी पत्री करके वहाँ जाने का कार्यक्रम बना लिया था। उसके अनुसार गुरुकुल से जब मैं 1940 के अन्त में नवम्बर दर्शन के लिए पांडिचेरी आया तो वहीं टिका रहा और 3 जनवरी को वहीं से मालाबार के लिए चल दिया। सलेम होता हुआ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5 जनवरी को कालीकट पहुँच गया (कालीकट वही स्थान है जहाँ कि भारत की खोज में कभी वास्कोडिगामा पहुँचा था और उसे भारत का पता लगा था।) कालीकट में पांडिचेरी आश्रम के एक गुजराती साधक के पत्र को लेकर उनके एक मित्र के यहाँ ठहरा था। जिन कालीकट के महानुभाव द्वारा चिकित्सा का निश्चय करना था वे बाहर गये हुए थे। अतः मैं एक दिन के लिए इधर के प्रसिद्ध सन्त स्वामी रामदास जी के दर्शन करने चला गया जिनका कि आश्रम (आनन्द आश्रम) काननगढ़ में है। उनसे 7 जनवरी को प्रातः बातचीत करने का भी अवसर मिला। उनके बाल-स्वभाव की स्मृति बनी हुई है। शाम को उनके यहाँ कीर्त्तन, गाना बजाना होता था। उसमें मैं सम्मिलित नहीं हो सका था।

अन्त में कोहकल की आर्य वैद्यशाला में ही चिकित्सा कराने का निश्चय बना। कोहकल कालीकट से दो-तीन घण्टे का (रेल या बस से) रास्ता है। वहाँ के 80 वर्ष के वृद्ध वैद्य श्री वरियर जी ने मुझे देखा और मेरे लिए (1) नित्य अभ्यंग (मालिश) तथा (2) शिरोवस्ती और पिजीचल —ये दो चिकित्साएं लिख कर दीं।

कोहकल के आर्य वैद्यशाला की एक शाखा कालीकट में भी थी। वहाँ के वैद्य जी से मैं मिला तो उन्होंने मेरी नाड़ी परीक्षा करके (मुझसे कुछ भी नहीं पूछा) मुझे क्या रोग है, यह बतलाने का यत्न किया जो कि काफी ठीक कहा जा सकता है। वहाँ अच्छे वैद्य की पहिचान ही यह मानी जाती है कि वह नाड़ी देख कर ही सब बात स्वयं बता दे। वहाँ 'अष्टांग-हृदय' का प्रचार है, उसी के अनुसार चिकित्सा की जाती है। वहाँ मालिश के बहुत से प्रकार प्रचलित हैं, जो कि परम्परा से चले आते हैं। वहाँ के गांवों में मालिश करने वाले लोगों की एक जात है जो कि इस कार्य—मालिश के विशेषज्ञ होते हैं। 'शिरोवस्ती' वैसे तो सब आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखी है पर उत्तर भारत के वैद्य इसकी क्रियात्मक विधि नहीं जानते हैं। यहाँ के यह वरियर जी दक्षिण-भारत के प्रसिद्ध वैद्य थे। उन्होंने anatomy पर एक संस्कृत में पुस्तक 'प्रत्यक्ष शारीरम' लिखी है, जिसके कारण ये भारत भर में प्रसिद्ध थे। ये अति वृद्ध होने से अब स्वयं चिकित्सा किसी की नहीं करते थे। पर मुझे उन्होंने कृपा पूर्वक देखा। इन्होंने अपने श्रम से वहाँ देहात में एक आयुर्वेद शाला खोली तथा एक आयुर्वेद महाविद्यालय को भी चलाते थे जिसमें बहुत से शिक्षार्थी शिक्षा पाते थे। यह अपनी संस्था का जन्म दिन 26 जनवरी को मनाते हैं। तो उस दिन वरियर जी की प्रेरणा से उनके एक शिष्य, मेरे सीधे चिकित्सक ने मुझे भी उनकी जन्मोत्सव की सभा में बोलने के लिये कहा। मैं बोलने को तो तैयार हो गया पर मेरे लिए प्रश्न था कि मैं किस भाषा में बोलूं। उनकी भाषा 'मलयालम' मैं नहीं जानता था और मेरी भाषा 'हिन्दी' वे नहीं समझते थे। अंग्रेजी में बोलना मैं उचित नहीं समझता था। तो मेरे चिकित्सक ने सुझाया कि आप संस्कृत में बोल सकते हैं, हमारे विद्यार्थी आयुर्वेद के ग्रन्थ पढ़ते हैं अतः सब संस्कृत जानते हैं। तो उस दिन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत भाषा का क्रियात्मक ज्ञान मेरे काम आया। यह भी समझ में आया कि हमारे विस्तृत देश में भिन्न-भिन्न भागों को मिलाने का काम संस्कृत भाषा द्वारा आसानी से हो सकता है। मैंने 5-7 मिनट का भाषण उनकी सभा में संस्कृत में किया। मेरी संस्कृत सब समझ रहे थे, यह इस बात से स्पष्ट था कि मेरे भाषण में दो बार श्रोताओं ने ठीक स्थान पर करतल ध्वनि की। उस सभा के सभापति केरल प्रान्त के एक एम. एल. ए. थे जो संस्कृतज्ञ थे। सुना है कि उन्होंने अपने अंतिम भाषण में मेरे भाषण की प्रशंसा की। अगले दिन जो जो मुझे मिले, उन्होंने इस बात का जिक्र किया कि कल हमारी सभा के सभापति जी ने आपके भाषण की, आपकी कई बातों की प्रशंसा की है। अस्तु !

मेरी शिरोवस्ती 16 जनवरी से 22 जनवरी तक एक सप्ताह की गयी। सिर पर चमड़े की एक टोपी सी (जो ऊपर से खुली हो) ओढ़ा कर, उसे नीचे से सिर के साथ चिपकने की चीज से ऐसे चिपका देते थे कि उसमें से तेल न चू सके। फिर उसमें क्वोष्ण तेल भर देते थे। यह सायंकाल एक घंटे से डेढ़ घंटे तक सिर पर भरा रहता था। उस समय एक व्यक्ति सारे शरीर पर क्वोष्ण तेल मलता जाता था। दूसरे दिन मुझे शिरोवस्ती किये हुए पौन घंटे बाद वमन हो गया उसके बाद सातवें दिन तक और कुछ उपद्रव नहीं हुआ।

फिर 23 जनवरी से 12 फरवरी तक 3 सप्ताह पिजीचल मालिश की गयी। मलयालम भाषा में पिजीचल शब्द का अर्थ निचोड़ना है। लकड़ी की बनी हुई एक पाटी पर (जिसे धारापाटी कहते हैं) रोगी को लिटा देते हैं। फिर चार आदमी (दो दायें तरफ, दो बायें तरफ बैठ कर एक हाथ से क्वोष्ण तेल को शरीर पर निचोड़ते जाते और दूसरे हाथ से मलते हैं। यह पिजीचल भी सायंकाल एक से डेढ़ घंटे तक की जाती है—ऐसा विधान है। पर यह तीन या चार सप्ताह की जा सकती है। शिरोवस्ती एक सप्ताह से ज्यादा नहीं करते। इन दोनों चिकित्साओं के बाद उष्ण जल से (जिसमें एरंड के पत्ते उबाले जाते थे) स्नान कराते थे।

वहाँ पर 'क्षीरबला तेल' की बहुत महिमा है। इसी तेल से मेरी शिरोवस्ती और पिजीचल किया गया था। क्षीरबला तेल दूध और बला (खरैंटी) को तिल के तेल में पका कर बनाते हैं। इसके विकल्प में जो तेल उपयुक्त किया जा सकता है उसका नाम वहाँ 'प्रभञ्जन विमर्दनम्' है। यह एरंड तेल, गोघृत और तिल तेल को 1, 2, 4 के अनुपात में मिलाने से बनता है।

शत पाक किया गया क्षीरबला तेल वे खिलाते भी थे। प्रातः 15 बूंद क्षीरबला तेल गंधर्वहस्तादि काषाय में डालकर, सायं चिकित्सा के बाद 15 बूंद रासनादि काषाय के साथ और फिर सोते समय 15 बूंद दूध के साथ देते थे।

क्षीरबला तेल का सायं नस्य भी कराते थे। पहिले गर्म पानी में भीगे कपड़े को निचड़ कर मुँह पर रखने द्वारा मुँह की नसों को खोलने के बाद नाक में क्षीरबला तेल डाल कर एक फूंकनी से फूंक देते थे जिससे नस्य का तेल फैल जाये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिदिन तीन बोतल (48 औंस) तेल ये प्रयोग करते थे। अगले दिन नया तीन बोतल तेल लाया जाता था। इस एक महीने की चिकित्सा करने के उन्होंने 700-800 रुपये मुझसे लिये थे जो कि मैंने अपने दस मित्रों से मांग कर पूरे किये थे। ये चिकित्साएँ मैंने इतनी अच्छी तरह समझ-समझ कर करायी थीं कि मैं यह चिकित्सा औरों की भी कर सकता हूँ।

इस शिरोवस्ती तथा पिजीचल से मुझे लाभ हुआ पर चूंकि वैद्य वरियर जी ने मेरे लिए मुख्य बात अभ्यंग (दैनिक तेल मर्दन) ही कही थी, अतः उसके बाद से मैं अब तक यह दैनिक मालिश करता आ रहा हूँ। इसे मैं मालिश-योग कहता हूँ। अब सप्ताह में एक दिन छुट्टी रखता हूँ। नहीं तो लगभग दो घंटा सिर पर उसके बाद से करता आ रहा हूँ।

पांडिचेरी के जिस घर में मैं उन दिनों रहता था, उसी में स्वनामधन्य विद्वत प्रवर कपालिशास्त्री (वेद भाष्यकार) भी रहते थे। ये मुझे कहा करते थे कि मालिश के बाद गर्म पानी से स्नान करना चाहिये तथा मालिश किसी दूसरे से करानी चाहिये। पहिले मैं मालिश के बाद ठंडे पानी से ही स्नान करता और स्वयं ही मालिश करता था। चार-पाँच वर्ष बाद मैंने गरम पानी से ही स्नान प्रारम्भ कर दिया था यद्यपि अब उसके बाद कुछ लोटे ठंडे पानी के भी डाल लेता हूँ। यह प्राकृतिक चिकित्सा की एक विधि का अनुसरण करते हुए करता हूँ। और यद्यपि मुझे दूसरे से मालिश कराना पसन्द नहीं है, दूसरा तो नहीं जान पाता कि कब, कहाँ, कैसे मालिश कराना यह शरीर (अन्नमय आत्मा) चाहता है तो भी एक घंटा दूसरे से भी अवसर होने पर मालिश करा लेता हूँ और कई व्यक्ति ऐसे हैं जो (कम या अधिक) मेरी इच्छानुसार ही मालिश कर सकते हैं।

इस सतत मालिश का जो कि 20–22 वर्ष से चल रही है, क्या लाभ हुआ या उसके करने की विधि में क्या परिवर्त्तन मैंने किये, इसकी चर्चा आगे यथास्थान आयेगी।

मैंने गुरुकुल क्यों छोड़ा

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि इस बार, छठी बार, जो मैं अप्रैल 1939 को गुरुकुल में आया तो पूरे इस संकल्प के साथ आया था कि अब जीवन भर गुरुकुल का ही कार्य करना है और इसी रूप में अपना कार्य आरम्भ किया तथा करता रहा। ऐसी बातें तो होती रहीं जिन्हें बिदकाने वाली या अपमान जनक कहा जा सकता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—और यह सदा ऊपर की तरफ से, सभा या उपाध्यायों आदि की तरफ से होती थीं, कभी ब्रह्मचारियों की तरफ से नहीं हुई—पर मैं इन्हें भी प्राय: आनन्द से, तपश्चर्या मान कर, सहता रहा क्योंकि गुरुकुल का ही कार्य करना है, यह निश्चय कर चुका था। राजनैतिक क्षेत्र (कांग्रेस की चार आना सदस्यता तक) तो 1935 से छोड़ चुका था, अब 1941 से गांधी सेवा संघ की सदस्यता से भी मुक्त हो चुका था। गुरुकुल के आजीवन सदस्य (जैसे दयानन्द सेवा सदन के सदस्य) जितने पवित्र भाव से अपने जीवन को देते थे उससे अधिक ही पवित्र भाव से और स्थिर भाव से—क्योंकि केवल 18 या 20 वर्ष के लिये नहीं किन्तु जीवन भर के लिए—मैंने गुरुकुल सेवा का संकल्प लिया हुआ था। मैं बेशक तीन बार पांडिचेरी जाता था पर वहाँ भी मुख्य ध्यान गुरुकुल का ही रहता था। सच तो यह है कि मैं वहां भी गुरुकुल के लिए ही जाता था। और परमेश्वर की कृपा से गुरुकुल का सब कार्य ठीक ठीक चल रहा था। यद्यपि आचार्य बनते समय जो वचन गम्भीर भाव से और लिखित रूप से मुझे दिये गये थे, वे पूरे नहीं किये गये थे तो भी मैं अपने कार्य में संलग्न था। इस ढाई साल बीत जाने पर एक ऐसी बात हुई जिसने मुझे चौकन्ना कर दिया।

यह मध्य 1941 की बात है। उस वर्ष जब मैं अगस्त-दर्शन के लिए पांडिचेरी गया हुआ था तब एक दिन प्रात:काल उठते ही (जागते समय) मुझे एक आवाज सुनायी दी—"Leave Gurukul" अर्थात् 'गुरुकुल छोड़ दें।' स्वभावत: मैंने इसका जिक्र पांडिचेरी की माता जी से किया। उन्होंने कहा—'यह मेरी आवाज तो नहीं थी, हो सकता है कि यह तुम्हारी आत्मा की आवाज हो, मैं इस विषय में श्रीअरविंद से पूछूंगी।' कुछ दिन दिनों बाद श्री अरविंद का सन्देसा भी मुझे मिला—'यह उसके बिल्कुल अपने ही निश्चय करने की बात है, यदि वह गुरुकुल में कार्य करने का निश्चय करेगा तो नि:सन्देह उसके लिए उसे माता जी का आशीर्वाद प्राप्त होगा।' अर्थात् श्री अरविंद ने भी अपनी तरफ से कुछ निर्णय नहीं दिया, यही ठीक समझा कि इस विषय में मैं ही स्वयं निर्णय करूं। तब मैंने पांडिचेरी से ही 4 सितम्बर 1941 को एक पत्र सभा प्रधान पं० बुद्धदेव जी को लिखा जिसमें पहली बार अपने गुरुकुल छोड़ने की सम्भावना का जिक्र किया। मैंने उन्हें लिखा कि जिन जिन बातों का मुझसे वायदा किया गया था, वे अब ढाई वर्ष बीत जाने तक भी पूरी नहीं हुई हैं तो ऐसी दशा में मेरा गुरुकुल का आचार्य बने रहना कहाँ तक उचित है? नहीं तो अब तक—अगस्त 1941 तक—मैंने स्वप्न में भी गुरुकुल छोड़ने को नहीं सोचा था।

श्री अरविंद की बात सुन कर मैंने अपने मन में एक शर्त लगायी (और यह बात माता जी से भी कह दी) कि मैंने जो एक भ्रातृमण्डल की योजना बनायी है, उसे यदि गुरुकुल की सभा ने, अधिकारियों ने, ठीक भाव से स्वीकार किया तब तो मैं गुरुकुल में कार्य करता रहूँगा, नहीं तो छोड़ दूंगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भ्रातृमण्डल की योजना मेरे अन्दर कैसे पैदा हुई, यह बतलाने के लिए मुझे उन तीन बातों का उल्लेख करना होगा जिन्हें कि सभा ने 1939 के प्रारम्भ में मुझे स्थिर आचार्य बन जाने को कहते हुए सहर्ष स्वीकार किया था पर उन्हें अब तक भी पूरा नहीं किया था। वे तीन बातें निम्न थीं। (1) पहली बात यह थी कि गुरुकुल में द्वैध शासन नहीं रहना चाहिये। यह बात गुरुकुल कमीशन ने भी स्वीकार की थी अर्थात् मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य ये दोनों शासनकर्त्ता गुरुकुल में रहने से मुश्किल पड़ती है। मैं कहा करता था कि जब पं० विश्वम्भर नाथ तथा आचार्य रामदेव जैसे घनिष्ठ मित्र और साथी इस द्वैध शासन को नहीं निभा सके तो औरों का क्या कहना है? अतः यह बात खूब अनुभव सिद्ध मानी जाती थी। इसीलिये पं० विश्वम्भर नाथ जी ने भी इस विचार का कि अब आचार्य गुरुकुल में मुख्य अधिकारी (उसके दो सहायक हों, एक शिक्षा विभाग में) हो, बहुत जोर से समर्थन किया था, यद्यपि उनका यह ख्याल था कि एक मुख्याधिष्ठाता तो होना चाहिये परन्तु वह गुरुकुल से बाहर रहने वाला होना चाहिये।

इसके अनुसार तत्कालीन मुख्याधिष्ठाता (पं० सत्यव्रत जी, उसी समय छोड़ने को उद्यत थे। परन्तु उनके यह कहने पर कि उनका केवल डेढ़ वर्ष सेवा-काल रह गया है, वह उन्हें पूरा कर लेने दिया जा सके तो अच्छा है, पं० विश्वम्भर नाथ जी ने उन्हें कहा था "तब फिर इन डेढ़ वर्ष तक आपको प्रसुप्त (dormant) रहना चाहिये।" बल्कि यह बात लिखित कर ली गयी थी। तो भी डेढ़ की जगह ढाई वर्ष तक वे रहे और अन्त में 27.10.41 को उन्होंने गुरुकुल के विदा ली। इस प्रकार पहली बात तत्काल पूरी की जाने की जगह ढाई वर्ष बाद जैसे-तैसे पूरी की गयी।

(2) गुरुकुल के वायुमंडल को ऊँचा बनाने के लिए यद्यपि सभा ने अपने प्रस्ताव द्वारा अध्यापक उपाध्यायों को दो वर्ष का समय प्रदान किया था कि वे इस बीच में अपने आपको नई नीति के अनुसार ढाल लेवें, तो भी चार अनभिष्ट (Undesirable) व्यक्तियों को दो वर्ष से पूर्व ही बदल देने की बात स्पष्ट रूप से तय हो गई थी। पर वह भी अब ढाई वर्ष बीत जाने पर टाली जाती रही। उन चार में से एक तो स्वयं चले गये, दो के विषय में फिर पं० विश्वम्भर नाथ जी ने कहा कि इनका भी थोड़ा ही सेवा-काल बचा है, तब इन्हें भी रहने क्यों न दिया जाय तथा चौथे के बारे में यह कठिनाई बताते रहे कि उसकी सेवा बहुत लम्बी है अतः किसी विशेष खराबी पर ही उसे हटाया जा जकता है। इस तरह इस मामले को भी तत्काल करने की जगह (बीच में भी पुनः कई बार मान कर भी कि इसे अभी करना है) अब तक किसी न किसी आधार पर टाला जाता रहा।

(3) तीसरी बात गुरुकुल संचालन नीति की थी जिसे कि विद्या सभा ने अच्छी तरह स्वीकार किया था। उस नीति की अन्य बातों को छोड़ भी दिया जाये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उसकी मोटी स्थूल 75 रुपये मासिक वेतन हो जाने की जो मेरी माँग थी, वह भी तब तक पूरी नहीं की गयी थी। बहुत मुश्किल से पं० विश्वम्भर नाथ जी को मामला सुपुर्द होने पर 150 रुपये की जगह 125 रुपये वेतन किये गये थे। इन्हीं बातों को देखकर मेरे मन में आया था कि इस बिगड़े हुए ढाँचे को सुधारने की अन्दर से एक अच्छी चीज विकसित की जाय—यही ठीक उपाय होगा। अतः मैंने एक भ्रातृमंडल की योजना बनायी थी और पं० विश्वम्भर नाथ जी को भी कहा था कि यदि इसी ढंग से आपने चलना है तो गुरुकुल का हित इसी में है कि मुझे गुरुकुल में अपनी "भ्रातृमण्डल" की योजना चलाने की अनुमति आप देवें।

ये तीनों बातें मैंने सभाप्रधान पं० बुद्धदेव जी को पांडिचेरी से ही लिख भेजी थीं और साथ ही भ्रातृमण्डल की योजना की भी (पांडिचेरी की माता जी को दिखा कर) एक प्रति भेज दी थी।

पांडिचेरी से चलकर मैं सितम्बर में ही गुरुकुल पहुँच गया था। 5 से 8 अक्तूबर तक मैं लाहौर रहा जहाँ कि मेरी इच्छा के अनुसार विद्या सभा के अधिकारियों की बैठक रखी गयी थी। उस बैठक में मैं सम्मिलित हुआ तथा जुदा भी सभा प्रधान एवं अधिकारियों से मिला। उसके परिणामस्वरूप जहां मेरी वृत्ति यह नहीं रही कि गुरुकुल में ही आजीवन रहना है बल्कि उसकी जगह यह हो गयी थी कि जब तक निभता है, तब तक रहे जाना है। वहाँ अब तक के गुरुकुल में स्थिर रहने के संकल्प को तोडने के लिए, इस प्रतिज्ञा भंग के लिए, बहुत से भाइयों को अपने गुरुकुल में स्थिर रूप से रहने की जो आशा मैंने दिलायी (जिस आशा पर बहुतों ने कुछ कार्य भी कर दिये थे, कइयों ने जीवन दिशा तक बदली थी) उसके भंग करने के अपराध के लिए कुछ प्रायश्चित तो मुझे करना चाहिये, यह भी स्पष्ट हो गया। अतः मैंने वहीं लाहौर में उपवास किया। फिर 10 से 20 अक्तूबर तक रुड़की जाकर भी यह प्रायश्चित की प्रक्रिया पूरी की। तब हल्का होकर इस भाव में रहने लगा कि अब कोई बन्धन मुझ पर नहीं है, जब तक हो सकेगा, गुरुकुल की सेवा करता जाऊँगा। गुरुकुल छोड़ देना है यह भी नहीं था, पर जरूर रहना है यह भी नहीं था।

इसी प्रकार मैं लगभग एक वर्ष और (अर्थात् अगस्त 1942 तक) रहता गया।

इसी बीच 13 अप्रैल 1942 को (प्रथम वैशाख 1999) वैशाखी (मेष संक्रान्ति) के दिन मंगलमय परमेश्वर तथा उसकी जगन्मातृ रूपिणी शक्ति का ध्यान करते हुए वैदिक यज्ञ पूर्वक भ्रातृमंडल का प्रारम्भ कर दिया गया जिसमें मैं तथा एक और भ्राता भ्रातृमंडल में दीक्षित हुए तथा तीन अन्य भाई थे जिनके सम्मिलित होने की शीघ्र ही सम्भावना मानी गयी थी।

यह भ्रातृमंडल की योजना (जिसकी सूचना गुरुकुल पत्रिका में छपे क्रोड़ पत्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में सब ग्राहकों, संरक्षकों तथा विशेष मित्रों को भेजी गयी थी) निम्नलिखित है :—

भ्रातृमण्डल की योजना

(1) यह एक प्रकार का आध्यात्मिक भ्रातृमण्डल होगा।

(2) कः—(i) जिन भाइयों और बहनों के जीवन का ध्येय भगवान् की प्राप्ति हो।

(ii) और जिनका इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये गुरुकुल जैसी शिक्षा संस्था में भगवदर्पण बुद्धि से सेवा कार्य करते हुए रहना उनकी साधना के लिए उत्तम समझा जायेगा।

(iii) जो पूरी तरह ब्रह्मचर्य का ही जीवन बिताने का संकल्प कर चुके हों।

(iv) जो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में और वैदिक आदर्शों में श्रद्धा रखते हों।

(v) और जो अपने योग क्षेम के लिए भी भगवान पर मातृनिधि (जो धारा संख्या 3 में वर्णित) की अयाचित भिक्षा पर—ही निर्भर रह सकेंगे, अर्थात् उन्हें खाने को भी मिलता है या नहीं इसकी भी कुछ चिन्ता न कर इस चिन्ता को जगन्माता पर छोड़, जो अपने नियत कर्त्तव्य कर्म को ठीक तरह पूरा करने में ही पूर्ण आत्म सन्तुष्टि और तृप्ति प्राप्त करने वाले होंगे, वे इस भ्रातृमण्डल में लिये जा सकेंगे।

खः—इस भ्रातृमण्डल में किसी को लेना या न लेना प्रथम भ्राता या मूल भ्राता के रूप में आचार्य अभयदेव जी के अधीन होगा।

(3) इस मण्डल के सब सदस्य अवैतनिक कार्यकर्त्ता होंगे। वे सभा की गुरुकुलीय निधि से भी किसी रूप में भी कोई वेतन न लेंगे। इनका निर्वाह निम्न प्रकार की मातृनिधि द्वारा चलेगा :—

(क) जो भेंट उपर्युक्त प्रकार के (धारा संख्या 2 में वर्णित) साधकों के निमित्त कोई देना चाहेगा, और जो स्वीकार की जाएगी, उससे जो निधि बनेगी उसका नाम मातृनिधि होगा। सब जगत् का पालन-पोषण करने वाली परमेश्वरीय शक्ति जगन्माता ही है, और जगत् का सब ऐश्वर्य असल में इन्हीं माता का है—दिव्या गुरुकुल माता भी इन्हीं का एक रूप है— ऐसी अटल श्रद्धा होने के कारण इस निधि का नाम मातृनिधि रखा गया है। और इन्हीं माता के सम्बन्ध से हम सब उनके पुत्र परस्पर भाई-भाई हैं, इसीलिए इस परिवार को भ्रातृमण्डल नाम देना पसन्द किया गया है।

खः—इस निधि के लिए आजकल की तरह डेपुटेशन भेज कर चन्दा नहीं लिया जायेगा। बल्कि स्वेच्छा से दिये कोई दान भी, अवांछनीय होने की अवस्था में, अस्वीकार किये जा सकेंगे।

गः—जो कुछ श्रद्धा से, शुद्ध भाव से दिया जायेगा उसे जगन्माता का दिया हुआ ही प्रसाद समझकर कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया जायेगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घः—यद्यपि यह निधि कोई सार्वजनिक निधि न होगी तो भी इसका सब बाकायदा पूरा-पूरा हिसाब रखा जायेगा।

ङः—भ्रातृमण्डल के सदस्यों पर उनकी आवश्यक आवश्यकता के लिए ही, उससे जरा भी अधिक नहीं, इस पारिवारिक निधि में से व्यय किया जायेगा।

चः—यदि इस निधि का धन उनकी आवश्यक आवश्यकताओं के लिए भी पूरा न होगा तो भी इस परिवार के सदस्य न तो कहीं अन्यत्र से अपने लिए धन व्यय करेंगे और ना ही इस मण्डल परिवार को छोड़ देंगे। किन्तु इसी में सब मिल कर गुजारा करेंगे।

छः—यदि निधि में सदस्यों की आवश्यकता से अधिक धन होगा तो उसका उपयोग कैसे किया जाये, इसका निश्चय भ्रातृमण्डल ही समय समय पर करेगा।

(4) परिवार रूप में वने हुए भ्रातृमण्डल के संचालन के लिए आवश्यकतानुसार नियम भी यह भ्रातृमण्डल ही समय समय पर बनाया करेगा।

(5) प्रथम भ्राता इस मण्डल के आजीवन अध्यक्ष होंगे और मतभेद की अवस्था में उन्हीं का निश्चय अन्तिम होगा।

इस मण्डल का प्रारम्भ गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता तथा सभा के गुरुकुल सम्बन्धी उपप्रधान (पं० इन्द्र जी) की एवं सभा प्रधान जी की लिखित अनुमति से किया गया था।

इस प्रकार गुरुकुल में इस भ्रातृमण्डल की स्थापना हो जाने पर मानों आन्तरिक (बाहर से बिल्कुल नहीं) विरोध भड़क गया था। अतएव कई विरोधी बातें हुईं, पर अन्तिम बात जिससे मैं दुखित हुआ, तब हुई जबकि प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में सभा में जान बूझ कर मेरी इच्छा के विरुद्ध एक निर्णय किया गया। तब मैं समझ गया कि ये अधिकारी लोग कोई भी कार्य आगे बढ़ कर करना नहीं चाहते हैं, जब दुनिया किसी बात को मान ले तभी गुरुकुल भी उसे मानेगा। प्राकृतिक चिकित्सा तो आयुर्वेद का माना हुआ अंग है, पश्चिम में भी इसके प्रसिद्ध बड़े-बड़े चिकित्सालय हैं, पर हम उसमें भी अग्रणी नहीं बनना चाहते। यह बात पहिले भी 'सौर दिनांक' निश्चित करने के अपने प्रयत्न में विफल होकर देख चुका था। (गुरुकुल और सभा में सौर तिथि ही चलती थी पर जब मैंने काशी के ज्योतिषियों द्वारा निश्चित किये गये सौर तिथि के मात्र – अर्थात् निश्चित दिन— चलाने का प्रस्ताव रखा तो सभा ने नहीं माना। असल में वे इसे समझते ही नहीं थे, यद्यपि सार्वदेशिक सभा ने उसे माना और अब तो भारत सरकार ने ही शक संवत्सर के रूप में इसे पूरी प्रामाणिकता दे दी है)। तब मैंने यह भी देखा कि कइयों में अच्छाई का निष्काम भाव से विरोध करने की प्रवृत्ति है। तो मैंने गुरुकुल में बने रहना समय खोना ही देखा। अतः गुरुकुल को छोड़ने की मन ही मन सोचने लगा। चूंकि मैं यह जानता था कि ऊपर से तो ये लोग मेरी सब बातें मानते जायेंगे, पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल से नहीं मानेंगे। भ्रातृमण्डल की योजना के विषय में भी स्पष्ट यही दीखता था। इस अवस्था में त्यागपत्र देने का भी कुछ अर्थ मैं नहीं समझता था। अतएव मैंने सोचा कि मैं दो महीने की छुट्टियों में जब जाऊँगा तब फिर लौट कर नहीं आऊँगा। यही उपाय अवलम्बन करना ठीक लगा। अगस्त के प्रारम्भ में जब छुट्टियाँ प्रारम्भ हुईं तो गुरुकुल के ब्रह्मचारियों सम्बन्धी सब कार्यों में मैं वैसे ही सम्मिलित हुआ जैसे कि सदा होता था, पर मन में यह सोच रखा था कि इस बार लौट कर नहीं आना है अतएव सामान इस प्रकार बाँध कर रखा गया था कि उसे लेने भी मुझे न आना पड़े। जैसे सब छुट्टियों में जाते हैं वैसे ही मैं भी छुट्टियों में गत वर्ष की तरह पांडिचेरी चला गया। वहाँ से मैंने पं० इन्द्र जी को अपना न आने का विचार लिख दिया था। पर उधर सभा प्रधान पं० बुद्धदेव जी ने मुझे एक जोश के साथ चिट्ठी लिखी जिसमें मुझे गुरुकुल छोड़ देने को प्रेरित किया गया था। उस पर मैंने पं० बुद्धदेव जी को लिखा था कि "आप तो मरे हुए पर गोली चला रहे हैं।" अन्त में 17.10.42 के छोटे से पत्र द्वारा बुद्धदेव जी ने मुझसे निम्न शब्दों में क्षमा माँगने की आवश्यकता अनुभव की—

वहाँ श्री पं० इन्द्र जी ने मुझे आपका पत्र सुनाया। इस पत्र को सुन कर मैंने अनुभव किया कि गुरुकुल प्रेम के आवेग में मैंने आपके साथ घोर अन्याय किया है। भला मुझे यह क्यों समझना चाहिये था कि आपको गुरुकुल की मुझसे कम चिन्ता है? मुझे निश्चय है कि मुझे इस पत्र का ज्ञान होता तो फिर वह कटु पत्र न लिखता जो मैंने आपको लिखा है। मुझे विश्वास है कि आप इतना तो अवश्य मानेंगे कि मैंने जो कुछ लिखा था, वह गुरुकुल के हित से प्रेरित होकर लिखा है। किन्तु इससे मेरा अपराध तो मार्जित नहीं हो जाता इसलिए अपनी अपेक्षा आपके गुरुकुल-प्रेम की कमी के सन्देह के लिए तथा अपने दुरभिमान के लिए आप से निर्विकल्प रूप से क्षमा चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि आप अवश्य क्षमा कर देंगे।

आपका,

बुद्धदेव विद्यालंकार

उसके बाद पं० बुद्धदेव जी को सामयिक रूप से आचार्य नियत कर दिये जाने की सूचना देते हुए पं० इन्द्र जी ने मुझसे पूछा था कि आप कब गुरुकुल में स्थिर रूप से आवेंगे? मैंने उन्हें 14.9.42 के पत्र में लिख दिया था कि आप स्थिर रूप से ही किसी को आचार्य बना लें। यह भी लिखा कि आप या श्री प्रधान जी 'आर्य' में ऐसी सूचना निकाल दें कि अब अभयदेव गुरुकुल सम्बन्धी सब जिम्मेदारियों से मुक्त है।

यह स्पष्ट है कि इस अन्तिम बार मैंने न कोई त्यागपत्र दिया और न वह स्वीकृत हुआ। मैं गुरुकुल से दीर्घावकाश पर गया और फिर वापिस नहीं लौटा— बस यही हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो इस प्रकरण के शीर्षक में जो प्रश्न उठाया गया है 'मैंने गुरुकुल क्यों छोड़ा ?' उसका उत्तर ऐसा कुछ नहीं है कि अमुक व्यक्तियों या गुटों या किसी सभा के किन्हीं दोषों के कारण मैं गुरुकुल छोड़ने को विवश हुआ। यह समझना तो शायद और भी मूर्खता है। ठीक ठीक और यही कारण इसके सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता है कि—

"इस आत्मा ने गुरुकुल खेल से अब अपना मुँह मोड़ लिया था। इस अनादि शाश्वत आत्मा ने इस कालखंड में इस गुरुकुल रूपी छोटे से देशखण्ड में जो अनुभव प्राप्त करने थे, वे कर लिए गए थे अतएव उससे वह अब ऊब चुका था। उसमें उसे अब कुछ रस नहीं रह गया था।"

मेरे एक स्नातक साथी ने उन्हीं दिनों 23.12.42 को एक लम्बा पत्र लिख कर मुझसे पूछा था "आपने आचार्य-पद क्यों छोड़ा ? जबकि आप व्रत ले चुके थे कि आपने गुरुकुल का ही कार्य करना है। इसका कोई जबरदस्त कारण होना आवश्यक है क्योंकि आपको व्रत से डिगाने के लिए मामूली कारण नहीं हो सकता क्योंकि विद्या सभा ने आपके पांडिचेरी निवास का समय चार मास कम से कम स्वीकार किया तो भी।"

इसी तरह गुरुकुल के कुछ मुझमें श्रद्धा रखने वाले ब्रह्मचारियों ने भी पूछा था "आपने आचार्यत्व क्यों छोड़ा ? हम तो समझते थे कि जैसे पहिले कई बार आप छोड़ कर फिर आ जाते थे, उसी तरह फिर हमें कुछ उपवास आदि प्रायश्चित करा कर हमारे आचार्य बन जायेंगे।"

इन दोनों को मैं क्या उत्तर देता ? क्योंकि गुरुकुल छोड़ने का जो असली और सच्चा कारण था, वह तो उपर्युक्त ही था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग-साधना की कहानी

(स्वाधीनता-संग्राम में भाग)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी-जीवन का आकर्षण और प्रभाव

देशसेवा का विचार तो बचपन से था, इसी लिए महाविद्यालय में गणित विषय न लेकर इतिहास-अर्थशास्त्र राजनीति का विषय लिया था। बीच में यद्यपि तैयारी का विचार मुख्य हो गया था, तथापि देशसेवा में लगने की आन्तर इच्छा तो थी ही। गांधी जी जैसे नेता को पाकर वह इच्छा स्वाभाविक रूप से बढ़ने लगी। सब प्रकार से गांधी जी को अपनाने वृत्ति पैदा हुई। राजनीति में गांधी जी के दृष्टिकोण से दो चीजें साफ थीं—(1) खादी, (2) अहिंसा। स्वदेशी के पहले अर्थ के अनुसार स्नातक होते ही (अर्थात् 1919 में) नागपुर मिल की स्वदेशी धोती खरीदी थी, पर वह भी पहनी नहीं, क्योंकि गांधी-विचारधारा के अनुरूप अब स्वदेशी हाथबुना और हाथकता कपड़ा था। उन दिनों खादी की धोती नहीं मिलती थी, अतः खादी को डेढ़ पाट का बना कर जोड़ कर तम्बा पहनना प्रारम्भ किया और उसके ऊपर खादी का कुर्ता।

इसी तरह यद्यपि अनार्किस्टों के सम्बन्ध से अब तक अंग्रेजों को मार भगाने में श्रद्धा थी, तथापि बम बनाना भी गुरुकुल में रहते हुए सीखा था, पर अब गांधी जी की विचारधारा के प्रभाव से यह लगने लगा कि हिंसा से कुछ नहीं बनेगा। किसी अंग्रेज को देखता था तो मन में पूछता था कि इसे मार देने से क्या होगा ? उन दिनों सोचने लगा था कि अंग्रेजों की हकूमत तो ऐसे नहीं जाएगी, कुछ हत्याएँ करने से तो दमन करने का और बहाना हकूमत को मिल जाता है। गांधी जी की दक्षिण अफ्रीका की सफलता सामने थी। वैसे भी गांधी जी की पुरानी चीजों की पुनः प्रतिष्ठा, सादगी, कर्मवीर भाव, निडरता, यम-नियमों का पालन आदि सब बातें आकर्षक लगती थीं।

जब गांधी जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की आधार-शिला के अवसर पर वहाँ इकट्ठे हुए राजा-महाराजाओं को फटकार सुनाई थी, तब वह हमें बहुत प्रिय लगी। यद्यपि एनी-बीसेण्ट ने कहा था कि 'Gandhi is child in politics,' ('गांधी राजनीति में शिशु हैं।') तथापि हमें गांधी जी और उनका मार्ग प्यारा लगता था। और उन्हीं से देश के उद्धार की आशा थी। अनजाने में भी मेरा जीवन गांधी जी की तरफ आकृष्ट होने लगा। अपने साथियों में मैं गांधी जी के दर्शन का ज्ञाता भी समझा जाने लगा था—ऐसा ज्ञाता जो-जो कहता था, उसे करता भी था। यही कारण था कि स्नातक हो जाने पर यद्यपि मैं तब दो वर्ष से एकान्त सेवन और योग-साधन का जीवन व्यतीत कर रहा था, तथापि 1921 में गांधी जन्म दिवस (2 अक्तूबर) पर बोलने के लिए गुरुकुल के कुलमंत्री ने मुझसे पूछा, तब मैंने गांधी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी के प्रति अपार श्रद्धा होने के कारण उसे स्वीकार कर लिया। फिर जो कुछ हुआ, मैंने किस प्रकार गांधी जी के स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने का निश्चय किया। मेरे गुरु अच्युत मुनि तथा योगानन्द (कृष्णानन्द) ने भी निष्काम भाव से सेवा करने से चित्तशुद्धि होती है—यह बताते हुए इस कार्य में लगने को उत्साहित ही किया। मैंने जब तक भारत स्वाधीन न होगा, तब तक के लिए भूमि-शय्या तथा एक बर्तन में खाने के व्रत लिए। यद्यपि उन दिनों ग्राम-सेवा का कोई आन्दोलन नहीं था, तथापि असहयोग-आन्दोलन में भाग लेने के लिए मैं अपने ग्राम चरथावल में जाकर रहा और वहाँ डेढ़ वर्ष तक दिन-रात खूब कार्य किया, विदेशी कपड़ों की होली की, विदेशी कपड़े न बेचने और न खरीदने का व्रत कराया, खादी-बुनाई का प्रबन्ध किया, चरथावल मे पंचायत कायम की, मुकदमे वहीं निपटने लगे, शराब की दुकान के लिए चरथावल में जगह नहीं मिली। चरथावल में स्वयं-सेवक जत्था निकाला, पर कहीं कोई गिरफ्तारी नहीं हुई, और फिर राजनीतिक सम्मेलन भी वहाँ किया गया। 'परोपकार-विद्यालय' नाम से एक विद्यालय राष्ट्रीय-शिक्षणालय के तौर पर वहाँ आर्य समाज मंदिर में खोला। यह सब कार्य योग-साधन के भाव से ही किया गया और फिर मैं जो गुरुकुल में वेदोपाध्याय (Professor of Vedas) होकर गया, वह भी देशसेवा के लिए एक रचनात्मक कार्य—राष्ट्रीय शिक्षण-प्रसार—करने के लिए गया।

गुरुकुल रहते हुए भी देशसेवा कार्य से बाहर जाना रहता ही था, दो महीने की छुट्टियों में विशेषत:—जैसे 1923 की छुट्टियों में मैं दिल्ली कांग्रेस में गया, 1924 की छुट्टियों में क्वेटा गया, 1925 की छुट्टियों में कई जगह घूमा। 1925 तक भी चरथावल के परोपकार-विद्यालय को रुपया भेजता रहा था। कांग्रेस का कार्य करता था, खादी बेचता था। खादी-उत्पत्ति के लिए कांगड़ी-ग्राम के कन्हैया लाल जी को लगाया था तथा मैं खादी-उत्पत्ति के कार्य से ही असोड़ा, गजरौला, चाँदपुर, किरतपुर आदि स्थानों पर गया था। छुट्टियों में बहुत नियम से कातता था। 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' नियम से पढ़ता था। काले कम्बल पर चर्खा कातता था। मेरे पास या तो वेद के ग्रन्थ होते थे या 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'।

उन्हीं दिनों का मेरा वर्णन जो श्री पद्मसिंह जी ने लिखा था, सच ही था—"देवशर्मा जी महात्मा गांधी के पक्के भक्त और सच्चे अनुयायी हैं। कातने की धुन में अपने आदर्श के अनुसार मस्त रहना उनका प्रिय व्यापार है, पर उसमें व्यापारिकता का भाव नहीं, जीवन का एक व्रत है। उनका कमरा देखिए तो फर्श पर बिछे एक काले कम्बल पर रखी हुई कुछ पुस्तकें और कागज, एक तरफ रखे एक या दो चर्खे तथा पूनियाँ, यही उस कमरे का सब सामान तथा फर्नीचर है।··· दो-दो महीने एक बार सत्तू खाकर बिता दिए जाते हैं।"

25 मार्च, 1926 को गुरुकुल में जमनालाल बजाज आए। मेरे गांधीवादी होने का लाभ उठाते हुए उनका अच्छा स्वागत किया गया : सभा हुई, वाद-विवाद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराया गया। गांधी अर्थशास्त्र की गद्दी स्थापित करने का उन्होंने वचन दिया। सुना है कि जमनालाल बजाज ने गांधी जी के साबरमती आश्रम में जाकर बताया था कि गुरुकुल में एक 'देवशर्मा' स्नातक है, जो गांधी जी का बड़ा अनन्य भक्त है। गांधी जी गुरुकुल से परिचित थे ही। उनके फीनिक्स के सब आश्रमवासी 6 मास तक गुरुकुल में रहे थे। उन्होंने हमारे कहने से एक सन्देश भेजा था जो मैंने नित्य के हवन के बाद सायंकाल बड़े ब्रह्मचारियों को सुनाया था। उसमें उन्होंने गीता के निम्न श्लोक को खादी कार्य के लिए प्रयुक्त किया था—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

एक वर्ष पहले ही 1925 में गांधी जी ने चर्खा संघ की स्थापना की थी। उसके नियमों के अनुसार हाथकता-हाथबुना वस्त्र ही पहनने वाला तथा चन्दे के रूप में कुछ सूत स्वयं कात कर देने वाला चर्खासंघ का सदस्य हो सकता था। जमनालाल जी बजाज के आने पर गुरुकुल में तीस-चालीस सदस्य चर्खासंघ के बने थे।

मैंने तब गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के लिए एक संदेश भेजा था जो इस प्रकार प्रारंभ होता था—"चर्खा रूपी धेनु से जो सूत रूपी दूध निकलता है, उसी से यह खादी रूपी हवि तैयार होती है जो कि सच्चे स्वराज्य-यज्ञ को चलाने के लिए परमावश्यक है।" उन दिनों मेरी दृष्टि में विदेशी कपड़ा पहने हुए लोग नंगे होते थे। उन नंगों का तन ढंकने के लिये खूब सूत कातने की प्रेरणा होती थी। जो लोग गांधी जी के अनुयायी होते थे, देश को स्वाधीन कराने के लिए कांग्रेस के कार्य में लगे होते थे, वे मुझे अपने सम्बन्धी से लगते थे।

महात्मा सुमेर सिंह से मेरी घनिष्ठता हो गई थी। वे बड़े सच्चे कांग्रेस कार्यकर्त्ता थे। मैं उनके यज्ञों में शरीक होता था। वे मानते थे कि स्वराज हस्तिनापुर में आयेगा क्योंकि वहीं से हम पराधीन होने शुरू हुए थे। हस्तिनापुर में उन्होंने यज्ञ किया था जिसमें भाई परमानन्द जी को भी आमन्त्रित किया था। उस यज्ञ में भी मैं 3 मार्च 1928 को सम्मिलित हुआ था।

गांधी जी से प्रथम भेंट

गांधी जी का दृढ़ अनुयायी तो 7-8 वर्ष पहले से मैं बन चुका था और इतना बन चुका था कि मेरा नाम भी गांधी जी तक कई स्रोतों से पहुँच चुका था कि गुरुकुल कांगड़ी का एक स्नातक देवशर्मा बहुत ही पक्का गांधीवादी है। 1920 और 1921 में मुजफ्फरनगर जिले में, विशेषतया चरथावल में, स्वराज्य-खिलाफत आंदोलन में डेढ़ साल तक खूब कार्य भी कर चुका था, परन्तु गांधी जी से भेंट कभी नहीं हुई थी, उसके लिए मैंने कभी यत्न नहीं किया था। 'यंग इण्डिया' और 'हिन्दी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवजीवन' पढ़ कर उनकी आज्ञा पालन करने में खूब आनन्द पाता था। दूर तीन से चार बार उनके दर्शन कर चुका था।

सबसे पहले दो जनवरी 1928 के दिन साबरमती आश्रम में ही उनसे भेंट का लाभ प्राप्त हुआ। तब टिहरी स्टेट के चीफ जस्टिस गंगा प्रसाद जी भी मेरे साथ थे। अधिक ठीक यह है कि मैं उनके साथ था। वह अपनी एक यात्रा पर निकले थे और उनकी इच्छा से मैं भी उस यात्रा में उनके साथ था।

गांधी जी ने पहली बातचीत में ही मुझसे मेरे आध्यात्मिक अनुभव की बात पूछी, क्योंकि उन्हें विदित था कि मैं एक वर्ष तक गढ़वाल में बद्रीनाथ के रास्ते पर अवस्थित एक निर्जन स्थान में योगाभ्यास करता रहा हूँ। मेरे उस एकान्तवास के दिनों में गुरुकुल कांगड़ी की रजत जयन्ती मनाई गई थी, उस उत्सव पर गुरुकुल में महात्मा गांधी भी पधारे थे। उस समय उन्हें पता चला था कि मैं (देवशर्मा) गुरुकुल से छुट्टी लेकर कहीं एकान्त में योग-साधना कर रहा हूँ। उस उत्सव में निकलने वाले नवस्नातकों को मैंने अपने उस एकान्त स्थान से स्वयं अपने हाथ से सूत कात कर और उसके यज्ञोपवीत बनाकर भेजे थे। उन यज्ञोपवीतों की चर्चा भी आचार्य रामदेव ने उस विशेष दीक्षान्त-अवसर पर भरे पण्डाल में की थी, इसीलिए मिलने पर गांधी जी ने स्वयं मुझसे पूछा कि तुमने एक वर्ष की जो एकान्त-साधना की है, उसका अनुभव मुझे कुछ सुनाने योग्य हो तो बताओ।

मैंने नम्रता से उत्तर दिया कि आपको सुनाने योग्य उसमें क्या हो सकता है?

गांधी जी मेरे इस उत्तर से सन्तुष्ट थे अतः इस विषय में और कुछ बातचीत नहीं हुई। गांधी जी के पास साबरमती आने से पहले धार स्टेट के कानवन नामक एक स्थान पर रहने वाले महात्मा छोटेदास के भी दर्शन करने का सुयोग मुझे मिला था। उन्होंने, बल्कि उनके प्रमुख शिष्य लक्ष्मण जी ने एक सन्देश गांधी जी के लिए भेजा था। वह मैंने गांधी जी को सुना दिया, इंग्लिश में लिखा भी उनका एक लेख था, वह भी गांधी जी ने कृपापूर्वक पढ़ लिया, यद्यपि उसे पढ़कर उन्होंने यही कहा—"इसमें मेरे लिए नई बात कुछ नहीं है।"

मैं कुछ प्रश्न गांधी जी से पूछने के लिए नोट करके लाया था। वे प्रश्न सब प्रायः आध्यात्मिक थे, सीधे देशसेवा सम्बन्धी भी नहीं थे। उनके 'यंग इंडिया' के लेख पढ़ते हुए जो कुछ शंका या अस्पष्टता थी, उन्हीं को मैंने नोट कर लिया था। मैंने गांधी जी को बताया कि जिन गुरुजी (सियाराम जी महाराज) की निगरानी में मैंने उस एकान्तवास की साधना की थी, उन्होंने मुझे उस एक वर्ष भर के लिए किसी भी अखबार पढ़ने से—'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' पढ़ने से भी रोक दिया था। (उन्होंने चर्खा कातने से भी मना किया था—मेरे निवेदन पर उन्होंने केवल उतना सूत, जितना यज्ञोपवीत बनाने के लिए तथा चर्खा संघ की सदस्यता के लिए आवश्यक था, उतना भर कात लेने की अनुमति दे दी थी)। इसीलिए मैंने वहां से लौट कर सारे वर्ष भर की 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के अंक इकट्ठे ही पढ़े।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर गाँधी जी ने कहा था—"तो तुमने मेरे लेखों को बहुत महत्त्व दिया ?" उन्हीं लेखों से उपजे वे प्रश्न थे। मैंने देखा कि गांधी जी के पास समय बहुत थोड़ा है और हमारी यात्रा में भी साबरमती आश्रम के लिए केवल तीन दिन रखे थे, इस लिए मैंने गांधी जी से यह इच्छा प्रकट की कि यह यात्रा समाप्त करके मैं फिर एक महीना भर उनके आश्रम में रहना चाहता हूँ। गांधी जी ने इसके लिए सहर्ष स्वीकृति दी और यह निश्चय हुआ कि मेरी और बातचीत, प्रश्न-चर्चा, लौटने पर ही आराम के साथ हो।

उन तीन दिनों में हमने उस महापुरुष की सर्वोत्कृष्ट कृति वह आश्रम अच्छी तरह देखा। प्रातः ब्राह्म-मुहूर्त में सवा चार बजे सब आश्रमवासी प्रार्थना में एकत्र होते थे, सब लोग एक जगह पर बैठ कर सादा उत्तम भोजन करते थे, दिन भर अपना-अपना कार्य करते थे, सायं फिर सम्मिलित प्रार्थना होती थी। शुद्ध उच्चारण के साथ स्तुति-श्लोक और गीता के अध्याय बोले जाते थे। सूत कातने की हाजरी प्रतिदिन लगती थी। इन सब कार्यों में हम भी सम्मिलित होते थे। प्रार्थनाओं के बाद प्रायः गांधी जी कुछ उपदेश भी गुजराती में करते थे।

आश्रम में दूर-दूर से एक से एक बढ़ कर व्यक्ति थे, गांधी-सूर्य के चारों ओर इकट्ठे हुए नक्षत्र थे। वहाँ जमनालाल जी ने एक भनसाली भाई का (विनोदपूर्वक यह कहते हुए) परिचय कराया कि उन्होंने उपवास में जगत का रिकार्ड तोड़ रखा है। काका साहब के दर्शन हुए, मैंने उन्हें देखकर कहा—आपके लेखों से तो मैं ऐसा समझता था कि आप कोई अधिक आयु के वृद्ध पुरुष होंगे, आप तो नौजवान हैं। एक इमाम साहब थे जिनकी तरफ ध्यान जाता था। श्री तोताराम सनाढ्य थे, जिनसे मिलकर और बातचीत करके आत्मीयता का-सा अनुभव होता था। विनोबा जी के भाई बालकोवा थे जो खूब काम करते थे, जिनसे स्नेहभाव हो गया था। मगनभाई जी के कार्य और कार्यशैली देख कर श्रद्धा होती थी। सुरेन्द्र जी वहाँ थे, जिनसे इतनी घनिष्ठता हो गई कि वह मुझे बिल्कुल अपने साथी-संगी लगते थे। साथ में बहती साबरमती नदी में हम स्नान करते तथा कपड़े धोते थे।

गांधी जी की सेवा में कस्तूरबा अपना कार्य बड़ी सावधानी और लगन से करती थीं। उनके साथ जरा-सा सम्पर्क होने पर ही लगा कि उनके अन्दर सब आश्रमवासियों के लिए वात्सल्यभाव है। वह बातचीत बड़े प्रेम से बिना लाग-लपेट के साफ-साफ करती थीं। हमने खादी की उत्पत्ति के सब विभाग देखे। कातने बुनने की सब प्रक्रिया व्यवहार से देखी।

विदा होते समय श्री गंगा प्रसाद ने गांधी जी से खादी के विषय में (उन्होंने उस समय गांधी टोपी लगाई हुई थी और वह उनके सिर पर खूब सजती थी) कहा—हमारे महाराज, टिहरी-नरेश खादी पहनने नहीं देते हैं, नाराज होते हैं, इस लिए मैं खादी नहीं बरत सकता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर गांधी जी ने कहा—"अच्छा आपके महाराज को इतना सहूर है कि वह खादी को पहचान सकें ? खादी तो इतनी बढ़िया, बारीक, विचित्र रंगों की बनने लगी है कि उसे खादी खद्दड़ नहीं कहा जा सकता।"

गांधी जी का मतलब था कि उन जैसे लोगों को तो ऐसी ही बढ़िया, बारीक, कीमती खादी पहननी चाहिए, जिससे खादी के उत्कृष्ट कारीगर को पैसे मिलें।

कुछ समय बाद मुझे एक मास तक निरन्तर साबरमती आश्रम में रहकर गाँधी जी के पास रहने का अवसर मिला।

साबरमती आश्रम में एक मास

आश्रम में मैं अब अपरिचित नहीं था। ठहरने को छात्रावास में मुझे एक कमरा दे दिया गया था। पहुँचने के एक-दो दिन बाद 31 जनवरी को मैं गांधीजी से अपनी बातचीत करने के लिए समय माँगकर उनके पास पहुँचा था और अभी थोड़ी सी बात प्रारम्भ ही की थी कि इतने में कोई आश्रमवासी आ गया और गांधी जी को उस आवश्यक कार्य की ओर ध्यान देना पड़ा। उधर से निपट कर गांधी जी ने मुझसे कहा, "देखो, मुझे कार्य तो बहुत रहता है, कुछ ऐसा करो कि तुम लगातार मेरे साथ रह सको, जब खाली समय मिला करेगा तभी हम बातें कर लिया करेंगे।" उनके इस प्रस्ताव से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई, मुझे लगातार गांधी जी के पास रहने का सुअवसर मिल गया। इस तरह मैं चार दिन (31 जनवरी से 3 फरवरी तक) निरन्तर उनके पास रहा—जब भी वे जरा खाली होते तभी मैं अपनी डायरी देखकर उनसे अगला प्रश्न पूछने लगता। इस तरह उनके सायं के भ्रमण-समय, उनके अपने कमरे से भोजनशाला तक पहुँचते हुए या कभी उनके आश्रम से गुजरात विद्यापीठ जाते हुए रास्ते में मेरी बातचीत होती रहती थी, चलती रहती थी। चौथे दिन मैंने उन्हें कहा कि मेरे प्रश्न तो आज समाप्त हो गये और मैंने उनसे इस सत्संग से विदा ली, मैंने चार दिन तक उनसे जो बातें कीं, उनमें से पाठकों के लिए उल्लेखनीय केवल एक बात स्मरण आ रही है। मैंने उनसे कहा था कि "खादी चर्खा ऐसी चीजें हैं कि जिन्हें आम जनता अपनाले—यह बहुत कठिन है, इस समय भी बहुत से लोग इन्हें इसलिये अपनाते हैं क्योंकि इससे स्वराज्य मिलने का सम्बन्ध जोड़ा गया है, स्वराज्य मिलने पर यदि स्वराज्य-सरकार स्वदेशी कपड़े की मिलें चालू

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना चाहेगी तो आप क्या करेंगे ?" तो उन्होंने कहा था कि कपड़े की मिलों के कारण जो हमारे देश के लोग बेकार होंगे उनको लेकर मैं सत्याग्रह करूँगा—यह हो सकता है।

जिस दिन मैंने अपनी बातें समाप्त कीं, उसी दिन (3 फरवरी) शाम को अपनी प्रार्थना के उपरान्त के भाषण में उन्होंने अचानक सब आश्रमवासियों से मेरा जिक्र कर दिया, मैं इस घटना के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। उन्होंने ऐसा सा कहा कि ऐसे-ऐसे एक व्यक्ति आश्रम में आये हैं, एक मास रहेंगे, जो उनसे लाभ उठाना चाहें, उठावें। गांधी जी के ऐसा कहने से अगले दिन से कई आश्रमवासी मुझसे योग विषयक बातचीत करने आने लगे। उनमें से दो व्यक्तियों ने विशेष दिलचस्पी ली। एक तो मुसलमान नवयुवक थे—उन भाई का नाम इस समय मुझे याद नहीं आ रहा—इन्होंने विशेष उत्सुकतापूर्वक कुछ बातें पूछीं। मैंने उनकी इच्छा से उन्हें प्राणायाम की कुछ क्रियायें भी सिखाई थीं। दूसरे भनसाली भाई (प्रोफेसर भनसाली) थे जिनका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ, जिन्होंने योग की क्रियाओं में विशेष अभिरुचि दिखाई और मुझसे बहुत बार मिलते रहे।

जिस दिन मेरी वार्त्ता समाप्त हुई, उससे अगले दिन (5 फरवरी को) ऐसा हुआ कि छात्रावास के प्रांगण में आश्रम की एक सभा हो रही थी जिसमें गांधी जी भी चर्खा कातते हुए बैठे थे कि गांधी जी को अचानक सिर में चक्कर आ गया और बेहोशी सी हो गई। सभा में एकाएक चिन्ता छा गई। मैं उठकर एकदम अपने कमरे में (जो पास ही था) चला गया—गांधी जी स्वस्थता के लिए प्रार्थना व ध्यान करने को—ऐसी ही प्रवृत्ति हुई। अगले दिन पता लगा कि गांधी जी को रक्तचाप (Blood pressure) की तकलीफ हो गई है। इस बीमारी का नाम भी मैंने पहिले-पहिल तभी सुना। गांधी जी से लोगों का मिलना, बातचीत करना सब बन्द कर दिया गया। उन्हें पूर्ण आराम की सलाह डाक्टरों ने दी। गांधी जी ने कुछ दिनों से गुजरात विद्यापीठ का कार्य भी अपने ऊपर ले लिया था। हमने सुना कि राजेन्द्रबाबू ने हंसी में एक पत्र में लिखा है कि बापू का गुजरात विद्यापीठ की सीमा में घुसना निषिद्ध हो जाना चाहिये।

गांधी जी की यह बीमारी भी मेरे लिए फिर एक सौभाग्य की चीज बन गई। जमनालाल जी ने 8 फरवरी से गांधी जी के पास मेरी तैनाती कर दी। उन्होंने मुझे कहा "गांधी जी की सेवा में इस समय ऐसा व्यक्ति रहना चाहिये जो उनसे मिलने से, बातें करने से दूसरों को तो रोके ही, पर स्वयं भी बहुत बात न करे। कई लोग दूसरों को तो रोकते हैं, पर स्वयं ही बहुत बातें करते हैं। सो, इस कार्य के लिए आप बहुत अच्छे रहेंगे, क्योंकि आप स्वयं भी बातचीत नहीं करेंगे।" इस तरह उस चार दिन के निरन्तर साथ के छूटने के एक दो दिन बाद ही फिर मुझे गांधी जी के साथ, सहवास, सत्संग का अवसर परमेश्वर ने दिया। इन दिनों पूज्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बा के साथ भी निकट का सम्बन्ध रहा, चूंकि गांधी जी के भोजन आदि के लिए मुझे सदा उनसे मिलना होता था, सदा उनसे वास्ता पड़ता था।

गांधी जी के इस रोग के इलाज के लिए एक यूरोपियन महिला ने अपनी सेवा प्रस्तुत की थी। गांधी जी ने मेरे सामने उनसे स्पष्ट कहा कि इस इलाज के लिए मेरे पास फीस के तौर पर देने के लिए कुछ नहीं है, यह देख लो। वह अंगों को ठोकने टकोरने की एक प्रकार की चिकित्सा (प्राकृतिक) करती थी। सो वह दिन में एक या दो बार अपनी सेवा देने आने लगी और शायद महीना भर सेवा करती रही।

संकोच के साथ दो तीन आसन (जैसे सर्वांगासन, शीर्षासन, जानुशिरासन, भुजंगासन) मैंने भी गांधी जी को लिखकर दे दिये थे कि अच्छा होने पर वे चाहें तो इनका अभ्यास करके देख लें। पीछे कई वर्षों बाद आसनों का जिक्र आने पर उन्होंने मुझे बताया था कि शीर्षासन करने से तो मुझे कुवलयानन्द (जे. सी. गुणे) जी ने तार देकर मना किया, इसलिये मैंने नहीं किया। अन्य आसन उन्होंने किये कि नहीं, वह मुझे पता नहीं।

गांधी जी दोपहर को गरम पानी में शहद और निम्बू डालकर पिया करते थे। एक दिन मैंने उन्हें कहा कि आयुर्वेद के अनुसार गरम पानी और शहद (मधु) विरुद्ध चीजें हैं, तो उन्होंने पूछा "यह क्यों विरुद्ध हैं?" मैं उन्हें कोई कारण नहीं बता सकता था। मैंने उन्हें कहा कि गरम पानी ही नहीं किन्तु गरम तासीर की सभी वस्तुओं के साथ मधु का सेवन वर्जित है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है। उनका कहना था कि इन पुस्तकों में कई बातें बिना विशेष परीक्षण या पूरी जाँच के लिखी होती हैं। गांधी जी की सत्यनिष्ठा उन्हें ऐसे ही किसी चीज को अंधाधुंध मानने से रोकती थी।

जब वे अपने कमरे में कमोड पर शौच या लघुशंका के लिए बैठते थे तो इशारा होने पर मैं कमरे का दरवाजा उढ़काता हुआ कमरे के बाहर हो जाता था। वहाँ एक बिल्ली भी थी जो कभी-कभी कमरे में रहती थी। एक बार मैंने गांधी जी से हंसी में कहा कि आपके एकान्त के लिए मुझे तो कमरे से बाहर होना होता है, पर यह बिल्ली तो अन्दर आपके सामने ही रहती है, तो उन्होंने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। उन्होंने बाईबिल के वचन की तरफ संकेत करते हुए कहा, "Man is the sinner" —पापी तो मनुष्य है, अर्थात् पशु तो पाप पुण्य से रहित है, मनुष्य ही पाप पुण्य करता है।

गांधी जी प्रातः सायं की प्रार्थना में जो प्रवचन किया करते थे, वह गुजराती में होता था, इसलिये हमारे पल्ले उसमें से कुछ नहीं पड़ता था, कुछ अनुमान से समझने का मैं यत्न करता था। एक दिन जमनालाल जी से मैंने इसका जिक्र किया। उन्होंने मुझे तो यही उत्तर दिया कि "तो फिर आपको हमको गुजराती सीख लेनी चाहिये। मैंने तो सीख ली है; और क्या किया जा सकता है? हम गुजरात में बैठे हैं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु उसी दिन (27 जनवरी 1928) सायंकाल प्रार्थना के उपरान्त जमनालाल जी सभा में खड़े होकर गांधी जी को अभिमुख होकर कहने लगे कि "यहाँ बहुत से लोग हैं जो दूसरे प्रान्तों के हैं, हिन्दी तो हमारे देश की राष्ट्रभाषा भी है, तो आपका प्रवचन हिन्दी में हो, सबको लाभ हो, ऐसा देवशर्मा जी कहते हैं।" "तो, अपनी बात वे स्वयं कहें, आप क्यों कहते हैं ?" इस पर गांधी जी ने कहा। इस पर अन्तिम पंक्ति में बैठे हुए मुझको उठ खड़ा होना पड़ा और मैंने निवेदन किया कि जमनालाल जी ने जो कहा है, वही मेरा कहना है, आप हिन्दी में बोलें तो हम सब को लाभ हो। इस पर कुछ आपस में बातें होने लगीं। महादेव देसाई ने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि हिन्दी में गांधी जी अपना हृदय नहीं उडेल सकते, पूरे भाव से नहीं बोल सकते। उस समय यह कहा गया कि इस विषय पर कार्यवाहक मंडल में विचार किया जायेगा। दो दिन बाद (30 जनवरी) गांधी जी ने यह निर्णय सुनाया कि वे एक समय हिन्दी में बोला करेंगे, दूसरे समय गुजराती में। यह 1928 की बात है। गांधी जी ने तब ही हिन्दी को इतना महत्त्व देना प्रारम्भ कर दिया था, यह ध्यान देने की बात है। अस्तु !

एक मास समाप्त होने पर मैंने 22 फरवरी को आश्रम से विदा ली। जाते समय मैंने पूज्य बापू जी के सम्मुख अपना आत्म-समर्पण का भाव व्यक्त किया। मैंने कहा कि "देश की सेवा के लिए, सत्य और अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के लिए आप मुझे भी अपना एक सिपाही स्वीकार कर लें—मैं आपका आज्ञानुवर्ती रहूँगा।" वैसे तो वह एक सामान्य आत्म-समर्पण था पर अब यह कहना चाहिए कि वह अपने एक विशेष सेनापति के प्रति उनके एक सैनिक का आत्म-समर्पण था। आध्यात्मिक आत्म-समर्पण वह नहीं था।

ज्वालापुर में शराब पर धरना

(ग्राम-सेवा मण्डल की स्थापना)

एक वर्ष के देश भ्रमण (जिसमें साबरमती आश्रम में भी जाना सम्मिलित था) के पश्चात् अप्रैल 1928 में गुरुकुलोत्सव के बाद गुरुकुल में आचार्य रामदेव जी के निजी (आत्मीय) सहायक रूप में मैं तब तक कार्य करता रहा, जब तक कि जुलाई में अचानक जेल नहीं भेज दिया गया। आचार्य जी के वैयक्तिक सहायक के रूप में मुझे कई प्रकार की स्वाधीनता थी। मायापुर में जो छोटे ब्रह्मचारी रहते थे, उनका विशेष निरीक्षण भी मेरा कार्य होने से मायापुर वाटिका में मेरा आना-जाना प्रायः होता था। इन दिनों मैं बहुत घूमता था। राष्ट्रीय सेवा में चारों तरफ भाग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले सकता था। राष्ट्र सेवा का रचनात्मक कार्य तो उसी स्वाधीनता से कर सकता था जैसे कि गुरुकुल संचालन के रूप में राष्ट्रीय-शिक्षा का कार्य करता था । खादी-प्रचार का कार्य भी खूब करता था । इसी तरह हरिजन-सेवा, मद्य-निषेध आदि का कार्य करता था । ये दोनों कार्य तो आर्य समाज के भी माने हुए कार्य थे । अतः अन्त में ज्वालापुर में अंग्रेजी और देशी शराब की दुकान पर धरना देना भी हमें प्रारम्भ करना पड़ा । पर उससे पहले सितम्बर अक्तूबर 1929 से गांधी जी का चर्खा संघ के लिए जो देश व्यापी दौरा होने वाला था, उस प्रसंग में हमने गांधी जी को हरद्वार (पंचपुरी) में आमन्त्रित किया । इसके लिए श्री कृपलानी जी से जाकर पहिले मिलना होता था । गांधी जी की हरद्वार पधारने की तारीख हमारी छुट्टियों में पड़ती थी । अतः दो मास का दीर्घावकाश होते ही देवराज जी सेठी तथा मैंने मायापुर में डेरा डाल दिया था । गांधी जी की थैली के लिए सबसे अधिक परिश्रम से एक-एक रुपया करके भी अमरनाथ जी सप्रू ने शाम को नित्य हर की पौड़ी पर चन्दा करते हुए दो सौ रुपए इकट्ठे किये थे । गांधी जी को बाबा कर्तार सिंह के घर हरद्वार में ठहराया था । वे 15 अक्तूबर को हरद्वार पधारे । उन्हें 2600 रुपये की थैली भेंट की गई ।

उन दिनों मैं दिन में कनखल में चने मूंगफली लेकर (जिन्हें मैं तीन आने का नुस्खा कहा करता था) खाया करता था और गांधी जी के स्वागत की तैयारी में लगा रहता था।

यह कार्य समाप्त होने पर ज्वालापुर की शराब की दुकान पर धरने की तैयारी की गई । 25 अप्रैल को धरना प्रारम्भ किया गया । तब वहाँ दुकान के पास ही हमने एक सत्याग्रही-शिविर लगाया था । दिन भर मुझे वही कार्य करना होता था । इन दिनों स्वामी वन्दे मातरम् जी हमारे विशेष कार्यकर्ता थे । धरने पर बारी-बारी से स्वयं सेवकों को भेजना, लगातार पहरा रखना—यह विस्तृत कार्य था । इस विषय में ज्वालापुर के लोगों ने हमारी बहुत सहायता की । शराब के ठेकेदार ने हमसे पीछा छुड़ाने के लिए एक बार झूठा मुकदमा भी (मारपीट का) हम पर चलाया, मेरा भी नाम लिया । हम पर मुकदमा चला । जब-जब तारीख पर मुकदमे के लिए हम लोगों को रुड़की जाना पड़ता था तो वहाँ स्टेशन से ही हमारा जुलूस निकलता था, नारे लगते थे । रुड़की में प्रचार हो जाता था। आखिर वह मुकदमा खारिज कर दिया गया ।

इस मद्य-निषेध के कार्य के लिए भी महात्मा गांधी जी का आशीर्वाद हमने प्राप्त किया था और बड़े पवित्रभाव से यह कार्य हम करते थे । शराब के व्यसनी लोगों को उनके घर पर जाकर भी हम उन्हें मिलते और समझाते थे । मुझे याद है कि इसी सिलसिले में मुझे पता लगा कि एक हमारे जिले के मजिस्ट्रेट साहिब भी शराब पीते हैं, वैसे वे बड़े अच्छे माने जाते थे । मैं सहारनपुर में जाकर उनसे मिला ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने सब सच्ची बात मुझे बता दी कि मेरे पेट में दर्द रहता था, मुझे किसी ने सलाह दी कि तुम थोड़ी सी मात्रा में मद्य का सेवन किया करो। उस मद्य सेवन से मुझे लाभ हुआ। तब से मैं उसी मात्रा में थोड़ी सी शराब नियमित रूप से पीता हूँ, उससे ज्यादह कभी नहीं। यह एक दृष्टांत है। इसी तरह हम शराब पीने वाले कई भले समझे जाने वाले लोगों का भी पता लगा सके। कईयों की शराब छुटी, कई ने धरना सुनते ही आना छोड़ दिया, पर गुप्त रूप से मंगाने का धीरे-धीरे प्रबन्ध किया। हमने अनुभव किया कि धरने का यह एक लाभ तो है कि इससे जनमत बनता है, लज्जा आदि के कारण लोकमत से प्रभावित हो कई को यह दुर्व्यसन छोड़ने की प्रवृत्ति होती है, कई को यह भाव भी प्रेरित करता था कि इतने बड़ें आदमी हमारे लिए इतना कीमती समय देकर यहाँ धरना देते हैं तो हमें यह दुर्व्यसन छोड़ ही देना चाहिए, पर असल में व्यसन का छूटना आसान कार्य नहीं होता और हममें दूसरों के अन्दर घुसने की शक्ति होनी चाहिये तभी हम उनकी अन्दर से सहायता कर सकते हैं—यह हमने अवश्य अनुभव किया। अस्तु।

यह धरना 25 सितम्बर तक चलता रहा, अर्थात् मेरे जेल जाने के बाद भी अच्छी तरह चलता रहा।

इसके बाद जुलाई अगस्त में लक्सर, रुड़की, बहादुराबाद, मंगलौर, लंढोरा, भगवानपुर, राजोली, झबरेडा में भी शराब की दुकानों पर धरना हुआ। गुरुकुल के होनहार ब्रह्मचारी सर्वमित्र का बलिदान रुड़की में शराब की दुकानों पर धरना देते हुए ही हुआ।

यह सब कार्य हम जिस संस्था द्वारा करते थे वह था 'ग्राम-सेवा-मण्डल' जिसका क्षेत्र था रुड़की तहसील। इसका प्रारम्भ 1929 में हो गया था, पर जून 1930 में तहसील कांग्रेस कमेटी का कार्य भी मण्डल करता रहा। गुरुकुल के स्नातक जयदेव जी विद्यालंकार (जिन्होंने राष्ट्र-सेवा का ही व्रत लिया था) को मैंने प्रशिक्षण के लिए गांधीजी के साबरमती आश्रम में भिजवाया था। वहाँ कुछ साल रहने के बाद, जब हमारा इरादा रुड़की तहसील में यह कार्य करने का हुआ, तो मैंने गांधी जी से जयदेव जी को माँगा। गांधी जी ने खुशी से राष्ट्र-सेवा कार्य के लिए उन्हें भेज दिया। सो, सबसे पहिले जयदेव जी ने अपना जीवन राष्ट्र-सेवा के लिए अर्पण किया। फिर स्नातक पूर्णचन्द्र जी तथा उनके द्वारा स्नातक रामेश्वर जी इस कार्य में आये। लुक्सरी के चौधरी रत्नसिंह जी भी इसी मण्डल में एक जिम्मेदार कार्यकर्ता हुए। यह ग्राम-सेवा-मंडल ही पीछे जाकर मेरे जेल से लौट आने पर तथा वैद्य रामचन्द्र जी द्वारा जमीन दिये जाने पर 1931 में 'गांधी-सेवा-आश्रम' नाम में परिवर्तित हो गया। तब तक जयदेव जी के मंत्रित्व में यह मण्डल कार्य करता रहा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातकों का सत्याग्रही जत्था

1929 के दिसम्बर में लाहौर की काँग्रेस में (जिसके जवाहरलाल जी सभापति थे) भी मैं गया था, पर विषय निर्धारिणी (Subjects Committee) की बैठकों के बाद ही चला आया था। खुले अधिवेशन में नहीं सम्मिलित हुआ। इस लाहौर काँग्रेस की विशेषता यह थी कि इसमें "पूर्ण स्वाधीनता" का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था और सत्याग्रह किस प्रकार चलाया जाय; यह बात गांधी जी ने अपने ऊपर ले ली थी।

गुरुकुल में पहुँचकर 31 जनवरी की अर्ध-रात्रि को (अर्थात् 1930 के प्रारम्भ पर) ब्रह्मचारी सर्वमित्र आदि थोड़े से साथियों के साथ उनकी इच्छा से मैंने भारतीय राष्ट्र-पताका को भी फहराया था। पीछे से विदित हुआ कि सभापति जवाहरलाल जी ने भी उसी समय आनन्द मग्न होकर राष्ट्रध्वजोत्तोलन किया था।

उसी वर्ष से (अर्थात् 1930 से) 26 जनवरी का दिन मनाया जाना प्रारम्भ हुआ था। उस वर्ष यह दिन प्रथम बार 'पूर्ण स्वाधीनता' की प्रतिज्ञा के लिए मनाया गया था। 26 जनवरी का दिन ग्राम सेवा-मण्डल ने भी मनाया, पंचपुरी तथा रुड़की नगर के अतिरिक्त 30 ग्रामों में भी झण्डा फहराया गया।

कुछ दिनों बाद गांधी जी ने नमक-सत्याग्रह की योजना प्रगट की। उन्होंने स्वयं साबरमती आश्रम के 86 आश्रमवासियों के साथ पैदल चलकर समुद्र के निकट 'डाँडी' में नमक-सत्याग्रह करने का निश्चय किया था। इसी वर्ष गुरुकुलोत्सव पर श्री श्रद्धानन्द स्मारक निधि का प्रथम पुष्प 'ब्राह्मण की गौ' नामक मेरी पुस्तक प्रगट हुई जिसे मैंने 'डाँडी मार्च' के एक पड़ाव (वोरसद) पर गांधी जी को भेंट की थी। गांधी जी ने डाँडी मार्च में यह पुस्तक पढ़ी, यह इस पुस्तक का गौरव है। इस पुस्तक का तीन चौथाई भाग मैंने रेल में तीसरे दर्जे में सफर करते हुए लिखा। इन दिनों मैं खूब सफर करता था और रेल में भी समय का पूरा उपयोग करता था।

'डाँडी मार्च' को चलते समय गांधी जी ने प्रतिज्ञा की थी, "मैं स्वराज्य लेकर ही आश्रम में लौटूंगा, नहीं तो मेरी लाश समुद्र पर तैरेगी।" उसका हम सब के मन पर गहरा असर था। अत: इस 1930 के (संवत् 1986 के) गुरुकुलोत्सव पर ही हमने गुरुकुल के सत्याग्रही जत्थे का श्री गणेश किया था। उत्सव पर ही उप-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित 12 स्नातकों की तरफ से जो पहिली चिट्ठी सब स्नातकों को भेजी गई, वह नीचे दी जाती है—

ओ३म्

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागत:

गुरुकुल कांगड़ी

ति०

प्रिय स्नातक बन्धु..............................जी

सप्रेम नमस्ते !

हम सब गुरुकुल माता के पुत्रों की परीक्षा का समय आ गया है। आज हमारा देश अपनी सदियों की गुलामी से छूटने का संकल्प करके विश्वविभूति महात्मा गांधी के नेतृत्व में अन्तिम लड़ाई लड़ने के लिए उठ खड़ा हुआ है। क्या हम गुरुकुल के स्नातकगण इस अवसर पर पीछे रहेंगे ?

हमारे इस दिव्य राष्ट्र नेता का महान संकल्प है कि अब हम पूर्ण स्वाधीनता पाकर ही जिंदा रहेंगे, नहीं तो इसी लड़ाई में मर मिटेंगे। वास्तव में शरीर का यही सर्वोत्तम उपयोग है। मरना तो एक दिन सबको है ही, और घर-बार का मोह भी एक दिन सबको छोड़ना पड़ेगा, तो फिर शरीर का इससे अतिरिक्त अच्छा सदुपयोग क्या हो सकता है कि इसे स्वतन्त्रता की प्राप्ति में व्यय कर दिया जाय। चौदह वर्ष तक गुरुकुल माता की गोदी में हमारा यह शरीर पाला पोसा गया। भारत की जनता ने लाखों रुपये हम पर बरसा कर हमारा यह पालन पोषण किसी आशा से किया था। आज उस आशा को पूर्ण करने का एक महान समय आ पहुँचा है। गुरुकुल-माता ने जो ज्ञान-दुग्ध पिलाकर हमारे मनों को धर्म, ब्रह्मचर्य, देशभक्ति और सेवा के भावों को पुष्ट किया है, उस मनोबल को प्रगट करके जनता का ऋण उतारने का दुर्लभ अवसर ईश्वर की दया से आज हमारे सामने आ उपस्थित हुआ है।

ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता है। यह सुवर्णीय अवसर शायद सदियों के बाद आया है। स्वाधीनता का धर्म-युद्ध सामने आ खड़ा हुआ है; और हमें पुकार रहा है। अत: स्नातक बन्धु ! आईये, गुरुकुल-स्नातकों के इस सत्याग्रही दल में आप भी सम्मिलित हो जाईये। आपके हम लिखित बारह इस गुरुकुल महोत्सव के शुभ अवसर पर गुरुओं और संन्यासियों के आशीर्वाद के साथ इस दल में सम्मिलित हुए हैं और आपको भी सम्मिलित होने के लिए सहर्ष निमन्त्रण देते हैं। आईये, हम सब भाई मिलकर अपने गुलामी के सुखों को, गुलामी से मिलने वाले धन और मान को, जेल से बाहर रहने के आराम को और अन्त में अपने तन तक को भी भारत जननी के लिए भेंट करने को तैयार हो जाएं। आईये, भाई, आइये।

हम स्नातक बन्धु की हैसियत से आपसे निम्नलिखित आशाएं करते हैं—

(1) हम आशा करते हैं कि गुरुकुल के 189 स्नातकों में से कम-से-कम 50

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातक देश की इस पहिली आवाज को सुनकर इस दल में पूर्ण निश्चय के साथ सम्मिलित हो जायेंगे।

(2) हम आशा करते हैं कि जो हमारे भाई अभी पहली पुकार में न आ सकेंगे, वे भी हमारे जेल जाने या मर जाने के बाद इस रणक्षेत्र की इस लड़ाई को पूर्ण करने के लिये जरूर आ पहुँचेंगे जब तक गुरुकुल-माता के पुत्र खतम न हो जायें या यह लड़ाई ही विजय रूप में न खतम हो जाये, क्योंकि हम यह समझते हैं कि आप कभी यह न सह सकेंगे कि इस धर्म-युद्ध के महा-संग्राम में जो लड़ाई गुरुकुल के हिस्से में आवेगी, वह अधूरी रह जाये जब तक कि गुरुकुल का एक भी पुत्र (स्नातक) जेलों के बाहर विद्यमान हो।

(3) जगत के सामने लड़े जाते हुए भारत के इस अद्भुत संग्राम में गुरुकुल का मुख उज्ज्वल करने वाली, भारत के इतिहास में गुरुकुल का स्थान अंकित करने वाली, इस गुरुकुल के सत्याग्रही दल द्वारा लड़ी गई यह लड़ाई तो न जाने आपको कब पुकारे, पर इतनी आशा तो आपसे हम अभी करते हैं कि आज से ही—इस पत्र को पाते ही गुरुकुल का ऐसा पुत्र एक भी नहीं रहना चाहिये जिसने अभी तक खद्दर ही पहनने का व्रत भी न लिया हो। इस अभागे देश के जिस पुरुष में जरा भी जान बाकी है, उसकी बाहरी पहचान करने वाली पहली वस्तु उसके तन पर पहनी खादी ही है। प्यारे भाई! यदि आपने आज तक खादी न पहनने की अक्षन्तव्य उपेक्षा की है तो देश के नाम पर, बुढ़ापे में बलिदान हुए श्रद्धानन्द के नाम पर, देश के लिए जीवन अर्पण कर चुके तिलक, देशबन्धु, लाजपतराय आदि के नाम पर खादी पहिनने का व्रत जरूर आज से ही ले लीजिए। यदि आज आप भारत माता के घावों को भरने में अपने बलिदानों द्वारा सहायक नहीं हो सकते तो कम से कम विदेशी व मिल का कपड़ा पहिनना छोड़कर उसके घावों को दुखाना तो आज से ही छोड़ दीजिए।

यदि आप खूब विचार कर इस गुरुकुलीय सत्याग्रही दल में सम्मिलित होने का या इस दल के जेल जाने तथा मृत्यु आदि से विगृहीत हो जाने के बाद मैदान में आने का संकल्प कर लें, तथा कम से कम आज ही से खादी पहनने का व्रत ले लें तो इस शुभ समाचार से शीघ्र ही निम्नलिखित पते पर सूचित करने की कृपा कीजिए—

पं० देवशर्मा जी विद्यालंकार
गुरुकुल कांगड़ी
जि० सहारनपुर

अन्त में यही प्रार्थना है कि वे भगवान् जिनके नाम पर यह धर्म-युद्ध छेड़ा गया है, हम सब भाईयों को अनन्त बल और आशीर्वाद प्रदान करें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम हैं, मिलकर के भारतमाता के चरणोंमें अवसर पर सर्वस्व तक निछावर करने की इच्छा रखने वाले आपके गुरुकुलीय बन्धुः—

ह० देवशर्मा विद्यालंकार
इन्द्र विद्यावाचस्पति
भीमसेन विद्यालंकार
जयदेव विद्यालंकार
दीनदयालु सिद्धान्तालंकार
रामेश्वर सिद्धान्तालंकार
गुरुदत्त सिद्धान्तालंकार
पूर्णचन्द्र विद्यालंकार
वासुदेव विद्यालंकार
विश्वनाथ विद्यालंकार
सत्यदेव विद्यालंकार
धर्मवीर विद्यालंकार

गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा।

इस छपी चिट्ठी के कुछ दिनों बाद ही मेरी तरफ से (मैं स्नातकों के जत्थे का प्रथम दलपति नियुक्त हुआ था) दूसरी छपी चिट्ठी सब स्नातकों को भेजी गई जिसमें लिखा था कि अभी तक उन 12 के बाद निश्चित रूप से केवल तीन नाम और स्नातकों के आये हैं जो पक्के तौर से आये हैं, सहानुभूति आदि के पत्र तथा निकट भविष्य में आ सकने के पत्र तो आये ही हैं। अतः जल्दी करनी चाहिये, प्रतिदिन अवस्था बदलती जा रही है।

हम चाहते थे कि कम से कम 40, 50 स्नातक हो जावें तो हमारा जत्था अप्रैल के तीसरे सप्ताह में देहली प्रान्त में जाकर नमक का सत्याग्रह करे। गुरुकुल के प्रथम स्नातक पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति देहली में गिरफ्तार हो चुके थे, इसी पर मैंने वह दूसरी चिट्ठी स्नातकों को लिखी थी। पं० जी की इच्छानुसार ही हमने देहली जाने का कार्यक्रम बनाया था। वैसे तो चूंकि पहिले 1920-21 में मैंने मुजफ्फरनगर जिले में कार्य किया था, अतः पहिले वहीं जाकर नमक-सत्याग्रह करने का हमारा इरादा था। वहाँ से आमन्त्रण भी आया था। रायबरेली से भी हमें आमन्त्रण आया था पर हमने इन दोनों आमन्त्रणों के होते हुए भी प० इन्द्र जी की गिरफ्तारी से पहिले भेजे उनके आमन्त्रण को स्वीकार कर देहली प्रान्त में नमक सत्याग्रह करने को सोचा था। जब तक 40, 50 स्नातक न हो जायें, तब तक उपस्थित 15 स्नातक ज्वालापुर के शराब के धरने को चला रहे थे। अन्त में सहारनपुर जिले के कांग्रेस कार्यकर्ताओं को जब स्नातक जत्थे का पता चला तो श्री अजीत प्रसाद जी आदि के कहने से हमने सहारनपुर में ही नमक सत्याग्रह करने का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय कर लिया। 25 अप्रैल को 11 स्नातकों का जत्था सायंकाल सहारनपुर के लिए चल पड़ा। इस जत्थे को विदा देने नहर की पटरी पर कुछ दूर तक मैं साथ गया। सहारनपुर पहुँचकर स्नातक जत्थे ने 26 अप्रैल सन् 1930 को हजारों लोगों की उपस्थिति में नमक-कानून तोड़ा। "कानून नमक का तोड़ दिया, तोड़ दिया, तोड़ दिया," इसे जब स्नातक सुरेन्द्रनाथ जी, वासुदेव जी आदि गाते थे तो समां बंध जाता था। सहारनपुर जिले में यह पहला नमक-कानून का भंग था। वहाँ से लौट कर पंचपुरी में भी—हरिद्वार में, कनखल में, ज्वालापुर में भी— तीनों जगह स्नातक जत्थे ने नमक कानून तोड़ा। पर सरकार ने किसी को पकड़ा नहीं। हमारे लोग पुलिस वालों को कहा करते थे कि हम कानून तोड़ रहे हैं, पर आप पकड़ते नहीं हैं तो एक पुलिस इंस्पेक्टर ठीक कहता था कि जब हम मानेंगे कि कानून टूटा है, तब हम जरूर पकड़ेंगे। शिमला के धर्मवीर जी के साथ दो स्नातक जत्थे के व्यक्तियों ने शिमला जाकर भी हजारों लोगों की उपस्थिति में नमक-कानून तोड़ा तो उन्हें शिमला से बाहर कर दिया गया, पर पकड़ा नहीं गया। इसके बाद स्नातक जत्थे ने पंचपुरी में विदेशी कपड़े का बहिष्कार प्रबल रूप से किया, ज्वालापुर की शराब की दुकान पर जबरदस्त धरना दिया, प्रतिषिद्ध राजनैतिक साहित्य को डंके की चोट खुल्लमखुल्ला पढ़ा। इस तरह जून के अन्त तक जत्था कार्य करता रहा। 4 जुलाई को रुड़की तहसील की कान्फ्रेंस से पहिले जयदेव जी विद्यालंकार को गिरफ्तार कर लिया गया। तथा जब स्नातक जत्था दूसरे परगनों को जा रहा था तब पं० दीन दयालु जी शास्त्री, धर्मवीर शिमला, धर्मवीर जी वैद्य, सुरेन्द्रनाथ जी, पूर्णचन्द जी, जयदेव यात्री को गिरफ्तार कर लिया गया। गुरुकुल कांगड़ी से पं० भीमसेन जी, पं० वासुदेव जी व पं० वेद प्रकाश जी को गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरह 11 स्नातकों का यह जत्था गिरफ्तार हो गया।

यद्यपि मैंने नमक-कानून नहीं तोड़ा था, तो भी मुझे कुछ दिनों बाद ही पुराने गाँव में दिये दो व्याख्यानों पर दफा 108 में पकड़ लिया गया। सच बात यही थी कि सरकार जब किसी को पकड़ना चाहती थी तो किसी भी बहाने पकड़ लेती थी, हम कोई बचाव तो करते ही नहीं थे।

मेरे गिरफ्तार होने पर स्नातक जत्थे के दूसरे दलपति पं० रामेश्वर जी स्नातक बने। उन्होंने तुरन्त हम 16 स्नातकों के गिरफ्तार हो जाने की सूचना निकाली, दूसरे जत्थे को संगठित किया। उन्होंने अपने परिपत्र में लिखा 'मुहूर्त्त-ज्वलितं' 'श्रेयो न तु धूमायितं चिरम्' (अर्थात् क्षण भर जलना अच्छा है, न कि देर तक धुंआ करते रहना), जैसे कि मैंने लिखा था, 'तदर्थं क्षत्रिया सूते तस्यकालोऽयमागतः' (अर्थात् क्षत्राणी जिस प्रयोजन के लिए सन्तान जनती है उसका समय अब आ गया है)।

हमारे पीछे रामेश्वर जी ने कार्य किया। बहुत से स्नातक तथा विद्यार्थियों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भाग लिया। उनमें से सत्यदेव विद्यालंकार (अफ्रीका वाले) का नाम विशेषतया लेने योग्य है। इन सत्यदेव जी ने सितम्बर 1930 में रुड़की में एक बहुत भारी सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें हजारों स्वयं सेवक इकट्ठे हुए, उन पर लाठी-चार्ज हुआ, और फिर उन्हें मोटरों में भर कर दूर ले जाकर छोड़ दिया गया। जितने जेल में समा सके (ऐसे 100 से अधिक स्वयं सेवक थे) उन्हें जेल भेज दिया गया। इसमें श्री गोपालसिंह रईस मुंडलाना का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इसी आंदोलन में सर्वमित्र ने प्राण दिये तथा ब्रह्मचारी सत्य भूषण भी बलि चढ़ गया—यह सब जेल से लौटने पर मुझे विदित हुआ। यह भी विदित हुआ कि जुलाई से सितम्बर तक तीन महीने गुरुकुल के जत्थे ने तहसील भर में विशेषतया मंगलौर और रुड़की परगने में खूब कार्य किया। बहादुरपुर जट्ट, नारसन कलां, बेलडा और रुड़की के चार परगना-सम्मेलन किये तथा मंगलौर और रुड़की परगने में क्रमशः 24 और 19 कांग्रेस कमेटियां कायम कीं। इसी तरह ढाई महीने में अर्थात् मध्य जुलाई से सितम्बर तक भगवानपुर परगने में ज्वालापुर महाविद्यालय के जत्थे ने बहुत ही व्यवस्थित तौर पर कार्य किया। यह जत्था 115 गांवों में घूमा, 26 कांग्रेस कमेटियां तथा 15 पंचायतें कायम कीं, भगवानपुर में सम्मेलन किया। अन्त में परगना कांग्रेस कमेटी को संगठित कर गये, मेरे बहनोई श्री पं० रामावतार शास्त्री का यह सब कार्य अनुकरणीय था।

सहारनपुर जेल के दो मास

एक दिन सर्किल-पुलिस-इंस्पेक्टर अचानक गुरुकुल में मुझे गिरफ्तार करने आये तो उसकी खबर गुरुकुल में एकदम फैल गई। कुछ घंटों में तैयारी कर ली गई। गुरुकुल की माताओं ने तिलक करके विदाई दी। सर्किल-इंस्पेक्टर ने बड़ा अच्छा बर्ताव किया। उसने मुझे रेल में भी बढ़िया भोजन खिलाया कि जेल में पहुँचने तक जेल का भोजन समाप्त हो चुका होगा।

जेल में पहुँचते ही जेलर साहिब (गुरु प्रसाद) ने मुझे 'ए' क्लास में रख लिया। उन्होंने जब सुना कि गुरुकुल से स्नातकों का जत्था तो पहिले ही जेल पहुँच चुका था और अब मैं भी यहाँ पहुँच गया तो उसने मुझसे पूछा कि गुरुकुल में कितने ब्रह्मचारी हैं? मैंने जब बताया कि कुल मिलाकर पाँच सौ होंगे तो उसने कहा, "तो मुझे अब पाँच सौ को जेल में रखने का और प्रबन्ध करना होगा।" मेरे जेल में पहुँचने का उसने यही अर्थ लगाया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिनों बाद जेल में हमारे मुकदमे का 'नाटक' हुआ। मजिस्ट्रेट स्वयं जेल में पधार कर कचहरी करते थे। 'नाटक' इसलिये कहता हूँ कि सरकार को भी पता था कि ये लोग कोई बचाव नहीं करेंगे। नमक-कानून तोड़ने पर सब स्नातकों को छह-छह मास की कड़ी कैद सुना दी गई। मुझे 108 की धारा में एक वर्ष की सादी सजा दे दी गई। उस समय मैंने जो अपना लिखित बयान दिया था, वह और कहीं तो नहीं छप सका क्योंकि छापने वाले का प्रेस जब्त हो जाने का डर था। उस बयान में भी कई आर्डिनेंसों को तोड़ा गया था। पर पं० सातवलेकर जी के औंध के 'वैदिक धर्म' में वह छोटा सा बयान अविकल रूप से छपा था।

मजिस्ट्रेट ने मेरी 'ए' क्लास भी पक्की कर दी।

कुछ दिनों बाद ही सहारनपुर के सब जज बाबू रतनलाल जी मुझसे जेल में मिलने आये। मैंने उनसे कहा था कि आप तो सरकारी नौकर हैं, आप क्यों इन बातों में पड़ते हैं ? तो उन्होंने कहा कि मेरे ऊपर तो जज है, जिले का कलेक्टर मेरा क्या बिगाड़ सकता सकता है ? असल में उस समय वायुमण्डल ही ऐसा था। ये रतनलाल जी मेरे योगानन्द जी वाली क्रिया के साथी थे।

सहारनपुर जेल में जिले भर के कांग्रेस कार्यकर्ता इकट्ठे हुए थे, केवल हमारे स्नातक साथी या रुड़की तहसील के हमारे अन्य स्वयं सेवक साथी ही नहीं थे। ये कार्यकर्ता कुछ न कुछ उपद्रव करे रखते थे। समारे साथियों में भी कई कुछ न कुछ 'पाइन्ट' ढूंढते रहते थे झगड़ा करने को। कभी कोई भूख हड़ताल कर देता था तो कभी आपस में ही झगड़ा हो जाता था। कुछ भी मामला हो, मुझे वहाँ जाकर ठीक ठाक करना होता था। सहारनपुर का जेलर मुझे कहीं भी किसी भी बैरक में जाने देता था। मुझे सारे जेल में कहीं भी जाने में रोक नहीं थी। सो मेरा बहुत सा समय तो सहारनपुर जेल में अपने सत्याग्रही कैदियों के झगड़े निपटाने में ही लग जाता था।

इसका भी कुछ अच्छा ही फल हुआ। कुछ बातें हमारे कैदियों की समझ में आईं। हम सब सत्याग्रही कैदी 'ए' क्लास, 'बी' क्लास, 'सी' क्लास का खाना मिलाकर इकट्ठा ही खाते थे। जेलर को कहने सुनने से हमारा खाना भी कुछ अच्छा बनने लगा था। जेलर, जहाँ तक बन पड़े, हमारी माँगें पूरी करने को उद्यत रहता था पर जेल में अपने रोबदाब को कम करना नहीं मान सकता था। यह स्वाभाविक था। इस प्रकार जेल में एक नया सार्वजनिक जीवन बीतने लगा।

सहारनपुर जेल मे एक डाक्टर साहब थे जिनका नाम हम हमारे साथियों ने 'टिंचर प्रसाद' रख छोड़ा था। कहते हैं कि वे प्रत्येक बीमारी में एक ही दवा 'टिंचर आयोडीन' बताया करते थे। जुकाम होने पर नाक पर 'टिंचर आयोडीन' लगा देने की उनकी कहानी प्रसिद्ध थी। उनके लिये 'टिंचर' अमृतधारा थी। मुझे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा कि शायद प्रत्येक जेल में ऐसे ही डाक्टर रखे जाते थे। कानपुर में भी एक ऐसे ही डाक्टर दीखते थे।

शेष समय मैं सहारनपुर जेल में 'अग्नि देवता' पर एक पुस्तक लिखने में लगाता था जिसका संकल्प मैं गुरुकुल से करके आया था। उसके लिए 'निरुक्त' आदि वैदिक साहित्य की पुस्तकें भी लेकर आया था। 'ए' क्लास का कैदी छह धार्मिक पुस्तकें भी रख सकता था। मैं खाली समय में बहुत से कागजों पर भिन्न-भिन्न नोट किया करता था। 'ए' क्लास में मेरे साथ मथुरा के हकीम बृजलाल जी थे। असल में तो जेल के मेरे साथी वे ही थे।

एक बार ऐसा हुआ कि जेलर गुरु प्रसाद ने एक इखलाकी (गैर-सत्याग्रही) कैदी को पीटा। जेलर किसी को पीट नहीं सकता था। तब मैंने यूँ ही पॉइन्ट निकालने वालों को कहा कि यह है ठीक पॉइन्ट, जिस पर हम ठीक तौर से लड़ सकते हैं, यूँ ही बिना बात पर सरकार से झगड़ने में कोई लाभ नहीं। सो उस पॉइन्ट पर मैंने भी जेलर को कहा। पर वह क्षमा माँगने को तैयार नहीं होता था। तब मैंने उसकी शिकायत ऊपर लिखी और अपनी जो चिट्ठियां 'ए' क्लास वाला लिख सकता है, उन्हीं में लिखकर भेजी।

जब जेलर ने यह देखा कि मामला बढ़ रहा है तो उसने हम सब गुरुकुल के स्नातकों का तबादला तार देकर करा दिया। सब स्नातक दो-दो करके यू० पी० की दूर-दूर की जेलों में भेज दिये गये और मुझे संयुक्त प्रांत की कड़ी जेल कानपुर को भेज दिया गया। तार से तबादले के हुक्म आ गये। नियमानुसार कैदियों को नहीं बताया जाता कि तुम किस जेल में जा रहे हो लेकिन बाहर निकलने पर ले जाने वाले पुलिस सिपाहियों से पता लग जाता था कि हमें किस जेल में भेजा जा रहा है। धर्मवीर जी शिमले वाले को सहारनपुर जेल में ही छोड़कर शेष दस स्नातकों को दो-दो करके दूर की पाँच जेलों में भेज दिया गया।

जब मेरा सहारनपुर से तबादला होने लगा तो जेलर ने विदाई के समय मुझसे 'अग्नि देवता' पर जो पुस्तक मैंने लिखनी प्रारम्भ की थी, उसके सब कागजात माँग लिये। उसने कहा कि ये मैं सम्भाल कर रखूँगा और आपको वहीं जेल में भेज दूँगा जहाँ आप जायेंगे, अभी उनके रस्ते में खो जाने का डर है। पीछे की घटनाओं से यह साबित हुआ कि जेलर ने यह कार्य बहुत ठीक किया था, यद्यपि उस समय मुझे संदेह हुआ था कि वह क्यों ऐसा कर रहा है।

मुझे एक सिपाही कानपुर पहुँचाने चल दिया। जब मुझे सिपाही से पता चला कि मुझे कानपुर भेजा जा रहा है तो मैंने कानपुर डी० ए० वी० कालेज के फिलासफी के प्रोफेसर श्री कृष्ण कुमार जी को एक लिफाफा लिख दिया था कि मैं कानपुर जेल आ रहा हूँ। सिपाही ने ही वह चिट्ठी डाक में डाली थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानपुर जेल में

कानपुर जेल पहुँचने पर सिपाही ने भी गंगा जी के दर्शन किये, क्योंकि कानपुर जेल गंगा के तट पर बनी हुई है। अन्दर पहुँचते ही वार्डर ने याद दिलाया और ठीक याद दिलाया, "यह कानपुर जेल है, कानपुर।" इस जेल के जेलर साहिब एक खान बहादुर मुसलमान थे और इसके सुपरिन्टेन्डेन्ट कर्नल ओनील एक अंग्रेज थे। मेरा सामान दफ्तर में रख लिया गया और मुझे तुरन्त 'ए' क्लास की बैरक 16 नम्बर में भेज दिया गया। यह बैरक जेल के अन्त में एक कोने पर थी जहाँ अन्य कोई व्यक्ति बल्कि पक्षी तक नहीं पहुँच सकता था। 'ए' क्लास के कैदी वहाँ बड़े-बड़े आदमी थे। कृष्णकान्त मालवीय, कानपुर के डाक्टर जवाहरलाल जी थे, बुद्धू बाबू, हकीम जी तथा शुक्ला जी थे, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि थे। मेरठ के एक एम० एल० ए० श्री चौधरी विजयपाल सिंह थे पर जेल में हम अन्य किसी व्यक्ति से मिल नहीं सकते थे।

मेरा हवनकुण्ड भी मेरे सामान में था। बिना हवन किये मैं खाना नहीं खा सकता था। अतः कई बार सामान के लिए कहलाया। शाम को 4 बजे जब हवन का सामान मुझे मिला तो हवन करने के बाद मैंने भोजन खाया। प्रथम दिन ही कानपुर जेल में इस तरह बीता। हमारे साथियों को आर्यसमाजी का जेल आना विचित्र लगा, क्योंकि कानपुर का विशेषतया यू० पी० का उनका अनुभव यह था कि आर्य समाजी 'जी हजूर' होते हैं।

दो एक दिन बाद ही मुझे दफ्तर में बुलाया गया। सामने कुर्सी पर कर्नल ओनील बैठे थे। उन्होंने केवल इतना कहा कि "A contraband paper was found in your luggage, hence chain fetters for a month." एकदम मुझे वहाँ से हटा लिया गया और मुझे कहा गया कि आपको एक महीने के लिए जंजीर की बेड़ियों की सजा दी गई है। यह अधिक से अधिक सजा थी जो कि 'ए' क्लास के कैदी को दी जा सकती है। मैं बेड़ी पहने हुए अपने वार्ड में पहुँचा। सब आश्चर्य करने लगे कि यह क्या बात है ? Contraband paper मेरे यहाँ कोई नहीं था। पीछे पता लगा कि सहारनपुर के जेलर की जो शिकायत मैंने लिखी थी, उसकी प्रतिलिपि मेरे सामान में थी। अगले दिन मैंने जेल के एक अधिकारी को कहा भी कि वह तो Contraband (अनधिकृत) paper नहीं था, वह तो जेल द्वारा बाकायदा भेजी गई चिट्ठी की नकल थी। वह चिट्ठी वस्तुतः भेजी गई थी पर वहाँ सुनने वाला कौन था ? उस समय तो तुरन्त मुझे वहाँ से हटा लिया गया अतः कुछ कह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं सकता था। मुझे 'ए' क्लास के साथियों ने ही बताया था कि वह अधिक से अधिक सजा है जो कि 'ए' क्लास के कैदी को दी जा सकती है। कृष्णकान्त मालवीय ने कहा और चाहा कि बेड़ी पहने हुए की मेरी फोटो ले ली जानी चाहिए। उन बेड़ियों से मुझे और कुछ तकलीफ नहीं थी। मैं दिन भर उन्हें समेट कर बैठे रहता था। हमारे साथी यह भी देखते रहे कि ठीक एक महीने में वे हट जाती हैं कि नहीं। नहीं तो यही एक बात जेल अधिकारियों के विरुद्ध बन जाती। पर ठीक समय पर ही वे मेरी बेड़ी काट दी गई।

सुपरिन्टेन्डेन्ट एक बार—केवल एक बार हमारी बैरक में आया। हम परेड तो करते नहीं थे। सुपरिन्टेन्डेन्ट के आने की सूचना हमें पहले दे दी गई थी। हम सोचने लगे कि उससे क्या कहा जाए? मेरी बेड़ी तो कट ही चुकी थी। उसके कहने का कुछ मतलब नहीं था। जब वह अंग्रेज (कहते हैं कि वह जेलों का इंस्पेक्टर जनरल होने वाला था) आया तो कृष्णकान्त मालवीय ने कहा कि हमें लिखने का कागज और सामान नहीं मिलता है। तो उसने एकदम कहा, "You are doing short work" अर्थात् तुम्हारी तो काम कम करने की शिकायत है। तुम्हारे पास समय ही लिखने को कहाँ है? तो मुझे बोलने का मौका मिल गया। मैंने कहा—'But I have a simple imprisonment, I have no other work."

उसने पूछा, "What will you write?"

मैंने कहा "I shall write something on Vedas."

तो उसे वेद का भी पता नहीं था, उसने पूछा "What is Vedas?"

तो मेरे मुँह से निकला "Hindu scriptures."

तो उसने कहा "Oh, I shall see to it." यह कहकर वह हमारी बैरक से चला गया।

अगले रोज मुझे बताया गया कि सुपरिन्टेन्डेन्ट ने मेरी प्रार्थना मान ली है और मुझको लिखने का सामान मिल जायेगा।

सादी सजा तो वहाँ औरों को भी कई को मिली थी। परन्तु सबने जानबूझकर 'मशक्कत' ले ली थी। मशक्कत करने वालों को 'रिमिशन' दिन मिलते थे—वे जल्दी छूट जाते थे। मुझे भी साथियों ने मशक्कत ले लेने की सलाह दी थी। और कुछ नहीं, वहाँ मशक्कत बान बटने की मिलती थी। वहाँ बैरक में बान आ जाते थे, हमारे साथी थोड़ा सा बट लेते थे (तभी सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कहा था कि तुम्हारी काम कम करने की शिकायत है)। पर मैंने मशक्कत नहीं ली थी। मैं हँसी के साथ कहा करता था कि हम सब इकट्ठे ही छूटेंगे, मशक्कत लेकर क्या करना है? और कुछ ऐसा ही हुआ भी। गांधी–इर्विन समझौते के कारण हम सब इकट्ठे ही छूटे।

हमारी बैरक में कभी-कभी जेल के दढ़ियल मोटे-ताजे और ढीले-ढाले डाक्टर साहब हालचाल पूछने आया करते थे। पर उन्हें जब कोई अपनी बीमारी बताता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था जैसे दर्द हो गया, ज्वर हो गया तो हमेशा वे कहते थे कि "हां, आज कुछ ऐसी हवा चली कि मुझे भी दर्द हो गया है या मुझे भी ज्वर हो गया है।" वे सहारनपुर जेल के 'टिंचरप्रसाद' की तरह 'हवा प्रसाद' थे, ऐसा कहना चाहिए।

जैसा कि तबादला होते समय मैंने प्रोफेसर कृष्ण कुमार जी को सूचित किया था, वे 15वें दिन मुझसे मिलने जेल में आते थे। एक बार मिलाई के दिन डी.ए.वी. कालिज के प्रिंसीपल दीवानचन्द जी भी पधारे और एक बार तो स्वामी सत्यानन्द जी महाराज मिलने के लिए आये बैठे थे, उन्होंने बड़ी कृपा की थो।

कानपुर का मुसलमान जेलर हमें सब सहूलियत देता था पर कागज का एक पुरजा भी हमे नहीं रखने देता था और न हमें किसी अन्य कैदी का मुँह देखने देता था।

हमारे खाने को रोज कानपुर से ताजी पूरी, कचौड़ी, मिठाई, फल आ जाते थे, हम जो कुछ चाहें खाते थे। पढ़ने की किताबें जितनी चाहें रख सकते थे, छह की ही कैद नही थी। पर दूसरे कैदियों को हम कोई सन्देश न भेज दें इसकी पूरी एहतियात रखी जाती थी अतः कागज का एक पुर्जा व पेन्सिल हम नहीं रख सकते थे। जब मुझे एक रजिस्टर (लम्बे आकार की कापी) लाकर दिया गया कि मैं इस पर पुस्तक लिख सकता हूँ तो मुझे हिदायत दी गई कि देखना इसका एक कोना भी नहीं फटना चाहिए। इस रजिस्टर पर जहाँ-तहाँ बहुत से पृष्ठों पर सुपरिन्टेन्डेन्ट की मोहर लगी हुई थी और मुझे कहा गया कि हर सातवें दिन यह रजिस्टर देखा जायेगा, यद्यपि वह फिर कभी देखा नहीं गया।

मुझे कई बार ऐसा लगा कि बद्रीनाथ के रास्ते पर एकान्त में रहते हुए अन्तिम दिनों में मुझे 'लिखे हुए पृष्ठ' सामने आते थे, वे शायद 'वैदिक विनय' के ही पृष्ठ थे।

कई कहते थे कि कर्नल ओनील ने बेड़ियां देने का पछतावा-सा किया, अतएव लिखने का सामान देना खुशी से मान लिया।

तो फिर मैं सोचने लगा इस कापी पर कैसे किताब लिखी जा सकती है। किताब लिखने के लिये तो बहुत कुछ रफ दूसरे कागजों पर लिखना होता है। सहारनपुर जेल में 'अग्नि देवता' पर जो 'अग्निहोत्र रहस्य' नामक पुस्तक लिखनी शुरू की थी, उसके कागज भी मुझे नहीं वापस मिले थे, यद्यपि गुरुप्रसाद जेलर साहब ने भेजने का वायदा किया था। मैंने कानपुर से उन्हें पत्र भी लिखे। जब मैंने उन कागजों के मिलने की आशा छोड़ दी तो सोचने लगा कि इस रजिस्टर पर ऐसी चीज लिखनी चाहिए, शुरू करनी चाहिए जिसमें बहुत काटना न पड़े और इधर उधर रफ लिखना न पड़े। तो मुझे याद आया कि एक बार अन्तरंग सभा के प्रोफेसर शिवदयालु आदि सदस्यों ने ईसाईयों की एक पुस्तक दिखाई थी जिसमें प्रतिदिन के लिए एक प्रार्थना थी। तब से ऐसी ही वैदिक मन्त्रों की पुस्तक लिखने का संकल्प था। इच्छा हुई कि उसी संकल्प को क्यों न पूरा किया जाये ? तो मैंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस रजिस्टर पर गायत्री आदि छन्दों के अनुसार छांटकर मन्त्र लिखने प्रारम्भ कर दिये। जो-जो अर्थ लिखने योग्य मन्त्र लगे, उन्हें छांटकर लिखने लगा। मन्त्रों का चुनाव तो प्रायः सारी पुस्तक का कर डाला और प्रारम्भ की तीन ऋतुओं के मंत्रों के अर्थ भी लिख डाले।

आजकल कानपुर जेल में मेरे जैसे अच्छे दिन बीते, वैसे बहुत कम बीते हैं। वहाँ बड़ा एकान्त था, सहारनपुर जेल से बिल्कुल उलटा था। हमारे साथी सब अच्छे सज्जन थे तथा वे सब मेरे स्वभाव को अच्छी तरह समझ गये थे। अतः कोई मुझसे यूँ ही बात नहीं करता था। मुझसे बात करने के लिए मुझसे पहले समय माँग कर निश्चित कर लिया जाता था। मैं दिन रात वेद-मन्त्रों की अपनी दुनिया में रहता था। जिस मन्त्र का अर्थ लिखना होता था, उसे मैं मन ही मन गुनगुनाता रहता था, जब एक समय मन्त्रार्थ इतना स्पष्ट हो जाता था, उसकी विनय का एक-एक शब्द मन में निश्चित हो जाता था तो मैं उसे कापी पर लिख डालता था। तब लिखने में देर नहीं लगती थी क्योंकि शब्द-शब्द निश्चित हो चुका था। सब देर मन्त्रार्थ के स्पष्ट होने में लगती थी। तब तक मैं उसी में मग्न या ग्रस्त रहता था। कभी दिन में कई मन्त्र लिखे जाते थे, कभी एक भी नहीं। रात को भी मन्त्र गुन-गुनाता सो जाता था। प्रायः प्रातः उसका अर्थ लिखा जाता था। इस तरह बड़े अच्छे दिन बीत रहे थे।

उन दिनों कई अनुभूतियाँ भी हुईं। एक साथी जिस दिन रिहा होने वाला था, उसी दिन (उसको भी पहले पता नहीं था) प्रातः उसे एक विशेष भगवान् का नाम दे देने की बात सुनी कि 'जाती बिरियां······नाम गुंजा दे।' अब उसे रिहाई की सूचना मिली तो वह मेरे पास आया और भजन की विधि पूछी तो मैंने वही नाम उसे बता दिया। गाँधी इर्विन की बातचीत का कुछ अंश सुनाई दिया, दोनों की मूर्त्तियाँ सामने दिखाई दीं। हम सायंकाल बैरक बन्द होने पर मिलकर 'झण्डा प्रार्थना' किया करते थे, तब मैं मानसिक तौर पर अपने तिरंगे झण्डे को सामने चित्रित किया करता था। पर मुझे उसके रंग बदलते से लगते थे। पीछे पता लगा कि कांग्रेस ने झण्डे को स्वयं जो बदला था, उसी के अनुसार वे रंग बदलते थे। जैसे लाल रंग की जगह पीछे केसरिया रंग कर दिया गया था। शायद रंगों का क्रम भी बदला था।

'नवीन' जी अब नहीं रहे हैं, अतः उनका नाम ले देने में भी कुछ हर्ज नहीं। उन्हें बीड़ी पीने की आदत थी। मेरे कहने पर कि हमें यह शोभा नहीं देता, उन्होंने बीड़ी छोड़ देने का संकल्प किया। शायद दो दिन छोड़े रखी। फिर आकर बालक की तरह स्वच्छ हृदय से मुझसे बोले, "अभय जी, अब मुझसे बीड़ी बिना नहीं रहा जाता।" ऐसे सच्चे, खरे सीधे थे वे भाई।

हमारे विजयपाल सिंह जी दोनों समय खूब कसरत करते पर खाते बहुत कम थे, वह भी ठीक प्रकार चबाकर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुपचाप रहते हुए भी जेल में (चौबीस घण्टे रहने वाले) इन साथियों से एक प्रेम-सम्बन्ध बन गया था। कृष्णकान्त मालवीय जी पीछे हमारे यहाँ कान्फ्रेंस में पधारे भी थे। उमा नेहरू भी साथ आई थीं।

कानपुर जेल में ऐसे अच्छे दिन बीत रहे थे कि जब हमें मार्च 1931 में गाँधी-इर्विन पैक्ट के अनुसार रिहा होने की सूचना मिली, तो आनन्द के स्थान पर कुछ बुरा सा लगा, जैसे हमारे चलते (मेरी सजा तो जुलाई में समाप्त होती थी) कार्यों में विघ्न सा डाल दिया गया हो।

मुझे मुजफ्फरनगर का टिकट दिया गया था। मैं देहली कुछ घटे लाला नारायणदत्त ठेकेदार के यहाँ पंचकुइयां रोड पर ठहरकर मुजफ्फरनगर से चरथावल चला गया। वहाँ कुछ लोगों को पता लग गया कि मैं आ रहा हूँ, तो उन्होंने ढोल-ढपड़े के साथ कुछ स्वागत सा भी किया। दो दिन ठहरकर हरिद्वार जाने के लिए मैं सहारनपुर में जानबूझकर रुका। जेल के दरवाजे पर पहुँच कर जेलर साहब को खबर भिजवाई। जेलर साहब आये और बिना कहे ही मेरे वे 'अग्नि देवता' सम्बन्धी सब कागज एक कपड़े में लिपटे हुए वैसे के वैसे सुरक्षित लेते आये और बोले "यह है आपकी अमानत, मैं जानता था कि ये कितने कीमती कागज हैं, अतएव उन्हें इतना सुरक्षित रखा था, आपके कहने पर भी मैंने कानपुर नहीं भेजे।"

गांधी सेवाश्रम की स्थापना

सहारनपुर से मैं चुपचाप हरिद्वार आया। गुरुकुल के रामरखामल जी के निजी घर में ठहरा। गाँधी-इर्विन पैक्ट के कारण जेल से छूटने वालों के जलूस निकल रहे थे, खुशी थी, पर मैं उसमें शामिल नहीं हुआ। अपने जलूस से तो इन्कार कर ही दिया था। गुरुकुल वाले चाहते थे कि मैं पूर्ववत् गुरुकुल में कार्य करूं पर मैं आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार चलना चाहता था। गंगा तट पर दक्ष के मन्दिर पर इसीलिये गया। मैंने गुरुकुल में न जाकर सीधे राष्ट्रसेवा में लगे रहने का ही निश्चय किया। गुरुकुल का आजीवन सदस्य बनने की जगह अप्रैल में गांधी-सेवा-संघ का आजीवन सदस्य बन गया।

कांग्रेस का कार्य करने के लिए इन दिनों मैंने साईकिल चलाना सीखा। मार्च में कई बड़ी-बड़ी घटनायें हुईं। भगतसिंह जी आदि की फांसी रुकवाने की गाँधी जी व वर्किंग कमेटी ने भी कोशिश की, पर अंग्रेज सरकार नहीं मानी। इस सम्बन्ध में 23 मार्च को हरिद्वार में हड़ताल रही। हर की पौड़ी पर सभा हुई। 25 मार्च को ज्वालापुर में सभा हुई, उसमें मैं बोला। उस दिन फांसी की खबर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली थी। 27 मार्च को कानपुर में गणेश शंकर जी 'विद्यार्थी' की मृत्यु का समाचार मिला। 28 को कनखल में 'विद्यार्थी जी' पर मेरा भाषण हुआ। मैं आजकल संयुक्त प्रान्त की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का भी सदस्य था। उसकी बैठक में मैं मिर्जापुर में 29 अप्रैल से 5 मई तक रहा। रुड़की के परगनों में हम जो सम्मेलन कर रहे थे, उनमें से बहादराबाद तथा पचेलों और तुगलकपुर तथा पनियाला के तहसील सम्मेलन में मैं भी गया था।

वैद्य रामचन्द्र जी की कुछ जमीन थी जो कनखल-ज्वालापुर रोड पर गुरुकुल के पास ही थी। उन्होंने वह पाँच बीघा भूमि राष्ट्र-सेवा कार्य के लिए दान में दे दी। हमने उस स्थान पर गांधी-सेवाश्रम का भवन बनाने का निश्चय किया।

1 अप्रैल 1931 को इस गांधी-सेवाश्रम का प्रारम्भ कर दिया गया। जो भाई 1929 से 'ग्राम-सेवा-मण्डल' नाम से ग्राम सेवा कार्य कर रहे थे, वे ही अब 'गांधी सेवा आश्रम' नाम रख कर अप्रैल मास से एक स्थिर और नये रूप में सुसंगठित हो गये। इस संस्था का उद्देश्य था 'सत्य और अहिंसा द्वारा जीवन तथा जागृति लाते हुए लोकसेवा करना, विशेषत: रुड़की तहसील के ग्रामों की सब प्रकार की सेवा।' इसका मुख्य कार्य क्षेत्र कुछ समय तक रुड़की तहसील के 550 ग्रामों तक ही सीमित रहेगा---यह भी हमारा संकल्प था। रुड़की तहसील को हमने पाँच परगनों में बांटा था और प्रत्येक परगना निम्न पाँच सदस्यों का कार्य-क्षेत्र था :—

	परगने का नाम	परगने का मुख्य स्थान	सदस्य का नाम
(1)	ज्वालापुर	बहादरपुर जट्ट	जयदेव जी विद्यालंकार
(2)	खादर	लक्सर या कुआहेड़ी	चौ० रतनसिंह जी
(3)	मंगलौर	लिबरहेड़ी	रामेश्वर जी स्नातक
(4)	भगवानपुर	चुड़ियाला	पूर्णचन्द जी विद्यालंकार
(5)	रुड़की	रुड़की या औरंगाबाद	स्वा. सत्यानन्द 'वन्दे मातरम्'

इस तहसील का मुख्य केन्द्र यही गांधी सेवाश्रम हरिद्वार था, जहाँ मैं (छटा) तथा मेरे सहायक श्री देवनाथ जी विद्यालंकार (सातवें) तथा शिवचरण जी पैंजनिया वाले (आठवें) रहते थे। प्रारम्भ में हम आठ सदस्य थे जिनका सम्पूर्ण समय आश्रम के लिए ही था। गांधी सेवाश्रम के सदस्यों को निम्न तीन व्रत लेने होते थे :—

(i) मैं सत्य और अहिंसा को—जो अपनी परिपूर्णावस्था में जगत के महान सनातन ईश्वरीय धर्म हैं—अपनी शक्ति भर अपने में लाने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा। सत्यस्वरूप परमात्मा इसमें मेरी सहायता करें।

(ii) इन दो साधनों द्वारा किसी प्रकार की देशसेवा करना भी मेरा उद्देश्य है। इस सेवा में मैं अपना सम्पूर्ण समय लगाना चाहता हूँ। अपना भोजन, आच्छादान व्यायाम विश्राम आदि वैयक्तिक दीखने वाले मेरे कार्य भी वास्तव में इसी निमित्त हैं। परमात्मा मुझ इस उद्देश्य में स्थिर रहने की दृढ़ता प्रदान करे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iii) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गांधी सेवाश्रम रुप में संगठित होकर हम सब भाई मिलकर जो आश्रम के नियमों को स्वीकार करेंगे—जिन तपस्या तथा संयम के नियमों को अपने लिये अपनायेंगे—मैं उन्हें सदा दिल से सहर्ष पालन करने का प्रयत्न करुंगा। शक्तिस्वरूप परमात्मा मुझे इसके लिये बल प्रदान करें।

इन आठ के अतिरिक्त (9) दुर्गेशचन्द्र दास जी (10) प्रेमराज जी—ये दोनों महानुभाव (जो कि गांधी जी के डांडी मार्च के 86 सैनिकों में थे) भी आश्रम के ही थे। कुछ दिन बाद जून मास में लक्सर की धर्मशाला में इनसे मेरी भेंट हो गई। ये अपनी धुनकी आदि को लिये कहीं जाने वाले थे। मैंने प्रार्थना की कि आप हमारे गांधी सेवाश्रम में आ जाइये। दुर्गेश बाबू ने कहा, "हाँ, राम की मर्जी ऐसी ही है।" और वे दोनों आश्रम आ गये और आश्रम के सब खादी कार्य के संचालक बन गए। इन दस के अतिरिक्त (1) श्री वैद्य रामचन्द्र जी (2) देवराज सेठी (3) दीनदयालु शास्त्री भी आश्रम के पोषक सदस्य थे। इसी प्रकार श्री ओम प्रकाश जी, भूमानन्द जी तथा तुंगलसिंह जी आदि सच्चे स्वयं सेवक थे जिनके आधार पर यह आश्रम चलता था।

प्रत्येक परगने के केन्द्र स्थान पर भी एक आश्रम था, जिसमें इस मुख्य आश्रम की तरह ही खादी, प्रचार (प्रकाशन), औषध वितरण, अस्पृश्यता निवारण, मद्य निषेध आदि विभाग थे। पीछे से 'ग्राम सेवक शिक्षणालय' भी दुर्गेश बाबू की अध्यक्षता में प्रारम्भ किया गया। 'ग्राम सेवक' पाक्षिक पत्र का भी आयोजन किया गया था।

गांधी-सेवाश्रम के भवन की नींव 10 मई को रखी गई। जब तक गांधी सेवाश्रम के भवन नहीं बन गए, तब तक हम लोग स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी के 'मुक्ति पीठ' में रहे। इन 4, 5 महीनों तक तहसील कांग्रेस कमेटी का दफ्तर तथा तथा गांधी सेवाश्रम भी वहीं रहा। 'वैदिक विनय' देवनाथ जी लिखा करते थे। मैंने 28 मार्च से 10 अप्रैल तक 6 घंटे प्रतिदिन उसके लिये दिये। छमाही कार्य विवरण तथा हिसाब प्रकाशित होता था। प्रथम 6 महीनों (एप्रिल से सितम्बर 1931) में प्लेग में ग्राम सेवा, जगह-जगह सम्मेलन और अन्त में 4, 5 जुलाई को पनियाले में तहसील सम्मेलन जिसमें उमा नेहरू तथा मेरे जेल के साथी कृष्णकान्त मालवीय पधारे तथा आदर्श ग्राम बनाने के प्रयत्न–ये तीन उल्लेखनीय बातें हैं। आश्रम ने इस छमाही में तहसील में 1500 से अधिक कांग्रेस के सदस्य बनाये। तब तक आश्रम के भवन निर्माण के लिए 1961 रुपये आठ आने प्राप्त हुए थे।

दीवाली के अवसर पर अर्थात् 8, 9 नवम्बर को गांधी सेवाश्रम का बाकायदा उद्घाटन श्री गोविन्द वल्लभ पन्त (हमें क्या पता था कि किसी समय ये प्रान्त के मुख्यमंन्त्री बल्कि केन्द्रीय मन्त्री बनेंगे) तथा पं० सुन्दर लाल जी के कर कमलों से कराया गया। गांधी सेवाश्रम के मुख्य हाल का नाम 'सर्वमित्र भवन' रखा गया, क्योंकि यह आंदोलन में दिवंगत हुए इन भाई की स्मृति में था। इसी तरह सत्य भूषण की यादगार में 'सत्य भूषण कुटीर' बनाया गया जिसके लिये गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने 500 रुपये एकत्रित करने का निश्चय किया था (पहली छमाही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 355 रुपये जमा भी हो गये थे)। उद्घाटन के अवसर पर श्री दुर्गेश बाबू तथा प्रेमराज जी ने प्रदर्शनी रची थी जिसमें रुई ओटने से लेकर कपड़ा बुनने तक की प्रक्रिया प्रदर्शित की गई थी तथा दोपहर को चर्खा दंगल रखा गया था।

पं० सुन्दर लाल जी तीन दिन ठहरे। उनका भाषण हरिद्वार ज्वालापुर में भी हुआ।

इस उद्घाटन के बाद से हम लोग गांधी सेवाश्रम में रहने लगे। परन्तु जब तक 2000 रुपये आश्रम का कर्ज न उतरे तब तक मैं सोता आश्रम में नहीं था। 1934 में जब यह कर्ज चुक गया, तभी मैं आश्रम में सोने लगा।

गांधी सेवाश्रम के इस उद्घाटन से पहले बिजनौर जिले में गजरौला आश्रम का उद्घाटन वहाँ के कार्यकर्ताओं ने 15 जुलाई को मुझ द्वारा कराया था। 16 जुलाई को रामदास जी गांधी हमारे यहाँ पधारे थे तथा उनका भाषण ज्वालापुर में कराया गया था। 18 तथा 19 सितम्बर को सहारनपुर में जिला कान्फ्रेंस की गई जिसके सभापति के लिए मैंने आचार्य कृपलानी जी को तैयार किया था।

और गांधी सेवाश्रम के उद्घाटन के पश्चात् 21 नवम्बर को पुरषोत्तमदास जी टण्डन पधारे थे तथा 26, 27, 28 नवम्बर को आचार्य कृपलानी के साथ आये फादर एल्विन जिन्हें मैंने घुमाया, सभी ग्रामसेवा के केन्द्रों को दिखाया।

1932 के प्रारम्भ में लाहौर जाकर पं० देवनाथ जी और मैंने हिन्दी भवन प्रेस में 'वैदिक विनय' का प्रथम भाग छपाया। यह गांधी सेवाश्रम का ही कार्य था। 1933 में पूर्णचन्द्र जी वेदालंकार के साथ गया। 1934 में ईश्वरदत्त जी 'मेधावी' साथ थे।

गांधी सेवाश्रम का कर्ज उतारने के लिए अहमदाबाद के स्वामी अखण्डानन्द जी ने ही 1000 रुपये प्रदान किया था। शेष 1000 रुपये अन्यों का दान था, और इन्हीं अखण्डानन्द जी ने गुजराती में मेरी 'वैदिक विनय' तथा 'तरंगित हृदय' पुस्तकें अपने सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्यालय से प्रकाशित की थीं।

विलिंगडन का घोर दमन

गांधी-इर्विन समझौता मार्च 1931 में हुआ। हमने समझा कि लड़ाई खतम हुई, अतः गांधी सेवाश्रम की स्थापना 1 अप्रैल से ही करके हम पूरी तरह रचनात्मक कार्य में लग गये। पर अंग्रेजों को यह मंजूर नहीं था। लार्ड इर्विन के बाद इंग्लैंड से लार्ड विलिंगडन को भेजा गया जिसने घोर दमन प्रारम्भ किया। कई 'आर्डिनेंस' लगाये जिनका जिक्र मैं खण्ड 3 के सातवें प्रकरण (आर्य समाज को जगाना) में विशेषतया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर चुका हूँ। परिणामस्वरूप गांधी इर्विन समझौते के 9 महीने 18 दिन बाद ही एक जनवरी 1932 से कांग्रेस को फिर सत्याग्रह प्रारम्भ करना पड़ा।

इस समय सरकार की नीति यह थी कि कांग्रेस के नेताओं को तो पकड़ करके (जनता से अलग करके) जेल भेज दिया जाये, पर अन्य स्वयं सेवकों को मार-पीट कर भगा दिया जायें या तंग करके, जुर्माना करके उनसे माफी मंगाई जाये। इस तरह देश से कांग्रेस का नाम निशान मिटा दिया जाये। इसीलिये मैंने इस अवसर पर आचार्य रामदेव जी के बार-बार कहने के कारण (गांधी सेवाश्रम तथा गांधी सेवासंघ की अनुमति से) गुरुकुल का आचार्य बनना स्वीकार कर लिया (विशेषतया इस शर्त के साथ कि आचार्य रामदेव जी स्वयं जेल जावें) जिससे कि मैं गुरुकुल में रहता हुआ (अर्थात् जेल से बाहर रहकर) कार्यकर्ताओं को सलाह देता हुआ कांग्रेस-कार्य को (जिसे मिटा देने को सरकार तुली हुई थी) जीवित रखने के लिए सहायक हो सकूं।

मेरे आचार्य बनते ही रुड़की के अंग्रेज ज्वाइंट-मजिस्ट्रेट साहब दो लारी भरी सशस्त्र पुलिस को साथ लेकर गुरुकुल में आ धमके, सुना है कि गुरुकुल का राष्ट्रीय झण्डा उखाड़ने के उद्देश्य से। उधर हमारे विद्यार्थी भी (सुभाषचन्द्र आदि) तैयार हो गये कि जिंदा रहते तो हम झण्डा उखड़ने नहीं देंगे। सुभाष तो झण्डे पर भी चढ़ गया। सौभाग्य से आचार्य रामदेव जी अभी वहीं थे, उनके बीच में पड़ने से दुर्घटना होते-होते बच गई। उन्होंने अपने ढंग से ज्वाइंट-मजिस्ट्रेट को समझाया, यह भी बताया कि लड़के सब जगह लड़के ही होते हैं। उसे तो उन्होंने सब गुरुकुल घुमाकर दिखाया और बातें करते गये। अन्त में वह आचार्य जी से हाथ मिलाकर सशस्त्र पुलिस सहित वापस चला गया।

इन दिनों सारे युक्त प्रान्त में (गुरुकुल के इस राष्ट्रीय झण्डे के अतिरिक्त) कोई राष्ट्रीय झण्डा सरकार ने रहने नहीं दिया था। मुझे उमा नेहरू ने सहारनपुर के एस० पी० श्री हाण्डू (जो इनके रिश्तेदार भी थे) द्वारा कही गई (सरकार के गुप्त कागजों में लिखी) यह बात भी बताई थी कि सरकार गुरुकुल को अंग्रेजों के लिये सबसे अधिक खतरनाक मानती है, वहाँ कहा गया है कि गुरुकुल के ये ब्रह्मचारी लोग जहाँ मिलकर खड़े हो जाते हैं, वह स्थान अभेद्य हो जाता है, उसे कोई फिर तोड़ नहीं सकता।

उधर गांधी सेवाश्रम के रामेश्वर जी, पूर्णचन्द्र जी, रतनसिंह जी और दीन दयालु शास्त्री—इन चार ने अपना सम्बन्ध रचनात्मक कार्य से तोड़ कर सत्याग्रह में सम्मिलित होने का अपना निश्चय आश्रम की बैठक में बता दिया। और ये लोग दफा 144 तोड़कर जेल गये और बार-बार गये। जयदेव जी मन्त्री ने भी रचनात्मक कार्य से तो सम्बन्ध तोड़ लिया पर वह इस ढंग से कार्य करते रहे कि वे अधिक से अधिक देर तक तक पकड़े न जायें। सुना है पुलिस ने उनका 144 दफा तोड़ने के कारण से वारण्ट तो प्रारम्भ से ही बना रखा था,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षर वे ग्रामों में ही घूमते रहे। उन्होंने कुछ ऐसा प्रबन्ध किया कि जब तक दूसरे छूट कर आवें, तब तक वे न पकड़े जावें। अन्त में पाँच महीने बाद (मनोनीत सभापति मजहर अली सोखता जिन्हें आते हुए रास्ते में पकड़ लिया गया के स्थान पर सभापतित्व करते हुए) हरिद्वार में हर की पौड़ी पर जयदेव जी भी पकड़े गये। दुर्गेश बाबू जी जिन्होंने कभी कोई कानून नहीं तोड़ा और रचनात्मक कार्य में निष्ठा से लगे रहे सरकारी दमनचक्र से न बच सके और उन्हें भी डेढ़ साल के लिए जेल भेज दिया गया। बरेली जेल में भी उन्हें सख्त से सख्त सब सजायें देकर बरेली के जेलर और सुपरिन्टेन्डेंट तंग आ गये, पर उन्होंने परेड नहीं ही की। यह बरेली डिस्ट्रिक्ट जेल इस प्रान्त की कठोर परीक्षा की जेल थी। इसमें सत्याग्रहियों को तरह-तरह के कष्ट देकर माफी मंगा ली जाती थी। इसके विरोध में 17 मार्च 1932 को एक हजार सत्याग्रही कैदियों ने विशेष कदम उठाया। उस पर मुखिया को गैरकानूनी हथकड़ी दी गई और प्रत्येक से भारी लाठीचार्ज किया गया। तब शान्ति हो पायी। अन्त में जेल वाले हारे। मेरी सगी बहिन बुद्धिमती भी 13 जून 32 को कैदी-दिवस-सम्मेलन का सभापतित्व करती हुई हरिद्वार में पकड़ी गई और जेल गई। वैद्य रामचन्द्र जी भी जेल गए। 1 अगस्त को खूबचन्द ने रुड़की कचहरी पर राष्ट्रीय झण्डा लगा दिया जिसपर कैद के अतिरिक्त ज्वाइंट-मजिस्ट्रेट ने बेंत लगाए जिसके लिए उसे कैसे क्षमा मांगनी पड़ी, 29 अगस्त को पीताम्बर सिंह जी के सभापतित्व में हरिद्वार में कैसे सभा हुई और 16 व्यक्ति पकड़े गये, लक्सरी आश्रम का झण्डा पुलिस द्वारा उतार दिये जाने पर कैसे रतन सिंह जी ने फिर झण्डा लहरा दिया और अन्त में उन्हें तीन स्वयंसेवकों सहित गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया—इत्यादि वृत्तान्त मन्त्री जयदेव जी लिखित आश्रम द्विवार्षिक (1932–1933) कार्य विवरण में विस्तार से पढ़े जा सकते हैं।

उस कार्य-विवरण में गुरुकुल से नाम कटा कर आए ब्रह्मचारियों का हिस्सा जुदा लिखा है। 29 मई 32 को 4 ब्रह्मचारी देवबन्द में पकड़े गये। 10 ब्रह्मचारी 13 जून 32 को हर की पौड़ी पर पकड़े गये तथा 29 अगस्त को 5 ब्रह्मचारी हरिद्वार में (गुरुदत्त को मिलाकर) पकड़े गये—एवं 19 ब्रह्मचारी पकड़े गये। और सुभाषचन्द्र और हरिदत्त तो दोबारा भी जेल गए।

अन्त में स्वयंसेवकों को जब और कोई (आर्डिनेन्स के कारण) ठहराता नहीं था और गांधी सेवाश्रम में बसे जुलाहे भी बार-बार पुलिस के आने से तथा तलाशी आदि लिए जाने से डरकर भाग गये तब से स्वयंसेवक ही गांधी सेवाश्रम में ठहरने लगे, न केवल रुड़की तहसील के बल्कि जिले भर के। हमारे यहाँ के गिरफ्तार ब्रह्मचारियों ने तथा अन्य स्वयंसेवकों ने जब घर का पता गांधी सेवाश्रम तथा पिता का नाम 'देवशर्मा' लिखाना प्रारम्भ किया, तो सरकार ने गांधी-सेवाश्रम के प्रेस को मेरा निजी प्रेस मानकर स्वयंसेवकों के जुर्माने में जब्त कर लिया जिसे अन्त में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी कलक्टर से चिट्ठी पत्री होने पर वापस करना पड़ा । पर तब आश्रम को 2 सितम्बर 32 को जब्त कर लिया गया और वहाँ सरकार की पुलिस-चौकी बना दी गई तथा यूनियन जैक लगा दिया, तब प्रति सप्ताह इस चौकी बने आश्रम पर धावा बोला जाने लगा। ऐसे 7, 8 धावे हुवे जिसमें 25–30 स्वयंसेवक गिरफ्तार किये गये, अन्त में पुलिस ने तंग आकर पुलिस चौकी उठा ली और यूनियन जैक उतार लिया, तो हमारे धावे भी स्वभावत: बन्द हो गये। अन्त में लगभग दो वर्ष बाद—गांधी सेवाश्रम की मरम्मत का सरकार द्वारा वचन प्राप्त कर लेने पर—13 जुलाई 1934 को फिर गांधी सेवाश्रम में संस्कार पूर्वक प्रवेश किया गया।

आंदोलन के इन दिनों में यद्यपि सब परगनों के आश्रम बन्द हो गये और यह मुख्याश्रम जब्त हो गया और रचनात्मक कार्य कोई ठीक प्रकार न चल सका। तो भी सभी रचनात्मक कार्य जारी रखने का हमारा प्रयत्न रहा। दुर्गेश्वरबाबू जी अपनी पाठशाला को गांधी-सेवाश्रम के जब्त हो जाने पर वैद्य रामचन्द्र जी के घर चलाते रहे। हरिजन आंदोलन (जोकि गांधी जी के 20 सितम्बर से हुए उपवास के कारण खूब बढ़ा) पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी के सभापतित्व में कार्य करता रहा। खादी कार्य भी चलता रहा।

इस आंदोलन में लगभग 200 व्यक्ति रुड़की तहसील से जेल गए (जिनकी सूची द्विवार्षिक विवरण में दी है), पर भाग लेने वाले बहुत थे जिन्हें पकड़ा नहीं गया किन्तु पीटकर छोड़ दिया गया। इन्हीं दिनों पं० सत्यपाल जी विद्यालंकार, जो अफ्रीका से लौटे थे भारत में आये, तो वे भी यहाँ आंदोलन चलता देखकर सभा से छुट्टी लेकर लाहौर के डिक्टेटर (अधिनायक) के तौर पर जेल गए। उन्हें सरकार ने चार वर्ष की कैद (दफा 144 तथा आर्डिनेन्स में) दी।

सन् 32 और 33 में कांग्रेस का अधिवेशन भी खुल्लमखुल्ला नहीं हो सकता था। पर हमने देहली में 1932 के दिसम्बर में रणछोड़लाल अमृतलाल के सभापतित्व में हुई कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजे। बड़ी युक्ति से मैंने स्वयं कुछ ब्रह्मचारियों को देहली भेजा। देहली के दफ्तर से हमारे गांवों तक चिट्ठी पत्री पहुँचाने का, गाचनी के प्रेस में छापकर सब सन्देश भेजने का प्रबन्ध था। इसी तरह कलकत्ते की दिसम्बर 1933 में श्रीमती नैलीसेन गुप्त के सभापतित्व में हुई कांग्रेस में भी हमारे प्रतिनिधि गये। दीनदयालु शास्त्री जी ने सब प्रबन्ध किया। वे वहाँ जाते हुए ही पकड़े गये। शिवचरण जी वहाँ पहुँचे और पकड़े गये।

इन दिनों सरकारी सी. आई. डी. मेरी प्रत्येक गतिविधि को देखती रहती थी। यद्यपि मुझे कुछ छिपाना नहीं होता था, तो भी आजकल घोर दमन के कारण कुछ बातें कुछ समय के लिए गोपनीय भी रखनी होती थीं। इसीलिए कई बार सी. आई. डी. की प्रेरणा से टिकट चैकर रेलगाड़ी के भरे डिब्बे में केवल मेरा टिकट देखकर चला जाता था। सी. आई. डी. यह पता लगाती थी कि मैं कहाँ जा रहा हूँ ताकि वहाँ सूचना दी जा सके। एक बार मैं सहारनपुर के स्टेशन पर सायंकाल की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिद्वार की गाड़ी पर चढ़ने के लिए प्लेटफार्म पर खड़ा था। एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं ?" तो समझ गया कि यह सी. आई. डी. का व्यक्ति है और मैंने उस व्यक्ति को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे आँख घुमाकर देखा तो वह बोला, "मैं हूँ वही जो आपने समझा है, पर मुझे बस इतना बता दीजिए कि आप जा कहाँ रहे हैं ?" एक अन्य बार खूब मजेदार बात हुई। मैं शिमला जा रहा था, रास्ते में आप का नाम, बाप का नाम पूछा जाता था। मैंने कहा, "मेरा नाम देव शर्मा, बाप का नाम राम प्रसाद, आर्य समाज मन्दिर में ठहरूंगा।" वहाँ पहुँचने पर समाज में एक व्यक्ति पूछने आया कि यहाँ कोई राम प्रसाद जी देवशर्मा के पुत्र आज आये हैं— आप और बाप को उलटा कर दिया गया था।

यह मैं तृतीय खण्ड के 12वें प्रकरण में लिख चुका हूँ कि 1934 में पं० भीमसेन जी से मिलकर मैंने 'राष्ट्रीय शिक्षणालयों के पत्र' के तौर पर 'अलंकार' मासिक पत्र निकाला था। पर सरकार नहीं चाहती थी कि यह पत्र चले, अत: एक निर्दोष से लेख पर ही हम से बहुत सी जमानत माँग ली गई । हमारे पास पैसा नहीं था अत: विवश होकर 'अलंकार' को बन्द करना पड़ा। सब ग्राहकों को उनका शेष चन्दा या तो वापिस करके या उनकी इच्छानुसार घाटापूर्ति में दान में स्वीकार कर, सब का सब हिसाब पूरा करके 'अलंकार' बन्द कर दिया गया।

गांधी सेवाश्रम में इस समय 'ग्रामसेवा-शिक्षणालय' श्री दुर्गेश जी के आचार्यत्व में प्रारम्भ किया गया था जिसका पाठ्यक्रम भी 'अलंकार' मे छपा था। इस शिक्षणालय में बाहर से आये जैसे राजस्थान तथा गढ़वाल से आये विद्यार्थी भी शिक्षा प्राप्त करते थे। बाबू दुर्गेशचन्द जी ने बालकों की शिक्षा के लिए 'बाल-शिक्षण का सच्चा मार्ग' छोटी सी पुस्तिका लिखी थी जिसे मैंने अपनी भूमिका के साथ 23 जून 35 को गांधी-सेवाश्रम की तरफ से छपवाया था।

एक बार एक व्यक्ति मेरे दर्शन करने आया। उसने कहा कि सन् 32-33 के आंदोलन में सैकड़ों गिरफ्तार हुए स्वयंसेवकों ने पूछने पर अपने पिता का नाम 'देवशर्मा जी' बताया। यह नाम लिखते-लिखते मानो मैं थक गया । सो उन्हीं 'देवशर्मा जी' के दर्शन करने आया हूँ।

एक बार सहारनपुर के अंग्रेज कलेक्टर ने भी (जब मैं शायद प्रेस के सम्बन्ध में उनसे मिलने गया था) मुझे हँसते हुए कहा कि "तुम्हारे इतने बच्चे हैं?" मैंनेकहा "पर मैं तो अविवाहित (bachelor) हूँ, अत: ये लोग मुझे धार्मिक अर्थ में पिता कहते होंगे।"

क्या करें–यह उधेड़बुन

सन् 32, 33 में, विशेषतया सन् 32 में जब गांधी जी जेल में थे, देश की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र दशा थी। उस समय हमें क्या करना चाहिए इसी उधेड़बुन में मन रहता था। सरकार के दमन का पूरा-पूरा मुकाबला करने के लिए कैसा आंदोलन चलाया जाय—मन यही सोचता था। उन दिनों सरकार का सब कार्य ठप्प करने की योजना मन में बनी थी। उसे बताते हुए मैंने एक विज्ञप्ति कुछ साथियों को लिखकर भेजी थी। उसे ही नीचे दे देना उस समय की मेरी मन की अवस्था का ठीक आकलन करने वाला होगा। वह विज्ञप्ति निम्न है—

सरकार ने अपने पशुबल से देश की विचित्र दशा कर रखी है। एक तरफ भारत के प्राय: उच्च से उच्च पुरुष जेलों में बन्द हैं, आम लोगों को और नवयुवकों को काबू रख सकने वाले पुरुष बाहर नहीं हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं, दूसरी तरफ आम जनता का बोलना, सभा करना तक बन्द करके, आतंक जमा कर, भारी जुर्माने करके बड़ा भयभीत कर रखा है। इससे दुनिया पर यह झूठा प्रभाव पड़ रहा है कि देश के थोड़े से आंदोलनकारी दबा दिये गये हैं और शेष सारा देश उनसे कोई सहानुभूति नहीं रखता है और इस देश की स्वाधीनता की पुकार झूठी है।

हमारा दावा है कि अंग्रेज सरकार को भारतवासी दिल से एक दिन भी नहीं रखना चाहते हैं; और प्रत्येक भारतवासी दिल-दिल में कांग्रेस से सहानुभूति रखता है। इस दावे को साबित करने के लिए हम दो माह का नोटिस ब्रिटिश सरकार को देते हैं। वह या तो इन दो महीनों में सब राजनैतिक कैदी छोड़ दे, आर्डिनेन्स हटाले और कांग्रेस (देश) की मांग पूरी कर दे; नहीं तो देश में एक ऐसा भारी कार्यक्रम शुरू किया जायेगा जिसके लिए भारतमाता के प्रत्येक पुत्र को तैयार हो जाना चाहिए। अभी तो सरकार ने लड़ाई छेड़ी हुई है इसलिए कांग्रेस केवल अपना बचाव कर रही है, पर अब कांग्रेस स्वयं अपना संग्राम छेड़ेगी। यह ऐसा घोर संग्राम होगा कि लोगों के मामूली काम चलते नहीं रह सकेंगे। सब भाईयों को रेल, तार, डाक आदि के बिना काम चलाने को तैयार हो जाना चाहिए। यदि कोई जीवनावश्यक वस्तु दूर से लानी या ले जानी हो इस बीच में उसका लाना ले जाना कर लेना चाहिए। उसके बाद पैदल चलने के ही कार्य हो सकेंगे। कोई भी कारोबार चलना असंभव हो जायेगा। अत: सब को प्राकृतिक ग्रामीणों का सा स्वावलम्बी जीवन बिताने को तैयार हो जाना चाहिए। पाश्चात्य सभ्यता से आई हुई इन रेल तार आदि से वंचित हो जाने से हमें प्रसन्न ही होना चाहिए। हम अच्छी तरह जानते हैं कि इस तरह की अराजकता सी ले आना—सब लोगों को कष्ट में डालना अच्छा नहीं है, पर हम मजबूर होकर यह इतनी भारी जिम्मेदारी ले रहे हैं। सरकार ने हमारे वास्ते और कोई चारा नहीं छोड़ा है। या तो हम सदा के लिए मर जायें, दब जायें या इस बुरी तरह उठ खड़े हों और दुनिया को दिखला दें कि सचमुच हिन्दुस्तान अब किसी का गुलाम नहीं रहना चाहता है। परमात्मा हम हिन्दुस्तानियों को बल, शक्ति और हिम्मत देवे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इस विज्ञप्ति के स्पष्टीकरण में मैंने एक पत्र भी साथियों को लिखा था जो कि निम्न है)—

प्रिय भाई,

वन्दे ।

इस समय कांग्रेस ने आह्वान का पूरा-पूरा जवाब देना है। होम मेम्बर हेग ने—सरकार ने—जो पुनः आर्डिनेन्स जारी किये हैं और कांग्रेस को पूरी तरह कुचल डालने का अपना संकल्प घोषित किया है, उसका यथोचित जवाब हमें दे देना चाहिए। हमारा यथोचित जवाब वही होगा जिससे कि हम इस सरकार का चलना बन्द कर दें जो करोड़ों लोग ऐसे फिरते हैं कि उन्हें जरा भी अनुभव नहीं होता कि देश में कोई भारी लड़ाई चल रही है, उन्हें अनुभव करा दें कि आजकल हम बड़े विषम असाधारण दिनों में से गुजर रहे हैं। जनसाधारण के मनोविज्ञान (Mass Psychology) से हमें पूरा लाभ उठाना चाहिए। इस दृष्टि से मैं आपके सामने निम्न कार्यक्रम पेश करता हूँ—देश के नवयुवक अधीर हैं। उन्हें धीरज दे सकने वाले लोग बाहर नहीं हैं। मैं अहिंसा का पूर्ण विश्वासी हूँ—और अहिंसा ही दुनिया को सुखी कर सकती है—इस पर पूर्ण विश्वास रखता हूँ। इसलिए जब मैं देखता हूँ कि (दूर तक न देख सकने वाले) नवयुवक अहिंसा की कट्टरता से तंग आकर अहिंसा से बिल्कुल निराश हो रहे हैं, तो मैं यह परमाश्वयक समझता हूँ कि हमें हिंसा के खतरे को समझते हुए भी कोई ऐसा अहिंसात्मक कार्यक्रम चला देना चाहिये जिसका बहुत व्यापक प्रभाव हो—आम लोगों के चलते हुए काम को रोक कर लड़ाई का वायुमण्डल पैदा करने वाला हो। अहिंसा की विजय कराने के लिए यह आवश्यक है। तार काटने में इतनी हिंसा जरूर है कि इससे आम जनता के कार-बार रुकते हैं। पर यह हिंसा हिंसा नहीं रहती यदि यह कार्य बाकायदा सूचना देकर—जनता को सावधान करके और सरकार को चेतावनी देकर किया जाय। इन तार आदि सरकारी साधनों को बेकार कर देना कदापि हिंसा नहीं है। हिंसक पुरुष की बन्दूक छीन लेना क्या हिंसा है? इसे हिंसा समझना कट्टरता है। और वर्तमान समय में तो (जिसका चित्र मैंने साथ की विज्ञप्ति में खींचा है) अहिंसक पुरुषों के लिए इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है; और इस उपाय को न बरतना हिंसा को (सरकार की हिंसा को और अनार्किस्टों युवकों की हिंसा को) बढ़ावा देना है। अतः हम लोगों को चाहिए कि इस प्रकार की एक विज्ञप्ति द्वारा सरकार को एक दो महीने का मौका देकर रेल, तार, डाक आदि को सर्वथा नष्ट भ्रष्ट कर देवें, इनका कार्य असम्भव कर दें। भारत की जो पुराने गांवों वाली सभ्यता थी, उसका फिर नजारा सारे शहरों और कस्बों में भी उपस्थित कर दिया जाय और जो सरकार ने राष्ट्रीय लोगों का बोलना, मिलना, पत्र और तार व्यवहार करना आदि रोककर इन रेल तार आदि को केवल हिंसा का साधन बना रखा है, उसे तोड़ दिया जाये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह स्पष्ट है कि कांग्रेस की आज्ञा से पहिले (कम से कम कांग्रेस के अपने आदमियों द्वारा) एक भी तार नहीं कटना चाहिये और आज्ञा के बाद एक भी तार नहीं बचना चाहिये। और तार काटने आदि का कार्य करके वैसे ही जेल जाना चाहिए जैसे कि अन्य कांग्रेस कार्यों को करके जेल जाया जाता है।

अहिंसा की विजय तभी होगी जब हम हम अंग्रेजों को यह विश्वास दिला सकें कि हम ऐसी हिंसा द्वारा अंग्रेजी राज्य को हटा देने में सफल हो सकते हैं, तो भी हम हिंसा नहीं कर रहे हैं। दुर्बल की अहिंसा नहीं, बलवान की अहिंसा।

आपका बन्धु
देवशर्मा

इस योजना से हमारे गांधी-वादी भी बहुत से (जैसे कि हमारे गांधी-सेवासंघ के अध्यक्ष श्री किशोरी लाल जी) भाई सहमत थे। पर फिर भी इसे चलाने के लिए किसी नेता की जरूरत थी, कांग्रेस की आज्ञा की जरूरत थी। आगे जाकर 1942 की लड़ाई में तो यह योजना प्रायः सर्व स्वीकृत थी। उस समय इसको चलाने की बात करने पर ही श्री किशोरी लाल जी 23 अगस्त 1942 को पकड़े गये थे। और सेवाग्राम आश्रम में भी इन बातों पर मतभेद सा था। उपवास और प्रायोपवेशन के विषय में ऐसा मतभेद नहीं था। पर यह उपवास तो कोई बड़ा नेता ही कर सकता था और वह कार्य गांधी जी ने कुछ समय बाद (1933 में) किया था। तभी उन्हें छोड़ भी दिया गया। उन्होंने जेल में 21 दिन का उपवास घोषित किया जिससे सारी दिशा बदल गई। हरिजन आंदोलन प्रारम्भ हो गया। सो, उस उपवास के विषय में भी मैं बार-बार योजना बनाता था, बल्कि आर्य समाज के सम्बन्ध में (क्योंकि मैं गुरुकुल में था, अतः धार्मिक भाव से ही, न कि राजनैतिक भाव से यह कार्य कर सकता था) मैंने दो बार प्रायोपवेशन करने का निश्चय भी किया, पर वह सम्भव नहीं हुआ। उसका वृत्तान्त गत तीसरे खण्ड में आ ही चुका है। उससे मेरे मन की अवस्था तो प्रगट होती ही है। मैं उन दिनों उपवास द्वारा भी लोगों के अन्दर राष्ट्रीय भाव जगाना चाहता था। अतएव मैंने सन् 32 के अन्त में राजेन्द्र बाबू (क्योंकि उस समय वे कांग्रेस के अध्यक्ष भी थे) को एक पत्र लिखा जिसमें उन्हें कांग्रेस के सभापतियों की एक उपवास-परम्परा चलाने का सुझाव दिया। पर वे उस सुझाव को क्रियान्वित करने के लिए तैयार नहीं हुए। यद्यपि सन् 33 में गांधी जब छूटकर आये, तो मैंने राजेन्द्र बाबू के नाम लिखा वह पत्र उन्हें भेजा तो उन्होंने उस मेरे पत्र को पसन्द ही किया था। तो भी वह कार्य होने को नहीं था। जो हो, राजेन्द्र बाबू के नाम का वह पत्र तथा गांधी जी का मेरे उस पत्र को पढ़कर लिखा मुझे उनका पत्र—दोनों नीचे देता हूँ। इससे मेरा मन कितना व्याकुल था, सरकार के दमन का किसी तरह मुकाबला होना चाहिये इस विषय में कितना व्यग्र था—यह सूचित होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्र बाबू को मेरा पत्र

पूज्य बाबू जी,

सादर वन्दे। मैं आपके सामने बच्चा हूँ, कुछ अनुभव नहीं है। तो भी अपनी बालबुद्धि से जो सोचता हूँ उसे आपके लिए लेखबद्ध करने की धृष्टता करता हूँ।

सरकार कांग्रेस को मार रही है, यद्यपि कांग्रेस मरी नहीं है, कुछ जिंदा है, परन्तु वह सम्मानपूर्वक जिन्दा नहीं है। कांग्रेस के बहुत से कार्य छिपछिपा कर चल रहे हैं और इन्हीं द्वारा वह जिंदा है। कांग्रेस जो हजारों रुपया पाकर खर्च कर रही है उसे खुल्लमखुल्ला नहीं मिल रहा है; देने वाले बम्बई आदि के सेठ यदि खुल्लमखुल्ला देवें तो उनका सब कुछ जब्त होने की पूरी सम्भावना है। कांग्रेस सभापतियों व अधिनायकों (Dictators) के जो वक्तव्य आदि छपकर बटते हैं और देश के कोने-कोने में पहुँचते हैं, उनको छापने वाले प्रेस आदि खुल्लमखुल्ला छापें तो वे प्रेस जब्त हो जायेंगे। इसी तरह अन्य बातों के विषय में हैं।

यह जो छिपकर कार्य चलाना है, हमारी कमजोरी के कारण है। और सरकार अपने दमन से हमें और जितना दबाएगी, उतना ही हम और छिपेंगे और दबेंगे। मेरी समझ में इस तरह अपने को बचाने से भी, यदि छह महीने का आर्डिनेंस-दमन होता, काम चल जाता। छह महीने दबकर जी लिए, फिर खड़े हो गए। पर अब जबकि सरकार इस हालत को कम से कम तीन साल रखना सोच रही है, तब हमें इसका प्रबल उत्तर दिये बिना जीना कठिन है। हमारा प्रबल उत्तर अधिक प्रबल सत्य और अधिक प्रबल अहिंसा (बलिदान) द्वारा ही होगा। अब दो चार दिन से मेरे दिल में बिलकुल स्पष्ट यह आ गया है कि हमें सर्वथा खुल्लमखुल्ला ही सब कुछ आर्डिनेंस-शासन (तथा अपनी स्थिति) को नग्नरूप में ले आना चाहिये। मैं मार्च के अन्त में सीधा कांग्रेस में आ सकूंगा, यदि पहिले छोड़ना आवश्यक न हुआ। तक मेरी इच्छा है कि अपनी सब सम्पत्ति का संन्यास (देशार्पण) करके एक लगोटी पहनकर आ जाऊंगा, और फिर कांग्रेस कार्य करने को ही जीने के लिए अन्न वस्त्र माँगूंगा। जो खुल्लमखुल्ला यह कहकर "देवशर्मा कांग्रेस कार्यकर्ता है, यह मैं जानता हूँ, यह जानते हुए भी मैं इसे अपने घर में शरण या कपड़े या खाने को व अन्य कांग्रेस कार्य करने को रुपये देता हूँ" मुझे देगा, तभी मैं उसे स्वीकार करूंगा। शायद आपको पता होगा कि मैं गांधी सेवासंघ का सदस्य हूँ, और मुझे संघ से व्ययार्थ धन मिलता है। पर उस हालत में मुझे संघ भी खुल्लमखुल्ला नहीं दे सकेगा। खुल्लमखुल्ला देने का मतलब यह है कि संघ की सब लाखों रुपये की जायदाद को जब्ती के भयंकर खतरे में डालना। अतः वहाँ से भी मैं कुछ प्राप्त नहीं कर सकूंगा।

कांग्रेस की असल में यही सच्ची—नंगी भूखी हालत है। हम छिपाकर बहुत कुछ कर रहे हैं, अतः इतने नंगे भूखे दीखते तो नहीं। यदि हम बिना छिपाये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम शुरू कर दें और इस पर पक्के रहें तो ऐसे हमारे पक्के स्वयं सेवक नंगे भूखे मर जायेंगे। किन्हीं बड़े नेताओं को बेशक खाना आसानी से मिल जाये, उन्हें देने की हिम्मत लोग करें, अपने को खतरे में डालकर भी करें (क्योंकि असल में आप जैसे देश-नेता इतनी बड़ी भारी सम्पत्ति हैं जिसके सामने लोगों की बड़ी से बड़ी जायदादें भी परमतुच्छ हैं), परन्तु मामूली अप्रसिद्ध स्वयं सेवक तो भूखों मरेंगे ही।

इस दिशा में सोचने से मेरी तुच्छ समझ में (भूल हो तो मुझे बालक समझ ठीक कर देंगे) यह आता है कि यदि कांग्रेस को इस ऊँची स्थिति में उठाना हो तो कांग्रेस के मुख्य नेताओं को अपने को भूखा नंगा समझना चाहिये। जब तक कि कि देशवासी लाखों करोड़ों की संख्या में खुल्लमखुल्ला कांग्रेस को खाना-पीना, वस्त्र मकान, छपाई की सेवा आदि देने को उद्यत न हों, तब तक कांग्रेस को (कांग्रेस के प्रतिनिधि को, अखिल भारतीय कांग्रेस के सभापति को समझिये) अपने आपको भूखा नंगा समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में असम्मानपूर्वक जीने (जैसा कि छिपकर कार्य करने से हो रहा है) की अपेक्षा सम्मानपूर्वक मरना अच्छा है। इस तरह तरह मैं कांग्रैस सभापति का उपवास करना उचित समझता हूँ। उसे कांग्रेस को सम्मानपूर्वक जिंदा रखने के लिए प्रायोपवेशन करना चाहिए। ऐसे एक के बाद एक कांग्रेस सभापति प्राण भी छोड़ते जायें जब तक कि देशवासियों की एक निश्चित संख्या प्रत्येक जिले में इकट्ठे होकर खुल्लमखुल्ला यह घोषित न कर दे कि हम इतने आदमी अपना सब कुछ जब्त कराते हुए भी खुल्लमखुल्ला कांग्रेस वाले हैं। मेरा असंदिग्ध विश्वास है कि ऐसे प्रायोपवेशन से—आत्माहुति से—देश में करोड़ों लोग खुल्लमखुल्ला कांग्रेस वाले बन जायेंगे और सरकार की सब योजनाएं (कि तीन साल तक दबाकर कुछ सुधार से जैसे देकर कांग्रेस में फूट—आधे कौंसिलों में जाने वाले बनाकर–डालकर 20–30 बरस तक भारत पर और राज्य कर लेंगे) भंग हो जायेंगी। एक दो ऐसे महान बलिदानों से इतना भारी महान कार्य हो जावेगा। पूर्ण स्वराज्य की प्रतिज्ञा लिए हुए हम लोगों के लिए इतना करना अत्यावश्यक और स्वाभाविक होना चाहिए।

होगा तो वही जो परमेश्वर चाहेगा। वे ही अन्दर से सबको प्रेरणा करने वाले हैं। कम से कम मेरी अन्तरात्मा तो कहती है कि मैं इस बलिदान के लिए उद्यत हूँ। मेरी देश की सेवायें तो कुछ नहीं हैं जिससे देश मुझे कभी कांग्रेस-सभापति बना सके, पर यदि मुझे बनाया जा सके तो मैं (यद्यपि मेरा कुछ व्यक्तित्व नहीं हैं) शरीर छोड़ने के लिए आतुर सा हूँ—क्योंकि स्पष्ट देखता हूँ कि इससे अच्छा शरीर का उपयोग अन्य कुछ नहीं हो सकता है। मरना तो एक दिन सबने है। फिर तो उसका अच्छे से अच्छा उपयोग ही देखना होता है। अस्तु। नहीं तो अभी परमेश्वर से प्रार्थना उपासना में समय बिताऊँगा और मार्च में जब स्वभावत: गुरुकुल से जुदा होऊँगा तो उसी तरह (जैसे मैंने ऊपर वर्णन किया है) सब कुछ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर कांग्रेस क्षेत्र में आऊँगा और यदि खुल्लमखुल्ला जीना मिलेगा तभी जीऊँगा। इतना संकल्प तो आज की प्रार्थना उपासना में कर लिया है।

ये सब अपने भाव मैंने आपके सामने रख दिये हैं। लिखता गया हूँ। उसकी नकल भी नहीं रखी है। नकल करने का अभी समय नहीं है। यदि आप कष्ट करके इसकी नकलें आप ही करा सकें तो कई इस तरह सोचने वाले किन्हीं महानुभावों को (जैसे राजा जी) यह भेज दें तो शायद अच्छा हो। नहीं तो आप जैसा मुनासिब समझें। नकल करावें तो एक प्रति मुझे भी भेज दें : नहीं तो मेरे अन्दर यह भरा हुआ है। मैं फिर लिख लूंगा, शब्द कुछ बदल जायेंगे।

इसमें जो कुछ बाल मूर्खताएं हों, उन्हें क्षमा करें।

गाड़ी का समय हो गया है नहीं तो स्वयं नकल कर लेता।

आपका प्यारा
अभय
23–12–32
इलाहाबाद

इस चिट्ठी को पढ़कर, छूटने पर, जो कुछ गांधी जी ने मुझे लिखा वह निम्न है :—

पूना

भाई अभय,

तुम्हारा पत्र राजेन्द्र बाबू पर का पढ़ गया। मुझको अच्छा और उचित लगा। भाषा सुन्दर है। प्रायोपवेशन का समय आया हुआ नहीं लगता है। किसी रोज वह भी करना पड़े। छिपाकर कार्य करने से नुकसान ही हुआ है, इसमें संदेह नहीं है। देखें क्या सम्भावित है। सब कुछ करने वाला राम है।

3–7–33 बापू के आशीर्वाद

बापू के पत्र

गांधी के अपने हाथ के लिखे पत्रों की अब तो बहुत कीमत हो गई है। मेरे पास उनके ऐसे बहुत से पत्र आये पर मैं उनका काम हो जाने पर उन्हें सदा फाड़ ही देता रहा था। अब से 5–6 वर्ष हुए, मार्च 1959 में मुझे जयरामदास दौलत जी का पत्र आया, जिसमें लिखा था कि सुना है कि आपके पास महात्मा गांधी के भेजे बहुत से पत्र हैं, तो उन्हें आप हमें दे सकेंगे ? मूलप्रति आपको फोटो-प्रिंट लेकर लौटा देंगे, यह हम आपको विश्वास दिलाते हैं—इत्यादि। पर मेरे पास तो कोई पत्र नहीं थे। अगस्त में पाण्डिचेरी जाकर सुरक्षित कागजों को ढूंढकर भेजने को मैंने उन्हें लिखा। तब तीन पत्र मिल भी गये (दो लिफाफे और एक कार्ड) जो मैंने मूलरूप में ही उन्हें (संग्रहालय के लिये) भेज दिए। जयराम दास जी ने उनके एक-एक फोटो-प्रिंट मुझे अवश्य भेजे हैं। उनमें से एक लिफाफा तो 3–7–33 को पूना से लिखा है जो ऊपर दे चुका हूँ। यह वही है जो गांधी जी ने राजेन्द्र बाबू के नाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखे प्रायोपवेशण सम्बन्धी मेरे पत्र को पढ़कर मुझे लिखा है। शेष जो दो पत्र हैं, वे मेरे गुरुकुल के आचार्य बनने और आचार्यत्व छोड़ने पर उनकी टिप्पणी हैं। उनके पहिले 23-5-32 के कार्ड में जो 'वैदिक विनय' की बात है, सो उन्होंने 'वैदिक विनय' ध्यान से पढ़ी थी और उस पर मुझे एक विस्तृत पत्र भी लिखा था, पर वह पत्र मुझे मिला नहीं—यह बात उनसे मिलने पर वर्धा में मुझे एक बार पता लगी थी। दूसरे पत्र में 'दया' का उल्लेख है। वह मेरे मित्र मास्टर विश्वम्भर सहाय जी की लड़की है जो कि अब तक अविवाहित रहकर सेवाकार्य में संलग्न है। विद्यावती जी कन्या गुरुकुल देहरादून की प्रसिद्ध आचार्या जी हैं। तीसरे 9-7-34 के पत्र में मुझे जेल जाने की जल्दी से रोका है।

ये तीनों पत्र गांधी जी के अपने अक्षरों में भी यहाँ दिये जाते हैं।

(1) पूना

भाई अभय,

तुम्हारा खत (राजेन्द्र बाबू पर का) पढ़ गया। मुझको अच्छा और उचित लगा। भाषा सुन्दर है। प्रायोपवेशन का समय आया हुआ नहीं लगता है किसी रोज वह भी करना पड़े। छिपाकर कार्य करने से नुकसान ही हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। देखें क्या सम्भवित है। सब कुछ करने वाला राम है।

3-7-33 बापू के आशीर्वाद

(2)

भाई अभय,

आपके पत्र की मैं रोज प्रतीक्षा करता था, इतने में पत्र आया और 'वैदिक विनय' की दो प्रति मिलीं। एक पहिले भी आई थी। मैं अवश्य पढ़ूंगा। और बाद में कुछ कहने जैसा होगा तो लिखूंगा। आपके आचार्य होने से अच्छा भी लगता है, बुरा भी लगता है। किन्तु सहज प्राप्त धर्म है, इसलिये मेरा विश्वास है कि यह ठीक ही है। आपके हाथ से इस मार्ग से कुछ बड़ी सेवा होगी। जयदेव कहाँ है? दया के खतों से उस लड़की का मेरे पर बहुत प्रभाव पड़ा है। उसमें सच्ची सेविका बनने के लक्षण दिखाई देते हैं।

रामदेव जी का शरीर अच्छा है? विद्यावती कैसे है?

23-5-32 बापू के आशीर्वाद

(3)

भाई अभय,

गुरुकुल से मुक्ति पाने के लिए धन्यवाद। मेरा कुछ ख्याल रहा है कि तुम्हारा गुरुकुल में आचार्य बनना सभा और तुम दोनों के लिए शायद हानिकारक था, लेकिन जहाँ तक सभा तुमको छोड़ा नहीं चाहती थी, तुम्हारा वहाँ रहने का धर्म था। अब सभा के साथ निर्मल और आध्यात्मिक सम्बन्ध बना रहेगा, रहना चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे कारणों को छोड़कर मेरे में जो आंदोलन आजकल चल रहा है, उस कारण हीं तुम्हारे जेल जाने में जल्दी नहीं करना। मेरे निश्चय के लिए इन्तजारी में रहिए।

पिंजन की तांत के बारे में मुझे कुछ पता नहीं था। मैंने माना था मगनलाल इस बारे में जानता था। मैं अब तलाश करूंगा। हाँ, इतना अवश्य है सही मैंने इस बारे में विशेष प्रयत्न नहीं किया है। तांतों के लिए जानवर मारे नहीं जाते हैं। जैसे असंख्य लोग गोसेवा धर्म मानते हुए भी कतल किये हुए पशु के जूते पहनते हैं, ठीक उसी तरह हम तांत का उपयोग करते हैं। जब मृत जानवर से तांत निकाली जायेगी, तब उसी तांत का उपयोग करेंगे। दर्मियान जो तांत मिलती है उसके उपयोग में मैं हर्ज नहीं करता हूँ। आंतों की तांत का काम ठीक कर सकें ऐसी तांत अभी तक नहीं मिली है। तांत के विषय में तटस्थ रहें। आवश्यक समझकर उसका उपयोग किया करें।

9–5–34

पटना सिटी

कई बार रेल की जंजीर खींची

आजकल सरकार से भिड़ने की वृत्ति रहती थी। कहीं राष्ट्रीय भाव कुचला न जाये, सरकार को पता रहे कि भारतवासी अभी भी दब नहीं गये हैं, इसलिये यह वृत्ति रहती थी। मैंने कहीं सुना था कि रेल में बहुत अधिक भीड़ हो तो भी जंजीर खींची जा सकती है। ऐसा कई जगह देश भक्त करते हैं, यह भी सुना था। अतः मैंने सहारनपुर के बाबू मेलाराम जी वकील को कह रखा था कि कभी बहुत भीड़ होगी तो मैं रेल की जंजीर खींचूंगा, तब आपने पैरवी करनी होगी। इसका एक दिन मौका मिल गया।

मैं गुरुकुल कुरुक्षेत्र से हरिद्वार आ रहा था। मेरा चचेरा भाई सुखदेव साथ में था। मैंने गुरुकुल कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट करा रखा था और अपने साथ गुरुकुल कांगड़ी ला रहा था। अम्बाला में रात को हमने गाड़ी बदली, हरिद्वार पैसेन्जर पकड़ी। उसमें बहुत भीड़ थी। जैसे-तैसे जगह मिली। पर जब वह गाड़ी सहारनपुर पहुँची तो उसमें और भी सवारियां भर गईं। उसमें बेहद भीड़ हो गई, सांस लेना मुश्किल हो रहा था। तब मुझे वह बात याद आई। खिड़की से मुँह बाहर निकाल कर मैंने कहा "गाड़ी में बहुत भीड़ है, जितने की जगह है उससे तिगुने लोग यहाँ बैठे और खड़े हैं, उसमें जो पीछे घुसे हैं, उन्हें उतार देना चाहिए।" पर वहाँ कौन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनता था। मेरी आवाज भी धीमी थी। मैंने भी वह जाब्ता पूरा करने को बोला था। थोड़ी देर में गाड़ी चल दी तो मैंने जंजीर खींच दी। सुखदेव ने मदद की, मुझसे तो जंजीर ठीक तरह खिचती नहीं थी, उसने ठीक तरह खींच दी। मैंने कहा "खींचने का नाम मेरा ही होगा।" गाड़ी खड़ी हो गई। डिब्बे के लोग कहने लगे कि यह क्या किया ? तुम्हें 50 रुपये जुर्माना होगा।

दूसरे कहने लगे "यह भी तो कुछ जानते हैं, जानबूझ कर जंजीर खींची है।" इतने में एक यूरेपियन सा गाड़ी का ड्राईवर अंग्रेजी में गालियाँ देता हुआ आया और हमारी गाड़ी के डिब्बे की जंजीर ठीक करके बड़बड़ाता हुआ चला गया। मैंने फिर एक बार खिड़की से मुँह बाहर निकाल कर कहा, 'ऐसे काम नहीं चलेगा, गाड़ी चलेगी तो मैं फिर जंजीर खींचूंगा, गाड़ी में भीड़ कम होनी चाहिये।" पर उस ड्राइवर ने फिर गाड़ी चला दी। मैंने फिर जंजीर खींच दी। गाड़ी घिस-घिस करती हुई थोड़ा सा चलकर फिर खड़ी हो गई। तब रेलवे वालों ने मेरी तरफ ध्यान दिया। डिब्बे में आकर पूछा कि किसने जंजीर खींची है ? मैंने कहा "मैंने खींची है और तब तक खींचता रहूँगा जब तक इस डिब्बे के मुसाफिर कम नहीं कर दिए जाते हैं।" एक रेलवे के सज्जन दीखने वाले व्यक्ति ने मुझे कहा कि "आइये, हमारे अफसर साहिब जो पास के डिब्बे में बैठे हैं, वह आपको बुलाते हैं।" मैं उसके साथ उन अफसर के पास गया जो पास के ऊपर क्लास के डिब्बे में बैठे थे। उन्होंने मुझे पास बिठाया और पूछा कि "आपने जंजीर क्यों खींची है, यह बात आप मुझे लिखकर देंगे ?" मैंने 'हाँ' में उत्तर दिया और कागज और कलम देने पर मैंने उसपर लिख दिया कि मैंने जंजीर इसलिये खींची है कि गाड़ी में बेहद भीड़ है, सांस लेना मुश्किल हो रहा है—इत्यादि। तो उस अफसर ने मुझे कहा कि अब तो आप इस डिब्बे में हैं, यहाँ तो कोई भीड़ नहीं है। अब आप यहीं मेरे पास बैठिए। मैं सुखदेव को अपने तीसरे दर्जे के डिब्बे में सामान के साथ छोड़कर यहाँ आया था। सो मैंने सुखदेव को कहला भेजा कि "मैं ठीक बैठा हूँ, तुम फिकर मत करना।"

अब जंजीर खींचने का कोई कारण मे मेरे पास नहीं था। गाड़ी चलने लगी। लंढौरा स्टेशन भी आया और चला गया।

जब लक्सर स्टेशन आया तो उन अफसर साहिब ने मुझे तथा मेरे लिखे उस कागज को लक्सर के स्टेशन मास्टर के हवाले कर दिया। लक्सर के स्टेशन मास्टर ने भी मुझसे कुछ पूछताछ की। फिर बोला "He seems to be a well known person, he need not be detained" अर्थात् "यह कोई प्रसिद्ध व्यक्ति प्रतीत होते हैं, इन्हें रोक रखने की जरूरत नहीं है।" यह कह कर उसने मुझे कहा कि आप बेशक हरिद्वार जाइये, आप पर केस चलेगा, आपने अपना पता-वता सब लिख ही दिया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मैं फिर अपने डिब्बे में आ गया तो साथियों ने सन्तोष प्रगट किया। जो बातें लक्सर के स्टेशन मास्टर ने कीं, वे भी मैंने उन्हें सुनाईं। तब मैंने उनसे पूछना चाहा कि मुझपर मुकदमा चलेगा तो आप में से कौन-कौन गवाही देंगे कि गाड़ी में सचमुच बहुत भीड़ थी। तो कई ने कहा कि हम देंगे। कई ने अपने टिकट दिखाये और कहा कि इनके नम्बर आप नोट कर लीजिये। मैंने 10, 12 टिकटों के नम्बर नोट कर लिये और यह भी कि वे टिकट कहाँ से कहाँ तक के हैं। एक-दो उत्साही भाईयों के नाम व पते भी लिख लिये। इतने में खड़े-खड़े बातें करते-करते हरिद्वार स्टेशन आ गया। तब मैंने लोगों से कहा कि आपने जहाँ इतना कष्ट किया है, जरा और ठहर जाइये, अभी उतरिये नहीं। और मैं उतरकर हरिद्वार के स्टेशन मास्टर को बुलाने चला गया। वह था नहीं, तो जो असिस्टैण्ट स्टेशन मास्टर था उसे बुला लाया कि जरा मेरे डिब्बे पर चलिए। जब वह आ गया तो मैंने मुसाफिरों से कहा कि अब आप बेशक उतरिए। और जब वह उतरने लगे तो मैंने असिस्टैण्ट स्टेशन मास्टर से कहा कि आप कृपया गिनते जाइये कि डिब्बे में से कितने लोग उतरते हैं। इतने में हमारी गाड़ी का गार्ड हमारे डिब्बे के पास आ गया और उसने असिस्टैण्ट स्टेशन मास्टर को कहा "आप क्या करते हैं ? आप जानते नहीं कि इनपर तो मुकदमा चलना है।" तो वह असिस्टैण्ट स्टेशन मास्टर लौट गया। 5–6 व्यक्ति ही गिने गये थे। अस्तु।

मजा यह हुआ कि अगले रोज के अम्बाला के 'Tribune' अखबार में मोटे अक्षरों में यह खबर किसी ने छपवा दी। मुझे किसी ने 'ट्रिब्यून' अखबार दिखाया तो मैंने भी यह खबर देखी।

मैंने कई महीनों तक वे टिकटों के नम्बर आदि सम्भाले रखे। पीछे देखा कि सरकार मुकदमा चलाने को तैयार नहीं है। बाबू मेलाराम जी को श्रम करने की जरूरत नहीं हुई।

उपर्युक्त घटना के कुछ दिनों बाद की बात है कि मैं लक्सर से हरिद्वार के लिए गाड़ी में बैठा। शायद लोकल गाड़ी थी। मैंने देखा कि प्लेटफार्म की तरफ के तो उस गाड़ी के सब दरवाजे खुले थे पर दूसरी तरफ के बन्द थे। और मुसाफिर बैठ रहे थे, मैं भी बैठ गया। पीछे ख्याल आया कि मैंने तो ज्वालापुर उतरना है (वहीं से हमारा स्थान पास पड़ता था) और उस तरफ के दरवाजे पर चाबी लगी है। और डिब्बों में जाकर भी मैंने देखा कि सारी गाड़ी में उस तरफ के दरवाजे बन्द थे, चाबी लगी थी। तो मैंने गार्ड साहब से कहा कि मैंने ज्वालापुर उतरना है, पर उस तरफ चाबी लगी हैं, कृपया चाबी खोल दीजिए। उसने कहा कि मैं ज्वालापुर में ही खोल दूंगा। गाड़ी चली। कुछ देर में ज्वालापुर स्टेशन भी आ गया। मैं गार्ड साहब के आने की प्रतीक्षा में था। कुछ लोग फांदकर तथा कुछ दूसरी ओर उतर रहे थे। इतने में ज्वालापुर के स्टेशन मास्टर (जो मेरे परिचित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे) ने मुझे देख लिया और और बोले, "आचार्य जी, आप उस तरफ से उतर जाइये, गाड़ी चलने वाली है।" मैंने कहा, "उधर तो प्लेट फार्म नहीं है और गार्ड साहब ने लक्सर में मुझे कहा था कि मैं ज्वालापुर स्टेशन पर चाबी खोल दूंगा", मैं यह कह ही रहा था और एक सामान ले जाने वाला मेरे सामान को पकड़ ही रहा था कि गाड़ी चल दी। तो मैंने जंजीर खींच दी। गाड़ी खिसकती हुई कुछ दूर जाकर (प्लेट फार्म अभी पार नहीं हुआ था) रुकी। स्टेशन मास्टर साहिब हँसते हुए मेरे डिब्बे के सामने आ खड़े हुए। उधर गार्ड साहब भी मुर्झाये चेहरे से आये और हमारे दरवाजे को चाबी से खोल दिया। तो मैं उतरा। मैंने अपना सामान इतने में उस भारवाहक को अन्दर से ही पकड़ा दिया था। स्टेशन मास्टर साहिब को नमस्ते की।

इसी तरह एक बार मैं रुड़की से हरिद्वार आ रहा था। हम लोग कांग्रेस के कार्यकर्त्ता सामान तो कुछ रखते नहीं थे, झोला लिये गाड़ी में चढ़ जाते थे और प्रायः खड़े हो जाते थे। गाड़ी में बैठा एक मुसाफिर मुझे खड़ा देखकर कहने लगा कि ऐसे ही लोग होते हैं जो बिना टिकट गाड़ी में बैठते या खड़े हो जाते हैं, पर मौका पाकर मुसाफिरों का सामान उठा ले जाते हैं। मैंने उसे कुछ देर बाद केवल अपना टिकट दिखा दिया और कहा कि मैं बे-टिकट नहीं हूँ। वह शर्मिन्दा सा हुआ। तब मुझे पंजाब के एक प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता की बात याद आई। वह खद्दर पहिने, मामूली पहरावे वाला, जानबूझकर तीसरे दर्जे के डिब्बे में घुसने का यत्न कर रहा था, यद्यपि उसके पास दूसरे दर्जे का टिकट था। वह तीसरे दर्जे में लोगों को कहता था कि जरा मुझे बैठ जाने दो, तो लोग प्रायः उसे दुतकारते थे कि यहाँ जगह नहीं है। तो अन्त में वह उन्हें अपना सैकण्ड क्लास का टिकट दिखाकर शर्मिन्दा करता था कि मैं तो जरा देखता था कि आप तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के साथ कैसा सलूक करते हैं। और पीछे सैकण्ड-क्लास में जाकर अपने स्थान पर बैठ जाता था।

पर यहाँ जो बात कहनी थी वह यह कि लक्सर स्टेशन पर पहुँचने पर हमारे पं० रामेश्वर जी स्नातक टट्टी गये तो वहाँ पानी नहीं था। उन्हें पेचिश हो रही थी, बार-बार टट्टी जाना होता था, अतः टट्टी में पानी का अभाव बहुत अखरा। मैंने रामेश्वर जी को कहा, "कहो तो टट्टी में पानी भरवायें।" उन्होंने कहा कि भरवाईये। तो उतरकर स्टेशन पर गया। एक टिकट कलेक्टर को ही कहा "हमारे डिब्बे की टट्टी में पानी नहीं है।" उसने पूछा "किस क्लास का डिब्बा है?" मैंने कहा तीसरे दर्जे का। उसने कहा, "पानी नहीं है वैसे ही काम चलाइये।" मैंने कहा "वैसे क्यों? हम तो पानी भरवायेंगे, तीसरा है, तो क्या हुआ?" "यदि इतनी हिम्मत है तो स्टेशन मास्टर से मिलिए, और कोई यह कार्य नहीं करा सकता है", उसने कहा। तो मैं स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँचा। मैंने सब बात सुनाई तो उसने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, "इस स्टेशन पर तो पानी डालने का प्रबन्ध नहीं है। यदि आप चाहें ही तो लकड़ी की सीढ़ी लगाकर बाल्टी से पानी डाला जा सकता है।" मैंने कहा, "बहुत जरूरी तो है ही, हमारे साथ एक बीमार है जिसे बार-बार टट्टी जाना होता है", तो उसने एक आदमी को बुलाया और उसे आदेश दिया। एक नीले कपड़े वाला बूढ़ा लकड़ी की सीढ़ी और पानी की बाल्टी लिये हुए मेरे साथ कर दिया गया। उस बूढ़े ने मुझसे पूछा "फर्स्ट क्लास में डलवाना है या सैकण्ड क्लास में ?' मैंने कहा, "थर्ड क्लास का डिब्बा है, वहीं मैं तुम्हें ले चलूंगा।" तो वह गाली देता हुआ बोला—"अरे, तीसरे दर्जे में तो हमने कभी पानी नहीं भरा।" मैंने कहा, "हमारा तीसरा दर्जा भी पहिले दर्जे के बराबर है।" जब मैं उस पानी वाले को ले जा रहा था तो गार्ड रास्ते में मिला और सीटी देने लगा था गाड़ी चलाने को। मैंने उसे कहा कि "देखिए, हमारे डिब्बे की टट्टी में पानी भरा जा रहा है, जब तक यह भरा नहीं जायेगा, तब तक हम गाड़ी चलने नहीं देंगे।" उसने कहा, "जल्दी कीजिए, बहुत जल्दी।" वह पानी वाला तो दौड़ा और तीसरे दर्जे के ऊपर सीढ़ी से चढ़कर उसने पानी भरा टट्टी में, और तब गाड़ी चली।

इस बार जंजीर खींचने की जरूरत नहीं पड़ी। खींचने की धमकी ने ही काम कर दिया। ऐसे ही एक बार मुजफ्फरनगर स्टेशन पर पानी डलवाया था।

ये तीनों घटनायें उन दिनों की अवस्था तथा मेरे स्वभाव को बतलाने वाली हैं।

भगतसिंह तथा अन्य ऐसे देशभक्त

देशभक्त भगतसिंह जब मुझे प्रथम बार मिले तो मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि मैं तो अहिंसावादी था। उस समय मैं गंगा के उस पार गुरुकुल कांगड़ी में आचार्य का काम कर रहा था। यह 1928 की शीतकाल की बात है। बाढ़ के कारण उस पार का गुरुकुल ध्वस्त हो चुका था और मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी वाले बंगले के एक बड़े कमरे में रहता था। एक सुन्दर नवयुवक पगड़ी पहने हुए मुझसे मिलने आया। उसने एकान्त में मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की। बातचीत प्रारम्भ करते ही उसने बताया, "मैं भगतसिंह हूँ।" मैंने उसकी तरफ ध्यान से देखा। उस पहली भेंट से ही मुझे उस व्यक्ति के प्रति विशेष प्रेम हो गया। बातचीत के अन्त में मैंने उससे पूछा, "तुम मुझसे निश्शंक होकर मिलने कैसे आ गए ? यदि मैं तुम्हें पकड़वा दूँ ? इसका तुमने कुछ ख्याल नहीं किया ?"

उसका सहजभाव से उत्तर था, "नहीं, मैं जानता हूँ आप पकड़ायेंगे नहीं।" सांडर्स को मारने का कार्य लाहौर में तब हो चुका था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके बाद कई बार वे मुझे गुरुकुल में ही मिले। गुरुकुल में और किसी को पता नहीं होता था कि यह मुझसे मिलने वाला कौन है।

एक बार वे मुझे हरिद्वार स्टेशन पर ही मिल गये। मैं कहीं बाहर से आया था। स्टेशन पर उतरते ही वे प्लेटफार्म पर दीख गये। उनके हाथ में एक पुस्तक थी। मैंने वह पुस्तक देखनी चाही। उन्होंने मेरे हाथ में दे दी। वह गुटका साईज 'फ्रेंच रिवोल्यूशन' नामक पुस्तक थी। वह पुस्तक उनके पास उनकी ऊपर की जेब में इसके बाद भी मैंने एक दो बार देखी। मैंने कहीं पढ़ा था कि भगत सिंह को पढ़ने का शौक था। मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें एक खास प्रकार की पुस्तकों के अध्ययन में रुचि थी।

स्टेशन से उतरकर जब मैं अपना बिस्तरा उठाकर गुरुकुल चलने लगा तो उन्होंने मुझे बिस्तरा उठाने नहीं दिया, न ही कुली करने दिया। मेरा बिस्तरा स्वयं उठाकर 5–7 मील गुरुकुल तक मेरे साथ ले गये। मैंने बीच में भी उन । बिस्तरा लेना चाहा,—कहा 'आप थक गये होंगे।' उनका उत्तर था, इसमें क्या बोझ है, एक सैनिक राईफल बिस्तर आदि (बहुत सी चीजें गिनाकर) इतना बोझ उठाकर मार्च करता है।"

एक दो बार उन्होंने मुझसे कहा कि आपकी योग विद्या मेरे तो किसी काम की है नहीं, पर योग की एक चीज मैं आपसे जरूर सीखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप मुझे कोई ऐसा अभ्यास बता दीजिए जिससे कि अंग्रेज मेरे अन्दर की कुछ भी बात मुझसे न निकाल सकें, बेहोश करने पर, हिप्नोटाईज करने पर भी मेरे मन की बात बाहर न निकल सके। योग विद्या की ऐसी चीज मुझे अवश्य सिखा दीजिए।

पहली बार या दूसरी बार मिलने पर उनकी इच्छा से उन्हें मैंने तीन चार ऐसे व्यक्तियों के नाम बताये जो कि उनके कार्य में—हिंसक क्रान्तिकारी कार्य में सहयोगी हो सकते थे। मैंने उन्हें कहा था कि मैं तो अब देश की स्वाधीनता के लिए आपके मार्ग का पथिक नहीं हूँ—उस मार्ग में मुझे विश्वास नहीं, पर कुछ ऐसे व्यक्ति मैं जानता हूँ जिन्हें हिंसा आतंकवाद द्वारा ही कार्य करने में श्रद्धा है, उनसे आप बेशक मिलें। पर मुझे खेद है और आश्चर्य है कि उनमें से किसी ने भी भगत सिंह का साथी होना नहीं माना, न ही स्वीकार किया। यह बात भगतसिंह जी से हुई अगली मुलाकातों में पता लगी। वैसे ये चारों व्यक्ति देश की स्वाधीनता के लिए हिंसा की बहुत बात करते थे, अहिंसावाद की बहुत मजाक भी करते थे और अपने मार्ग में श्रद्धा रखने वाले भी प्रतीत होते थे। इनमें एक सन्यासी भी थे। उन्होंने तो भगत सिंह को यही कहा "मैं तो काषाय वस्त्र पहनता हूँ, मुझे हिंसा कार्य शोभा नहीं देता।" इसी तरह दूसरों ने भी अपने-अपने कारण बता दिए जिससे कि वे भगत सिंह के सहयोगी नहीं बन सकते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगतसिंह के प्रति मेरे मन में बड़ा प्रेम था—इतना प्रेम था कि मैं कह नहीं सकता। मैं उन्हें अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्धियों से भी अधिक निकटस्थ देखता था। प्रेम का कारण यह था कि उनकी मेरे मन पर स्पष्ट यह छाप थी कि वह बड़ा निर्मल, निष्कपट, सच्चा खरा व्यक्ति है। मुझे प्रसिद्ध साहित्यिक उपमाएं देने का जरा भी अभ्यास नहीं है पर भगत सिंह के प्रति अन्दर से यही उद्गार निकलता है कि वह हीरा था, स्फटित की तरह शुद्ध भक्ति वाला था। उसकी देश के प्रति भक्ति, लगन बिल्कुल खरी, खोट रहित सर्वथा निर्मल थी। उन्हें देश की सेवा के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए था और कुछ भी नहीं चाहिए था। उनकी इस पवित्र इच्छा में और कुछ मिलावट नहीं थी। कई अन्य क्रान्तिकारियों से भी परिचय रहा है, भगतसिंह के निकटस्थ एक दो साथियों को भी जानता हूँ, परन्तु उनमें कोई सच्चाई में भगतसिंह के पास भी नहीं पहुँचते थे।

जब भगतसिंह को फांसी की सजा दे ही दी गई (बीच में काफी आशा हो गई थी कि उनकी फांसी की सजा रुक जायेगी) तब मैं मानो मन से उनके पास था। उनको अपने बिल्कुल निकट अनुभव कर रहा था। मैंने कई बार बातचीत में अपने मित्रों से कहा है कि भगतसिंह का मन प्राण इतना देशभक्ति में सच्चाई के साथ ओतप्रोत था और इतना दृढ़ था कि शरीर छोड़ने के बाद भी वह निःसंशय देशसेवा का कार्य मानसिक प्राणिक प्रेरणा और भावनाओं के द्वारा करते रहे हैं, कि वे प्राणलोक में चिरकाल तक रहे हैं।

उन्हें मैंने 'भक्त' कहा है। देशभक्त कहना उन्हें छोटा करना लगता है। वे सचमुच सच्चे भक्त थे, चाहे उनके लिए इस जीवन में 'भारत देश' ही भक्ति का विषय था, आराध्य देव था, उनका परमेश्वर था, उसी देव के वे उच्च कोटि के भक्त थे।

यह लिख चुका हूँ कि कई अन्य क्रान्तिकारियों से मेरा परिचय रहा है। सो अब उस पर आता हूँ। गांधी जी का मार्ग अपनाने द्वारा मैं यद्यपि अहिंसक देश सेवक हो गया था तो भी दूसरी प्रकार के देशभक्तों से प्रेम-सम्बन्ध बिल्कुल कम नहीं हो सकता था। इसी कारण काकोरी केस से सम्बन्धित लोगों ने जब मुझे सूचना भिजवाई तो मैं उनके कार्य से कानपुर गया, वहाँ गणेश शंकर जी 'विद्यार्थी' से मिला। काकोरी षड़यन्त्र केस में जिस व्यक्ति की गवाही बहुत महत्त्व की थी, वह था डा० चन्द्रपाल। वह मेरे पिताजी के एक मित्र का पुत्र था और हम दोनों वह डा० चन्द्रपाल (जिसका गुरुकुल से पहले नाम चण्डीप्रसाद था) और मैं गुरुकुल कांगड़ी में इकट्ठे ही प्रविष्ट हुए थे। चन्द्रपाल वहाँ नहीं रह सका, वह बाहर आकर रेलवे का डाक्टर बन गया। सो इस चन्द्रपाल को मैं मिला। मैंने उससे पूछा, "तू कभी झूठ बोलता है कि नहीं?" उसने कहा "मैं तो रोज झूठ बोलता हूँ" तो मैंने कहा "इन देशभक्तों के केस में तू झूठ बोल दे तो क्या हर्ज है?" इस तरह मैंने उसे समझाया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह गांधी सेवाश्रम में ऐसे ही दो देशभक्त आये थे। उन्हें मैंने मुजफ्फरनगर के मा० विश्वम्भर सहाय (जो कि मेरे मित्र थे) के स्वतन्त्र प्रेस में लगवा दिया था। पीछे उन्हीं के सम्बन्ध में मुझे स्यालकोट जाना पड़ा था। तब मैंने उनके वकील को कहा था कि मुझसे इनकी प्राणरक्षा के लिए कुछ कहाना हो तो कहा लीजिए।

एक प्रेमकुमार थे जिनको मैंने चरथावल अपने पिताजी के पास भेज दिया था और वे वहाँ काफी समय घर की तरह रहे। उसके कारण मेरे पिताजी पर भी सहारनपुर में मुकदमा चला था, जिसमें ठाकुर फूलसिंह ने 1 सितम्बर 1933 में पैरवी की थी।

भगत सिंह के साथी बी० के० दत्त भी मुझे गुरुकुल में मिलते थे, वहाँ रहे भी थे।

1938 से अशोक जी से भी सम्बन्ध हुआ। उनके पुत्र सुरेन्द्र जी को मैंने गुरुकुल में निशुल्क दाखिल कर लिया। फिर अपने पास भी रखा। उसे एक बार पाण्डिचेरी भी ले गया था। अन्त में उसे अशोक जी को ही सौंप दिया।

गांधी जी की प्रेरणाएं

इस प्रकरण में जो बातें मैं लिख रहा हूँ, उनसे पता लगेगा कि मेरा और गांधी जी का (जिन्हें मैं 'बापू' जी ही पुकारता था पर लेख में उनकी ही इच्छा से गांधी जी यही लिखता हूँ) का कितना निकट सम्बन्ध था। पर यह सब उनकी प्रेरणाओं की बात पर पहुँचने के लिए ही है।

गांधी सेवासंघ का मैं प्रारम्भ से—अप्रैल 1932—आजीवन सदस्य था। जेल से लौटने पर मैंने सीधा देशसेवा का कार्य चुना और हरिद्वार में गांधी-सेवाश्रम की स्थापना की। पहले गांधी सेवासंघ के अध्यक्ष जमनालाल बजाज थे। पीछे से सन् 36 से जब इसका नया संगठन किया गया तथा नया विधान बनाया गया तब से किशोरलाल भाई इसके अध्यक्ष हो गये थे। तब से इसकी कार्यकारिणी का भी अन्त तक मैं सदस्य रहा। युक्त प्रान्त तथा पंजाब-दो प्रान्तों-का मैं कार्यकारिणी में प्रतिनिधित्व करता था। युक्त प्रान्त या पंजाब का कोई व्यक्ति गांधी-सेवासंघ का सदस्य बनना चाहे तो उसके लिए मेरी सहमति आवश्यकीय थी। उन दिनों कई बड़े आदमी भी मुझसे संघ की सदस्यता पाने के लिए मिलना चाहा करते थे। और यह संघ की कार्यकारिणी की सदस्यता मेरी अन्त तक बनी रही जब तक कि सन् 1940 में पंजाब के डेलांग सम्मेलन में गांधी जी ने संघ को ही न तोड़ दिया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब भी राजनीति में भाग न लेने वाले संघ के केवल नौ सदस्य सारे भारतवर्ष में रह गये थे। उन नौ में भी मैं था। सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू आदि तब सन् 40 के बाद गांधी-सेवा-संघ के सदस्य नहीं रहे थे। सारे देश में हम केवल नौ व्यक्ति इसके सदस्य थे।

गांधी जी ने अपने 9-5-34 के पत्र में (जिसका उल्लेख मैं पीछे कर चुका हूँ) जेल जाने की जल्दी न करने को कहते हुए मुझे निम्न वाक्य लिखा—

"और कारणों को छोड़कर मेरे में जो आंदोलन आजकल चल रहा है, उस कारण ही तुम्हारे जेल जाने में जल्दी नहीं करना। मेरे निश्चय के लिए इन्तजारी में रहना।" इन्हीं दिनों उन्होंने सत्याग्रह को अपने तक सीमित रखने का निश्चय किया था जो कि वैयक्तिक सत्याग्रह का प्रारम्भ था और सामूहिक सत्याग्रह तो पहले ही स्थगित कर दिया गया था। अतएव जब हमने अपने 'अलंकार' मासिक पत्र के जुलाई अंक के लिए गांधी जी से सन्देश मांगा तो उन्होंने 20-4-34 को हमें निम्न सन्देश दिया था—

"सत्याग्रह के बारे में जो मैंने निश्चय किया है वह पूर्णतः धार्मिक है, इसे समझने की सब कोशिश करें।"

इसी वर्ष जुलाई में गांधी जी ने लिखा—

"विशुद्ध सत्याग्रह का दोनों—आतंकवादी और सरकार—के हृदयों पर प्रभाव पड़ना चाहिए। इस सिद्धांत की सत्यता की जांच करने के लिए यह आवश्यक है कि सत्याग्रह एक समय पर केवल एक ही सुपात्र व्यक्ति तक सीमित रखा जाये। अभी तक इसकी अग्नि परीक्षा की ही नहीं गई है। अब परीक्षा की जानी चाहिये।"

असल में यही उस आंदोलन का स्वरूप था जो कि गांधी जी के मन में चल रहा था और इसी पर मेरे जेल के साथी 'नवीन' जी ने "गौरीशंकर से भी ऊंचा" शीर्षक से एक लेख लिखा था जिसे मैंने 'अलंकार' में उद्धृत किया था। 'नवीन' जी के इस लेख में जिस बात की आशंका ध्वनित होती है वह तब तो नहीं हुई किन्तु पीछे 1942 में मूर्तरूप में आ ही गई अर्थात् गांधी जी ने 3-7-33 के पत्र में जो मुझे लिखा था कि "किसी रोज यह (प्रायोपवेशन) भी करना पड़े" वह समय 1942 में आ गया लगा और गांधी जी प्रायोपवेशन करने के लिए गम्भीरतया सोच रहे थे। उस समय गांधी सेवासंघ के नौ सदस्यों को (अर्थात् हम नौ लोगों को) तार देकर गांधी-सेवासंघ के मन्त्री ने सलाह के लिए वर्धा बुलाया था। मैं भी तार पाकर 29 जून को वर्धा पहुँचा था। अच्छा हुआ, वह प्रायोपवेशन टल गया।

एक बार मुझे वर्धा लगभग एक महीना ठहरना पड़ा (5 अक्तूबर से 30 अक्तूबर 1933 तक)। संभवतः लगातार यात्रा में रहने से या किसी भी कारण वर्धा पहुँचने पर मैं मलेरिया ज्वर से आक्रान्त हो गया, अतः अजमेर की दयानन्द शताब्दि पर नहीं पहुँच सका। उन दिनों स्वयं गांधी जी ने मेरी चिकित्सा की।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हीं के उपचार में इतने दिन रहा, उन दिनों गांधी जी से भौतिक निकटता भी मिली।

इसी वर्ष (1933 में) 14 दिसम्बर को जब गांधी जी हरिजन सम्बन्धी दौरे पर देहली पधारे, तो देहली वालों ने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का कार्यक्रम जुदा नहीं रखा, देहली में ही इन्द्रप्रथ वालों को आकर थैली भेंट करने का कार्यक्रम बनाया। इसकी शिकायत 14 दिसम्बर की सभा में ही मैंने गांधी जी को मौखिक रूप से, अभिनन्दन पत्र देने की जगह यह सब कहते हुए की तो बिरला जी की कार पर गांधी जी ने तुरन्त मुझे इन्द्रप्रस्थ भेजा और गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के स्टेशन पर इन्द्रप्रस्थ के ब्रह्मचारियों ने गांधी जी को थैली आदि भेंट की।

17 अक्तूबर 1930 से मैंने प्रतिदिन 160 तार कातने का निश्चय बना लिया था और भाई सत्यन जी के जमाने में तो गुरुकुल के आचार्यत्व का सब भार उठाते हुए भी मैं दो वर्ष तक अपने काते सूत के ही सब वस्त्र पहनता रहा।

'गांधी जी की विचारधारा में मैं प्रवीण हो गया हूँ' इसकी परख के लिए मैं ऐसा किया करता था कि उनके 'हरिजन' में जो उनसे किये गये प्रश्नों के उत्तर छपते थे, उन्हें पढ़ने से पहले उनके उत्तर अपने मन में देता था तो प्रायः देखता था कि मेरे वही उत्तर होते थे जो गांधी जी ने दिये होते थे। इस बात की पुष्टि एक बार गांधी जी द्वारा भी हो गई, क्योंकि उन्होंने एक व्यक्ति को कहा कि ये देवशर्मा जी जो उत्तर देवें, उसे मेरा ही उत्तर समझना। यह तब हुआ जबकि एक व्यक्ति कई दिनों से गांधी जी से मिलने के लिए सेवाग्राम रुका हुआ था, पर उसे मिलना नहीं मिलता था। उधर से मैं आया। वह व्यक्ति मुझसे भी मिला तो मैंने अपने साथ ले जाकर गांधी जी के दर्शन करा दिये, इस शर्त के साथ कि गांधी जी से बात कुछ नहीं करना, केवल दर्शन करना। उसे गांधी जी ने मेरे सामने ही कहा, "तुम्हें कुछ पूछना हो तो इन देवशर्मा जी से पूछ लो और इसे मेरा ही उत्तर समझना।"

सरदार पटेल तो हमारी गांधी-सेवा-संघ की कार्यकारिणी में थे। उनसे अनेक बार मिलना होता था। उन्हें मैं एक बार गुरुकुल में तथा गांधी-सेवाश्रम भी ले गया था। पर एक बार गांधी-सेवा-संघ का सम्मेलन मेरे निमन्त्रण पर रुड़की तहसील में लगभग निश्चित हो चुका था। तब सरदार पटेल ने मुझे कहा कि इस बार सम्मेलन गुजरात में होने दीजिये, अगली बार रुड़की तहसील में कर लेना। वे हास्य करने वाले थे ही—उनकी हास्य की बातें तो कई याद आ रही हैं पर उन्हें सुनाने का यह अवसर नहीं है—सो वह कहने लगे कि "बापू का अपना तो 'बकरी-सेवासंघ' चलता है, हमें गोसेवा-संघ की बात कहते हैं कि सम्मेलन में गाय के दूध का प्रबन्ध करना होगा। गुजरात में तो भैंस होती हैं, हम ऐसा करें कि भैंसों को कलई पोत दें तो वे गायें हो जायेंगी।" इत्यादि मखौल करते रहे। मैंने कहा "हम तो रुड़की तहसील में सब को गाय का दूध पिलायेंगे।" अन्त में मैंने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान लिया कि सम्मेलन इस बार गुजरात में हो जाये, हम पीछे कर लेवेंगे । पर आगे सरकार से लड़ाई चलने के कारण —न गुजरात में, न युक्त प्रान्त में---कहीं भी सम्मेलन न हो सका ।

सरदार, राजेन्द्र बाबू आदि से तो मेरा खूब परिचय था पर स्वयं गांधी जी ने मेरा परिचय जवाहरलाल जी से तथा दो बार मदन मोहन मालवीय जी से भी कराया था ।

गांधी जी आदि से इतना निकट का सम्बन्ध होने पर भी मैंने इस परिचय का कुछ लाभ नहीं उठाया, यह देखकर मेरे कई स्नातक साथी कहा करते थे कि आचार्य जी आगे बढ़ना नहीं जानते; नहीं तो वे अब तक वे वर्किंग कमेटी के मेम्बर या किसी राज्य के मुख्यमन्त्री होते । पर असल में ये भाई नहीं जानते कि इस जीवन का उद्देश्य कुछ और है, लाभ उठाना नहीं ।

9 जून 1938 को चरथावल की सब जमीन—पिताजी आदि तीनों भाईयों ने—मेरे नाम कर दी थी जिससे कि मैं उसकी मालगुजारी आदि न देने का सत्याग्रह कर सकूं—अन्तिम हथियार के तौर पर । यह सब गांधी जी से निकटता का फल था—कहना चाहिए ।

1939 में गांधी जी ने जो राजकोट में उपवास किया था और जिसमें वायसराय के कहने से जस्टिस ग्वायर बीच में पड़े थे, उस उपवास के बाद जब गांधी जी देहली में आये तो मेरी गांधी जी से उनके उपवासों के बारे में मार्मिक बात चली । यह बात शायद 17 मार्च की है । मैंने उनसे पूछा कि आपको कैसे पता लगा कि यह उपवास परमेश्वर द्वारा आदिष्ट था, क्या आपको कोई वाणी सुनाई दी ? तो उन्होंने कहा कि मुझे ऐसा ही लगा कि यह परमेश्वर द्वारा आदिष्ट है । वाणी सुनाई देने की बात पर उन्होंने मुझे बताया कि पहले दो बार ऐसा भी हुआ कि मुझे वाणी सुनाई दी है । एक बार तो तब जब कि 1921 में असहयोग का श्रीगणेश किया गया था । तब मुझे कहा गया था कि तुम सबको एक दिन का उपवास कराओ आदि । मुझे आशा नहीं थी कि उसका प्रत्युत्तर (response) ऐसा अच्छा होगा । वह दिन देश भर में बहुत अच्छी तरह मनाया गया । इसी तरह जब मैं 1933 में जेल में था और ब्रिटिश सरकार हरिजनों से खेल रही थी तब मैंने कई रातें बड़ी बेचैनी से काटीं कि क्या करना चाहिए । तब मुझे आवाज आई, "तू उपवास कर ।" मैंने पूछा, "कितने दिनों का ?" उत्तर मिला कि 21 दिन का । तब मेरी सब बेचैनी दूर हो गई और अगले दिन से मैंने उपवास आरम्भ कर दिया ।

और वह गांधी जी का उपवास भी बड़ा प्रभाव कारक हुआ, यह हम सब जानते हैं ।

अत: गांधी जी को जो प्रेरणायें होती थीं, उपवास की या अन्य कार्यों की, उनके विषय में यदि आध्यात्मिक रूप से हम विचार करें तो मुझे कहना होगा कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे सदा 'परमेश्वर से या परमेश्वरी या तदनुकूल किसी शक्ति' द्वारा प्रेरित होती थीं यह कहना कठिन है। उनके अपने कथन के अनुसार दो बार उन्हें वाणी सुनाई दी और उसका उन्होंने अनुसरण किया। उन दोनों बार जो आदेश का अनुसरण या उपवास कार्य उन्होंने किये, वे उनके बहुत सफल हुए। पर वाणी भी सदा निर्भ्रान्त नहीं होती। आध्यात्मिक जगत् से सम्बन्ध रखने वाले बतलाते हैं कि वाणियां भी कई स्थानों से आ सकती हैं। कई बार हमारे विचार 'वाणी' का रूप धारण कर लेते हैं। मैं यहाँ इतना कहना चाहता हूँ कि ठीक-ठीक परमेश्वर की प्रेरणा को प्राप्त कर सकना काफी कठिन है और यह प्रायः पर्याप्त साधना के अनन्तर ही सम्भव होता है। जैसे गांधी जी के राजकोट के उपवास के विषय में मुझे शंका थी कि वह ठीक था या नहीं। उस उपवास के विषय में इतना तो गांधी जी ने भी पीछे माना था कि मुझे वह उपवास जस्टिस ग्वायर के निर्णय पर तोड़ नहीं देना चाहिये था।

सन् बयालीस का आन्दोलन और स्वराज्य-प्राप्ति

मेरे पास आने वाले लोगों का विविध वर्गीकरण रामेश्वर जी स्नातक किया करते थे। (1) एक तो वे थे जो कि योग के लिए मेरे पास आते थे, उन्हें वे 'सांस खींचने वाले' कहा करते थे। (2) दूसरे वे जो गुरुकुल, आर्य समाज व वेद के सम्बन्ध से आते थे। (3) तीसरे वे जो देश की स्वाधीनता, स्वराज्य-प्राप्ति के उद्देश्य से आते थे। वे अपने को इस तीसरे वर्ग में गिनते थे। सन् 42 के आंदोलन में यद्यपि मैंने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया, जिसका कारण मैं नीचे कहूँगा, तो भी मैं स्वाधीनता का सैनिक तो वैसे ही था तथा (यद्यपि जब से गांधी जी ने कांग्रेस छोड़ी—अर्थात् 1934 से—तब से मैं भी कांग्रेस का चार आना सदस्य भी नहीं बना तो भी) पक्का कांग्रेसी माना जाता था और मुझसे इस विषय में सलाह लेने लोग आते ही थे। सन् 42 में ही एक नवयुवक मेरे पास गुरुकुल में आये थे। मुझसे जो कुछ पाना था उसे पाकर आंदोलन में हिस्सा लेने चले गये और सुना है जाते ही गांव की किसी सभा में निधड़क छाती में गोली खाकर दिवंगत हो गये। इसी तरह पहले एक पंजाबी युवक लाहौर से आये थे, मुझसे योग सीखने के इच्छुक थे। मैंने उन्हें कहा था कि योग करने के लिए तो शुद्ध गोघृत प्रतिदिन खाना आवश्यक होगा तथा दूध बादाम की भी कईयों को जरूरत होती है, तो पहले स्वराज्य प्राप्त करो, योग पीछे करना। इसी तरह के अनेक दृष्टान्त सुना सकता हूँ।

परन्तु सन् 1935 में श्री अरविन्दाश्रम जाकर श्री अरविन्द (जो कि स्वयं एक महान क्रान्तिकारी स्वराज्यवादी थे) के सम्पर्क में आया तो मेरा दृष्टिकोण ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल गया। 1935 की फरवरी में प्रथम बार श्री अरविन्द का दर्शन करने पर जो प्रभाव मुझ पर पड़ा उसका कुछ इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है कि मेरी जो स्वराज्य पाने की व्याकुलता थी वह मिट गई। कुछ ऐसा सा लगा "अरे, जिस स्वराज्य के लिए तू इतना व्याकुल होता है, वह तो हुआ रखा है, उससे बहुत बड़ा एक कार्य है, उसके लिए तू तैयार हो।" जैसे अर्जुन को श्रीकृष्ण ने मुंह खोलकर दिखा दिया था था कि भीष्म, द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि सब मरे पड़े हैं 'मयैवेते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'—वैसे मानों श्री अरविन्द के दर्शन के प्रभाव से यह दृढ़ अनुभूति हो गई कि स्वराज्य तो हुआ रखा है। अतः स्वराज्य पाने के लिए जो मैंने 'भूमि-शैया तथा एक बरतन में खाना' आदि व्रत कर रखे थे, वे सब निस्सार लगने लगे। 1934 तक जो स्वराज्य के लिए आत्म बलिदान करने की आतुरता रहती थी, जेल जाने का जो एक हुमाया सा लगा रहता था, वह सब झड़ गया।

कानपुर जेल में छूटने से कुछ दिन पहले मुझे एक 'वाणी' सी हुई थी "अब तूने जेल की रोटी नहीं खानी है।" तब तो मैंने उसका मतलब यह समझा था कि मैं जेल से छूटने वाला हूँ। पर अब समझ में आता है कि उसका अर्थ यह भी था कि अब मुझे कभी जेल नहीं जाना होगा, क्योंकि सन् 34 तक जेल जाने की मेरी प्रवृत्ति बहुत तीव्र होते हुए भी मैं कभी भी जेल नहीं जा सका। 32-33 में गुरुकुल में रहा। 34 में गांधी जी ने अपने 9-5-34 के पत्र में मुझे रोका। फिर प्रवृत्ति ही हट गई।

स्वराज्य की निश्चयता कोई लोगों से सुनकर बनी हो, यह भी नहीं, वह तो आन्तरिक एक धारणा सी (न जाने कैसे) बन गई थी। वैसे यह ठीक है कि द्वितीय विश्वयुद्ध की जब 1945 में समाप्ति हुई तो आश्रम की माता जी ने कईयों से कहा भी कि अब भारत की स्वाधीनता होने वाली है (श्री अरविन्द तो 1904 में ही कह चुके थे कि विश्वव्यापी उथल-पुथलों के बाद भारत स्वाधीन होगा)। हैदराबाद के श्रीयुत रेने ने जब माता जी को कहा कि "आपने मुझे कहा था कि युद्ध समाप्त होने पर मैं तुम्हें यूरोप भेजूंगी, तो युद्ध तो अब समाप्त हो गया, मैं तैयार हूँ।" तब माता जी ने कहा, "अब शीघ्र ही भारत स्वाधीन होने वाला है, उसके बाद यूरोप जाना।" यद्यपि इंग्लैंड के बादशाह के मुख से भी युद्ध के एकदम बाद भारत को स्वाधीन किये जाने की बात कहलाई गई थी तो भी हमें उस पर विश्वास नहीं होता था। इतना ही नहीं, युद्ध समाप्त होने पर श्री अरविन्दाश्रम के मेरे कमरे में एक साधक ने दूसरे साथी को यहाँ तक कहा कि अगले 15 अगस्त को या उससे अगले 15 अगस्त को भारत स्वाधीन हो जायेगा, पर मैंने इस पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। हरिकृष्ण (जो कि 14वीं श्रेणी का ब्रह्मचारी उन दिनों दर्शनार्थ आया हुआ था) सुनाता है कि उसने तो गुरुकुल जाकर वहाँ के विद्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्थियों को यह बात सुनाई कि एक दो वर्ष में भारत स्वाधीन होने वाला है, यद्यपि विद्यार्थियों ने कहा "हम तो और भी देर तक गुलाम रहने को तैयार हैं पर श्री अरविन्द की भविष्यत्वाणी झूठी हो जाये, यह चाहते हैं।" अर्थात् 15 अगस्त को भारत को स्वाधीन होने तक की बात दो वर्ष पहले से पाण्डिचेरी आश्रम में कही सुनी जा चुकी थी। (और यह बात भी ठीक है कि अगस्त 45 में युद्ध समाप्त हुआ और अगस्त 1946 के 15 अगस्त को ही वर्धा में कांग्रेस को मिनिस्ट्री बनाने के लिए सरकारी पत्र मिला, यद्यपि जिन्ना से बातचीत करने में देर लगाकर कांग्रेस ने यह मिनिस्ट्री 2 सितम्बर को सँभाली और उससे अगले वर्ष 1947 के 15 अगस्त को भारत स्वाधीन हो ही गया।

पर मेरे अन्दर भारत के स्वाधीन होने की निश्चयता के साथ कोई सुनी हुई तारीख या भविष्यत्वाणी जुड़ी नहीं थी, यह आंतरिक थी और 1935 से ही थी। यह इतनी दृढ़ थी कि मैंने 1942 के आन्दोलन में किसी किस्म का भाग नहीं लिया, न ही वैयक्तिक सत्याग्रह में भाग लिया था। इतना ही नहीं किन्तु मेरे परिचित जो कोई भी भाई उन दिनों सत्याग्रह में भाग ले रहे थे और मुझसे सलाह लेते थे तो उन्हें भी यही कहता था "तुम बेशक जेल जाओ, पर इस विश्वयुद्ध में हिटलर की हार की प्रार्थना करते रहना।" उन दिनों कांग्रेस के लोग तो युद्ध में अंग्रेजों की हार चाहते थे, क्योंकि वे ही हमें भारत के दुश्मन दिखाई देते थे, अतः मुझे यह कहना पड़ता था। अस्तु, इस विषय में तो अगले खण्ड (पाँचवें) में चर्चा करूंगा। यहाँ इतना कहना है कि मैं अपने साथियों को कहता था कि 'स्वराज्य तो मिलना ही है; तुम अपना कैरियर (career) बनाने को बेशक जेल जाओ, आन्दोलन में भाग लो।' अपने सुरेन्द्रनाथ जौहर को तो मैंने एक पत्र में लिखा था कि आप को अब जेल जाने की जरूरत नहीं है, स्वराज्य मैं आपको वैसे ही दिला दूंगा। उनकी कम्पनी के ब्रह्मानन्द जी को जब मैंने कहा कि इस युद्ध के बाद स्वराज्य तो मिल ही जाना है तो वे बोले "यह चर्चिल तो कभी भारत को स्वाधीन कर नहीं सकता।" तो मैंने कहा कि युद्ध के बाद चर्चिल इंग्लैंड का प्रधानमन्त्री ही नहीं रहेगा जैसे पहले विश्वयुद्ध के बाद लायड जार्ज प्रधानमन्त्री नहीं रहा था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में, सुना है, श्री अरविन्द कहा करते थे कि (जब उनसे स्वराज्य के विषय में पूछा जाता था) युद्ध के बाद भारत तो स्वाधीन होगा ही—इसमें मुझे कुछ शंका या चिन्ता नहीं, किन्तु मुझे तो यह चिन्ता है कि उस स्वराज्य को संभालेगा कौन ?

इसी तरह उन दिनों एक बार श्री अरविन्द ने कहा था कि स्वराज्य न तो हिंसा से आएगा न अहिंसा से, किन्तु यह अन्तर्राष्ट्रीय दबाव (International Pressure) से आयेगा। यह बात जब मैंने स्वनामधन्य राजेन्द्रबाबू से कही तो वे बोले "हमारे लिए कौन दबाव (Pressure) डालेगा ?" मैंने कहा "डालेगा कोई नहीं, किन्तु डलेगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे राजनैतिक साथी सब कहा करते थे कि अंग्रेज तो कभी स्वराज्य देने वाले नहीं, ये नाना तरह धोखा देते रहेंगे, पर स्वराज्य कभी नहीं देंगे । अन्त में जब दोबारा क्रिप्स भारत आये थे तो किसी के पूछने पर सेक्रेटरी द्वारा श्री अरविन्द ने कहा था "Whatever its immediate outcome, its ultimate result—liberation of India—is sure." (अर्थात् इसका तात्कालिक परिणाम जो कुछ भी हो, पर इसका अन्तिम परिणाम—भारत की स्वाधीनता—निश्चित है) । और श्री अरविन्द का यह वचन मैंने अपनी स्वर्णजयन्ती की सभा में 13-4-46 को सुनाया था । तब तक भी लोग विश्वास नहीं करते थे कि भारत इस तरह कभी स्वाधीन हो जायेगा । कई अब तक इसे करामात (miracle) कहते हैं, अंग्रेज सचमुच भारत छोड़ गये, इस पर आश्चर्य करते हैं ।

जो हो, भारत स्वाधीन हुआ । 'महात्मा गांधी की जय' सफल हुई और यह घटना 15 अगस्त को अर्थात् श्री अरविन्द के जन्मदिवस पर हुई—यह भी ध्यान देने योग्य बात है ।

मैं तो 1935 से लगभग प्रतिवर्ष 15 अगस्त के दिन पाण्डिचेरी में होता था और वहीं श्री अरविन्द का जन्मोत्सव मनाता आ रहा था, अतः वह दिन जब भारत की स्वाधीनता का उत्सव का दिन भी बना तो कुछ नया सा नहीं लगा । हाँ, उस वर्ष के कांग्रेस-अध्यक्ष श्री आचार्य कृपलानी को जब मैंने 15 अगस्त 1947 से कुछ दिन पूर्व बातचीत के प्रसंग में बताया कि 15 अगस्त श्री अरविन्द का जन्म दिन है तो वह आनन्द से बोल उठे Happy Co-incidence (आनन्दकर सहघटना) तो मैंने कहा कि मैं इसे केवल सहघटना नहीं मानता, इससे यह कुछ अधिक है । इन दिनों मैंने एक लेख भी लिखा था था जिसका शीर्षक था '15 अगस्त' जो बहुत से हिन्दी पत्रों में छपा था ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र-व्यवहार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य अभयदेव के पत्र

–श्री अरविन्द के उत्तर

स्वर्गीय आचार्य अभयदेव पूर्णयोग के ऐसे मनीषी साधक थे जिनकी प्रेरणा से अनेक व्यक्ति श्री अरविन्द और उनके योग की ओर आकर्षित हुए। यह दुःखद संयोग ही है कि वे अपने जीवन के उस अंश को शब्दबद्ध न कर सके जिसमें योग यात्रा का वह महत्त्वपूर्ण पड़ाव आता जब वे श्री अरविन्द और श्रीमां के साथ जुड़े थे। अन्तर्यात्रा की यह कथा बहुत रोचक और प्रेरक होती। आचार्य जी सन् 1935 से पहले श्री अरविन्द के सम्पर्क में आ गये थे लेकिन श्री अरविन्द और श्रीमां के साथ उनका पत्र-व्यवहार इससे पूर्व उपलब्ध नहीं होता। यहाँ उनके कुछ पत्र और श्री अरविन्द के उत्तर प्रस्तुत किये जा रहे हैं। आचार्य जी के पत्र सादे सफेद काग़ज पर हैं। श्री अरविन्द के उत्तर दो प्रकार के हैं—पेन्सिल से लिखे गये और काली रोशनाई से लिखे गये। श्री अरविन्द ने कुछ पत्रों के उत्तर आचार्य जी के पत्रों पर ही लिख दिये हैं और कुछ के लिए अलग से छोटी चिटों का प्रयोग किया है। कुछ पत्रों पर तारीख अंकित है और कुछ पर नहीं। आचार्य जी की फाइल में श्री अरविन्द के द्वारा लिखे गये उत्तरों की अपनी हस्तलिपि में प्रतिलिपियाँ भी हैं। संभवतः श्री अरविन्द की हस्तलिपि को पढ़ने में आचार्य जी को कठिनाई हुई होगी और उन्होंने किसी मित्र की सहायता से उत्तर की प्रतिलिपि अपनी हस्तलिपि में कर ली होगी।

पत्र संख्या 1

आचार्य जी के इस पत्र पर दिनांक अंकित नहीं है। सादे कागज पर लिखा यह पत्र इस प्रकार है:—

(i) When I want to see my own self, I feel a Presence which is all-pervading. But I cannot exactly find the centre which connects this individual being (Adhar) of main with that all-pervading Presence. When I try to find it out, I can only see that this centre can be any where and every where in this Presence. Is this any true realization, if any realization? Is it any experience of Psychic being or any kind of universal consciousness or nothing of such kind? Should I know it?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ii) I think what is known in Patanjal Darshan as ऋतंभरा प्रज्ञा is a supramental state. Is it so ? And what we call यौगिक प्रत्यक्ष is Supramental perception. Is it also right ?

(iii) I think that the phrase प्रथमजा ऋतस्य, which occur in many places in Veda refers to the state of Supermind, where all knowledge is possible (there are pathetic prayers in Veda for obtaining this state of प्रथमजा ऋतस्य) May I know your opinion in this matter ?

Desirous of your blessings
Deva Sharma

आचार्य जी के उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर श्री अरविन्द ने इसी कागज पर पेन्सिल से इस प्रकार लिखा है:—

1. It is the sense of the universal self or Cosmic spirit. There is no centre of the cosmic consciousness, for it is equally everywhere.
2. It may be either the supramental state or a condition which is flooded with the higher truth, although not itself supramental.
3. Yes.

पत्र संख्या 2

AUM

Friday
1-3-35

(i) I think you have received my letter (in Hindi) on Sunday and a complementary one (in English) on Monday night. is it so?

(ii) I have not received any reply till today. Should I wait further or take that it will not be answered on paper but directly on my mind ?

(iii) Yesterday (on 28th February) early morning I tried to know your message for me. In my meditation time I heard so many things but could not remember them. Only two things, uttered on two occasions, I remember (not in exact words)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

First--तुम्हें एक बड़ा विघ्न आवेगा ।

[A great (or dangerous) obstacle will come in your way]

Second–मैं गुरु हूँ तुम मेरे शिष्य हो ।

(I am Guru and you are my disciple). Will you kindly tell me if it is you who have spoken these two things to me ? or who ?

Praying for your written reply.

Desirous of your blessings
Deva Sharma

आचार्य जी ने इस पत्र में हर प्रश्न के बाद स्वयं ही स्थान छोड़ रखा है जिससे श्री अरविन्द उत्तर लिख सकें । श्री अरविन्द ने उत्तर में लिखा है—

(i) Yes.

(ii) I have not had time. The days before and after the Darshan are periods when most correspondence except things urgent is stopped. After a few days I shall be able to attended to your letter.

(iii) Utterances like these come from all quarters. Not much reliance can be placed on them unless they are very clear and their source unmistakable.

पत्र संख्या 3

AUM

16-3-35

1. Though I have received no reply to my letter of yesterday, I am confident that the reply is in affirmative 'yes.'

2. Today early in the morning when I was lying in meditation I saw and heard many things as usual. Two things about these experiences, I shall like to inform you—

   (i) I felt that these experiences were a bit clearer today than before.

   (ii) At an occasion today I saw written before me खतरा (Danger) खतरा (Danger) खतरा (Danger) but I feel not

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

at all afraid of it (because perhaps I feel pefectly safe after coming into your shelter).

3. I am going to translate in Hindi 'Lights on Yoga' and your other writings.

Desirous of your blessings
Deva Sharma

श्री अरविन्द ने इस पत्र का उत्तर पेन्सिल से ही इस प्रकार लिखा है—

I have made no final decision about your request. But it does not seem to me advisable, as yet at least, for you to remain here longer then the two months you had settled on when you came. This yoga is long and difficult one and one has to travel far before there can by any question of supramental illumination or transformation. It means, besides a constant breaking up of past formations and realizations which would not be easy for you as you have advanced fairly for an another line of Sadhna, with its own lights and inspiring sources. My advice to you would be go on in the direction you had already been following and see where it leads you. If any light from my writings is of use to you, you can take it or if any help from me is necessary, you will get it from within. But if in the end it is destined that you should enter this path of yoga, you will get necessary realizations, which will make that possible. At present it seems to me premature for you to enter this way or to stay here for any great length of time.

आचार्य जी ने इस उत्तर की प्रतिलिपि करते हुए हाशिये पर टिप्पणी में लिखा है कि "इसमें मेरा प्रश्न यह था (वह उन्हीं के पास रह गया) कि क्या मैं यहीं रह जाऊँ ?" और अपने दूसरे प्रश्न के हाशिये पर टिप्पणी दी है कि "इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। उत्तर की बात भी नहीं है।"

पत्र संख्या 4

आचार्य जी की फाइल में एक और पत्र का उत्तर है लेकिन मूल-पत्र नहीं है। आचार्य जी ने अपने हाथ से लिखा है—'प्रश्न फाड़ दिये हैं। और 'दोनों प्रश्नों का अनुमान आप कर सकते हैं।' इस पत्र पर दिनांक 10-4-35 अंकित है । श्री अरविन्द का उत्तर इस प्रकार है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(i) It is a thing you must decide yourself. It may or may not be hinderance according to the person on the stage of the Sadhana.

(ii) This also you must decide yourself. The principle here is rather to purify than to suppress the aesthetic sense. But it is true that the latter not purified may serve the Rajsic Vital nature.

पत्र संख्या 5

AUM

11-4-35

Will you kindly give me necessary directions instructions (or precautions) to be followed by me while living far from you? You seem to be indifferent towards me. Well, I may be worthy of this indifference but is it not possible that you tell me my defects, defioiencies and weaknesses so that I may try to remove, remedy or amend them? I hop you will write me all what is necessary (at least in the present stage) for my spiritual growth.

श्री अरविन्द ने इस पत्र का उत्तर पेन्सिल से दिया है। उत्तर इस प्रकार है :—

It is not a question of defects and weakuesses. You have to grow spiritually from within till it is certain that your call is to this Path. Till then it is not possible for me to give you any definite verbal guidance What comes to you must come from within at present.

पत्र संख्या 6

AUM

12-4·35

Please excuse me for writing you so frequently.

(1) By your answers I am now becoming sure of what I many times feel (and what Swami Satyanand ji also tells me) that is, my Antaratma (**Psychic** being) has been awakened and it is that Antaratma which is now making Sadhana in me. Is it right?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ii) I also feel that it is some Guru (whom I do not know and who perhaps is not physical body) who has awakened (influenced) my Antaratma aud at occasions evidently inspires me. Am I right ?

Desirous of your bles ings
Deva Sharma

श्री अरविन्द ने इस पत्र का संक्षिप्त उत्तर देते हुए पेन्सिल से लिखा है :—

(i) Yes.

(ii) It may be so.

पत्र संख्या 7

2?-2-37

अपने किसी पत्र के उत्तर में प्राप्त श्री अरविन्द के पत्र की प्रतिलिपि संलग्न करते हुए आचार्य जी ने इस पत्र में कुछ प्रश्न पूछे हैं। पूर्व प्राप्त श्री अरविन्द के पत्र की प्रतिलिपि, जो संलग्न है, इस प्रकार है :—

Deva Sharma,

I do not feel that a stay in the Ashram such as you propose is indicated as the right course for your Sadhana. You should still pursue your spiritual development separately and not in the collective life here.

—Sri Aurobindo

आचार्य जी ने इसे संलग्न करके एक पत्र लिखा है। वह इस प्रकार है :—

Received your kind instructions. But you have not pleased to tell me if I am correct in thinking that for progress in my Sadhana now it is necessary that I should not do any so-called responsible work for more than three or four hours daily.

यहाँ अरविन्द ने खाली स्थान पर लिखा है :—

About that I cannot pronounce. If you so feel that you need to limit such work for the sake of having more time and concentration for the Sadhana, you can so arrange.

फिर आचार्य जी ने पूछा है :—

I am sending herewith a copy of your answers. I have not fully understood it in two places, which I have underlined. Please correct or explain.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(A) **'Such as you propose'**

Do you mean my proposal of staying here for three years only or my proposal of doing work only three hours daily or that of silence.

(B) **'Indicated'**

You mean indicated to you (to Sri Aurobindo) by some Divine power or something else ?

Desirous of your blessings
Deva Sharma

श्री अरविन्द ने उत्तर दिया है:—

(A) I was referring to the three years proposal.

(B) No. The word 'indicated' in English means, often, apparent as the thing to be done.

पत्र संख्या 8 24-2-38

Mother,

Let me tell you two of my experiences of the Darshan day for information and seeking necessary guidances (if you like to give).

(1) When Darshan began at about 7 a.m., I came and sat meditating in meditation hall. While cocentrating in heart, after some time, I saw in my heart a bloomed flower of rose coming out of it. It gradually came out and stayed in front of my heart. I could see it staying there even after many hours after it. I did not know at that time that rose signifies surrender. About this significance I knew afterwards, really a few days when I asked about it. But this is true that my feeling on this Darshan day was not to ask any special thing for my progress but to give up myself to Divine to be shaped in whatever shape He likes. I wanted thus a new birth. I offered garlands of new birth.

(2) After having Darshan, when I was coming to my room, in the way, I was blazing sunlight above my head. I could see it far some time after also but it did not remain in that condition any longer.

Please tell me if any thing is to be learnt by me from these experiences.

Yours Child
Deva Sharma

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमां को सम्बोधित उपर्युक्त पत्र का उत्तर श्री अरविन्द ने काली रोशनाई से इस प्रकार दिया है:—

They are symbolic—one of the flowering of surrender in the heart (psychic opening) the other of the spiritual opening to the Truth Light above mind. These are the two capital moments of the yoga.

पत्र संख्या 9

28-2-38

श्रीमां को सम्बोधित इस पत्र का उत्तर श्री अरविन्द ने दिया है। आचार्य जी के लिखे पत्र का आवश्यक अंश इस प्रकार है:—

I have decided to change my name (Deva Sharma). For the feeling of a new birth I think it necessary. Will you give me a new proper name, suiting to my "True Being"?

श्री अरविन्द ने इसके उत्तर में लिखा है:—

I will give you the name when you return.

फिर 1-3-38 के पत्र में श्री अरविन्द ने अभय को रेखांकित करते हुए लिखा है:—

You can take the name Abhaya.

इसी सन्दर्भ में आचार्य जी का एक पत्र दिनांक 22-7-38 का है। इसमें उन्होंने लिखा है:—

You have promised me to give new name, when I will return. But I see that you are treating my name 'Abhaya' as a new name. I have been using this surname since last more than ten years. This name, no doubt, highly inspires me and I love to be called by this name. But I think the name you will give me according to my true being will be superior to this and therefore more inspiring. Is it not that the name you were thinking to give me was some other than this name? If so, why not give me that name? Or you had no other special name in your mind when you wrote me those lines and now have taken this name sufficiently good for me. But you know what I wished is that new name is

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

to be given by you (for my benefit) as you can know my past and future and see my true being as I cannot.

Desirous of your blessings
Abhaya

श्री अरविन्द ने पत्र के नीचे बांयें कोने पर लिखा है :—

I had no special name in view and 'Abhaya' seems to me a very good one—so let it remain.

पत्र संख्या 10

20-7-38

यह पत्र श्रीमां को सम्बोधित है :—

Mother,

Now I am ready to do regular work as I was doing before. I am going to take up from tomorrow the work of correcting Hindi translation of 'Bases of Yoga'. I have already pointed out my difficulties of dealing with this correction work. P. and M. both out of themselves have separately suggested me (I was also thinking although did not tell anyone) that I should translate 'Secrets of Vedas' series in Hindi. But as M. is finding none other to take up this 'Bases of Yoga' work therefore I must assist him to complete this work before I take up that 'Secrets of Vedas' work. Should I do so ?

यहाँ श्री अरविन्द ने पेन्सिल से लिखा है :— 'Yes'.

इसी पत्र में आचार्य जी आगे लिखते हैं :—

About some manual work, I have already told you which kind of works and for how much time it will suit me. I have asked K if I can resume the same work under him but he wished me to ask you. If you will not give me even one hour's work I shall have no complaint (because I do not feel unoccupied without that) on the other hand if you give some work of six hours I shall do it gladly with the faith that it will be of some great good to me. I have already given to you my daily routine of work.

Yours child
Abhaya

श्री अरविन्द ने लिखा है :—

You can take up work with K. in the B. S. Office.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र संख्या 11

यह पत्र भी 20-7-38 का है और पिछले पत्र की तरह श्रीमां को ही सम्बोधित है :—

Mother,

Will you kindly tell me what I have to pay monthly to the Ashrama ? I am asking this because last time A. told me that Mother said about my paying money 'Not what he should but what he could.' But last time I had managed for thirty rupees a month so I gave that. In Gurukula I was taking nothing as pay. For my maintenance I was accepting fifteen rupees a month from some personal friend. That sum I was taking from a friend for one year only. Next year I used to take from some other friend. In this way I have an arrangement of fifteen rupees a month for this year also. But if you think it good for me that I should arrange for thirty rupees, I hope, with your mighty grace, I will be able to do so. But will you not hold me now as an Ashramite ? If it is possible, I shall like to offer this sum of fifteen rupees per month (and what else will remain with me) to you and take what you with your natural kindness like to give me for my maintenance. Apart from fooding and lodging which you are so kindly supply with, I require something for postage etc. I am trying to reduce my correspondence expenses, but if you think it fit to give me two rupees as you give to so many other Sadhaks, no other requirement will remain. I think my requirements are few.

Needless to say, if I shall go out for two months and four months in a year, as you have permitted me, naturally all the passage and other expenses of those six months will be borne by others and not by the Ashrama. But after taking that one rupee from you, whatever I am receiving (or will receive) I am seeing (or will see) it coming from you, Mother.

Your Child
Abhaya

उत्तर में श्री अरविन्द ने लिखा है :—

You can give 15 Rs. Mother will give you pocket money Rs. 2.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र संख्या 12

28-5-38

यह लम्बा पत्र श्रीमां के नाम है। आचार्य जी ने लिखा है:—

Mother,

Day before yesterday Amrita has informed me that you have now disapproved my taking fresh milk, so now I have begun taking boiled milk. But he has also told me that if I have any thing to say in this connection I may write to you so I really wish once to inform you through this letter why I am and have been so particular about taking fresh milk. The difference for me is that fresh unboiled milk is alkaline and hot milk becomes acid forming and according to the principle of balanced diet (in which I have very much faith) one should take alkaline foods at least four times more than acid producing foods. Generally people take far more quantity of acid performing articles and much of the prevailing sickness and bad health is surely due to that. I have not much faith in modern bacteriology. I have many times defied Gurukula doctors in this respect and with no harm at all I may humbly inform you that during past seventeen years, by your grace, I have been quite unknown to any kind of sickness. (fever, cough etc). Of course, for some years I have picked up phyorreah in my teeth. But still I have none of the other troubles which are said to be natural outcome of this disease. This change in my physique in these last years has much meaning because in my childhood, up to the age of seventeen years, I remained famous sickman, a regular inmate of the hospital I mean to say that through this experience, I have very much faith in the principle of balanced diet and my main diet for the last at least seven years have been about two seers of fresh milk (धारोष्ण) and fruits I am so keen in my diet that one reason for my making decision in last December to stay here was that I saw you had so kindly made arrangements for me for this balanced diet. And have you not taught us that Faith has very much power !

And so far as I know, the just milked (धारोष्ण) milk is not only not cold but has no harmful bacteria also, as naturopathists say. I have no doubt about it.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Even now, if you can permit me, of course, with your special blessings, the fresh milk, I am sure that no bacteria can affect your Abhaya.

I know very well that your disapproval is on account of your natural compassion towards me and for my benefit only. Therefore I must say that if anyhow your disapproval stands my second reqest to you is—kindly allow me more plantains—at least a dozen daily of bigger size, fifteen if of smaller size—because if I have to take boiled milk then to balance its acidity I should take more plantains (because no other fruits are available heie).

And if anyhow this also may not be sanctioned, my third request will be—please take full responsibilty and guarantee of my trasformatlon in this very life and then give me to eat whatever you like, even all acid. I say so because my belief is that if I continue this balanced diet then I hope to attain a long life, at least hundred years during which I can grow spiritually also to be able to affect body successfully towards the transformation but if I give up the diet, I will become old soon and there will remain no chance for this body for being transformed in this very life.

I am ready equally for all the three alternatives (perhaps the bargaining of the third will be best for me) and also for fourth one if you like to suggest some fourth alternative for me.

Well, through this letter, I hope you will see where lies my difficulty and will remove it.

Ever Desirous of your blessings
Yours child
Abhaya

आचार्य जी के इस लम्बे पत्र का उत्तर श्री अरविन्द ने एक चिट पर रोशनाई से लिखा है जो पत्र के साथ नत्थी है। उत्तर इस प्रकार है—

Abhaya,

Mother has told Amrita the reasons why she insists on boiled milk for the Sadhaks here in Pondicherry, and the condition

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

on which you can take fresh milk. But she does not object to your taking twelve plantains to replace the fresh milk in your system of food; she would prefer that arrangement.

Sri Aurobindo

पत्र संख्या 13

यह बहुत लम्बा पत्र है। बिना तारीख के इस पत्र पर आचार्य जी ने ऊपर लिखा है :—

'To Sri Aurobindo or the Mother.' इसका आवश्यक अंश यहां प्रस्तुत है। आचार्य जी लिखते हैं :—

The second thing is about myself. I have got accepted my resignation from Gurukula service. I am free now since the day before yesterday 23 May. But, as I have already told you none has taken up my place as yet and there is general demand that I should continue my connection with Gurukula. What I myself feel in this respect can be put thus—perhaps it will be better or at least there will be no harm if I use to stay in Pondicherry for six months (July, August and November to February) and here in this side for the remaining six months (From March to June and September, October). Since the 14th April, my Sanyasa day, after receiving your blessings, I feel a change in me. I feel that some universal power—perhaps your power—has begun working in me. Before that I was not in mood of doing some outward work. I was seeing clearly that a retired life having no (or as less as possible) connection with other men is necessary for my spiritual growth. But now I feel that my sadhna and its progress is going on very well even while doing some outside work (such as Gurukula work) One gentleman, Gadnis by name, has very much strengthened this feeling of mine. He is a disciple of Lele and therefore thinks intimately connected with you and the Mother. He came from Maharashtra for Kumbh Mela. When he came in Gurukula, he says, he was naturally attracted to the house I was living in He enquired about me and wished to see me. When we met, we really felt attracted to each other. He lived

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

in Gurukula only for a few days. But he said to me many times that there is a power working through me of which I am not so conscious. I mean to say, with the effect of these talks of Gadnis or with the effect of something within me, I enjoy this feeling that I should stay in Ashrama for six months and make some spiritual progress in this time, while rest of the months of the year, I should do some outside work, making this progress permanent. I remember that even in childhood I used to think that I will be a great yogi and will pass like Devas (Gods) my six months in samadhi and other six months in doing Divine service or work. But, needless to say, I am not at all going to carry away this feeling of mine, I am only telling you what I am feeling now. I am to do only what your order is for me. I am as ready to fix myself for eternity in Pondicherry Ashram as to wander from place to place if it be Divine will. All these things are equal to me, equally enjoyable and equally satisfying.

Ever desirous of your blessings
Abhaya

उपर्युक्त पत्र में आचार्य जी की मनस्थिति प्रतिबिम्बित है। उन्होंने इसमें मुख्य प्रश्न यही पूछा है कि क्या वर्ष में छह माह पांडिचेरी और छह माह बाहर रहना उचित होगा। श्री अरविन्द ने इस लम्बे पत्र का छोटा सा उत्तर यह लिखा है :—

Yes, that will be all right.

सन्दर्भों से स्पष्ट है कि यह पत्र सन् 1938 का है। अगले पत्र से यह भी प्रकट है कि यह हरिद्वार से लिखा गया था।

पत्र संख्या 14

इस पत्र पर कोई दिनांक अंकित नहीं है। यह आचार्य जी की हस्तलिपि में भी नहीं है। ऊपर लिखा है--

This is from Deva Sharma. He writes—

I have sent two letters to Sri Aurobindo long ago, but as yet there is no reply. I have been waiting for the reply. I have

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

specially two points on which I have been anxious for a reply.

1. Whether he thinks it good for me if I remain six months in the ashrama and six months outside—either at the Gurukula or somewhere else. This I had placed in A's envelop.
   श्री अरविन्द ने यहाँ लिखा है—'Yes, that will be alright.'

2. I had asked Mother about permission for R. for August Darshan. The reply I received is sent herewith. Then I again asked Mother whether R. could come there in July and have a place in the Ashrama. There is no reply to that also. I am sending herewith R's own letter. A reply may be sent to him directly.
   इसके उत्तर में श्री अरविन्द ने लिखा है—

R. wants to cook his own food, that is not possible in the Ashrama. Moreover it does not seem possible to find a room for him in the present circumstances. I do not know if he would care to make his arrangements outside.

पत्र संख्या 15

1-9-38

आचार्य जी का यह पत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है और अपेक्षाकृत लम्बा है। यह इस प्रकार है—

I am thinking to leave on 15th of September for two months, reaching again on 16th of November. But a Sadhak says and some others also seem to think that my going out in this way is 'renunciation of the opportunity given.' If it is really so I never wish to go out.

Though I myself do not feel that there will be any harm in my going out, that I am not Ashramvasi when I am outside the physical boundaries of the Ashrama, though I think that not only my sadhana goes on as well outside as here but perhaps it is strengthened or assimilated, becomes part of my life outside what I receive here in Ashrama, still I do not depend on my feeling. My feeling may be quite wrong therefore please guide me.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

So far as I can see it is not some vital 'desire' which prompts me to go outside. Because when I asked this question to you from Hardwar and having received no reply for some time from you, I naturally concluded that you did not approve of this idea, then I was quite happy. I did not feel the least kind of resistance. I had forgotton Gurukula and other connections quite easily. But when I almost unexpectedly received your reply—"Yes, that will be all right", through P. Then I decided to have that way, to come here immediately—about one month earlier than when I was expected to come before leaving some work undone to be finished in my next usual two months of my staying outside. Then I also gave some hope to my co-workers and friends, 'Now I may be amidst them in this way about six months in a year.' But if it is so injurious from spiritual point of view, then I can not do that. I may stop even going out at this time, though I may be called guilty, from moral point of view, of not keeping my words and of raising false hopes.

I do not know with what idea you approved then my staying outside, saying—'Yes, that will be all right' I also know that you are allowing sometimes permanent Sadhaks like A. and D. etc. for going outside. But I want to know about myself again and clearly what I am to do in this respect. When doubt is created, I wish to clear it away.

Ever Desirous of your blessings
Abhaya

उपर्युक्त पत्र का उत्तर श्री अरविन्द ने एक चिट पर दिया है। पत्र के साथ ही चिट संलग्न है। उत्तर इस प्रकार है—

Abhaya,

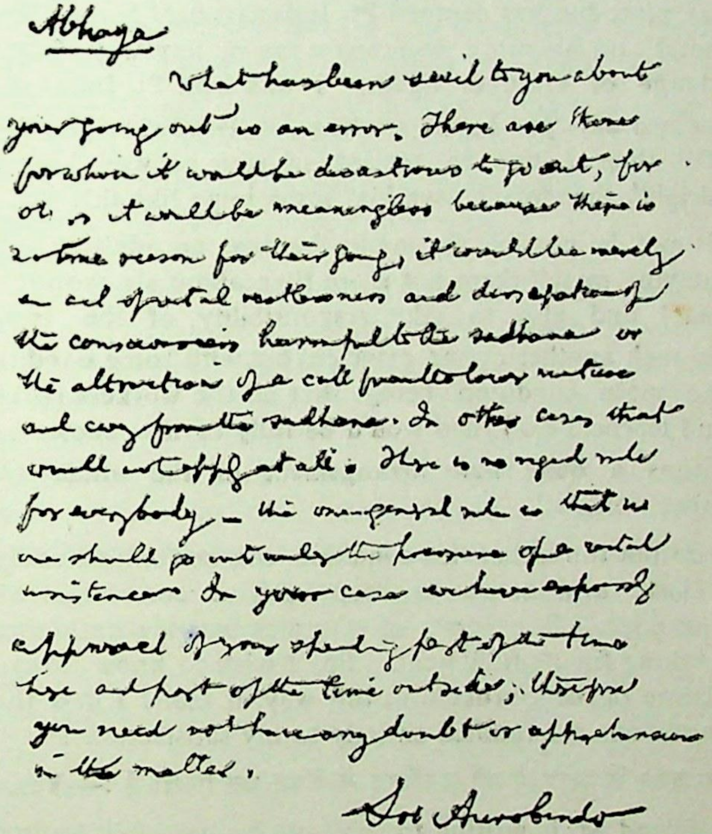
What has been said to you about your going out is an error. There are those for whom it would be disastrous to go out, for others it will be meaningless because there is no true reason for their going, it would be merely an act of vital

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

restlessness and dissipation of the consciousness harmful to the sadhana or the attraction of a call from the lower nature and away from the Sadhana. In other cases that will not apply at all. There is no rigid rule for everybody—the one general rule is that no one shall go out under the pressure of a vital insistence. In your case we have expressly approved of your spending part of the time here and part of the time outside; therefore you need not have any doubt or apprehension in the matter.

Sri Aurobindo


Abhaya

What has been said to you about your going out is an error. There are those for whom it would be disastrous to go out, for others it would be meaningless because there is no true reason for their going, it would be merely a call of vital restlessness and dissipation of the consciousness harmful to the sadhana or the attraction of a call from the lower nature and away from the sadhana. In other cases that would not apply at all. There is no rigid rule for everybody — the one general rule is that no one shall go out under the pressure of a vital insistence. In your case we have expressly approved of your spending part of the time here and part of the time outside; therefore you need not have any doubt or apprehension in the matter.

Sri Aurobindo

(श्री अरविन्द की हस्तलिपि)

पत्र संख्या 16

2-9-38

इस पत्र में आचार्य जी ने तीन प्रश्न पूछे हैं जिनके उत्तर श्री अरविन्द ने पत्र पर ही काली रोशनाई में लिखे हैं। पत्र इस प्रकार है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(i) Will you kindly give me some general instructions which I am to follow while remaining outside the Ashram ?

श्री अरविन्द ने लिखा है—

I do not know there is any need of instructions.

(ii) I have informed you that though I have got accepted my resignation from Gurukul service, they are still after me. The managing committee has appointed no new principal in my place but has deputed Pt. Indra (son of Swami Shradhanand), on his move, to prepare me in any way for taking charge of Gurukul again. I was with Pt. Indra in Delhi for two days just before starting for Pondicherry this time. Till then I was in receipt of your answer 'That will be alright', therefore I gave him some hope like this —

'It may be possible for me to become an advising principal (staying myself there not more than about six months in a year) and also to take responsibility of the institution through another acting principal but with some conditions— the main condition being that all the workers (professors and teachers etc) then would be fully of my choice— which means a quite new arrangement of the whole staff and other workers.'

I do not think that this condition can be fulfilled easily, nor I have any desire to keep such a connection with the Gurukula. But some of the members are enthusiastically working for its fulfilment. So I wish to know 'May I take charge of the Gurukula in this way, if really I find that the conditions are fulfilled entirely to my satisfaction ?'

इस प्रश्न के उत्तर में श्री अरविन्द ने केवल यह लिखा है :—Yes.

(iii) A friend M. is writing to give me his very big bungalow in the Himalayas, forty miles in north from Almora, for being used in some good social service work—specially opening a branch of Gurukula or establishing an Ashrama. Can this building be of some use, from spiritual point of view, and be accepted ?

Ever desirous of your blessings

Abhaya

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री अरविन्द ने इसका उत्तर इन शब्दों में लिखा है—

Perhaps, it might come to be of use in the future, although there is no immediate need in so remote a place.

पत्र संख्या 17

इस पत्र पर दिनांक नहीं है लेकिन सन्दर्भ से यह निश्चित है कि यह सितम्बर 1938 का है। आचार्य जी ने लिखा है :—

I think I need not resign the membership and work of Gandhi Sewa Sangh (गांधी सेवा संघ), an association of constructive workers on Gandhian line—on line of Truth (सत्य) and non-violence (अहिंसा)—for serving the people through activities like this (i) खादी प्रचार (Khadi Prachar), (ii) ग्राम सेवा (Village Service), राष्ट्रीय शिक्षा (National Education), हरिजन सेवा (Uplift work of untouchables), गौ सेवा (Cow protection) etc.

My activity of conducting Gurukula comes under the head of 'National Education.' In a way my services were transferred by the Sangh to the Gurukula when in 1931 Seth Jamunalal Bajaj wished me to join this Sangh and after sometime I agreed to it. Besides doing this educational (Gurukula) work I have also to direct some Sangh members and workers of U. P. and a few ones of Punjab in their activities. These Sangh workers are generally such who have taken inspiration from me for the work and are doing the work as their Sadhna (selflessly and with some reliance on Divine.) Therefore these fellow workers of Sangh are more in harmony with me than Gurukula workers of the present. Moreover this Sangh gives me full freedom of work. When I wished to do some Vedic research work, Gandhiji said, 'Yes, to me that is also a Gandhi-Seva-Sangh work' and now my coming and spending half of the year here under you in the Ashram is also held by them a work not outside its sphere. Also in interpreting what is सत्य (Truth and what is अहिंसा (Non-Violence) on a certain occasion, they give full reasonable freedom to their fellows. Therefore I do not wish to resign its membership until it actually comes (stands) in my way of spiritual progress.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

But for the last two years I am not doing any congress work. I am not even an ordinary four anna member of the congress. I think, for the present at least, that I need not do that work though it seems to me that you will not object to even my working actively in congress if sometimes this work naturally comes to me

आचार्य जी ने इस पत्र में अपनी कुछ आध्यात्मिक अनुभूतियों का भी उल्लेख किया है लेकिन उनके विषय में श्री अरविन्द ने कोई टिप्पणी नहीं की है।

उपर्युक्त पत्र का उत्तर श्री अरविन्द ने इस प्रकार लिखा है :—

A member of the Ashram cannot belong to a political body or do political work. He is also not supposed to do any social propaganda. Educational work like the Gurukula is different. It can be done with the Mother's permission.

पत्र संख्या 18

इस पत्र में आचार्य जी ने एक शब्द के हिन्दी रूपान्तर के विषय में पूछा है। उन्होंने लिखा है—

Unconscious Mind=अचेतन मन। I think that it is not correct translation. अचेतन comes to mean जड़ It ought to be अ-सचेतन मन। For conscious we use सचेतन। सचेतन=with चेतना। In English, from 'conscious' is derived the word 'consciousness'. But in Sanskrit (therefore in our other languages) the original word is चेतना and सचेतना (meaning conscious) is derived from it. Therefore correct translation of 'unconscious mind' is (or सचेतना रहित मन) or अजागृत मन। Am I right ? श्री अरविन्द ने 'अजागृत' शब्द देवनागरी लिपि में लिखते हुए उत्तर दिया है—

It seems to me अजागृत would be better.

पत्र संख्या 19

9-9-38

इस पत्र में आचार्य जी ने हिन्दी में 'भगवन्' सम्बोधन करते हुए श्री अरविन्द को लिखा है :—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Please find with it a Hindi translation of 'Radha's prayer.' If you approve it, I wish to get it printed (with the help of a friend) as nicely as it is in English for being distributed among Hindi-knowing Sadhakas and other Bhaktas who come for Darshan.

First I translated it for J. on his asking. Then some other Sadhaks also wished to have its copies for themselves. Then R., C. and M. also gave their mind to this translation and as its result is the translation which we are sending for your approval.

Ever desirous of your blessings
Abhaya

श्री अरविन्द ने इस पत्र के नीचे बायें कोने पर लिखा है :—

'Approved'

पत्र संख्या 20

आश्रम के पैड पर सन् 1939 में आचार्य जी की ओर से लिखित एक पत्र उर्दू में है। पैड पर ऊपर अंग्रेजी और हिन्दी में छपा है—'श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी।' इसी पत्र के पीछे की ओर श्रीमां ने लाल पेन्सिल से लिखा है :—

When you use such paper bearing the name of the Ashram or when you write from the Ashrama you must abstain from saying anything connected with politics.

इसी सन्दर्भ का एक और पत्र आचार्य जी की फाइल में हैं लेकिन मूल न होने से यह निश्चय नहीं कि वह श्री अरविन्द की ओर से हैं या श्रीमां की। परन्तु उसके कथ्य से यह स्पष्ट है कि आश्रम में साधक के लिए राजनीति की चर्चा को वे दोनों ही उचित नहीं मानते थे। वह पत्र इस प्रकार है :—

It is absolutely out of question for any one connected with the Ashrama to intervene in politics of any kind. He must not go to H. (it will be quite useless in any case). If he went and H. spoke to us of it, we will be obliged to disallow his action as not sanctioned by us

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट सन्दर्भ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे पूज्य पिताजी

अब 91 वर्ष की आयु में भी वे प्रतिदिन संध्या और अग्निहोत्र नियम से करते थे। शेष समय में भी बहुत बार वैदिक विनय से वेद मन्त्रों का, जो उन्होंने कण्ठाग्र कर रखे थे, पाठ या जप करते रहते थे।

वे बड़े हर्ष और उत्साह के साथ सुनाया करते थे कि संवत् 1938 विक्रमी (अर्थात् 1881 सन् में), जबकि वे 18, 19 वर्ष के थे, प्रथम सहारनपुर में और फिर रुड़की में, उन्होंने महर्षि दयानन्द के दर्शन किये और उनके निर्भीक व्याख्यान सुने।

व्याख्यान सुनने का तत्काल प्रभाव यह हुआ कि वे जो 8, 9 वर्ष की आयु से रविवार को नमक न खाने का व्रत करते आये थे, उसकी अनावश्यकता समझ गये और उसे छोड़ दिया तथा मुजफ्फरनगर आकर अपने स्कूल में विद्यार्थियों की आर्य समाज की स्थापना करदी जिसमें प्रति रविवार को सत्संग होने लगा। उन दिनों इन थोड़े से आर्य समाजी विद्यार्थियों के पवित्र आचरण से लोग बहुत प्रभावित होते थे। पिता जी को पढ़ाने वाले मास्टर जी भी कुछ ही दिनों बाद आर्य समाजी बन गये।

पं० राजनारायण मिश्र (जो कि युक्त प्रान्त स्कूलों के इंस्पेक्टर थे) उनके परम मित्रों में से थे पर प्रथम बार जब इन दोनों में परस्पर वार्त्तालाप हुआ वह निम्न प्रकार है।

मेरे पिता जी का परिचय कराते हुए जब किसी ने बताया कि ये बड़े दृढ़ आर्य समाजी हैं तो मिश्र जी पिता जी की ओर देखकर बोले—

'तो आप दयानन्दी हैं ?'

पिता जी ने नम्रता से कहा—'तो मैं जान सकता हूँ कि आप किसे मानते हैं ?'

मिश्र जी ने कहा—'हम 'भगवती' को मानते हैं।'

पिता जी बोले—'तो मैं आपको 'भगवतिया' कह सकता हूँ ?'

इस प्रकार आर्य समाजी ने उन्हें 'दयानन्दी' कहे जाने का प्रत्युत्तर दे दिया। बाद में मिश्र जी मेरे पिता जी के इतने प्रशंसक मित्र बल्कि भक्त हो गये कि जीवन पर्यन्त अभिन्न हृदय रहे। यह उनके मित्रों का एक उदाहरण है।

---

* 'श्री पंडित रामप्रसाद जी' पुस्तिका से उद्धृत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानन्द जी की 'संस्कार विधि' के संस्कारों का उन्होंने बड़ी निष्ठा से पालन किया। कई लोगों को आश्चर्य होगा कि यद्यपि उनका विवाह 21 वर्ष की आयु में हो गया था तो भी उन्होंने न केवल 30 वर्ष से पहिले कभी गर्भाधान नहीं किया किन्तु उसके बाद भी केवल पाँच बार (दो से चार वर्ष तक के व्यवधान से) विधिवत् संस्कार विधि के अनुसार ही गर्भाधान किया।

संवत् 1953 में (अर्थात् 37 वर्ष की आयु में) विधुर हो जाने पर उन्होंने पुनः विवाह करना स्वीकार नहीं किया, यद्यपि उनके लिए दूसरी पत्नी का तत्काल प्रबन्ध हो गया। उस कन्या से पिता जी की इच्छानुसार उनके ममेरे भाई का विवाह कर दिया गया।

हरदोई में वे 18 वर्ष रहे, 17 आर्य समाजें स्थापित कीं। वहाँ से उनका तबादला उनकी आर्य सामाजिक क्रियाशीलता के कारण ही किया गया। वे दो वर्ष रायबरेली रहे। पर वही कलक्टर जिसने उनका हरदोई से तबादला किया था, रायबरेली का कलेक्टर होकर आया तो उसने देखा रामप्रसाद ओवरसियर रायबरेली में भी आर्य समाज का कार्य जोर शोर से कर रहे हैं। तो उसने उनके चरित्र की, ईमानदारी, परिश्रम आदि की बहुत प्रशंसा करते हुए सरकार को लिखा कि इस आदमी का ऐसी जगह तबादला कर दिया जाना चाहिये जहाँ प्रचार के लिए (रेल आदि) साधन न हो, फलतः उन्हें हमीरपुर भेज दिया गया जो कि यमुना और वेत्रवती दो नदियों के बीच में बसा हुआ है। पिता जी कहते हैं कि यह कलेक्टर मेरे लिए तो सचमुच 'टर्नर' (Turner) साबित हुआ। उस कलेक्टर का नाम टर्नर था।

पिता जी अखिल भारतीय शुद्धि सभा के मंत्री भी रहे हैं। वे गौरव के साथ सुनाते हैं कि संवत् 1961-62 (सन् 1905) में काशी की कांग्रेस के अवसर पर श्री अरविन्द घोष जी को भी शुद्धि सभा का सभासद बनाया था। उनके हस्ताक्षर उनके रजिस्टर में विद्यमान हैं। शारदाचरण मित्र आदि छह अन्य बंगाली महानुभावों को भी सदस्य बनाया था।

जिस दिन उनका इस बात पर ध्यान गया कि हुक्का पीने का उनकी संतान पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, उसी दिन से उन्होंने एकदम हुक्का पीना छोड़ दिया और फिर कभी नहीं पिया।

उन्होंने कभी एक पैसा भी किसी से रिश्वत नहीं ली। नहीं तो ओवरसियर पद के लिये पाँच प्रतिशत शुल्क लेना तो नियम दस्तूर सा समझा जाता था। वह रिश्वत नहीं मानी जाती थी। प्रारम्भ में एक बार मुसलमान ठेकेदार उनके यहाँ कुछ रुपये रखकर ही चला गया तो वे रुपये उन्होंने अनाथालय भिजवा दिये।

उन्हें जो कुछ वेतन मिलता था, उसका अधिकांश परोपकार के कार्य में ही खर्च होता था। उदाहरणार्थ 1910 में जब वे हमीरपुर में ओवरसियर थे तो उन्हें

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

120 रुपये मिलते थे, उसमें 30 रुपये घोड़े का खर्च और 8 रुपये अपना खर्च छोड़ कर शेष 82 रुपये आर्य समाज सेवा, गरीब विद्यार्थियों की सहायता के कार्य में प्रतिमास व्यय होते थे।

बहुत से पिता अपने पुत्रों की शादी के लिये कितने उत्कंठित रहते हैं। पर यह सच है कि मेरे पिता जी ने मुझे एक बार भी शादी के लिये नहीं कहा। मुझे अन्य लोगों ने और कुछ सम्बंधियों ने भी विवाह के लिए बहुत कहा, पर पिता जी ने कभी नहीं कहा। अन्य लोगों को भी पिता जी का यही उत्तर होता था 'पुत्र को उत्तम शिक्षा प्राप्त करा देने का कर्त्तव्य मेरा था, सो मैंने कर दिया, पर विवाह के विषय में वह जाने, वह करे या न करे।'

सन् 1897 (संवत् 1950 वि०) में लगभग जबकि स्वदेशी का प्रचार करना जुर्म जैसा समझा जाता था (विशेषतः सरकारी नौकर के लिए), तब उन्होंने स्वदेशी का व्रत लिया, यही नहीं किन्तु अपनी पवित्र कमाई के 5, 6 हजार रुपये लगाकर हरदोई में एक स्वदेशी दुकान खुलवाई जो कई वर्ष चलती रही। अन्त में दुकान के कार्यकर्त्ता ने ही एक दिन कुछ गबन से बचने के लिए उस दुकान को आग लगादी। अपने वे रुपये नष्ट होते देखकर भी वे दुःखग्रस्त नहीं हुए।

मुझे सात वर्ष की आयु में उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट करा दिया। मेरी बहन बुद्धिमती को भी महादेवी कन्या विद्यालय देहरादून में प्रविष्ट करा दिया। बच्चों को ठीक शिक्षा दिलाने में उनके लिए मोह कभी बाधक नहीं हुआ। उन दिनों शिक्षा के लिए कहीं दूर भेजना भी रिवाज के प्रतिकूल था।

मेरे पिता जी ने बचपन में भी हम बच्चों को कभी पीटा नहीं। केवल एक बार उहोंने एक चपत लगायी थी। होमिओपैथी दबाइयों की गोलियाँ जो मीठी-मीठी होती थीं, सो उन्हें हम दो बच्चों ने यूँ ही स्वाद के लिए खा लिया था, इस पर वह चपत लगी थी।

महात्मा गांधी का संदेश सुनकर उन्होंने खादी का व्रत तो तुरन्त ले ही लिया था (यद्यपि वे सरकारी नौकर, सरकारी पेंशनर थे)। पर वे तो जेल जाने तथा अन्य कष्ट सहने को भी तैयार रहे, यद्यपि इसकी नौबत नहीं आयी।

सरकारी नौकरी के अन्त में हमीरपुर में उनपर झूठा दोष लगाकर उनकी आधी पेंशन जब्त करादी गयी थी। सन् 1938 में युक्त प्रान्त में कांग्रेसी सरकार बनी तो एक बार मैंने पिता जी से कहा, 'आप आज्ञा दें तो आपकी पेंशन पूरी करने के लिये मैं सरकार में यत्न करूं। यह हो सकता है।' इस पर एक क्षण भर सोच कर उन्होंने यही उत्तर दिया—'नहीं भाई, यह सब क्यों करना है ? जो है सो ठीक है। कोई रियायत क्यों ली जाय ?'

जब मैं 6, 7 वर्ष का था तभी का स्मरण है कि हरदोई में हमारे घर का सारा चबूतरा प्रातःकाल के समय हाथ में शीशी लिये हुए पुरुष स्त्रियों से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर जाता था। मेरे पिता जी बिलकुल मुफ्त होमियोपैथिक दवा दिया करते थे। कुछ अपनी बनायी या पेटेन्ट दवाइयाँ भी बांटा करते थे। कभी किसी से एक पैसा भी दवा का मूल्य नहीं लिया। बल्कि उस उमर में दो चार दवाइयाँ मैं भी जान गया था, जो कि पिता जी की अनुपस्थिति में दे देता था।

एक बार किसी डाक्टर ने हरदोई के कलक्टर को शिकायत कर दी कि यह आदमी चिकित्सा की कोई पदवी बिना प्राप्त किये इलाज करता है। पर उसका परिणाम उलटा हुआ—पता लगा कि कलक्टर का एक चपरासी भी पिता जी की दवा से प्लेग में मरता-मरता बचा था—कलक्टर ने पिता जी को बुलाकर पूछा कि तुम्हारा दवाई बाँटने में माहवार क्या खर्च होता है ? उनके बताने पर उसने पन्द्रह बीस रुपये माहवार सरकार की तरफ से पिता जी को दिलाने का प्रबन्ध कर दिया जो कि कुछ महीने मिलता रहा।

जब कहीं प्लेग या हैजा आदि संक्रामक रोग फैला होता था तो पिता जी का मुख्य कार्य इसी में सेवा करना हो जाता था। मैंने देखा है कि बूट और जुराबें पहिन कर पैरों पर पट्टी बांध कर वे घर-घर प्लेग की गिल्टी पर लगाने की और बुखार की दवा देते फिरते थे। रोगियों को देखते, उनको धैर्य बंधाते और हिदायतें देते हुए चक्कर लगाते थे और इसमें बड़ा सुख प्राप्त करते थे।

मेरे पिता ज़ी को अपने नुस्खों पर बड़ा विश्वास था। वे सदा ही प्रत्येक बीमारी के लिए अपना इलाज बताने को उद्यत रहते थे। कभी कोई नुस्खा छिपाने की तो कुछ बात ही नहीं—स्वयं आग्रह से लिख देते थे।

ओवरसियर के तौर पर भी वे संस्थाओं की निःशुल्क सेवा करते रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी की नयी भूमि के मकान, गुरुकुल वृन्दावन की इमारतें, त्यागी बोर्डिंग हाउस मेरठ की इमारत उन्होंने अपना समय देकर सामने खड़े होकर बनवायी हैं। बनवायी ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर मजदूरों के साथ स्वयं भी गारे, ईंटों, कंकड़ों की टोकरियाँ उठाने में भी आनन्द लेते रहे हैं।

बहुत से गरीबों, अनाथों, अछूतों को शिक्षा दिलाना, उन्हें नौकरी दिलाना, उन्हें बसाना, अपने पास से महावार सहायता देना उतके लिये स्वाभाविक था। जहाँ जहाँ वे रहे—हरदोई, हमीरपुर, रायबरेली आदि—वहाँ के सैंकड़ों लोग उन्हें अपने पिता के तुल्य मानते थे।

उनकी सरल हृदयता, परोपकार शीलता, परमात्म परायणता ने उन्हें 'दुःखियों का आश्रय' बना रखा था। उनके ऐसे सात्विक वृत्ति वाले तथा उत्कृष्ट आत्मा वाले को अपने पिता रूप में पाकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ।

एक बार सहारनपुर के स्टेशन पर मुसाफिरखाने के बाहर पुलिस के कुछ सिपाही एक मुसाफिर को यूं ही तंग कर रहे थे, शायद रिश्वत झड़पने के लिये। पिता जी से नहीं रहा गया, नहीं सहा गया, सिपाहियों को उन्होंने कहा क्यों इस मुसाफिर को आप लोग परेशान कर रहे हो ? वे और मैं उसके चारों तरफ जो भीड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमा हो गई थी उसमें खड़े थे। एक सिपाही ने भीड़ में आकर पिता जी को पीछे धकेलते हुए कहा 'तुम क्यों बीच में बोलते हो, तुम्हारा क्या काम ?' मैं उस समय पाँच छह वर्ष का बच्चा था। मैं तो डर गया। बल्कि उसके बाद कुछ वर्षों तक सहारनपुर स्टेशन से ही डर लगता रहा।

सन 1885 (संवत 1942) में उनकी माता जी की अस्थियाँ हरिद्वार में हर की पैड़ी पर डालने का कार्य उन्हें सौंपा गया था। पिता जी सुनाते हैं कि उस समय हरिद्वार को रेलगाड़ी नहीं जाती थी। रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज में वे तब पढ़ते थे। रुड़की से हरिद्वार 18 मील है। वे पैदल ही हरिद्वार गये और अस्थियाँ डालकर रात तक रुड़की वापिस आ गए। रास्ते में शाम के समय बहादराबाद के आगे एक भेड़िया मिला। लाठी से उसे मारा। वह गड्ढे में गिर गया। उसने फिर पीछा किया। इस तरह दो तीन मील का और चक्कर पड़ गया। रात को रुड़की पहुँच कर देखा कि चारपाई उधड़ी पड़ी है तो उसी समय चारपाई को बुना और बुनकर उस पर सोये।

अनाथों, अबलाओं को दुष्टों के पजे से छुड़ाने के लिए वे सदा तैयार रहते थे, अपनी नौकरी और कभी-कभी अपनी जान को भी जोखिम में डाल कर। इसकी बीसियों घटनाएँ पाठकों को सुनाई जा सकती हैं।

एक बार हरदोई में पूरा भोजन खा चुकने के बाद उन्हें दो सेर रबड़ी खाने को किसी ने चेलेंज सा कर दिया तो तुरन्त दो सेर रबड़ी मंगा कर पी गये और किसी किस्म का विकार शरीर में नहीं होने पाया।

ओवरसियरी के कार्य से दौरे पर अपने घोड़े पर 50, 60 मील की यात्रा करना तो उनका सामान्य सा कार्य हो गया था। मैं जब चार वर्ष का बच्चा था तो एक बार जिद्द से मैं भी दौरे में साथ गया जैसा कि कई बार किया करता था। उस दिन वे मुझे लाद कर 52 मील चले। मेरे पैरों पर बहुत मालिश की।

एक बार चित्रकूट की यात्रा पर हम लोग गये थे। कुछ दूर चल कर हम रास्ता भटक गये। राजनारायण मिश्र आदि कई प्रतिष्ठित मित्र साथ में थे। तो पिता जी ने साहस से कहा 'चलो मैं ले चलूंगा, ये सामने तो चित्रकूट का मन्दिर दीखता है, मेरे साथ चलो।' कहीं खंदक, कहीं चढ़ाई, कहीं घोर जंगल को फांदते, चढ़ते, चीरते शाम को उन्होंने चित्रकूट के मंदिर पर हमें पहुँचा दिया।

आर्य समाजी होने के कारण, सुधारक होने के कारण, देशभक्त होने के कारण और चिढ़ के कारण कई बार उन्हें बिरादरी की, आम जनता की, सरकारी अफसरों की, धनी प्रतिष्ठित लोगों की दी हुई नाना प्रकार की यातनायें सहनी पड़ी, पर वे अपने मार्ग से नहीं हटे। इसकी भी अनेकों मनोरंजक कहानियाँ हैं।

वे पन्द्रह वर्ष पूर्व तक 10, 15 मील की यात्रा पैदल ही कर लेते थे परन्तु जब से उनके एक नयी जगह पर सीढ़ी पर से गिर जाने के कारण दायें जांघ की हड्डी टूट गयी तब से वे चलने में दीन हो गये। फिर भी लाठी के सहारे प्रातः सायं एक मील वे घूम लेते थे। □□

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल के बड़े ब्रह्मचारी अपने झूठे बरतन अपने आप माँजा करें

ब्रह्मचारी पूछते हैं, कि 'हम बरतन क्यों माँजें ?' पर पूछना यह चाहिये कि हम अपने जूठे बरतन अपने आप क्यों न माँजें ? अधिक ठीक शब्दों में यों पूछना चाहिये कि 'हमारे जूठे बरतन कोई और क्यों माँजें ?' हम तो अभी तक प्रश्न ही उलटा करते हैं। इसका कारण यह है कि हम बरतन दूसरों से मंजवाने के अभ्यस्त हो चुके हैं।

अच्छा तो अपने से पूछिये कि 'हमारे जूठे बरतन लल्लू कहार क्यों माँजे ?' क्योंकि हम उसे पैसा देते हैं, यह सहज उत्तर होगा। पर मैं यही कहना चाहता हूँ कि हम पैसा देकर इस काम के लिए नौकर ही क्यों रखें ? इसका कोई सच्चा उत्तर जानिये। नहीं तो दूसरी तरफ मुझसे सुनिये कि ब्रह्मचारियों को अपने बरतन माँजने के लिये नौकर रखना (1) अनुचित है (2) गुरुकुल-आदर्श के विरुद्ध है (3) ब्रह्मचारी की शान के खिलाफ है (4) और वर्तमान स्थिति की दृष्टि से भी अत्यधिक दोषयुक्त है। मैं इन चारों बातों को क्रमशः सिद्ध करता हूँ।

अनुचित क्यों है ?

यह आत्म-निर्भरता (Self Help) के सिद्धान्त के विरुद्ध है। हमें अपना हर एक काम अपने आप करना चाहिए, जब तक यह असम्भव न हो या हमारे मुख्यकार्य में बाधक न हो। गुरुकुल में हम ब्रह्मचारियों का मुख्य-कार्य शिक्षा प्राप्त करना है। स्वयं बरतन माँजना उस शिक्षा में बाधक नहीं है (बल्कि बड़ा साधक है जैसा कि हम अभी देखेंगे)। बाधक नहीं है, केवल इसलिए भी तुम्हें आत्म-निर्भरता के सत्य के अनुसार स्वयं बरतन माँजने चाहियें। इस कार्य्य के करने में तीन मिनट से अधिक नहीं लगते। ब्रह्मचारियों के पास इतना समय होता है कि वे यही नहीं किन्तु एक-दो अन्य कार्य भी अपने हाथ से कर सकते हैं। पर बरतन मांजने को जितना समय हमारे पास है, इसमें तो कुछ भी सन्देह की गुञ्जाइश नहीं।

यह गुरुकुल के आदर्श के प्रतिकूल क्यों है ?

यह या ऐसे अन्य कार्य अपने हाथ से करना हमारी शिक्षा में न केवल बाधक

---

* 'आर्य' के ज्येष्ठ 1989 अंक में इस सम्पादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित —"गुरुकुल के महाविद्यालय (कालिज) विभाग के बड़े ब्रह्मचारी अपने थाली, कटोरे, अपने आप माँजा करें, यह प्रथा श्री आचार्यजी ने चलाई है। अभी तक उनके थाली, कटोरे एक नौकर माँजा करता था। यह बात, समझाने के लिए जो उपदेश श्री आचार्य जी ने ब्रह्मचारियों को दिया था, वह नीचे दिया जाता है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किन्तु बड़े भारी साधक हैं। यह ब्रह्मचर्य-काल (विद्याध्ययन का काल) तपस्या-पूर्वक रहने का काल है। कम से कम पूर्वीय-सभ्यता के अनुसार शिक्षा का आदर्श, गुरुकुल का आदर्श यही है। अतः इस छोटी-सी तपस्या से अपना जी चुरा कर हम गुरुकुल के आदर्श से प्रतिकूल जाते हैं। जैसे हम प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में उठना, तख्त पर सोना, जूते न पहिनना आदि तपस्या के लिए करते हैं, वैसे ही यह अपने बरतन माँजना हमारी तपस्या का एक अंग स्वभावतः होना चाहिये। शुरू से होता भी रहा है क्योंकि मुलतान में ब्रह्मचारी बरतन माँजते रहे हैं, कुरुक्षेत्र और इन्द्रप्रस्थ में भी कम-से-कम लोटा कौल माँजते रहे हैं। महाविद्यालय में आकर अर्थात् बड़े होकर यह तपस्या घटने की जगह बढ़नी चाहिये और अब स्वेच्छापूर्वक जानबूझ कर, समझ कर, करनी चाहिये। इसलिए मैं ऐसा देखता हूँ कि गुरुकुल में महाविद्यालय पर यह कलंक है कि उसने अपने जूठे बरतन माँजने छोड़ दिये हैं और इसके लिए नौकर रखा हुआ है। बड़े ब्रह्मचारियों को तो इसकी महत्ता समझ कर इस तप को अधिक प्रेम से करने लगना चाहिये था। बड़े होने का यह फल न होना चाहिए था कि इससे बचने की इच्छा करें।

(यहाँ पर आचार्यजी ने सहारनपुर के बाबू मेलारामजी का उल्लेख किया। उन्होंने छोटे ब्रह्मचारियों को भोजन वर्त्तते देखकर कहा कि ये बरतन भी अपने आप माँजा करें तो क्या ही अच्छा हो)

ब्रह्मचारी की शान के विरुद्ध क्यों हैं ?

गुरुकुल के आदर्श के अनुसार चलने में ही ब्रह्मचारी की शान है परन्तु गुरुकुलों में तो ब्रह्मचारी अपने ही बरतन नहीं किन्तु अपने गुरुओं के, पूज्यों के बरतन भी प्रेम से माँजते थे। कम-से-कम तब नौकर नहीं होते थे, यह असंदिग्ध है। वे बहुत से काम स्वयं करते थे। हमें तो उधर जाना है। अतः कम-से-कम बरतन माँजने को नौकर रखने में तो आज हमें शर्म (प्रतिष्ठा-हानि) अनुभव करनी चाहिये। हम उस आदर्श से कितने दूर हैं!

हम यह भी देखते हैं कि पुराने गुरुकुलों की तरह आजकल के गुरुकुलों के भी खर्च का बोझ बहुत कुछ जनता ही उठाती है। (जैसा कि मैं अभी आगे कहूँगा) तो जनता के रुपयों को अपने बरतन माँजने जैसे तुच्छ स्वयं किए जासकने योग्य काम के लिए खर्च करते हुए भी क्या हमें बड़ी हिचकिचाहट न होनी चाहिये और शर्म अनुभव न होनी चाहिये ? क्या यह एक सेवक बनने वाले विद्यार्थी को सजता है ? क्या इसमें हमें अपनी (विद्यार्थी की) शान (प्रतिष्ठा) मिट्टी में मिलती नहीं दीखती ?

(इस प्रकरण में आचार्यजी ने गुरुकुल मुलतान की वह घटना पूरे भावावेश में आकार सुनाई जब कि वहाँ लाला लाजपतराय जी पधारे थे। लालाजी ने ब्रह्मचारियों का अपने आप बरतन माँजना इतना पसन्द किया कि वे श्री पण्डित चमूपति जी से बोले कि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यहाँ तो विद्यार्थी बरतन भी स्वयं माँजते हैं। तब तो जी चाहता है कि आप मुझे भी गुरुकुल में दाखिल कर लीजिये। इस प्रकरण में आचार्यजी ने लाला लाजपतराय जी की उस घटना का वर्णन दिया)

वर्त्तमान स्थिति की दृष्टि से भी यह क्यों अत्यन्त दोषयुक्त है ?

पुराने गुरुकुलों में तो ब्रह्मचारी स्वयं बरतन माँजते थे ही, पर देश की वर्त्तमान स्थिति के अनुसार तो शिक्षा देनी चाहिये।

उस पर विचार करने वाले आधुनिक राष्ट्रीय शिक्षाविज्ञों ने भी यह स्पष्ट देखा है कि हमारी वर्त्तमान शिक्षा में विद्यार्थियों का स्वयं हाथ से काम न करना एक बड़ी भारी त्रुटि है, बड़ा भारी दोष है। इसलिये न केवल सब गुरुकुलों के ब्रह्मचारी प्रायः ऐसा करते हैं और लाहौर निवासी उपदेशक महाविद्यालय के विद्यार्थी बिल्कुल ऐसा करते हैं, किन्तु बिहार-विद्यापीठ, गुजरात-विद्यापीठ, काशी-विद्यापीठ, सत्याग्रह-आश्रम आदि आधुनिक राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में भी विद्यार्थियों के लिए स्वयं बरतन माँजना आवश्यक रखा गया है। यह क्यों ? यह इसलिये कि ऐसा करना राष्ट्रीय शिक्षा के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय-शिक्षा, राष्ट्रीय-सेवक तैयार करने के लिए होती है और राष्ट्रीय-सेवक में ऐसी आदतों का होना आवश्यक है। संक्षेपतः निम्नलिखित दो कारणों से राष्ट्रीय सेवकों में ऐसी आदतें डालना आवश्यक है—

(1) उनमें हाथ से काम करने की श्रेष्ठता (Dignity of Labour) स्थापित करने के लिए।

(2) अस्वाभाविक जीवन द्वारा उनकी आदतें न बिगड़ जायें, और वे सेवा करने के अयोग्य न हो जायँ, इस प्रयोजन के लिए।

पहिली बात अर्थात् हाथ से काम करने की श्रेष्ठता स्थापन करने के विषय में मैं व्याख्यान दे चुका हूँ। आवश्यकता होगी तो फिर भी इसे दोहरा दूँगा। पर यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि गुरुकुल के स्नातकों ने साधारणतया यह "हाथ से काम करने का श्रेष्ठत्व" सीखा नहीं होता, यह बात गुरुकुल के बहुत से हितैषियों ने बार-बार अनुभव की है। इसलिए गुरुकुल के वर्त्तमान विद्यार्थियों में यदि यह बात आ रही है तो यद्यपि यह सन्तोष की बात है तथापि इस भाव को पुष्ट करने के लिए—स्थिर करने के लिए, यह तो आवश्यक है कि गुरुकुल के महाविद्यालय में बरतन माँजने जैसा एक काम गुरुकुल की तपस्या का अंग बन कर रहे, क्योंकि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को अपने बरतन स्वयं माँज लेने की आदत पड़ जानी चाहिये। दूसरी बात जरा विस्तार से कहूँगा। भारतवर्ष में कितने परिवार हैं, जिनमें कि बरतन मांजने के लिए नौकर रखा जाता है ? भारतवर्ष के सत्तर लाख ग्रामों में तो बरतन मांजने के लिए नौकर होते ही नहीं। शहरों में भी बहुत से परिवारों में बरतन मांजने के लिए नौकर नहीं रखे जाते। इसलिये भारत देश के 100 में से 80, 85 परिवारों में नौकर नहीं होते। तो ऐसे राष्ट्र के सेवकों (उस राष्ट्र के सेवकों जिसमें कि 80 प्रतिशत इतने गरीब हैं, कि मांजने के लिए नौकर रखना सोच ही नहीं सकते) को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नौकर से बरतन मंजाना" सिखाना कितना अनुचित है, इसकी हम कल्पना कर सकते हैं। यह उनकी आदत बिगाड़ना है। सामान्य राष्ट्र का जो रहन सहन है, उससे उल्टी आदतों वाले शिक्षित पुरुष उस राष्ट्र की क्या सेवा कर सकेंगे ? इसी कारण हम देखते हैं कि आजकल के पढ़े-लिखे आदमी अस्वाभाविक (सामान्य जनता से विपरीत) आदतों के कारण इच्छा रखते हुए भी जन-साधारण की, देश की, सेवा के अयोग्य होते हैं। इसलिये वर्त्तमान-स्थिति के अनुसार जो राष्ट्रीय-शिक्षा होनी चाहिये, उससे भी विद्यार्थी यदि अपने जूठे बरतनों के लिए नौकर रखने की आदत डालकर आवेंगे तो इस शिक्षा का प्रयोजन ही मारा जायगा (क्योंकि वे सेवक बनने के अयोग्य होंगे) तथा उनके शिक्षक शिक्षक राष्ट्र के विद्यार्थियों की आदतें बिगाड़ने के अपराधी होंगे।

यह सच्ची-शिक्षा का आवश्यक अंग है। इसी कारण से पुराने गुरुकुलों में यदि कोई महाराजा का लड़का पढ़ने आता तो उसे भी शिष्य-काल में बरतन माँजने जैसे सब काम करने पड़ते थे। आज के राष्ट्रीय-शिक्षणालयों में भी यह होगा कि एक लखपति (जो कि सैंकड़ों नौकर रख सकता है) के लड़के को भी ऐसे (अत्यन्त गरीब की तरह) हाथ से काम करने की तपस्या में से गुजारना उसकी शिक्षा का अत्यावश्यक अंग समझा जायगा। हम देखते हैं कि इग्लैंड के युवराज को जहाज के एक मामूली खलासी का जीवन बिताना सिखाया जाता है।

हमारी वर्त्तमान की अस्वाभाविक, अक्रियात्मक-शिक्षा का हम पर प्रभाव यह होता है कि जन-साधारण की जरूरतों की अपेक्षा से हमारी जरूरतें बढ़ी हुई होती हैं, बढ़ जाती है। इसलिये हम पीछे से रोते हैं कि हमारी रोटी का सवाल हल नहीं होता। हमारी आदत ही अधिक जरूरतों वाली हो जाती है। इससे उल्टा, यदि शिक्षा पाते हुए हमारी आदतें गरीबों की तरह रहन-सहन की बन जायँ तो हम बाहर वास्तविक संसार में जाकर राष्ट्र के लिए गरीबी का (किन्तु उच्च) जीवन बिता सकें और हमारे लिए रोटी का सवाल दुःखदायी न हो। दुःख तो हमें हमारी बनी हुई आदतें देती हैं। जिस देश की प्रति मनुष्य दैनिक औसत आय चार पैसे से अधिक नहीं है वहाँ की शिक्षा में स्वेच्छापूर्वक गरीबी का जीवन बिताना न सिखाया जाय तो और क्या सिखाया जाय ? अतः न केवल प्राचीन आदर्श की दृष्टि से किन्तु वर्त्तमान स्थिति की दृष्टि से भी हम गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को स्वयं बरतन माँजने की आदत डालनी चाहिये।

फिर यह पैसों का अक्षम्य दुरुपयोग है

अब यदि यह भी मानलें कि हमारे पास इतने पैसे हैं, कि हम अपने बरतन माँजने के लिये नौकर रखलें तो भी इन उपर्युक्त चार प्रबल कारणों से हमें बरतन माँजने को नौकर नहीं रखना चाहिये। यदि हम रखते हैं तो अपने पैसों का अक्षम्य दुरुपयोग करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि हमारी सच्ची स्थिति यह है कि हमारे पास पैसे हैं ही नहीं। ऐसे भी ब्रह्मचारी पर्याप्त हैं जिनके भरण पोषण का पूरा या आंशिक व्यय भी जनता देती है, तो हमें बरतन माँजने के लिए नौकर रखने की विलासिता करने का क्या अधिकार है ? जिनके घर से भरण-पोषण का व्यय पूरा आता है, उनमें से बहुतों के माता-पिता यह धन किस मुश्किल से—किस कठिनाई से—भेज सकते हैं, इसका भी हमारे बहुत से ब्रह्मचारियों को यहाँ रहते ज्ञान नहीं होता। तो फिर माता-पिता के रुपयों को भी (तीन मिनट के कार्य के लिए आलस्य-वश होकर) अपव्यय करने का हमें क्या अधिकार है ? उसमें के एक-दो पैसे की हमें बचत करनी चाहिये। गुरुकुल में रहकर हममें जरा-सी देश-बन्धुता का भाव आ गया हो, तो हम राष्ट्र की गरीबी को अनुभव करेंगे—राष्ट्र की सामान्य गरीबी में अपनी गरीबी देखेंगे, तो हम में से एक-आध ऐसे भी जो घर से वास्तव में अमीर हैं, अपने को गरीब अनुभव करेंगे। इन बातों को हम जरा सोचें और हृदय से अनुभव करें तो अपने को अमीर समझने का हमारा भ्रम मिट जाय।

यदि हम वास्तव में अमीर होते तो भी गुरुकुल महाविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी को–जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि गुरुकुल का वह विद्यार्थी भी जो करोड़-पति का लड़का है, या महाराजा का लड़का है (जिसके घर में 100 नौकर रखने की शक्ति है) उसे भी ऊपर लिखे चार कारणों से स्वयं बरतन माँजने ही की आदत डालनी चाहिये। पैसे दे सकने या न दे सकने का सवाल ही नहीं आता। □□

गुरुकुल के स्नातक व ब्रह्मचारी बाहर की (सरकारी) परीक्षायें क्यों न देवे ?

मुझे शर्म मालूम होती है कि आज मुझे इस विषय में कुछ समझाने की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। सच्चे गुरुकुलीय वायुमण्डल में बाहिरी परीक्षाओं का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए था। यह इसलिए हुआ है कि हम अपने आपको भूल गये हैं। कई स्नातक भाई इतना अपने आपको भूल गये हैं, इतने आत्म-विश्वास से हीन हो गये हैं कि उन्होंने कुल की सम्माननीय उपाधि (Degree) को नीचा करके सरकारी उपाधि के पाने की आवश्यकता समझी है, इस प्रकार गुरुकुल को अपमानित किया है तथा ऐसा बुरा उदाहरण उपस्थित किया है कि गुरुकुल वासी उनके छोटे भाई भी सरकारी परीक्षा देने की बातें करने लगे हैं। यह अनर्थ क्यों हुआ है ? अपने आपको

---

* 'आर्य' के आश्विन 1989 अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने गुरुकुल को, अपनी शक्ति और उद्देश्य को भूल जाने के कारण गत सप्ताह स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने हमें यह अध्यात्मिक उपदेश दिया था कि हम यह ध्यान किया करे, यह भावना किया करें कि "मैं सत्य हूँ, मैं चेतन हूँ, मैं आत्मा हूँ।" पर यह ध्यान तो हमारे लिए ऊँची और दूर की चीज है। हम इतना अनुभव करें तो बहुत है कि "गुरुकुल माता का पुत्र हूँ, मैं नवीन भारत का निर्माण करने वाला हूँ, मैं स्वाधीन भारत का वीर सिपाही हूँ।" जब हम अपनी उच्च स्थिति को भूल नीचे देखने लगते हैं तभी हम में ये गिराने वाले विचार स्थान पाते हैं। तभी हम प्रलोभनों में फँसते हैं और हमें वे बातें प्यारी लगने लगती हैं, जिन से कि हमें शर्म आनी चाहिए।

हम भूल जाते हैं कि गुरुकुल क्यों खोला गया है? गुरुकुल तो एक बहते हुए प्रवाह के विरोध में खड़ा किया गया था। पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह के विरोध में, अपने यहाँ उत्पन्न हुई नाना कुरीति, रूढ़ि आदि के विरोध में एवं बाहर और अन्दर की नाना-विध गुलामियों (दासताओं) के प्रवाह के विरोध में गुरुकुल की यह दृढ़ चट्टान खड़ी की गई थी जो न केवल इस प्रवाह को रोकेगीं किन्तु प्रवाह को दूसरी तरफ बदल देने वाली होगी। हम यह याद रखें तो क्या हम उसी नाशकारी प्रवाह में बहने की कभी सोच सकते हैं? अतः हमें सदा दृढ़ता पूर्वक इस प्रलोभन में बहने से अपने को बचाना चाहिए।

प्रलोभन सदा मीठी बात बोलता हुआ सामने आया करता है और कमजोरों को गिरा जाता है। जो बाहिरी परीक्षायें देने को ठीक समझते और समझाते हैं, वे भी बड़े ऊँचे सिद्धान्तों और सत्यों में लपेट कर अपनी इस अनर्थकारक बात को पेश किया करते हैं। वे यों कहते हैं कि "जैसे गुरुकुल एक विद्यालय है वैसे ही सरकारी विश्वविद्यालय हैं। एक विद्यार्थी को स्वाधीनता (Freedom) होनी चाहिये कि वह जहाँ चाहे वहाँ की उपाधि लेवे। शिक्षा में ऐसी संकुचिततायें लाना अनुचित है, गुरुकुल स्पर्धा में आवेगा तो उसकी उन्नति होगी।" उनका यह कथन सत्य है, परन्तु यह गुरुकुल की अवस्थाओं पर लागू नहीं होता है। अर्थशास्त्र के अबाधित व्यापार (Free trade) तथा संरक्षण (Protection) की चर्चा से आप सभी कुछ न कुछ परिचित होंगे। भारत का हर एक पढ़ा लिखा मनुष्य जानता है कि भारत को संरक्षण (Protection) की जरूरत है। परन्तु प्रायः प्रत्येक अङ्गरेज अर्थशास्त्रज्ञ बड़े धर्मात्मा की तरह (Free trade) और (Freedom) जैसे सुन्दर शब्दों को बोल कर अबाधित व्यापार की नीति को सच्ची बताता है। तो भी यह नीति महाघातक है। यही बात इस सम्बन्ध में गुरुकुल के लिए भी लागू हो रही है। गुरुकुल जो कि जमाने के चालू प्रवाह के विरुद्ध खड़ा किया गया है, अभी इतना प्रबल नहीं हुआ है कि उसे संरक्षण (Protection) की जरूरत न रहे। गुरुकुल जिस नई लहर को चलाने के लिए, जिस नये प्रवाह को बहाने के लिए कायम हुआ है वह लहर या या प्रवाह जब तक नहीं चल पड़ता, तब तक तो गुरुकुल को संरक्षण की जरूरत है ही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तक इस नियम की भी सख्त जरूरत है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी बाहिरी शिक्षणालयों से (विरोधी लहर चलाने वाले विद्यालयों से) अस्पृष्ट रहें, दूर रहें। जब हिन्दुस्तान का बना अति सुन्दर और मजबूत खद्दर (हाथ का कता बुना वस्त्र) इङ्गलैंड में जाया करता था तो उसे रोकने के लिए जो बड़े भारी कर लगाये गये थे, जुर्माने किये जाते थे, उन्हें याद कीजिये। वे सब एक साथ चलते प्रवाह को (भारत से इङ्गलैड को वस्त्रादि के जाने ले और वहाँ से भारत में रुपये के आने के प्रवाह को) रोकने के लिए और विरोधी प्रवाह को (भारत से रुपये आने और विदेशी माल जाने जाने के प्रवाह को) चलाने के लिए किये गये थे। उसी तरह हमें भी कठोर नियम बना कर गुरुकुल द्वारा प्रचालित नये प्रवाह की रक्षा करनी चाहिए और चलते प्रवाह को रोकना चाहिए। हमने भी यदि चलते प्रवाह की मदद करनी थी तो गुरुकुल शुरू ही क्यों किया था ? यह आत्मघात है।

नया विरोधी प्रवाह चलाना कितना कठिन काम है ! एक पूरी तरह चलते हुये सिक्के के विरोध में अपना नया सिक्का चलाना कितना दुःसाध्य कार्य है ! लगभग असम्भव है। पर यह गुरुकुल वाले यही करने को खड़े हुए हैं बाहर की सरकारी Matriculation (एन्ट्रैन्स) B.A., M.A. आदि उपाधियां चली हुई हैं, इनका मूल्य जनता में बना हुआ है। B. A. आदि उपाधि सुनकर हमारे मन में एक योग्यता उत्पन्न हो जाती है और एक मूल्य सामने आ जाता है पर गुरुकुल ने इन चलती उपाधियों के मुमाबिले में अपनी विद्यालंकार, वेदालङ्कार और वाचस्पति आदि को स्थापित कर देना है। हमने तीस वर्षों के यत्न से इतना कर भी लिया है कि विद्यालङ्कार की कीमत समझने वाले लोग पैदा हो गये हैं। कई स्थानों से गुरुकुल के स्नातकों की ही खास मागें आती हैं। पर यदि इस स्थिति में पहुँच कर भी हमारे कोई स्नातक भाई अपनी उपाधि को अपमानित करने लगें और सरकारी उपाधि का सहारा लेने लगें तो गुरुकुल का नाश न होगा तो क्या होगा ?

अब जरूरत है थोड़ी देर हिम्मत से इसी मार्ग पर चलते जाने की। थोड़े ही दिनों में हम देखेंगे कि विद्यालङ्कार और वेदालङ्कारों की इतनी प्रतिष्ठा बैठ जावेगी कि हमें अन्य विजातीय उपाधियों के सहारे की जरूरत ही न रहेगी। अपनी उपाधि को शामिल बाजा मत बनाइये। आप में से बहुत कम जानते होंगे कि हमारे पड़ौसी महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातकों की क्या उपाधि होती है। वह है विद्याभास्कर। उनकी इस उपाधि का इतना अप्रसिद्ध और बेकार होने का यही कारण हुआ है कि (वहाँ के वर्तमान आचार्य श्री पं० रामावतार जी विद्याभास्कर के शब्दों में) उन्होंने अपनी उपाधि को 'शामिल बाजा' बना रखा है। उनकी यह उपाधि अन्य, शास्त्री, विशारद, आचार्य आदि उपाधियों के साथ बजती है, अकेली नहीं बजती। शामिल बाजे की कहानी आप लोगों ने सुन रखी होगी। वे अभी तक अपनी उपाधि को स्वयं मूल्य न देकर अपने बड़े ब्रह्मचारियों को शास्त्री आदि परीक्षायें दिलाना आवश्यक समझते थे। पर अब तो उन्होंने भी सरकारी परीक्षायें न दिलाने का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय सा कर लिया है। बन्धुओ ! हमने तो विद्यालङ्कार की उपाधि को भारतवर्ष में ही नहीं किन्तु दुनिया भर में बजवा देना है। इस अपने विद्यालङ्कार से अङ्कित सिक्के (करेन्सी) को दुनिया में प्रचलित (Current) कर देना है तो हम बाहरी उपाधि पाने की बात ही कैसे सोच सकते हैं।

प्यारे ब्रह्मचारियो ! तुम किधर देखते हो ? क्या तुम नहीं देखते कि गुरुकुल के योग्य स्नातकों ने गुरुकुल की उपाधियों को कितना स्थापित कर दिया है। तुम इन्हीं एम. ए. और बी. ए. उपाधि वालों की जगह अपने विद्यालङ्कारों की तरफ देखो। पंडित बुद्धदेव जी की जनता में कितनी प्रतिष्ठा है, उनकी प्रतिभा और व्याख्यान की लोगों पर छाप पड़ी हुई है। स्वामी व्रतानन्द जी का लोगों पर कितना प्रभाव है। वह एक गुरुकुल को कितनी विपरीत अवस्थाओं में चला रहे हैं। यहाँ देखिए, श्री पण्डित विश्वनाथ जी बैठे हैं ! इनके वेद-विषयक लेख आदि पढ़कर विद्वान इनकी विद्वता का सिक्का मानते हैं। श्री पण्डित धर्मदत्त जी यहाँ आयुर्वेद महाविद्यालय के उपाध्याय हैं। इन्हें किसी M.B.B.S. की उपाधि की जरूरत नहीं है। इनकी निपुणता इन्हें ख्याति दे रही है। श्री पं० सत्यव्रत जी तो English में भी B.A., M.A. से किसी तरह कम नहीं हैं ! श्री सत्यकेतु जी को इतिहास का M.A. होने की जरूरत नहीं है। वे यहाँ इतिहास के उपाध्याय हैं और लोकप्रसिद्ध ऐतिहासिक हैं। मेरे विषय में एक मान्य महानुभाव दूसरे को कहते थे "देखो ! देवशर्मा बहुत से M.A. और B.A. लोगों के ऊपर बिठा दिया गया है, वह तो विद्यालङ्कार ही हैं। अफ्रीका गये पण्डित सत्यपाल जी को देखिये, मुनि देवराज को देखिये, भाष्यकार पं० जयदेव जी को देखिये, बंगलोर के धर्मदेव जी को देखिये, पं० धर्मदेव जी, पं० बन्शीधर जी आदि बहुत स्नातकों के नाम गिना सकता हूँ जिन तुम्हारे बड़े भाइयों ने अपनी योग्यता द्वारा विद्यालङ्कार की उपाधि को लोक में स्थापित किया है।

धन-कमाने की दृष्टि से देखिये तो श्री पं० नन्दकिशोर, श्री पं० ब्रह्मानन्द जी, भूदेव जी, अर्जुनदेव जी आदि बहुत से स्नातकों की तरफ संकेत कर सकता हूँ। सर्वप्रथम स्नातक पं० इन्द्र जी को कौन नहीं जानता, उन्होंने लोक मान्यता और यश के साथ-साथ धन भी कमाया है।

मतलब यह है कि नाना विधि दिशाओं में उन्नति करने वाले इन स्नातकों की अपनी दिशा में ही तुम्हें महत्वाकांक्षा करनी चाहिए। पर मैंने एक महानुभाव को ब्रह्मचारियों से बातें करते सुना है 'यदि तुम बी० ए० एम० ए० पास होगे तो तुम कभी यह महत्त्वाकांक्षा रख सकते हो कि तुम कभी हाईकोर्ट के जज बन जाओगे, पर गुरुकुल के स्नातकों को यह मौका नहीं होता।' पर प्यारे बन्धुओ ! यह कैसा झूठा भ्रम है ? तुम्हें विद्यालङ्कार बनाकर जनता तुमसे जिस ऊँचे पद की आशा करती है, उसके सामने विदेशी सरकार की जजी क्या चीज है ? तुम्हारे बड़े स्नातक भाइयों में कई ऐसी प्रतिभा और विद्वत्ता से पूर्ण हैं कि जिन्हें यदि वे उधर बहते तो इस सरकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ऊँचा से ऊँचा कोई गुलामी का ओहदा मिल सकता था पर उधर उन्होंने कभी सोचा तक नहीं। वे तुम्हारे पथ-प्रदर्शक हैं। वैसी गिराने वाली मोह भरी महत्त्वाकांक्षा तुम्हारे लिए नहीं है। तुम तो यदि पं० बुद्धदेव जैसे प्रतिभाशाली, स्वा० व्रतानन्द जैसे ब्रह्मचारी, पं० विश्वनाथ जी जैसे विद्वान, पं० जयदेव जी जैसे सच्चे सेवक आदि बनने की महत्त्वाकांक्षा करोगे तो तुममें परमेश्वर की दया से वह आत्मविश्वास उत्पन्न होगा जिससे इन पुराने अच्छे से अच्छे स्नातकों से सौ गुना योग्य बनकर तुम चमकोगे। सब कमी आत्मविश्वास की अपनी शक्ति को याद रखने की है।

तुम्हें बाहिरी उपाधि लेने की इच्छा इस लिए पैदा होती है न कि उस उपाधि की लोक में प्रतिष्ठा है ? मैं यह भी जानता हूँ कि ब्रह्मचारी और स्नातक यह शिकायत किया करते हैं कि गुरुकुल के अधिकारी स्वयं बाहिरी उपाधि का अधिक मान करते हैं। यह शिकायत बहुत बार तो ठीक नहीं निकलती। मैंने उदाहरण सुनकर और इसकी असली बात पता लगाकर यह देखा है। पर यदि कभी ऐसा हुआ भी है तो वह पुराने प्रभाव के कारण है और वह प्रभाव गुरुकुल में ही नहीं, सारे देश में ही दिनोंदिन घट रहा है। ज्यों-ज्यों स्वावलम्बन की, राष्ट्रीयता की भावना बढ़ती जाती हैं त्यों-त्यों सरकारी उपाधियों की प्रतिष्ठा, मूल्य और प्रभाव भी घटता जा रहा है। हरदयाल एम० ए० को कौन नहीं जनता ? वे जब भारत में थे और अपने लेख गुरुकुल की वैदिक मेगजीन में दिया करते तो एक बार की बात है कि आचार्य रामदेव जी ने उनके लेख के ऊपर उनका नाम स्वभावत: एम० ए० की उपाधि सहित छाप दिया। उस बात पर लाला हरदयाल बड़े नाराज हुए कि मेरे नाम के आगे एम० ए० क्यों लगा दिया। उन्होंने एक चिट्ठी आचार्य रामदेव जी को लिखी। उसमें उन्होंने यह कहते हुए कि आगे से मेरे नाम के आगे एम०ए० कभी मत लगाना। सारांशतः यह कहा कि मैं नहीं चाहता कि मैं यह प्रकट करके शर्मिन्दा होऊँ कि मैं उस राष्ट्रीयता से शून्य और सदाचार से हीन कर देने वाली प्रक्रिया में (Denationalising & demoralising process) में से गुजर कर आया हूँ जिसका कि द्योतक यह एम० ए० की उपाधि है।

इसी तरह गुरुकुल के रामदास जी गौड़ की बात सुनने लायक है। वे एम० ए० हैं पर जब से असहयोग कर हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़ा है तब से वे अपने नाम के आगे एम० ए० नहीं रह सकते हैं। एक बार उनकी रची एक पुस्तक के प्रकाशक ने उनके नाम के साथ एम० ए० छाप दिया तो गौड़ जी ने उस पुस्तक की अशुद्धि शुद्धि पत्र में अन्य अशुद्धियों के साथ यह भी छपवाना आवश्यक समझा कि—

अशुद्धि	शुद्धि
रामदास गौड़ एम० ए०	रामदास गौड़

तात्पर्य यह है कि अब समझदार इन सरकारी उपाधियों को कलंकित करने वाली समझने लगे हैं न कि विभूषित करने वाली। इसके लगाने में शर्म मानने लगे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पर श्रद्धानन्द के कुल-पुत्र उनकी तपस्याओं द्वारा उस प्रवाह के विरोध में स्थापित इस कुल के पुत्र, उन उपाधियों की तरफ कुछ भी स्नेह और आशा की दृष्टि से ताकें, यह कैसा दैव दुर्विपाक है! क्या तुम घोर तपस्या से से स्थापित इस कुल का, इस तेजस्वी संस्था का इस तरह इस मोटी मूर्खता के कारण विनाश होने दोगे? नहीं, केवल अपने आपको याद रखो तो कभी नहीं भटकोगे।

मैं ऐसे बहुत से भारत माता के सपूतों को जानता हूँ जो कि सरकारी डिग्री को रखते हुए भी उनसे सरकारी नौकरी आदि पाने जैसा लाभ उठाना इतना लज्जास्पद समझते हैं कि वे बेकार और भूखा रहना पसन्द करते हैं किन्तु सरकारी टुकड़ों की तरफ नहीं देखते। ऐसे स्वाभिमानी लोगों ने ही हमारा मार्ग बहुत कुछ साफ कर दिया है। इससे सरकारी डिग्री ऐसा सिक्का हो रहा है जिसका मूल्य दिनों दिन घट रहा है। तो घटते मूल्य की तरफ दौड़ना कहाँ की दूरदर्शिता है?

और अब तो जब कि देश की सर्वोच्च विभूतियों ने सरकारी शिक्षणालयों के बहिष्कार का आन्दोलन उठाया है तबसे तो सरकारी शिक्षणालयों का रौब (Prestige) बिलकुल ही जाता रहा है और अब सब लोग हमारे जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं की तरफ बड़ी प्रतिष्ठा और आशा की दृष्टि से देखने लगे हैं। इसलिये अब तुम पीछे हटकर कहाँ जाओगे? तुम तो अपनी मंजिल में इतनी दूर पहुँच गये हो कि अब आगे बढ़ने के सिवाय और कुछ चारा नहीं है। यदि हमारे कोई भाई कभी कम हिम्मती से हार भी गये हैं तो उन्हें पीछे नहीं लौटना चाहिये। पीछे लौट कर हास्यास्पद नहीं होना चाहिये। हिम्मत बाँध कर थोड़ा सा आगे चले गये तो मंजिल पर ही पहुँच जायेंगे। यदि हम अपनी योग्यता बढ़ाते हुए आगे चलते चले तो आठ-दस वर्षों में ही गुरुकुल की उपाधि इतनी प्रतिष्ठित हो जायेगी कि फिर किसी को सरकारी उपाधि के सहारे की जरूरत न रहेगी। तब तक हमारे कमजोर भाई इस प्रलोभन को रोक रखें और आत्म-स्मृति पाते ही इस प्रलोभन को रोक लेना क्या कठिन है? जरूरत है हिम्मत बाँधने की, आदर्शवाद (Idealism) का वायुमण्डल पैदा करने की।

बाहर के शिक्षणालय तो सरकार के रौब दाब पर, उसकी फौजों के डर पर और उसकी पदों और प्रतिष्ठा के लोभ पर आश्रित हैं पर गुरुकुल का आश्रय दयानन्द श्रद्धानन्द जैसे जगद्गुरुओं के आदर्शवाद पर ही है। इस आदर्शवाद को छोड़ कर हम कैसे जीवित रह सकते हैं। तुम कहते हो तो कि व्यवहार्य्य (Practical) बातें करो, आदर्शवाद नहीं चलता। पर मैं कहता हूँ कि आदर्शवाद ही चलता है और वही दुनिया को चलाता है। जो आज का आदर्शवाद है, वही कल का व्यवहार्य्य (Practical) हो जाता है। व्यवहार्य्य व्यवहार्य्य 'Practical Practical' कहने वाले सदा यूं ही कहते रहा करते हैं और दुनिया को आदर्शवादी आगे-आगे धकेल ले जाते हैं। लोग श्रद्धानन्द पर हँसते थे कि जंगल में कौन मूर्ख माता-पिता लड़के भेजेगा?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आज सैकड़ों माता-पिता भेज रहे हैं और भेजने को उत्सुक हैं । हम ही धनाभाव के कारण सबको नहीं ले सकते ।

अस्तु ! पर आज का हमारा प्रसंग तो ऐसा आदर्शवाला भी नहीं है । यह कल व्यवहार्य होने वाला नहीं है किन्तु आज ही व्यवहार्य हो रहा है । आज कितने बी.ए., एम. ए. बेकार फिर रहे हैं । सरकारी डिग्री से सरकारी नौकरी मिलेगी इसी व्यवहार्य (Practical) बात के लिए सरकारी डिग्री की चाह पैदा हुई है न ? तो आँख खोल कर देखो व्यवहार्य क्या है ? 30, 40 रुपयों में बहुतेरे बी. ए. एम. ए. मिलने लगे हैं । सरकारी डिग्री पाये हुओं को बेकारी की कहानियाँ पूज्य आचार्य रामदेव जी से तुम जरूर सुन चुके होगे । बाहिरी विश्वविद्यालयों से निकले हुओं की बेकारी साफ साफ देखते हुए भी वैसी इच्छा करना कितनी मूर्खता है । नाहक में बदनाम होना और आत्मघात करना है । कुलपति श्रद्धानन्द जी ने तो लाखों रुपयों की मदद के प्रलोभन दिये जाने पर भी गुरुकुल के सरकारी स्पर्श से बचाये रखा पर तुम आर्थिक लाभ की कोई आशा न देखते हुए भी सरकारी डिग्री की बातें करते हो, यह कितनी लज्जा की बात है ।

इसलिये जो असली बात है, उस पर आओ । बेकारी के गहन प्रश्न को ठीक तरह बुद्धिमत्ता के साथ हल करो । प्यारे भाइयो ! यदि सरकारी डिग्री से यह सवाल हल होता तो भी कुछ बात होती । तुम यदि कहो कि गुरुकुल में उद्योग सिखाने का प्रबन्ध किया जाय तो यह कुछ बात हुई । इससे तो कुछ रोटी का सवाल हल भी होता है । अतः उद्योग का प्रबन्ध हमें जरूर और बड़ी जल्दी करना चाहिए पर उससे भी कोई एक दम सवाल हल नहीं होगा । उस समय तक हमारे सारे देश को बेकारी के कष्ट भोगने पड़ेंगे जब तक यह देश स्वाधीन नहीं हो जायेगा । इसलिये बेकारी के जड़ पर कुल्हाड़ी मारना चाहते हो, रोटी का सवाल सचमुच हल करना चाहते हो तो अपनी सब शक्ति देश को स्वाधीन करने में लगानी चाहिए । अन्य उलटी उलटी तदबीरों में नहीं फंसना चाहिए । सब मिल कर एक बार स्वधीनता के सवाल को हल कर लो तो बेकारी जैसे और सैकड़ों सवाल हल हो जायेंगे । अपने स्नातक भाइयों को काम न मिलता देख कर मेरा जी बड़ा दुखी होता है । पर मैं जब सारे देश की भयंकर दुर्दशा को देखता हूँ तो इसको सह लेने के सिवाय और कुछ चारा नजर नहीं आता ।

सारे देश को कुछ काल तक इस मुश्किल में से गुजरना ही है और इस मुश्किल में से हमारे गुरुकुल के स्नातक अधिक आसानी से निकलेंगे क्योंकि सादगी, कमखर्ची और तपस्या की आदतें उनकी सहायक होंगी । इसलिए यह योग्यता भी तुम गुरुकुल के शिक्षितों में ही होती है जो कि इन मुश्किल के दिनों में पार लगा सकती हैं । मैं बार-बार कहता हूँ इस समय सादगी की, तपस्या की आदतें ही हमें बचा सकती हैं और आप लोग इस दिशा में बड़े सौभाग्यशाली हैं ।

अन्त में वह बात सुनो कि जिस पर यहाँ रहते हुए तुम्हें खास तौर पर इस बेकारी के प्रकरण में ध्यान देना चाहिए । वह यह है कि अपनी योग्यता बढ़ाओ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य आदमी की सब संसार में पूछ है । यदि तुममें किसी किस्म की भी योग्यता होगी, अद्भुतता होगी तो पुजोगे । विद्वान बनो, तपस्वी बनो, अडिग सदाचारी बनो । बस ऐसी योग्यताओं ही की जरूरत है । यहाँ रहते हुए अपना सारा समय योग्यता प्राप्त करने में लगाओ । और फिर बे फिकर रहो कि तुम्हारी रोटी का सवाल हल हुआ रखा है । अपने यहाँ के डा० सत्यपाल जी को देखिये । वे जहाँ जावेंगे, लोग उनको छोड़ेंगे नहीं । पं० चन्द्रकान्त जी वेद वाचस्पति जहाँ एक बार हो आते हैं, वहाँ के लोग उन्हें भूलते नहीं । गांधी सेवा आश्रम के पंडित जयदेव जी वेदालङ्कार को जो एक बार पहिचान लेता है, वह उन्हें अपने यहाँ ले जाना चाहता है । मेरे पास बीसियों जगह से उनकी मांग आती रही है । गुरुकुल की उपाधि का जितना मान देश में स्थापित हुआ है, और स्थापित होगा, वह ऐसे स्नातकों की योग्यता के द्वारा ही स्थापित हुआ है और योग्यता द्वारा ही आगे स्थापित होगा । जिस चीज का मूल्य है, वह योग्यता है, इसलिए बेकारी को देखकर घबराओ नहीं । बस यह समझ लो कि बेकारी दूर करने का वैयक्तिक उपाय योग्यता प्राप्त करना और सामूहिक उपाय स्वराज्य प्राप्त करना है । इन्हें प्राप्त कर लोगे तो कोई झंझट नहीं रहेगा । अतः बेकारी दूर करने के लिए इस ही सीधे सच्चे रास्ते का अवलम्बन करो और इसके द्वारा गुरुकुल को तथा अपने आपको यशस्वी बनाओ ।

गुरुकुल का उद्देश्य*

गत वर्ष मैंने अपने आर्य भाइयों से कई भिक्षाओं की याचना की थी । वे मुझे दी गयी हैं कि नहीं, इसका विचार दाता लोग ही कर लेवें । मैं तो इस बार अपने को ध्यानपूर्वक सुनने की भिक्षा को पुनः मांगता हुआ गुरुकुल के उद्देश्य के विषय में अपना विचार सुनाना चाहता हूँ, आम जनता के सम्मुख रखना चाहता हूँ ।

गुरुकुल किस प्रयोजन के लिए है ? गुरुकुल का उद्देश्य क्या है ? इस पर विचार करते हुए मैं सदा निम्न परिणाम पर पहुँचता हूँ ।

ब्रह्मचर्य और तपस्या की प्राचीन वैदिक प्रणाली के अनुसार गुरु के अधीन और गुरु के परिवार के अंग के तौर पर वैदिक धर्म के वायुमण्डल में रख कर वैदिक संस्कृति से संस्कृत, धर्म के (देश जाति व संसार) के सेवक उत्पन्न करना गुरुकुल का उद्देश्य है ।

यह तो मैंने अपनी समझ के अनुसार इस वर्तमान गुरुकुल का उद्देश्य बताया

---

* 'आर्य' के ज्येष्ठ 1990 अंक में प्रकाशित ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परन्तु इसका यही उद्देश्य है या यही होना चाहिये, इसका निर्णय करने के लिए हमें पहिले यह हृदयंगम कर लेना चाहिये कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली किस प्रणाली का नाम है अर्थात् संसार में जो नाना प्रकार की शिक्षा प्रणालियां प्रचलित हैं, उनसे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की क्या विशेषता हैं, वे कौन सी बातें हैं जो कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को अन्य शिक्षा प्रणालियों से जुदा करती हैं ?

गुरुकुल का अर्थ है, गुरु का कुल। गुरुकुल में गुरु एक केन्द्रवस्तु होता है जिसके कि चारों तरफ उससे कुछ प्राप्त करना चाहते हुए शिष्यगण इकट्ठे हो जाते हैं और गुरु उन अपने शिष्यों को अपने कुल (परिवार) के अंग के तौर पर रखता है एवं (1) गुरु का केन्द्र होना तथा (2) परिवार के रूप में रख कर शिक्षा देना ये दो बातें हैं जो कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आधारभूत हैं। और चूंकि यह प्रणाली वैदिक ऋषियों ने चलायी थी जो कि ब्रह्मचर्य के बिना ज्ञान प्राप्ति को असंभव मानते थे और जिन्होंने संभवतः वेद के ब्रह्मचर्य सूक्त से ही गुरुकुल के विचार को लिया था अतः (1) ब्रह्मचर्य व्रत तथा (2) वेदज्ञान यह दो बातें भी गुरुकुल प्रणाली के अनिवार्य अंग हो गये हैं। यद्यपि ऐसे भी शिक्षणालय हो सकते हैं जिनमें कि पहली दो बातें होवें पर वहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक वैदिक ज्ञान न दिया जाता हो तो भी मेरी समझ में उनके साथ गुरुकुल नाम लगाना उचित नहीं होगा, यद्यपि गुरुकुल प्रणाली से वहाँ शिक्षा दी जाती है। ऐसा एक अर्थ में कहा जा सकता है।

इस हमारे वर्त्तमान गुरुकुल की जो अन्य शिक्षा संस्थाओं से विशेषताएँ हैं वे दो प्रकार की हैं। एक तो गुरुकुल प्रणाली की मौलिक विशेषताएँ हैं और दूसरी वर्तमान परिस्थितियों व अवस्थाओं के कारण आयी विशेषताएँ हैं। इन दूसरी प्रकार की विशेषताओं में मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना, विशेष प्रकार से राष्ट्रीयता का होना आदि मुख्य हैं। पर ये विशेषताएँ सामयिक हैं। जब देश की अन्य शिक्षा संस्थाएँ इन्हें अपना लेंगी तो ये हमारी विशेषताएँ जाती रहेंगी। पर जो गुरुकुल की मौलिक और स्थिर विशेषताएँ हैं, वे तो मेरी समझ में उपर्युक्त चार ही हैं। इनमें से पहिली दो विशेषताओं की तरफ हम ध्यान नहीं दे रहे हैं, ऐसा मुझे डर है। तीसरी ब्रह्मचर्य की विशेषता की तरफ हम अपना यत्न करते जा रहे हैं और चौथी वेद ज्ञान की विशेषता में मेरी समझ में हम काफी सफल भी हो रहे हैं। यहाँ वैदिक धर्म के वायु-मण्डल के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता है।

मैंने गुरुकुल के उद्देश्य में वैदिक धर्म का वायु-मण्डल लिखा है, आर्यसमाज का वायुमण्डल नहीं। इसका कारण यह है कि आर्यसमाज में धार्मिक साम्प्रदायिकता का भाव आता है। गुरुकुल में आर्यसमाज के उच्च असाम्प्रदायिक रूप का अर्थात् वैदिक धर्म का वायुमण्डल होना चाहिये, आर्यसमाज की साम्प्रदायिकता का नहीं। वैसे तो आर्यसमाज में भी साम्प्रदायिकता [शरीर या बाह्यरूप को अधिक महत्त्व देना] नहीं होनी चाहिये, पर समाज में इसक आ जाना स्वाभाविक है परन्तु एक शिक्षा संस्था में (जो कि गुरुकुल है) तो साम्प्रदायिकता, वह साम्प्रदायिकता आर्यसमाज की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ही क्यों न हो, कदापि नहीं होनी चाहिये। यह सभी स्वीकार करेंगे। यह ठीक है कि प्राण व आत्मा के साथ-साथ उस प्राण व आत्मा तक पहुँचने के लिए वाह्यरूप व शरीर का भी साथ-साथ में आश्रय लेना आवश्यक होता है और यही शुद्ध सच्ची साम्प्रदायिकता है, परन्तु ऐसी जो साम्प्रदायिकता गुरुकुल में चाहिये वह तो गुरुकुलीय बातों की ही चाहिये, धार्मिक साम्प्रदायिकता नही। हाँ, धार्मिक-साम्प्रदायिकता भी अपने स्थान पर ठीक होती है पर उसका स्थान गुरुकुल में नहीं है। गुरुकुल में तो उस प्राणभूत वैदिकधर्म का वायुमण्डल होना चाहिये जो कि साम्प्रदायिकता को (वाह्यरूप को) भी काबू में रखता है। अर्थात् गुरुकुल में विद्यार्थी पूरे साम्प्रदायिक बनने के लिए नहीं तैयार किये जाने चाहियें किन्तु इसलिए तैयार किये जाने चाहियें कि वे अपनी आर्यसमाज की साम्प्रदायिकता को, वाह्यमूर्ति को भी सदा ठीक रूप में रख सकें, ठीक रूप से चला सकें। वाह्यरूप मूर्ति बदलती रहा करती है किन्तु प्राण स्थिर रहते हैं। वैदिक-धर्म प्राण है और साम्प्रदायिकता सामयिक वाह्यमूर्ति है। गुरुकुल में तो हमें वैदिक-धर्म के अर्थात् आर्यसमाज के उच्च असाम्प्रदायिक रूप से प्राण को ही ब्रह्मचारियों में संचरित करने का यत्न करना चाहिये।

गुरुकुल में जिन बातों के वाह्यरूप पर भी जोर देना चाहिये (जिनकी साम्प्रदायिकता भी रहनी चाहिये), अर्थात् जिनका वायुमण्डल होना चाहिये वे तो गुरुकुल की मूलभूत उपर्युक्त चार वस्तुएँ ही हैं। गुरुकुल में ब्रह्मचर्य और वैदिक-धर्म का वायुमण्डल होना चाहिये और गुरुकुल में गुरु-शिष्य सम्बन्ध व कुलपने का वायुमण्डल चाहिये। संक्षेप में, अन्य बातों को गौण कर के गुरुकुल में ब्रह्मचर्य संयम तपस्या सिखायी जानी चाहिये और सत्य, प्रेम, पवित्रता, ईश्वरभक्ति आदि का अभ्यास कराया जाना चाहिये। इसलिये गुरुकुल के शिक्षक भी इन्हीं गुणों से सम्पन्न, इन्हीं विशेषताओं के रखने वाले चाहियें, यह अत्यन्त आवश्यक है। एवं गुरु-शिष्य का पवित्र सम्बन्ध पूरा होवे इस पर जोर दिया जाना चाहिये तथा गुरुकुल का छोटे से छोटे कर्मचारी भी परिवार के एक सदस्य की तरह ही गुरुकुल में रहना चाहिये। यह दूसरी बात तभी हो सकती है जब कि गुरुकुल के कार्यकर्त्ता गुरुकुल के कारण ही वहाँ सेवा करने आवें, केवल रोजगारी पाने के लिये या किसी अन्य प्रयोजन से न आवें। इसके बिना गुरुकुल कभी 'कुल' नहीं बन सकता है।

गुरुकुल की दूसरी किस्म की विशेषताओं में से उसकी राष्ट्रीयता पर भी कुछ शब्द लिख देने आवश्यक हैं।

वैसे तो सभी शिक्षा सदा राष्ट्रीय होनी चाहिए। पर यह इस देश का और संसार का दौर्भाग्य है कि हम गुलाम लोगों के हाथ में गुरुकुल शिक्षाप्रणाली का पुनरुद्धार करना आ पड़ा है। वैदिक धर्म तो गुलामी को कभी सह नहीं सकता है। इसलिये चारों तरफ की दासतापूर्ण अवस्थाओं के बीच में आज गुरुकुल की राष्ट्रीयता भी एक विशेषता नजर आती है। और यदि गुरुकुल में इस वैदिक धर्म का, सच्चे धर्म का, वायुमण्डल बना रहेगा तो गुरुकुल में यह विशेषता भी तब तक बनी रहेगी जब तक कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह देश स्वाधीन नहीं हो जावेगा। स्वाधीन होने के बाद शायद गुरुकुल अन्तर्राष्ट्रीय बातों का केन्द्र दीखने लगेगा। अस्तु, तात्पर्य यह है कि इस समय गुरुकुल में जो कई लोग एक राजनैतिकपन सा देखते हैं, उसका इस समय दीखना आवश्यक है, अनिवार्य है और स्वाभाविक है।

अन्त में केवल अब इसका स्पष्टीकरण करना रह गया है कि गुरुकुल से कैसे मनुष्य निकलेंगे ? गुरुकुल से नागरिक निकलेंगे, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि निकलेंगे या आर्यसमाजी निकलेंगे या प्रचारक निकलेंगे इन सबकी जगह मैं यही कहना पसन्द करूंगा कि गुरुकुल से सेवक निकलेंगे और धर्म के सेवक निकलेंगे। गुरुकुल जैसी संस्था को अपने यहाँ से सेवक निकालना ही शोभा देता है। वैदिक धर्म में तो जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी कर्त्तव्यों. धर्मों का समावेश हो जाता है। अत: मैं तो यही कहूँगा कि गुरुकुल से निकलने वाले स्नातक धर्म की माँग को पूरी करेंगे। इस कहने में सब कुछ आ जाता है। इस समय बेशक हमारे दासता पीड़ित होने के कारण हमारा राष्ट्रीय धर्म ही सब से आवश्यक हो रहा है और इसलिए मेरे कई आर्य-सामाजिक भाई राजनैतिक क्षेत्र में अच्छे-अच्छे स्नातक को जाते देख कर घबराते से हैं, परन्तु अभी जब शासन-सत्ता हमारे हाथ में आवेगी तो बहुत से कोरे राजनैतिक लोग धर्म को देश निकाला करना चाहेंगे या अपनी संस्कृति को भी नष्ट करना चाहेंगे तब हमारा और उनका भेद स्पष्ट हो जायेगा। अत: गुरुकुल से धर्म के सेवक निकलेंगे, गुरुकुल के स्नातक विशाल धर्म की माँग को पूरी करेंगे, हमें तो अपना यही ध्येय रखना चाहिये। मैं अपने आर्य सामाजिक भाइयों से कहूँगा कि सेवा, धर्मसेवा, के क्षेत्र अनगिनत हैं, अत: आप वैदिक धर्म के वायुमण्डल में पले हुए अपने स्नातकों को उनमें से किसी भी क्षेत्र में लगने दीजिये और उन सब सेवा कार्यों में वैदिक धर्म का ही प्रचार देखिये। अस्तु।

आशा करता हूँ कि मैं अपने पाठकों के सामने अपनी इस व्याख्या द्वारा प्रारम्भ में कहे गये गुरुकुल के उद्देश्य को स्पष्ट करने में कुछ सफल हुआ हूँगा।

गुरुकुल और राष्ट्रीय शिक्षा*

वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षण गुरुकुल की कोई विशेषता नहीं होनी चाहिये। शिक्षा तो प्रत्येक राष्ट्रीय ही होनी चाहिये। परन्तु चूँकि दुर्भाग्यवश इस विदेशी अराष्ट्रीय सरकार के नीचे अराष्ट्रीय विषैली शिक्षा ही सब कहीं फैली हुई है और भारत के नवबालकों और युवकों को बिगाड़ती हुई भारत का जड़ से नाश

* 'आर्य' के मार्गशीर्ष 1992 अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रही हैं इसलिए गुरुकुल की शिक्षा का राष्ट्रीय होना भी एक बड़ी भारी विशेषता हो गई है। इसलिए जो भाई ब्रह्मचर्य, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, वैदिक संस्कृति आदि गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की महान् विशेषताओं को अभी अनुभव नहीं कर सकते, उन्हें केवल इस भारी लाभ के लिए भी अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना चाहिए कि यहाँ उनके बालक प्राण-प्रद राष्ट्रीय शिक्षा के वायुमण्डल में बढ़ सकेंगे और सच्चे अर्थ में शिक्षित जीवन प्राप्त कर सकेंगे।

गुरुकुल में शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता के संस्कार पूरी तरह डाले जाते हैं इसमें तो कोई सन्देह की बात नहीं है। बल्कि उलटा कई लोगों को विशेषतः कुछ आर्यसमाजी भाइयों को गुरुकुल में आवश्यकता से ज्यादा राष्ट्रीयता नजर आती है। एक भाई के शब्दों में 'वहाँ पॉलिटिक्स की आग पहले ही बहुत बलती रहती है।' परन्तु हम अभी देखेंगे कि ऐसे भयभीत होने की भी कोई बात नहीं है।

पहिले हमें यह देखना चाहिए कि गुरुकुल में राष्ट्रीयता कैसे आई है? कहाँ से आई है? गुरुकुल आर्य समाज की एक संस्था है। यदि हम विचारेंगे तो देखेंगे कि चूँकि गुरुकुल आर्यसमाज की संस्था है केवल इसीलिए गुरुकुल का राष्ट्रीय शिक्षणालय होना आवश्यक हो गया है। इस युग के महापुरुष दयानन्द ने आर्यसमाज को जिस प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए जन्म दिया है वह संस्कृति (दूसरे शब्दों में) भारतीय संस्कृति व राष्ट्रीय संस्कृति ही है। इसलिए प्रारम्भ के आर्यसमाजी अपने अगाध देशप्रेम के लिए प्रसिद्ध होते थे—बल्कि आर्यसमाजी और राजद्रोही समानार्थक शब्द समझे जाते थे। इस आर्यसमाज ने जब अपने आप को बद्धमूल करने के लिए काङ्गड़ी के जंगल में गुरुकुल संस्था की स्थापना की तो गुरुकुल को भी सरकार जिस विरोध की दृष्टि या भय की दृष्टि से देखती थी, उसकी मनोरंजक कथायें पुराने लोग जानते हैं। यह और बात है कि अब आर्यसमाज में वह तेज न रहा हो, आर्यसमाज में ऐसे बहुत से लोग आ गये हों जिनकी रोजी किसी न किसी प्रकार सरकार के आधीन होने के कारण वे दुर्बलतावश उस पवित्र धर्म से अपनी आँख मींचकर जीते रहने के अभ्यासी हो गये हों और गुरुकुल से भी सरकार को भय न दीखता हो, तो भी यह तो सूर्य की तरह स्पष्ट है कि गुरुकुल के एक प्रचण्ड राष्ट्रीय शिक्षा संस्था होने का बीज इसके आर्यसमाज की संस्था होने में ही विद्यमान है।

इसलिए हम देखते हैं कि गुरुकुल के स्वप्न को देखने वाले 'ऋषि' (महात्मा मुन्शीराम) ने दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कालेज को बेकार निरर्थक समझकर गुरुकुल को सरकार के किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से जुदा रखकर खोला। यही राष्ट्रीय शिक्षणालय का वर्तमान काल में सबसे पहिला लक्षण है। सरकार की डिग्री का मोह छोड़ना, और सरकारी पैसे का लोभ छोड़ना। इसके बिना सरकारी पंजे से अछूना रहना असम्भव है। यह बात महात्मा मुंशीराम की तीव्र बुद्धि देखती थी। अतएव उन्होंने अपनी ही डिग्री (उपाधि) में गौरव उत्पन्न करने का महान दुःसाध्य काम करना अपने ऊपर लिया और गरीब भारतीय जनता के आगे दर-दर फिरते हुए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झोली पसारना स्वीकार किया किन्तु कभी सरकारी डिग्री और सरकारी पैसे की तदेफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। आज तो मेरे जैसा भी देख सकता है कि गुरुकुल को देखकर खुली कई सुन्दर संस्थाएँ सरकारी प्रलोभन में आकर प्रारम्भ में निस्तेज हुई और फिर नष्ट हो गई। परन्तु उस समय इस सत्य को देखना और चारों तरफ के उस घोर अन्धेरे और तूफान के बीच में राष्ट्रीय शिक्षा की इस ज्योति को जलाये रखना महात्मा मुंशीराम जैसे तपस्वी और उनके साथी आर्यसमाजियों का ही काम था। उस महात्मा ने सरकार से मिल सकने वाले लाखों रुपयों को ठुकरा दिया पर अपनी आर्य जनता और परमेश्वर का भरोसा नहीं छोड़ा। यही कारण है कि गुरुकुल आज तक सजीव है। अब तो महात्मा गांधी की कृपा से राष्ट्रीय लोगों में सरकार से असम्बद्ध रहने का एक फैशन सा हो गया है, कहा जा सकता है। पर अब से तीस साल पहिले ऐसा करने वालों का महत्त्व कितना है यह अनुभव किया जा सकता है पर आज भी यदि किन्हीं आर्यसमाजी भाइयों के मन में कमजोरी के बस अपने गुरुकुल को सरकार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती हैं तो उन्हें गुरुकुल के उस पवित्र और प्रबल उद्भव को स्मरण कर लेना चाहिये और कठोर तपस्या से उपजी इस उज्ज्वल वस्तु को कलुषित करने के विचार तक को अपने अन्दर नहीं उठने देना चाहिये।

सरकार से सर्वथा असम्बद्ध संस्था में ही देश-प्रेम का रस स्वच्छन्दता से बह सकता है और यह उच्च प्रेम विकसित हो सकता है। यह राष्ट्रीय शिक्षणालय में रहने वाला दूसरा तत्त्व है। इस गुलाम देश में बालकों में जितना देश-प्रेम पैदा किया जा सके उतना ही थोड़ा है। पर जहाँ इस विदेशी सरकार के हाथ की छाया भी पड़ती हो तो कोमलहृदय बालकों में देशप्रेम विकसित होने में बाधा पड़ना अवश्यम्भावी है। गुरुकुल के विद्यार्थियों में जो आज देश-प्रेम की उमंग, भारत को स्वाधीन देखने की चाह पायी जाती है वह उनका स्वाधीन खुले वायु-मण्डल में—अपने स्वराज्य के वायु मण्डल में पलने के कारण हैं। आज जो करोड़ों भारत के बच्चे सरकारी मदरसों में दासता का, आत्महीनता का पाठ "सभ्यता" के साथ पढ़ रहे हैं उसे देखकर जी में यही आता है कि इस पढ़ाई से उनका बे-पढ़ा रहना अच्छा है या यह जी में आता है कि वह समय तो कब आयेगा जबकि ग्राम-ग्राम में एक छोटा-सा गुरुकुल खुल सकेगा।

पर हमारे अन्दर यह अभीष्ट देश-प्रेम कैसे पैदा हो सकता है जब कि हम अपने देश के इतिहास को ऐसा पढ़ते हों जैसा सरकारी स्कूलों में पढ़ाया जाता है? इसलिये भारत का सच्चा इतिहास पढ़ाया जाना गुरुकुल की या राष्ट्रीय शिक्षा की तीसरी पहिचान बनी है। हमारा प्राचीन काल कितना उन्नत था, हमारे पूर्व पुरुष भी कितने ऋषि, ज्ञानी, विजेता और धनसंपत्ति आदि से भी गौरवशाली हुए थे यह अनुभव हमें ऊँचा उठाता है, हम में नवजीवन संचार करता है और अपने देश के लिए आत्म-बलिदान करने योग्य प्रेम उत्पन्न करता है और विदेशी सरकार का स्वार्थ इन्हीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध भावनाओं के कुचलने में सिद्ध होता है। इसलिये गुरुकुल में श्रमपूर्वक तैयार किया गया वास्तविक भारत का इतिहास पढ़ाया जाता है। ऐसा प्रयत्न करने के कारण ही गुरुकुल सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा देने में सफल हो रहा है।

इसी प्रकार अपनी मातृ-भाषा (हिन्दी) द्वारा उच्च-से-उच्च शिक्षा देना गुरुकुल की चौथी विशेषता है जिससे गुरुकुल का शिक्षण राष्ट्रीय बनता है। प्रसन्नता की बात है कि आज इस दिशा में अन्य सरकारी, अर्द्धसरकारी शिक्षणालय भी कुछ अग्रसर हो रहे हैं। परन्तु गुरुकुल में आज से 20 वर्ष पहिले से न केवल इतिहास, अर्थशास्त्र और पाश्चात्य-दर्शन (Western Philsophy) की किन्तु रसायन आदि विज्ञानों की भी उच्च-शिक्षा (B.A., M.A. तक की शिक्षा) हिन्दी भाषा द्वारा ही सफलता पूर्वक दी जा रही है।

इनके अतिरिक्त शुद्ध खादी के वस्त्रों का तथा अन्य भी यथासम्भव स्वदेशी ही वस्तुओं का उपयोग करना, गुरुकुल में राष्ट्रीय झण्डे की स्थापना, गुरुकुल में देश के नेताओं की पूजा करना आदि सब राष्ट्रीय-शिक्षा के लिए आवश्यक तत्त्व विद्यमान हैं। बल्कि मैं तो कहूँगा कि गुरुकुल में जो संस्कृत की शिक्षा दी जाती है, वेद और शास्त्रों का पाठविधि में गौरवपूर्ण स्थान है, गुरुकुल में की जाने वाली उपासना वैदिक प्रकार की है तथा वैदिक-संस्कृति के अनुसार सदा सरल तपस्यामय ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन बिताया जाता है वह सब भी गुरुकुल की राष्ट्रीयता के ही परिचायक हैं।

शायद मेरे इस अन्तिम कथन में ही वह बात आ गई है जिसके कारण कई लोग गुरुकुल को राष्ट्रीय-शिक्षणालय कहने में हिचकते हैं। सुना है कि जामिया-मिलिया इस्लामिया के प्रिंसिपल श्रीयुत जाकिरहुसैन साहिब ने गुरुकुल पर लिखते हुए अपने एक लेख में लिखा था कि गुरुकुल राष्ट्रीय शिक्षणालय नहीं है। मैंने यह लेख पढ़ा नहीं है। परन्तु फिर भी साधारण रूप से अपना विचार उपस्थित कर सकता हूँ कि कोई भी शिक्षणालय तब तक राष्ट्रीय है जब तक कि उसने अपने विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावनाओं को विकसित होने के लिए सब अनुकूलता रखी हैं जिन्हें मैं चार-पाँच लक्षण रूप में ऊपर बतला चुका हूँ। फिर वह शिक्षणालय अपनी निजी विशेषता चाहे जो कुछ रखता हो। सरकार के असम्बन्ध, देश-प्रेम की शिक्षा, शुद्ध इतिहास और हिन्दी भाषा का माध्यम होना आदि ऐसे लक्षण हैं जिन्हें सब विचारकों ने राष्ट्रीय शिक्षणालय के लिए ठीक पहिचान माना है। बेशक गुरुकुल आर्यसमाज का (एक विशेष धर्म संस्था का) शिक्षणालय है पर यदि आर्यसमाज की संस्था होने से भी उपर्युक्त चार-पांच लक्षण अक्षुण्ण रह सकते हैं – और ये अक्षुण्ण रहते हैं—तो गुरुकुल अवश्य राष्ट्रीय संस्था है। पर यह तो 'राष्ट्रीयशिक्षा' शब्द को संकुचित अर्थों में प्रयुक्त करने से हुआ।

यदि राष्ट्रीय शिक्षा शब्द को विस्तृत अर्थों में प्रयोग किया जाय तब तो शायद गुरुकुल ही सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय शिक्षणालय कहा जाना चाहिये। बेशक गुरुकुल राष्ट्रीय-आन्दोलन (या यूँ कहना चाहिये राजनैतिक आन्दोलन) की उपज नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर राष्ट्रीयता भी एक गहरी वस्तु है, यह केवल राजनैतिक आधार पर ठहरने वाली वस्तु नहीं है। गुजरात-विद्यापीठ में सन् 1930 में हुए राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन में जब यह प्रस्ताव पेश किया गया कि "राष्ट्रीय शिक्षणालय का उद्देश्य स्वराज्य के सैनिक तैयार करना है" तो मैंने इसका विरोध किया था। मैंने यह कहकर विरोध किया था कि यदि स्वराज्य का अर्थ केवल राजनैतिक स्वराज्य है या आर्थिक स्वराज्य भी है पर सांस्कृतिक स्वराज्य नहीं है तो गुरुकुल इसको स्वीकार नहीं कर सकता। गुरुकुल इसे तभी मान सकता है जब कि स्वराज्य का अर्थ सांस्कृतिक स्वराज्य भी हो। सब ने इसे माना। महात्मा गांधी सदा ही संस्कृति को मुख्य स्थान देते रहे हैं। उस रोज भी पूज्य गांधी जी ने अपने भाषण में इसे दोहराया कि सांस्कृतिक स्वराज्य ही असली स्वराज्य है। उसी अर्थ में मैं कहता हूँ कि गुरुकुल सांस्कृतिक स्वराज्य के सैनिक तैयार करने वाली संस्था है। इसलिये गुरुकुल उस वस्तु को—अपनी संस्कृति को—सिखाने वाली संस्था है जो कि हमारी राष्ट्रीयता का आधार है। दूसरे शब्दों में गुरुकुल राष्ट्रीयता की जड़ जमाने वाली संस्था है न कि राष्ट्रीयता के बाहिरी रूप-रंग के देने वाली संस्था। इस अर्थ में मैं यह कहने की धृष्टता करता हूँ कि गुरुकुल—अपने असली रूप में—सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय संस्था है और गुरुकुल की संस्कृत भाषा और वेद की शिक्षा तथा ब्रह्मचर्य आदि विशेषतायें उसकी गम्भीर राष्ट्रीयता के ही परिचायक हैं, न कि उस की अराष्ट्रीयता के। राजनैतिक आन्दोलन से पैदा हुए बहुत से राष्ट्रीय शिक्षणालय जो उतनी सफलता पूर्वक नहीं चल सके हैं जितना कि गुरुकुल का शिक्षणालय अब तक चलता रहा है इसका कारण भी मेरी समझ में गुरुकुल का उपर्युक्त प्रकार से गहरे अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षणालय होना है, और कोई कारण नहीं।

गुरुकुल की राष्ट्रीयता के इस यथार्थ विवेचन के बाद यह भय रखना निरर्थक है कि वहाँ के विद्यार्थी व स्नातक राष्ट्रीयता में अति करने वाले व पथ भ्रष्ट होने वाले होते हैं या हो जायेंगे। वैसे तो यह भी ठीक है कि वर्तमान अवस्था में अराष्ट्रीय होने की अपेक्षा तो अति राष्ट्रीय होना सैंकड़ों दर्जे अच्छा है। इस आग से परे रह कर सड़ने की अपेक्षा इस आग में जल कर राख हो जाना सैंकड़ों दर्जे अच्छा है। परन्तु जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है गुरुकुलीय शिक्षा राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में भी समतोलना (समता) ही सिखाती है। इसका कारण स्पष्ट है कि गुरुकुल की राष्ट्रीयता एक बड़े विस्तृत आधार पर अपनी स्थिति रखती है। धर्म के आधार पर, सार्वभौम और सार्वकालिक धर्म के आधार पर स्थिति रखती है। अतः हमारी राष्ट्रीयता विश्व-बन्धुता के कभी विरुद्ध नहीं है। जो कुछ आर्यसमाजी भाई राष्ट्रीयता को धर्म विरोधी वस्तु समझने लगे हैं, बल्कि राष्ट्रीयता और नास्तिकता को एक बात कहते दीखते हैं उन्हें इस हमारी विस्तृत धर्म मूलक राष्ट्रीयता और दूसरों की संकुचित बाहरी राष्ट्रीयता का भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जैसा कि मैं पहले भी लिख चुका हूँ यद्यपि इस समय बाहरी राष्ट्रीयता में और दूसरों की राष्ट्रीयता में कोई भेद न मालूम पड़े और कइयों को गुरुकुल एक अनुचित गर्मी का (जो कि वास्तव में—'जीवन का' कहना चाहिये) केन्द्र दीखता हो तो भी जब भारत अपने राजनैतिक स्वराज्य को प्राप्त कर लेगा (या इससे पहिले भी भारत का नेतृत्व गांधी जैसे सच्चे धार्मिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुओं के हाथ में नहीं रहेगा) हमारी और दूसरों की राष्ट्रीयता का भेद स्पष्ट हो जायगा और तब शायद गुरुकुल राष्ट्रीयता के (आग के) केन्द्र के साथ उन्हें अन्तर्राष्ट्रीयता की शक्ति का, केन्द्र भी दीखने लगेगा। अस्तु।

इस लेख में मैंने गुरुकुल की राष्ट्रीयता का शुद्ध स्वरूप प्रकट करने का यत्न किया है। मेरा मतलब यह नहीं है कि हमने गुरुकुल में राष्ट्रीयता के इस आदर्श को प्राप्त कर लिया है, परन्तु यह मतलब है कि हमारा यह आदर्श है और हम इसके लिए यत्नशील हैं। परमेश्वर हमें उस आदर्श को प्राप्त करावे।

आर्यसमाज में भिक्षा-प्रणाली*

(विशेषतः गुरुकुल के लिए)

गुरुकुल के लिए भिक्षा करने के विषय में अपने भाव लिख देना अब आवश्यक समझता हूँ। मैंने भिक्षा कहा है, चन्दा नहीं। आज कल चन्दा माँगना एक पेशा हो गया है, अतः बहुत अधिक संस्थाएँ तथा बहुत से कुशल पुरुष चन्दा माँगने लगे हैं, तथा लोग भी विभिन्न कारणों से प्रेरित होकर तथा विभिन्न प्रकार के दबाव व विचार से प्रेरित होकर रुपया देते हैं। यह देखकर भिक्षा के शुद्ध स्वरूप को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

भिक्षा का अर्थ है—परमेश्वर के कार्य के लिए माँगना और (यह भी कहा जा सकता है कि भिक्षा का अर्थ है परमेश्वर से माँगना, मनुष्य से नहीं) अतः भिक्षा माँगने का अधिकारी हर कोई पुरुष नहीं है। इसलिये मैंने देर तक स्वयं भिक्षुक बनने की, अपना निर्वाह भिक्षा द्वारा करने की हिम्मत नहीं की। यद्यपि मैं पिछले 10–12 वर्षों से भिक्षुक बन जाने की सोचा करता था। अन्त में सन् 1933 के अप्रैल में जब मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया कि वस्तुतः सब धन परमेश्वर का है और वह उसी के कार्य के लिए है तभी से (गुरुकुल का आचार्य-पद छोड़ने के बाद से) मैंने स्वयं भिक्षा-वृत्ति स्वीकार कर ली, वेतन भोगी रहना छोड़ दिया। ब्राह्मण का यह भिक्षा-धर्म स्वीकार कर लेने पर इन पिछले तीन-चार वर्षों में मुझे धन सम्बन्धी उपर्युक्त सत्य (अर्थात् धन परमेश्वर का) दिनों दिन और स्पष्ट होता गया है तथा मैं जहाँ

---

*'आर्य' के फाल्गुन 1993 अंक में इस सम्पादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित—"निम्नलिखित पत्र आचार्य देवशर्मा जी ने गुरुकुल के लिए भिक्षा की पद्धति विषय पर श्रीमान् मुख्याधिष्ठाता जी के नाम लिखा है। परन्तु यह पत्र सम्पूर्ण आर्यजनता के नाम भी वैसा ही अर्थ रखता है। अतः नीचे दिया जाता है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिक्षा-वृत्ति के गौरव को समझता गया हूं वहाँ इसके साथ-साथ भिक्षुक होने की भारी जिम्मेवारी को भी समझता गया हूँ।

इसलिये अब जब मैं फिर गुरुकुल में आचार्य हुआ तो मेरे सामने गुरुकुल के लिए भी भिक्षा करने का सवाल आया और गुरुकुल के लिए धन एकत्र करने के वर्त्तमान तरीके को मेरा अन्तःकरण नहीं स्वीकार कर सकता। गुरुकुल एक ब्राह्मण संस्था है, अतः ईश्वरीय कार्य करने के प्रयोजन से ही यह गुरुकुल धन आदि की बाह्य सहायता के लिए जनता पर आश्रित है अर्थात् परमेश्वर पर आश्रित है। यदि ऐसा नहीं है तो गुरुकुल में मुझे अपना कोई स्थान नहीं दिखाई देता है। और यदि ऐसा है तो मेरा मुख्य कार्य गुरुकुल के अन्दर के कार्य को अच्छी से अच्छी तरह करना और फिर निश्चिन्त रहना है, कम से कम बाहर से आने वाले धन के लिए चिन्ता करना मेरा काम नहीं है। यदि हमारा कार्य अच्छा होगा, देश, धर्म व संसार के लिए आवश्यक होगा तो उसके लिए आवश्यक धन भी अवश्य मिलेगा, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है और मेरी समझ में किसी और को भी नहीं होना चाहिए। अतएव ठीक स्थिति तो यह है कि गुरुकुल को सब दान गुरुकुल में ही पहुँच जाना चाहिए, इसके लिए गुरुकुल के आचार्य को या गुरुकुल के कुछ अन्तरीय लोगों को स्थान-स्थान पर चन्दा माँगते फिरना नहीं चाहिए। इस तरह चन्दा करते फिरने की अवस्था से हमारे इस गुरुकुल का पद बहुत ऊँचा है या ऊँचा होना चाहिए। गुरुकुल अब ऐसी वस्तु नहीं है जिसे लोग न जानते हों और जिसकी चर्चा करने के लिए गुरुकुल के स्वयं आचार्य को इस तरह द्वार-द्वार फिरने जाने की आवश्यकता हो। यह कहने की जरूरत नहीं कि द्वार-द्वार फिरना मुझे वैयक्तिक तौर पर कुछ भी कष्टकर नहीं प्रतीत होता। मेरे लिए सभी कार्य (जब तक वे कर्तव्य कर्म हैं) एक ही समान आनन्ददायक हैं। यह मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि किसी दाता के 'न' करने से या नाना प्रकार के अप्रिय उत्तर देने से मुझे जरा भी बुरा नहीं लगता है। इस सब कार्य में मैं मजा ले सकता हूँ और मुझे मजा आता है। परन्तु जो कुछ बुरा लगता है वह यह है कि इससे गुरुकुल अपने पद से गिरता है। गुरुकुल के आचार्य के लिए यह ऐसा कार्य है जिससे कि उसे केवल धन के लिए उचित स्थान से नीचे उतरना पड़ता है और इससे धन को उसके अपने आवश्यक महत्त्व से बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। यही एक मात्र कारण है जिससे कि मेरा अन्तःकरण गुरुकुल के लिए भी इस तरह भिक्षा या चन्दा करने की इजाजत नहीं देता।

इसमें भी मुझे जरा सन्देह नहीं कि गुरुकुल को उसके कार्य के लिए आवश्यक धन गुरुकुल में पहुँच जाया करेगा, यदि हम सचमुच भिक्षा-वृत्ति में रहने लगें अर्थात् परमेश्वर पर पूर्ण विश्वास रखते हुए अपना सारा यत्न गुरुकुल को अन्दर से अधिक-अधिक सच्चा गुरुकुल बनाने में करते रहें और इस सब कार्य को ईश्वरीय कार्य समझ कर पूर्ण निःस्वार्थ भाव से कार्य करते रहें। प्रारम्भ के कुछ वर्ष चाहे गुरुकुल में कम धन आवे पर पीछे आर्थिक स्थिति भी अवश्य ठीक हो जायगी। बल्कि फिर जो स्वेच्छा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, भक्ति से, गुरुकुल के आदर्शों को पूरा करने की ऊँची भावना से ही दिया गया धन गुरुकुल को प्राप्त होगा, वह धन अधिक तेजस्वी होगा। वह थोड़ा धन भी बहुत लाभ पहुँचायेगा। स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के इस कथन को मैं सत्य मानता हूँ कि गुरुकुल की यथेष्ट सफलता न होने का एक कारण यह है कि यहाँ पर धन ठीक प्रकार का नहीं आता। अच्छी कमाई या बुरी कमाई की बात का विवेचन करने का यहाँ अवसर नहीं है। यहाँ तो इतना ही कहना है कि दानी ने वह दान किस भाव से दिया है इसी बात का सब से अधिक महत्त्व है। यदि उसने बिना किसी अन्य स्वार्थ के, बिना किसी दबाव के, गुरुकुलीय आदर्शों को सफल करने के लिए ही दान दिया है तो वह ठीक तरह का दान है और इसकी पहिचान यह है कि वह बिना किसी बाह्य प्रेरणा के गुरुकुल को पहुँचा दिया जायेगा। अब भी बहुत सा रुपया लगभग 14 या 15 हजार प्रति वर्ष, गुरुकुल को गुरुकुल में ही पहुँचा दिया जाता है। बाकी 25 हजार भी गुरुकुल में ही क्यों नहीं पहुँच सकता ? यदि जनता को वस्तुतः गुरुकुल से कोई अरुचि हो गई है और उसके कारण वह गुरुकुल को धन नहीं देना चाहती तो वह उचित ही है, वह होना ही चाहिए, और गुरुकुल को उसे सहना चाहिये। परन्तु मुझे जहाँ तक ज्ञान है ऐसी कुछ बात विशेषरूप से नहीं कही जा सकती। जितनी ऊँची आशाएँ भावुकतावश जनता ने गुरुकुल से कर ली थीं उनका पूरा न उतरना मामूली सी बात है। यह हुआ ही करता है। फिर यदि इस गुरुकुल में कोई वास्तविक कमी है तो वह गुरुकुल में उतने उच्चकोटि के व्यक्ति न मिलने के कारण है जितने कि गुरुकुल में होने की आशा की जानी चाहिये। फिर भी जनता की तरफ से धन कम आने का मुख्य कारण जनता में ही धन की कमी होना तथा जनता से आर्थिक सहायता चाहने वाली संस्थाओं का बढ़ जाना है, और कोई बड़ा कारण नहीं है अस्तु ! कहने का तात्पर्य यह है भिक्षा का तरीका बदलने से गुरुकुल को आर्थिक हानि पहुँचने की भी मुझे कोई आशंका नहीं है।

सब धन परमेश्वर का है और मेरा काम परमेश्वर के कार्य (जगत्-हित का कार्य) में पूर्णतया लगे रहना है और बाह्य सहायता के लिए भी परमेश्वर पर (भिक्षा पर) अवलम्बित रहना है। ये बातें मेरे लिए कोरी फिलासफी की या हवाई बातें नहीं हैं किन्तु जीवन के कठोर सत्य हैं, अतएव मेरा निश्चय यह है कि अब वर्तमान स्थिति के अनुसार गुरुकुल को उसके लिए आवश्यक धन गुरुकुल में ही पहुँच जाना चाहिए या जितना धन उसे पहुँच जाय (भिक्षा में मिले) उसी से उसे काम चलाना चाहिये। कम से कम मुझे उस तरह चन्दे करने को बाध्य न समझा जाय। अधिक से अधिक मैं यह कर सकता हूँ कि मुझे जहाँ के लोग प्रेम पूर्वक भिक्षा के लिए निमंत्रित करें वहाँ मैं चला जाऊँगा पर वहाँ भी मुझ से वैसा कार्य न लिया जाय जिसका मतलब रुपये को ज्ञान से अधिक महत्त्व देना हो। वैसे चाहे कितनी ही तपस्या का काम लिया जाय। जनता से मिलना तो गुरुकुल के अधिकारियों को चाहिए ही। जनता को ज्ञान-दान देना भी हमारा कर्त्तव्य है। पर वह ज्ञान-दान रुपये के बदले में नहीं। ज्ञान का बदला तो रुपया से दिया ही नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकता। ये ही बातें हैं जिन्हें अब आर्यसमाज को अपने संगठन में ठीक रूप में स्थापित कर देना चाहिए। इसीलिये मैं चन्दे के रूप को बदलना चाहता हूँ।

यह कहने की जरूरत नहीं कि इस प्रकार जो धन मुझे बुलाकर प्रेम-पूर्वक गुरुकुल के लिए दिया जायेगा या इसी भाव से सीधा गुरुकुल मेरे नाम से भेजा जायेगा उसका उसी भाव से उपयोग किए जाने की जो जिम्मेवारी मुझे पर आ जाती है उसे भी मैं अवश्य उठाऊँगा। यद्यपि अभी तक रुपये-पैसे के खर्च की जिम्मेवारी से मैं सर्वथा बरी था।

अब यह आप देख लीजिये कि कहीं-कहीं के गुरुकुल-प्रेमी सज्जन मुझे ऐसी भिक्षा के लिए बुलाएँगे या नहीं।

गुरुकुल की विशेषताए*

गुरुकुल की मौलिक विशेषताएँ चार हैं—

(1) गुरु का केन्द्रभूत होना।
(2) कुल बना कर रहना।
(3) ब्रह्मचर्य।
(4) वैदिक संस्कृति।

इनमें से प्रथम तीन बातें तो ऐसी हैं जो कि शिक्षा पद्धति के तौर पर महत्त्व रखती हैं अतः उन्हें सभी शिक्षा-संस्थाएँ अपने उद्देश्यों के अनुसार थोड़ा या बहुत अपना सकती हैं। चौथी बात ऐसी है जो कि उतना जनता से सम्बन्ध नहीं रखती जितना सम्बन्ध उद्देश्य से रखती है। इसमें उचित प्रकार की साम्प्रदायिकता भी है। अतः आर्यसमाज ने (वैदिक धर्म का प्रचार करने वाली एक संस्था ने) गुरुकुलों को प्रारम्भ किया है। यद्यपि यह ठीक है कि पद्धति के तौर पर पहली तीन बातों को लेकर गैर आर्यसमाजी संस्थाएँ भी गुरुकुल चला सकती हूँ, चला रही हैं और चलाना चाहिए पर इस चौथी बात का भी एक सामान्य रूप है जो कि कम से कम भारत देश में सबको स्वीकार्य हो सकता है और उसे साम्प्रदायिक माना नहीं जायगा। वह है 'भारतीयता'। वैदिक संस्कृति को यदि वर्तमान रूप दे दिया जायगा तो उसे हम 'भारतीय संस्कृति' कह सकते हैं। यद्यपि भारतीय संस्कृति और वैदिक संस्कृति में बहुत लोग भेद करना चाहेंगे तो भी इसमें दो मत न होंगे कि भारतीय संस्कृति का आधार वैदिक संस्कृति ही है। अस्तु, अब मैं इन चारों मूल तत्वों का (चौथे मूल तत्व का नाम वैदिक संस्कृति की जगह भारतीय संस्कृति करके) लेख में विचार करूंगा

*'आर्य' के कार्तिक 1994 अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इसमें से किस बात को किस किस रूप में स्वराज्य सरकार की शिक्षा पद्धति में अपनाया जा सकता है।

हम गुरुकुल कहते हैं, शिष्यकुल नहीं। किसी प्रकार का विशेषत: आध्यात्मिक (भारी प्रभावशाली ज्ञान रखने वाले—अतएव गुरु से] वह ज्ञान पाने के लिए उसके इर्द गिर्द बहुत से शिष्य एकत्रित होते थे। तब गुरुकुल बनता था। इस शिक्षा-प्रणाली में 'गुरु' की मुख्यता है। जैसा गुरु होगा, वैसा ही विद्यार्थी बनेगा।

अत: पहिली बात यह है कि हमारे देश की शिक्षा पद्धति में शिक्षक बहुत सच्चरित्र और योग्य होने चाहिएं। इसका जितना ध्यान रखा जाय, उतना थोड़ा है। इस दिशा में गुरुकुल प्रणाली का तात्पर्य (Spirit) यहाँ तक है कि ठीक प्रकार के शिक्षक न मिलें तो बालकों को बेशक अशिक्षित रखा जाय। यह हजार गुणा उत्तम होगा पर खराब तथा अयोग्य शिक्षक के नीचे पढ़ने देना बहुत बुरा है।

गुरु के केन्द्र होने में दूसरा भाव अपनी रुचि के अनुकूल गुरु को चुनना है। यह बात हमारे यहाँ पहिले चातुर्वर्ण्य के अनुसार होती थी। आजकल यह कहाँ तक हो सकता है, यह एक लम्बा विषय है जिस पर कि अन्त में गुरुकुल प्रणाली पर सामूहिक रूप से विचार करते हुए कुछ निवेदन करूंगा परन्तु बालक को गुणकर्मानुसार शिक्षा देना, यह भी गुरुकुल पद्धति का एक तत्व है जिस पर कुछ-कुछ अमल अब भी किया जा सकता है। विद्यार्थी शिक्षा-काल में कौनसा उद्योग सीखे, इसके निश्चय में उसके गुण-क्रम प्रवृति पर ध्यान देना, यह तो किया ही जा सकता है।

यह पद्धति प्रत्येक शिष्य पर वैयक्तिक ध्यान देने की पद्धति है अत: इसमें गुरु अपने चारों तरफ उतने ही शिष्यों को इकठ्टा करता है जितने वह संभाल सकता है। अत: यदि हम इस तत्व पर ध्यान देवें तो हमारी पाठशालाओं में एक शिक्षक के पास परिमित ही विद्यार्थी होने चाहिएं। मेरे विचार में एक शिक्षक के पास बीस से अधिक विद्यार्थी नहीं होने चाहिएं।

गुरुकुल में गुरु और शिष्य, पिता और पुत्र के से अत्यन्त निकट सम्बन्ध से रहते हैं। ज्ञान द्वारा दूसरा जन्म देने वाला (पिता) गुरु होता है। अतः गुरुकुलप्रवास उस पिता के कुल-कुटुम्ब में रहता है। इस तत्त्व को सार्वजनिक शिक्षा में निम्नप्राकर लाया जा सकता है—

(1) शिक्षक और विद्यार्थी यथाशक्ति अधिक से अधिक देर साथ रह सकें। छात्रावास में विद्यार्थियों को रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इतना ही काफी नहीं, किन्तु विद्यार्थी के सारे जीवन में सोना, उठना, कार्य, विश्राम, भोजन, व्यायाम, परिश्रम सब में वह अपने शिक्षक के संपर्क में रहकर शिक्षित हो सकें, इसका प्रबन्ध होना चाहिये। विद्यार्थी जो कुछ भी घर में या ग्राम में करता है, वह सब शिक्षा के पथ-प्रदर्शन में पाठशाला में कर सके तभी गुरु-सम्पर्क का पूरा लाभ मिल सकता है। प्रारम्भ में यदि विद्यार्थियों के दिन रात पाठशाला में रह सकने की व्यवस्था न हो सके तो वे अधिक से अधिक देर रहें। केवल भोजन शयन के लिये घर जावें या कभी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन भी पाठशाला में ही करें, और कभी-कभी छुट्टी वा भी दिन मिलकर पाठशाला में ही बितायें इसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

(2) जब शिक्षक का पिता का सा यह सम्बन्ध विद्यार्थियों से होना अभीष्ट है तो अब हमारी पाठशालाओं में भय, आतंक, हकूमत के वायुमण्डल की जगह प्रेम, सहानुभूति तथा सहयोग का वायुमण्डल हो जाना चाहिये। बाहिरी दण्ड का स्थान कम से कम रह जाना चाहिये।

(3) विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण में शिक्षक का यह अधिक से अधिक सम्पर्क बहुत अधिक सहायक होता है अतः शिक्षक के इस विद्यार्थी सम्पर्क में यह दृष्टि सदा रहनी चाहिये।

(4) जैसा कि घर, कुल, कुटुम्ब अपने आप में परिपूर्ण होता है वैसे ही पाठशालारूप कुटुम्ब को भी जीवन दृष्टि से परिपूर्ण होने का अर्थात् विद्यार्थियों को जीवन की सब अवस्थायें यहीं मिल जाएं, इसका यत्न करना चाहिये। अतः पाठशाला भोजन वस्त्र आदि निर्वाह की दृष्टि से आवश्यक बातों में स्वावलम्बी बन सके, इसका प्रयत्न करना चाहिये। पाठशाला के साथ कुछ भूमि हो, जिसमें विद्यार्थी खेती कर सकें, कपास को कात-बुन सकें, तथा गोपालन आदि दैनिक जीवन के अन्य आवश्यक काम कर सकें तो यह कुटुम्ब भावना के आदर्श को पूरा करने वाली बातें होंगी और सच्ची शिक्षा देने वाली होंगी।

(5) भौतिक जीवन देने वाले माता-पिता के घर की अपेक्षा इस अधिक बड़े घर को, ग्रामरूपी घर को (जिसमें पिता शिक्षक हैं) अनुभव कराना इस बात के द्वारा बताना चाहिये कि विद्यार्थी में ऐसी भावना उत्पन्न हो जाय कि वह राष्ट्र को अपना घर समझने लगे और अपने को राष्ट्र का पुत्र समझे। केवल माता-पिता का पुत्र नहीं। विद्यार्थी अपने पाठशाला के सब काम राष्ट्र रूपी कुटुम्ब के लिए करे, निज के लिए या निजी कुटुम्ब के लिए नहीं। उनका शिक्षक भी उनके लिए राष्ट्र का ही प्रतीक है, यह समझने लगे।

(6) यह कहने की जरूरत नहीं कि इस कुटुम्ब भावना को रखने वाले नये प्रकार के शिक्षक बहुत वेतन लेने वाले नहीं रहेंगे जो आसपास के जीवन से भिन्न जीवन बिताने में अपना बडप्पन समझें, और रोब जमावें। गुरु बड़े योग्य होंगे, ज्ञानी होंगे ग्राम के बालकों के ही नहीं किन्तु सब ग्रामवासियों के गुरु होंगे, पूजा के पात्र होंगे। तब हम उस अवस्था के समीप पहुँच जायेंगे जिसमें प्रत्येक ग्राम में शिक्षक गांव वालों से प्रेम पूर्वक मिलने वाली अन्न वस्त्रादि आवश्यक वस्तुओं की भिक्षा पर ही निर्भर रहने वाला सचमुच पुनीत ब्राह्मण होगा।

वैदिक ऋषियों का विश्वास था कि ब्रह्मचर्य के बिना सच्चा ज्ञान नहीं मिल सकता, जो कि शिक्षा का उद्देश्य है। अतः उन्होंने विद्याध्ययन काल को ब्रह्मचर्य काल बना दिया था। विद्याध्ययन काल में शिष्य पूरी तरह वीर्य संरक्षण कर सकें, इसकी व्यवस्था की गई थी। चरित्र निर्माण के लिए जो कई प्रकार के संयम नियम चाहियें,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका आधार भी ब्रह्मचर्य ही है। अतः गुरुकुल पद्धति का सबसे बड़ा लाभ जो चरित्र निर्माण है, इसका रहस्य भी उसके ब्रह्मचर्य व्रत में है। बचपन से गुरुकुल के गुरुओं को सौंपा जाना और तपस्या उसके साधन हैं। इस ब्रह्मचर्य व्रत के लिए हमारे शिक्षणालयों में जितना किया जाय, थोड़ा है। कुछ निर्देश निम्न हैं।

(1) शिक्षा समाप्ति तक अविवाहित रहना और सगाई तक न होना अनिवार्य कर दिया जाय।

(2) विद्यार्थियों को विषय सम्बन्धी इन्द्रियाकर्षक प्रलोभन के वायुमण्डल से पृथक रखने की व्यवस्था की जाय। जैसे आजकल के थियेटर सिनेमा इत्यादि विद्यार्थी के लिए वर्ज्य कर दिये जायें।

(3) हमारे पाठ्यक्रम की पुस्तकों का कोई भाग अश्लील न रहे, इसकी शीघ्र जांच की जाय और उसे हटा दिया जाय बल्कि तपस्या, संयम के सच्चे भाव को हृदयांकित करने वाले विचार उस उमर के बालकों के समझाने योग्य ढंग से पाठ्य पुस्तकों में आवें, इसका आयोजन किया जाय।

(4) सादे शुद्ध अनुत्तेजक पोषक भोजन के लिए तथा ठीक प्रकार व्यायाम आदि के लिए विद्यार्थियों में प्रीति उत्पन्न की जाय।

(5) कष्ट सहने, तपस्या, परिश्रम, कभी खाली न होना, निरालस्यता, सैनिक-भाव, निरन्तर देर तक निरुत्साहित हुए बिना कार्य करते जाना, इस प्रकार के जीवन का अभ्यासी बनाया जाय।

(6) शिक्षक के साथ मिलकर खेती, गोपालन, भोजन पकाना, कताई बुनाई बढ़ई का काम इत्यादि किन्हीं जीवनोपयोगी रचनात्मक कार्य में लगे रहने में उच्चतर आनन्द व तृप्ति पाने का अभ्यासी बनाया जाय।

(7) सबसे बड़ी बात यह है कि चुने हुए लोगों को शिक्षक बनने देना जो ब्रह्मचर्य में किसी प्रकार ढीले न हों, ब्रह्मचर्य की महानता पर विश्वास रखने वाले हों तथा ब्रह्मचर्य का वातावरण बनाने में समर्थ हों।

वैसे तो ब्रह्मचर्य शब्द में ही भारतीय संस्कृति आ जाती है पर आजकल साधारणतया ब्रह्मचर्य से वीर्यरक्षा ही लिया जाता है अतः मैं दूसरे शब्दों में कहूँगा चूंकि भारतीय संस्कृति का लक्ष्य ब्रह्म की प्राप्ति है (जिसके लिए ब्रह्मचर्य किया जाता है) अतएव इस संस्कृति में सादे रहन सहन का महत्त्व है तथा इस संस्कृति का उद्गम जिस भाषा द्वारा हुआ है वह संस्कृत भाषा है इसलिये (यदि हम अपनी शिक्षा द्वारा भारत की आतमा को ही नष्ट नहीं कर देना चाहते तो) हमें अपनी शिक्षा में निम्न बातों का समावेश अवश्य करना चाहिये—

(1) सब विद्यार्थी किसी न किसी समय शिक्षकों सहित सम्मिलित ईश्वरोपासना अवश्य करें। आस्तिकता, परमेश्वर निर्भरता यह जरूर सीखें।

(2) अतएव हमारे विद्यार्थियों और शिक्षकों का रहन-सहन सादा हो। प्राकृतिक वस्तुओं का अवलम्बन ज्ञान पूर्वक जितना कम हो सके उतना कम किया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय। हमारे जीवन में पश्चिमी लोगों की तरह जटिलता न आने पावे। 'सादा रहन-सहन तथा उच्च विचार' शब्द हमारी सभ्यता के सूत्र-भूत शब्द ठीक हैं। इसका कारण यह कि हमारी सभ्यता परमेश्वरोन्मुखी है। हमारा रहना-सहना, हमारा सब जीवन-संघर्ष भी अन्त में परमेश्वर प्राप्ति के लिए है।

(3) हमारी शिक्षा में कम से कम प्रत्येक हिन्दू विद्यार्थी के लिए संस्कृत भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान कराना आवश्यक होना चाहिए। इसके लिए सरल मातृ-भाषा में लिखी हुई संस्कृत पाठमालाओं का सावधानता पूर्वक निर्माण किया जाना चाहिए, और इसका स्थान प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में लगभग तीन वर्ष के लिए (सम्भवतः तीसरी कक्षा से पांचवी कक्षा तक) अवश्य होना चाहिये।

गुरुकुल में रहने की योग्यता*

प्रिय ब्रह्मचारियो! मेरे गत भाषण के बाद मुझसे पूछा गया है कि गुरुकुल में रहने योग्य कौन है? इसकी मैं स्पष्ट व्याख्या करूं, गुरुकुल में रहने योग्य के लक्षण बताऊँ। सीधी बात यह है कि गुरुकुल के योग्य वह है जो वस्तुतः गुरुकुल में रहना चाहता है। वस्तुतः कहने की आवश्यकता इसलिए है कि कई बार अपने को ही धोखा दिया जाता है। जब कोई ब्रह्मचारी गुरुकुल के उद्देश्यों से प्रेम रखने के कारण नहीं, किन्तु गुरुकुल के कुछ अपने सुखों और निरापद जीवन के कारण, गुरुकुल में रहते रहना चाहता है तो वह वस्तुतः गुरुकुल में नहीं रहना चाहता। इसलिये फिर मैं यह कहूँगा कि महाविद्यालय में प्रवेश के समय जो तुम पांच व्रत लेते हो, उन पांचों व्रतों को जो सच्चे दिल से लेता है, वह गुरुकुल में रहने योग्य है। महाविद्यालय में पहुँचने तक तुम पूरी तरह बालिग, स्वयं समझने वाले हो जाते हो, उस समय तुम्हें एक बार फिर चुनाव करना चाहिये कि तुम गुरुकुल के उद्देश्य के रास्ते चलना चाहते हो या नहीं। अतः महाविद्यालय में आते हुए यदि तुम वे पांचों व्रत सच्चे हृदय से लेना चाहते हो और लेते हो तो तुम जरूर गुरुकुल के योग्य हो। उनमें से पहिला व्रत धर्म की सेवा करने की ही योग्यता प्राप्त करने की इच्छा से गुरुकुल में रहने का निश्चय करना है और अन्तिम व्रत सत्य के पालन का है। यदि तुम इन व्रतों को ही मानते हो अर्थात् सचाई के साथ तुम इसलिए गुरुकुल में रहते हो कि तुम यहाँ धर्म देश, जाति की सेवा करने के योग्य बन सकते हो, यह तुम्हें विश्वास है और इस योग्यता की प्राप्ति के लिए ही तुम सतत यत्न करते हुए रहते तो तुम्हारे लिए इतना

* 'गुरुकुल' के 7 मई 1937 अंक में प्रकाशित :

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही काफी है। दूसरा और तीसरा अर्थात् नियम पालन और आज्ञा पालन का व्रत तो इन्हीं में समा गया, क्योंकि तुम जब किसी स्थान के अंग बनकर रहोगे, वहाँ के नियम और आज्ञाओं का पालन तुम्हें करना ही होगा। शेष जो चौथा ब्रह्मचर्य पालन का व्रत है, उसकी तरफ इसलिए जुदा ध्यान दिलाने की जरूरत है, चूंकि इसी में गुरुकुल का आदर्श बताया गया है। ब्रह्मचर्य में त्याग, तपस्या, संयम, सादगी, ईश्वर निष्ठा आदि भी आ जाते हैं। कोई गुरुकुल के आदर्श को ही ठीक तरह न समझने के कारण ब्रह्मचर्य को छोड़कर भी कहीं यह न मानने लगे कि वह सचाई के साथ धर्मसेवा के योग्य बन रहा है और गुरुकुल के योग्य है अतः इस चौथे व्रत का निर्देश आवश्यक हो गया है। इस तरह इन दोनों या तीनों अतएव इन पांचों व्रतों को जिसका हृदय स्वीकार करता है, वह गुरुकुल के योग्य है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

शायद तुम कहोगे कि इस से भी बात स्पष्ट नहीं हुई। हमारे व्यवहार की वे कौन सी बातें हैं जिनसे हम जानें कि हम गुरुकुल के योग्य हैं या नहीं। बात यह है कि असल में बाहर की कोई भी ऐसी पहिचान या लक्षण नहीं है जो कि इसका पूरा पूरा निश्चायक हो सके, क्योंकि संसार की ऐसी कोई बाहिरी बात नहीं है जिसका ढोंग नहीं किया जा सकता। अतः मैं तो इसके अन्दर के लक्षण को ही बतला सकता हूँ और इसलिए यह भी कह सकता हूँ कि तुम गुरुकुल के योग्य हो कि नहीं, इसका निश्चय तुम स्वयं ही मेरी बताई इस कसौटी के अनुसार ठीक-ठीक कर सकते हो, मैं तुम्हारे विषय में उतना ठीक-ठीक निश्चय नहीं कर सकता। मतलब यह कि गुरुकुल की योग्यता आन्तरिक वस्तु ही है। जिसका आन्तरिक हृदय बल्कि अन्तरात्मा इन गुरुकुलीय आदर्शों को स्वीकार करता है, वही सच्चा गुरुकुल का ब्रह्मचारी हो सकता है।

पर यह स्वीकारना जबर्दस्ती से नहीं कराया जा सकता है। इसका तो अन्दर से ही स्वाभाविक प्रवाह निकलता है। श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को गीता के दैवासुर सम्पत् विभाग योग अध्याय में कहा है—

मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव !

'हे अर्जुन ! तू सोच मत कर, तू तो दैवी सम्पद् को साथ लेकर पैदा हुआ है'। इसी तरह तुममें से जिनकी त्याग, तपस्या, सादगी आदि की तरफ स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जो इन गुणों को साथ लेकर पैदा हुए हैं वे ही गुरुकुल से पूरा पूरा लाभ उठा सकते हैं। यदि तुम्हें इन गुरुकुलीय आदर्शों से प्रेम नहीं है, इन चीजों को अपने ऊपर ज़बर्दस्ती से लादी गई समझते हो और हरेक सम्भवनीय अवसर पर इनसे पिण्ड छुड़ाना चाहते हो, जब कोई देखने वाला नहीं तभी नियम भंग करने को तैयार हो तो उससे न तुम्हारा कुछ लाभ है और न गुरुकुल का। इसलिए तुम देखो, क्या ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या, सादगी, संयम ये तुम्हें स्वभावतः प्यारे हैं या नहीं ? इनको व्यवहार में लाने का अवसर आने पर तुम्हें आनन्द आता है या नहीं ? देखो, इन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नों का उत्तर तुम्हारे अन्दर से 'हाँ' में निकलता है या 'न' में ? क्योंकि यही इस बात का चिह्न है कि तुम गुरुकुल के योग्य हो या नहीं । इस उमर में त्याग तपस्या आदि तुमसे ज़बरदस्ती नहीं कराई जा सकती और न कराई जानी चाहिए । तुमने अभी गाया है—

चक्र में घूम चुका चरणों में तेरे आया

जो चक्र में काफी घूम चुका है, पुराने जन्म में प्रेय मार्ग के रास्तों में खूब भटक चुका है वह दृढ़ता से श्रेय मार्ग को पकड़ता है, वही प्रभु चरणों की शरण सचमुच आना चाहता है । अतः वही है जो जन्म के साथ दैवगुण लेकर पैदा होता है, जो स्वभावतः उन आदर्शों से प्रेम व आकर्षण रखता है जो कि गुरुकुल के आदर्श हैं । उसके लिए गुरुकुल है ।

पर तुम मेरे इस कथन को कहीं ग़लत न समझो, इसलिए एक बात से सावधान करता हूँ । देखो, यह जो कुण्ड में अग्नि जल रही है यह कुण्ड में पड़ी समिधा को किस प्रकार जलाती है ? समिधा का जो सबसे अधिक सूखा भाग (सबसे अधिक समिन्धनीय भाग) होता है, उसे सबसे पहिले अग्नि ग्रहण करती है, उस द्वारा घुसी अग्नि फिर समिधा के शेष भाग को भी कुछ देर में सुखा देती है और फिर उसे भी जला देती है, प्रदीप्त कर देती है । इसी तरह मैं भी प्रत्येक ब्रह्मचारी को देखता हूँ वह किधर से प्रदीप्त किया जा सकता है, क्या किसी अंश में भी वह समिधा बना हुआ हैं, क्या उसके जीवन में कोई भाग है जिसे आसानी से समिद्ध किया जा सकता है ? जो कुछ भी समिधा बना हुआ है, वही इस गुरुकुल रूपी अग्नि में पड़कर प्रदीप्त हो सकता है, चमकता हुआ स्नातक बन सकता है । पर जो बिल्कुल गीला है, जिसे कहीं से प्रदीप्त नहीं किया जा सकता, जिसे इस अग्नि के प्रति कुछ भी आकर्षण नहीं, जिसे यहाँ डाला ही जायगा तो बहुत देर तक धुंआ ही करता रहेगा और जिसकी प्रवृत्ति लगातार इस अग्नि को बुझाने की ही रहेगी, उसकी यहाँ ज़रूरत नहीं । दिखलाना यह है कि यदि किसी में एक अंश में भी यह समिधापन है पर दूसरे अंश में नहीं है तो भी कोई बात नहीं । मैं उस एक अंश को ही लेकर उसे ठीक कर सकता हूँ । ज़रूरत इस बात की है कि उसमें कुछ समिधापन होना चाहिये, कुछ अग्नि ग्रहण का सामर्थ्य चाहिये, कुछ अपनी निजी अग्नि चाहिये, कोई भी उसमें विशेष गुण चाहिए, गुरुकुलीय ढंग की उसमें विशेषता होनी चाहिए, जो उसे अन्यों से सर्वसाधारण लोगों से कुछ भिन्न करती हो, फिर उसमें यदि कुछ अवगुण हो तो भी कोई बात नहीं । उदाहरण के लिए कहता हूँ कि मानो कोई ब्रह्मचारी नियमित जीवन बिताने, समय पालन में बड़ा कमजोर है, वह बार-बार यत्न करता है फिर भी उसे इसमें सफलता नहीं मिलती, (पर वैसे उसमें लगन है, सेवा-भाव है, सचाई है) तो मैं उससे कभी निराश नहीं हूँगा । मैंने तो पहिले तुम्हें कहा है कि यदि किसी में सच्ची सुधार की इच्छा है और उसके लिए वह यत्न करता रहता है, फिर यदि वह पतित होता है तो इसमें कुछ भी डर नहीं । सच्ची उद्धार की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा रखते हुए फिर जो जितना अधिक पतित है वह उतना मुझे अधिक प्यारा है, मेरी सहानुभूति का पात्र है। जैसे कि बच्चा जितना ही अधिक छोटा होता है उतना ही वह अधिक प्यारा होता है। पर उसमें अपने सुधार की सच्ची इच्छा, गुरुकुलीय आदर्श पर ही चलने का स्वाभाविक सच्चा आग्रह होना चाहिए। कुछ अग्नि, प्राण व जीवन का इस प्रकार का अंश उसमें होना चाहिए जो कि गुरुकुलीय आदर्शों के अनुकूल हो। तो उसे ही लेकर उसे जगाया जा सकता है, उसके और सब अवगुण सहे जा सकते हैं। दूसरों शब्दों में कहूँ तो उसके जीवन का कुछ उद्देश्य होना चाहिये। जिसके जीवन का कुछ भी उद्देश्य नहीं, वह बिल्कुल गीली लकड़ी है, जिसे कहीं से भी प्रदीप्त करना कठिन है। जीवन के उद्देश्य के बारे में मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य इन वर्णों में बांटकर आगे विस्तार से तुम्हें कहने वाला हूँ। यहाँ तो इतना ही कहता हूँ कि यदि तुम्हारे अन्दर ब्राह्मण की त्याग, तपस्या चमकती है, यदि तुममें क्षत्रिय की वीरता, उत्साह, अन्याय के प्रति रोष स्वाभाविकतया उठता है, यदि तुममें सच्चे वैश्य की तरह सामान्य तौर से जीवन बिताते हुए भी सचाई के साथ लोक सेवा करने की शुद्ध इच्छा है तो तुम उद्देश्यवान् हो, तुम गुरुकुल से लाभ उठा सकते हो। तुम्हारी इस थोड़ी सी अग्नि को, थोड़े से गुण को, इस विशेषता को, चमक को, विकसित करके प्रदीप्त किया जा सकता है पर यदि तुम्हारे अन्दर कुछ भी अग्नि नहीं है, तुम कुछ भी अपना जीवन उद्देश्य निर्धारित नहीं कर सकते, तुम निष्प्राण से हो, तुममें कुछ भी आदर्शवादिता नहीं है, कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसके लिए तुम मरने को तैयार हो सको, अतएव तुम यहाँ जहाँ तक हो सके आराम से दिन बिता देना चाहते हो, जब तक कुछ अंकुश न हो तब तक गुरुकुल के नियमों के पालन से बचे रहना चाहते हो तो तुम्हारा यहाँ कुछ काम नहीं।

ग्राम सेवा का कार्य करने वाले पं० जयदेव जी के सेवा कार्यों से आज गुरुकुल का मुख उज्ज्वल है, पर जब वे गुरुकुल में पढ़ते थे तो वे शरारती थे, अधिकारियों से झगड़ते थे, बड़ी मुश्किल पैदा करते थे, उपाचार्य के तौर पर मुझे भी बहुत दिक करते थे। पर फिर भी मैंने उन्हें बड़े काम का आदमी समझा। उन्हें निकाल दिया गया था तो उन्हें फिर बुलाने में मेरा मुख्य हाथ था। बात यह है कि अव्यवस्थितता, अनियमितता आदि बड़े दोष होते हुए भी उनमें एक फक्कड़पन था, निडरता थी, लगन थी, सेवा में अपने को खपा देने की उमंग उनमें उठती हुई मुझे बहुत बार दीखा करती थी। दूसरी तरफ एक ब्रह्मचारी था जिसे मैंने गुरुकुल से निकाला। वह पढ़ने में बड़ा अच्छा था। वह आन्दोलनकारी तो था ही नहीं। पर उसमें कुछ तेज भी नहीं था, कुछ भी विशेष गुण व उच्च जीवन की प्रेरणा देने वाला कोई अंश न था। वह किसी तरह चुपके से स्वार्थ साधन कर लेने वाला था। इसके लिए झूठ बोलते रहने में उसे कुछ भी झिझक न थी। उसे निकलना तो तब पड़ा जब उसने बार-बार ही मुझे धोखा दिया, विश्वासघात किया। वह चुपके-चुपके और झूठ बोल कर बाहर की परीक्षा देता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा। ऐसे विश्वासघात का अपराध कर लेने पर उसे किसी कारण से गुरुकुल में रखा नहीं जा सकता था, क्योंकि उसमें किसी प्रकार की उच्चता व उड़ान, आदर्शवादिता नहीं दीखती थी। उसे कहाँ से जगाया जाता, प्रदीप्त किया जाता? आशा है इन दो उदाहरणों से तुम मेरा मतलब समझ सके होगे। अस्तु।

अन्त में मुझे तुम्हें यही कहना है कि तुममें से यदि कोई ऐसे हैं जो कि वस्तुत: गुरुकुलीय आदर्शों से प्रेम नहीं रखते, उन्हें गुरुकुल का स्नातक बनने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। यह अनुचित है और उनके लिए भी अकल्याण करने वाला है। जो ऐसे हैं उनसे मुझे कोई द्वेष है यह नहीं, वे भी मुझे प्यारे हैं, पर वे इस गुरुकुल संगठन में ठीक नहीं बैठेंगे, अस्थानस्थित रहेंगे। वे बाहर जाकर अपना भला भी अच्छी तरह कर सकते हैं और गुरुकुल से हटकर गुरुकुल को भी वेग से उन्नत होने का रास्ता दे सकते हैं। उनका जितना आत्म विकास हुआ है उसके अनुसार उन्हें बाहर की दुनिया, बाहर के स्कूल आदि में ही पढ़ना या काम करना अच्छा है। इसमें हमें सचाई बर्तनी चाहिये। यदि गुरुकुलीय आदर्श प्रिय नहीं हैं तो यहाँ रहने की क्यों इच्छा होनी चाहिये? ऐसे ब्रह्मचारी यदि फिर भी गुरुकुल में रहना चाहते हैं तो वे प्राय: दो कारणों से चाहते हैं। एक तो यह कि माता-पिता और जनता के धन पर वे यहाँ निरुपद्रव संघर्ष-रहित आराम का जीवन बिता रहे हैं, उसमें वे यूं ही खलल पड़ने देना नहीं चाहते। दूसरे गुरुकुल के स्नातक की प्रतिष्ठा लोक में स्थापित हो चुकी है अत: स्नातक कहला कर वे उस प्रतिष्ठा से मिलने वाले लाभों से अपने को वंचित करना नहीं चाहते। पर ये दोनों ही प्रेरक भाव दोष युक्त हैं। न तो उनके लिए इस आराम के जीवन में रहते जाना उचित है और न उसके लिए गुरुकुलीय स्नातक के अयोग्य होते हुए स्नातक पदवी से लाभ उठाना उचित है। ऐसे लोगों के भी स्नातक होते जाने से गुरुकुलीय स्नातकों की बनी हुई प्रतिष्ठा धीमे-धीमे नष्ट हो जायगी, उससे तो गुरुकुल की जड़ ही हिल जायगी और गुरुकुल नष्ट हो जायगा। इसीलिये मैं ईमानदारी की अपील करता हूँ। जो एकादश श्रेणी में नये प्रविष्ट हो रहे हैं, वे तो अच्छी तरह सोच-विचार कर ही प्रविष्ट होवें। पर जो प्रविष्ट हो चुके हैं वे भी अच्छी तरह सचाई से सोच लें। उनके लिए भी अति विलम्ब हो गया है यह नहीं समझा जाना चाहिये। अच्छे उचित आवश्यक कार्य (धर्म का पालन) में कभी भी अति विलम्ब हुआ नहीं कहा जा सकता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल में आवश्यक सुधार*

गुरुकुल की उन्नति और रक्षा के लिए इस समय सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि हम सबसे अधिक ध्यान इस बात पर दें कि गुरुकुल के गुरु [उपाध्याय व अध्यापक वर्ग] बहुत ऊँचे दर्जे के हों। इसके बिना अब गुरुकुल आगे अपनी स्वस्थ उन्नति नहीं कर सकता। यदि ऐसे गुरु मिलना सचमुच सम्भव न हो तो गुरुकुल को बन्द कर देना उचित है, 'गुरुकुल' नाम लेना छोड़ देना चाहिये। पर यह तो पूरी तरह से सम्भव है।

अभी तक गुरुकुल की कुछ गौण विशेषताएँ ही ऐसी थीं जो ज़माने के लिए नई थीं जैसे गुरुकुल की राष्ट्रीयता, इसमें हिन्दी भाषा माध्यम से शिक्षा, कुछ धार्मिक शिक्षा आदि – अतएव इन गौण कारणों से भी गुरुकुल जनता का प्यारा था और वस्तुतः उनकी कुछ जरूरतों को पूरा करने वाला था। पर अब शीघ्र ज़माना आ रहा है बल्कि बहुत कुछ आ चुका है कि गुरुकुल की ये विशेषताएँ कोई विशेषताएँ नहीं रही हैं। ये बातें अन्य संस्थाओं ने भी अपना ली हैं। और कांग्रेसी सरकारें तो शिक्षा राष्ट्रीय बनाने में इतना बड़ा कदम उठा रही हैं कि हममें इस दिशा में कुछ भी विशेषता नहीं रहेगी बल्कि हम पिछड़ जाएँगे। इसलिए अब गुरुकुल तभी कायम रह सकता है, यदि वह अपने असली निजी रंग में चमके। गुरुकुल अपनी गौण नहीं मुख्य असली विशेषताओं के आधार पर खड़ा हो और यह तभी सम्भव है जबकि गुरुकुल के गुरु गुरुकुलीय आदर्शों (ब्रह्मचर्य, वैदिक संस्कृति, कुल भावना आदि) में इतने उन्नत हों कि गुरुकुलीय शिष्यों पर अपने जीवन का प्रबल प्रभाव डाल सकें। अन्यथा यह तो हो सकता है कि गुरुकुल भी अन्य बहुत से अखाड़ों व मठों की तरह चलता रहे पर यह उसका जीवन जीवन नहीं होगा, वह मृत समान होगा. बल्कि उस तरह के गुरुकुल के जीने से उसका बन्द हो जाना अच्छा है। कई भाई गुरुकुल को इसलिए चलाते रखना चाहते हैं क्योंकि वे उससे किसी कारण सम्बद्ध हो गए हैं, कुछ हैं जो

---

* 'गुरुकुल' के 9 सितम्बर 1938 के अंक में निम्न टिप्पणी के साथ प्रकाशित–

गुरुकुल कांगड़ी में जिस आवश्यक सुधार की तरफ मैं गत तीन वर्षों से अधिकारियों का ध्यान खींचता रहा हूँ, उसकी चर्चा मैं इस लेख द्वारा श्री मुख्याधिष्ठाता जी गुरुकुल कांगड़ी की अनुमति पाकर कर देना चाहता हूँ। इसके लिए मैं गुरुकुलोत्सव पर (16-4-38) हुई विद्या सभा की बैठक में तथा उसके बाद हुई (20-4-38) गुरुकुलीय उपाध्याय महोदयों की समिति (विश्वविद्यालय समिति) में मैंने जो कुछ विचार प्रकट किये थे, लगभग उन्हें ही लेखबद्ध कर रहा हूँ।

'अभय'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे अपने दल (पार्टी) की चीज़ समझते हैं। पर मैं विनयपूर्वक कहना चाहता हूँ कि कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का विचार इतना महान् है कि वह तुच्छ विचारों द्वारा परिमित नहीं किया जा सकता। गुरुकुल शिक्षण पद्धति इतनी विशाल वस्तु है कि इसकी न केवल भारतवर्ष को या आर्यसमाज को जरूरत है किन्तु सारे जगत् को इसकी जरूरत है। निःसन्देह यह सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली है और अब समय आ गया है [ज्यों-ज्यों भारत अपनी पराधीनता की बेड़ियाँ काटता जाता है त्यों-त्यों वह समय बड़ी शीघ्रता से आ रहा है] जबकि यह अपने वास्तविक रूप को प्रकट कर सके। यदि हमें गुरुकुल में सच्ची श्रद्धा है तो अभी वह समय आ पहुँचा है जबकि हमें तपस्या करके गुरुकुल को इसके सच्चे रूप में जगत् के सामने लाकर रखना चाहिये। पर उसके लिए एक दम अत्यन्त आवश्यकता यह है कि यहाँ के गुरु सचमुच गुरु हों। इस गौरवास्पद शिक्षा प्रणाली की सफलता न तो धन बहुत होने में है और न शिष्यों की संख्या बढ़ने में, किन्तु गुरुओं की उच्चता में है। इसी आशय को लेकर मैंने गुरुकुलीय सुधार के लिए निम्न दो प्रस्ताव गुरुकुल की प्रबन्धकर्तृसभा, विद्या सभा में रक्खे थे—

1. उपाध्यायों का वेतन 75 रुपये हो तथा—

2: उपाध्यायों को उनके बाहरी पाण्डित्य की अपेक्षा उनके उच्च जीवन की दृष्टि से रखा जाए।

पहिली बात के बारे में मेरा कहना यह रहा है कि गुरुकुल के गुरु ऊँचे से ऊँचे ब्राह्मण होने चाहिएँ और ब्राह्मण तो भिक्षावृत्ति वाले होते हैं अर्थात् परमात्मा द्वारा दिये गये पर सन्तोष करने वाले होते हैं। कम से कम इस निर्धनतम देश के वर्तमान ब्राह्मण 150 रुपये मासिक जितना वेतन पाना जरूरी समझे, यह कितने आश्चर्य की बात है। यदि गुरुकुल के उपाध्याय अपना गुज़र 150 रुपये से कम में नहीं कर सकते तो हम गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को क्या त्याग का पाठ सिखा सकेंगे और जनता गुरुकुल के स्नातकों से त्याग की आशा कैसे लगा सकेगी? गुरुकुल का ही एक स्नातक जो विद्यालय विभाग में अध्यापक है और बालबच्चों वाला है, उसका यदि 40 रुपये या 50 रुपये में खर्च चल सकता है तो एक उपाध्याय का 75) में क्यों नहीं चल सकता, उसे 150 रुपये ही क्यों चाहिये? यदि मैं देश की औसत आमदन के हिसाब से बोलूं, तब तो हमें यह पता लगेगा कि हमें पंद्रह-बीस रुपये में काम करना चाहिये। पर मैं क्रियात्मक बात कहना चाहता हूँ अतः पचहत्तर रुपये कहता हूँ। देश की बहुत सी प्रतिष्ठित और ऊँचे दर्जे के सेवकों को रखने वाली संस्थाएँ लगभग इतना ही वेतन देती हैं। मैंने सुना है कि सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी के अध्यक्ष गोखले 75 रुपये मासिक लेते थे। लाला लाजपतराय जी के लोक-सेवक-मण्डल के सेवक आज 50-75 ही लेते हैं। इनकी योग्यता हमारे गुरुकुलीय उपाध्यायों से किसी तरह कम नहीं है। काशी विद्यापीठ में आगे वेतन कम किये जाएँ, यह सोचा जा रहा है। वहाँ के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान आचार्य महोदय ने मुझे बताया है कि वे 75 रुपये से ज्यादा नहीं दे सकेंगे। बिहार विद्यापीठ में तो बहुत समय पहिले से वेतन 75, 50, 40 रुपये हो चुके हैं। गाँधी सेवा संघ में (जिसमें राजगोपालाचारी, राजेन्द्रबाबू, बल्लभभाई आदि सदस्य हैं) सेवक सदस्य के लिये अधिक से अधिक 75 रुपये की मात्रा निश्चित है। युक्त प्रान्त (तथा कई अन्य प्रान्तों) के असेम्बली मेम्बरों का वेतन 75 रुपये मासिक हो गया है। चर्खा संघ में ऐसे ऊँचे, उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी काम कर रहे हैं जो अवश्य कहीं प्रोफ़ेसर पद भी पा सकते थे, पर उनमें ऐसे थोड़े ही हैं जो पचास रुपये से अधिक लेते हों। ग्राम उद्योग संघ के कार्यकर्ता को तो 15 रुपये मासिक लेकर ही कार्य करना उचित है। यह कहा जा रहा है और ऐसा ही किया जा रहा है और अभी हमने सुना है कि मध्यप्रान्त की सरकार ने नयी शिक्षा योजना चलाने के लिए 70 के करीब अध्यापक लेने थे पर उनके पास 5400 से भी अधिक प्रार्थना पत्र आए। उनमें एम. ए. और बी. ए. लोगों के भी प्रार्थना पत्र थे—पर हमें मालूम है कि उनके साथ शर्त यह थी कि उन्हें 25 वर्ष तक 15 रुपये मासिक (मकान मुफ्त) पर ही काम करने को तैयार होना होगा। इससे जहाँ हमारे देश की बेकारी की हालत का पता लगता है वहाँ देश की अन्य वास्तविक हालत का भी पता लगता है। क्या ऐसी हालत में हम 75 रुपये को कम समझेंगे ? मैं तो मनुष्यता की दृष्टि से पूछता हूँ कि हमारे कुल में वेतनों में इतना भारी भेद भी क्यों होना चाहिये कि एक उपाध्याय कुटुम्ब 150 रुपये ले तथा एक हरिजन कुटुम्ब केवल 10 रुपये ले। मैंने चाहा है कि यह भेद अधिक से अधिक 75 रुपये तथा कम से कम 20 रुपये यह रह जाए। यह बात तो हुई एक कुल की दृष्टि से पर वर्णाश्रम की दृष्टि से तो गुरुकुल में जो जितना बड़ा, पूज्य, ब्राह्मण हो वह उतना ही त्यागी, कम आवश्यकताओं वाला होना चाहिये। यदि वर्णाश्रम व्यवस्था गुरुकुल में ही न बर्ती जाय तो कहाँ बर्ती जाएगी ? पर मैं तो गुरुकुल के वर्तमान उपाध्यायों को (आर्यसमाज के सर्वोच्च ब्राह्मणों को) भिक्षा करने को भी नहीं कह रहा हूँ, किन्तु उन्हें 75 रुपये मासिक नकद स्वीकार करने को कह रहा हूँ। इसमें क्या मुश्किल है यह मैं समझ नहीं सकता।

दूसरी बात और भी अधिक स्पष्ट है। हमारे यहाँ किताबी पाण्डित्य को कभी इतना महत्त्व नहीं दिया गया, उसे 'ज्ञान' नहीं समझा गया। हम तो सात्विक भाव के उद्रेक को, ईश्वरनिष्ठा को ही सच्चा ज्ञान मानते हैं। भगवद्गीता में अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा, क्षमा आदि को ज्ञान बताया है, किसी विषय की मालूमात (informations) के संग्रह को नहीं। इसलिये मैं यहाँ तक कहता हूँ कि गुरुकुल में यदि किसी विषय के उपाध्याय या अध्यापक ऐसे न मिलें जिनका जीवन गुरुकुलीय वायुमण्डल को बनाने वाला हो तो उस विषय की पढ़ाई बेशक स्थगित रखी जाए पर अवांछनीय 'पण्डित' से उस विषय का पढ़वाना उचित नहीं। जब इन दो का मुकाबिला हो तो हमारे यहाँ किसी भी विषय का उतना महत्त्व नहीं है जितना उसके पढ़ाने वाले व्यक्ति का है। हम भी बाहर की नकल में यह समझते हैं कि यदि कभी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ समय के लिए हमें अपने विश्वविद्यालय में किसी विषय की पढ़ाई (उपयुक्त आदमी के अभाव में) बन्द रखनी पड़े तो यह हमारे लिए बड़ी शर्म की बात है, पर यदि पढ़ाई का प्रबन्ध जारी रखा गया तो पढ़ने वाले में मनुष्यता कितने घटिया दर्जे की है इसमें शर्मिन्दा होने की कोई बात नहीं मानी जाती। यह मैंने अपने आशय को स्पष्ट करने के लिए अति मात्रा का दृष्टान्त लेकर कहा ; वैसे मैं यह नहीं समझता कि यदि इस दृष्टि से पूरा यत्न किया जाये तो किसी विषय के अध्यापन के लिए हमें गुरुकुल-योग्य व्यक्ति नहीं मिलेंगे और हमें उसकी पढ़ाई स्थगित रखनी पड़ेगी। मेरे कथन का यह भी मतलब न लिया जाये कि गुरुकुल के वर्तमान अध्यापक व उपाध्यायों में से सब या कुछ भी रद्दी आदमी हैं। बाहरी स्थानों की दृष्टि से वे शायद सब बड़े अच्छे हैं। पर हमारा मानदण्ड बहुत ऊँचा होनी चाहिए। अतः गुरुकुल के गुरु उतने उत्कृष्ट या उतने ऊँचे दर्जे के तो होने ही चाहिए जितने कि गुरुकुल जैसी संस्था से देश की जनता बल्कि दुनिया स्वाभाविकतया आशा करती है।

गुरुकुल की उपाधि का प्रान्तीय सरकारों द्वारा स्वीकार किया जाना*

यह जान कर मुझे कुछ भी बुरा नहीं लगा कि युक्त प्रान्तीय सरकार ने काशी विद्यापीठ आदि कई अभी तक अमान्य शिक्षा संस्थाओं की उपाधियों को तो बी० ए० के बराबर 'मान्य' कर लिया है, परन्तु गुरुकुल विश्वविद्यालय की उपाधि को नहीं माना है। कम से कम अभी तक नहीं माना है, चूंकि मैं इसका कारण और सरकार की कठिनाई को समझ सकता हूँ, परन्तु यह देखकर मुझे जरूर बुरा लगता है, दुःख होता है और शर्म आती है कि इस तुच्छ बात के लिए हमारी तरफ से आन्दोलन सा किया जा रहा है, सिफारिशें करवाई जा रही हैं या सरकार की खुशामद करने की आवश्यकता समझी जा रही है। क्योंकि ऐसा करना निरर्थक है, अनुचित है और गुरुकुल जैसी उच्च संस्था के आत्म-सम्मान को आघात पहुँचाने वाला है, इसी लिये मुझे निम्न कुछ शब्द लिखने को विवश होना पड़ा है।

वैसे तो प्रान्तों में एक प्रकार का आंशिक स्वशासन स्थापित हो जाने से जो नई आवश्यकता उत्पन्न हो रही है, उनमें गुरुकुल की क्या स्थिति होगी इस विषय पर मैंने उसी समय, गत वर्ष ही, एक लेख-माला 'गुरुकुल' पत्र में लिखी थी जिसमें तीन या चार लेख थे, उसमें यथा-स्थान मैंने यह भी प्रकट किया था कि अपनी उपाधियों

---

* 'गुरुकुल' के 24 फरवरी 1939 अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को राष्ट्रीय सरकारों द्वारा स्वीकृत किये जाने या न किये जाने के बारे में हमारी क्या स्थिति होगी, या क्या नीति होनी चाहिये। उसे ही फिर दुहराने की आवश्यकता है, क्योंकि मैं देखता हूँ कि इस विषय में जो कुछ कहा सुना जा रहा है, वह सर्वथा अशोभाजनक है। और जो कुछ भाव मैं नीचे प्रकट कर रहा हूँ उसमें मैं कम से कम गुरुकुल कांगड़ी के बहुत से स्नातकों का प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ, यदि उसका एक स्नातक होने के अतिरिक्त मेरा गुरुकुल कांगड़ी से और कुछ अधिक सम्बन्ध न भी समझा जाए।

हमें अपनी विद्यालंकार आदि उपाधियों के सरकार से मान्य कराने की क्यों इच्छा होनी चाहिये ? कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अभी तक क्यों गुरुकुल को सरकारी नौकरियों के मोह-जाल से जुदा रखा ? यदि गुरुकुल की उपाधियों का अब सरकार से स्वीकार किया जाना जरूरी समझा जा रहा है तो गुरुकुल को एक जुदा रखने की ही आज क्या आवश्यकता है ? तब तो गुरुकुल को अधिक से अधिक एक डी० ए० वी० कालिज बना देना चाहिये। पर मैं तो समझता हूँ कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के मुक्तरूप में फलने फूलने का समय ही अब आया है और सरकार द्वारा मान्य होने की इच्छा हममें उत्पन्न होती है तो यह हमारे पतन का ही चिह्न है। क्या गुरुकुल माता ने चौदह वर्ष तक पालपोसकर हमें इसी लायक बनाया है कि हम इस पीड़ित देश में कहीं कोई सेवा का स्थान न पा सकें और सरकारी नौकरियों के लिए ही लालायित हों ? मुझे तो सरकार से अपनी उपाधि स्वीकार कराने के लिए यह आकुलता समझ में नहीं आती है। हाँ, यह और बात है कि कोई सरकार, यह कांग्रेसी सरकार या इससे भी आगे आने वाली अधिक स्वाधीन अपनी सरकार, हमारे स्नातकों की सेवा से लाभ उठाना चाहे और तब वह हमारी सेवा से लाभ उठाने के लिए हमारी उपाधि को मान्य कर देना जरूरी समझे, तब और बात है। तब यदि हम अपनी सेवा देना उचित समझें तो अवश्य इस निमन्त्रण को स्वीकार करें। मेरे मन में तो यह है कि तब भी हमें विशेष अवस्थाओं में अपनी सरकार को विशेष मदद पहुँचाने की दृष्टि से अपने कुलपति से अनुमति लेकर ही किसी स्नातक को उधर जाना चाहिए। पर यहाँ तो बिना मांगे ही "सेवाएँ" सरकार पर थोपी जा रही दीखती हैं। यह श्रद्धानन्द के कुल को, कुल-पुत्रों को शोभा देने लायक बात नहीं है। हम अपनी महत्ता को, अपने उच्च आदर्श को, जगत में अपनी स्थिति को भूल जाते हैं, तभी ऐसे आत्महीनता के भाव हम में आ जाते हैं। गुरुकुल माता ने ऐसे पुत्र भी उत्पन्न किये हैं और कर सकती है जो आवश्यकता पड़ने पर प्रधानमंत्री या स्वराज्य के राष्ट्रपति की सेवाएँ भी दे सकते हैं। पर यह तभी होना चाहिये जब इसकी सच्ची आकांक्षा और आवश्यकता हो। अभी तो दूसरा बहुत सा कार्य है जो हमें पूरा करना जरूरी है, हमारे आगे पड़ा है।

उधर युक्तप्रान्तीय सरकार गुरुकुल को राष्ट्रीयता या अन्य इससे भी ऊँची

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी दूसरी महत्ता को नहीं जानतीं, यह बात नहीं हैं। उसकी मुश्किल का अन्दाजा लगा कर मैं कह सकता हूँ कि शायद उसे गुरुकुल में साम्प्रदायिकता की गन्ध आती हो। गुरुकुल को अमान्य समझने का कारण यह हो या न हो, मैं यह जरूर कह देना चाहता हूँ कि गुरुकुल में एक प्रकार की साम्प्रदायिकता है, कट्टरता है। और वह उचित है। वह गुरुकुल में रहनी चाहिये और उसके कारण हम अमान्य किये जाते हैं तो हमें खुश होना चाहिये। वह है वैदिक संस्कृति की साम्प्रदायिकता जिसका आधार ब्रह्मचर्य है और जिसकी भित्ति वर्णाश्रम धर्म है। पर यह साम्प्रदायिकता सच्ची राष्ट्रीयता की न केवल विरोधिनी ही है बल्कि बड़ी भारी सहायक है। मेरी तो श्रद्धा है कि सच्ची भारतीय स्वाधीनता और सार्वभौम सुख-शान्ति इस संस्कृति के बिना असम्भव है। गुरुकुल की कट्टरता ऐसी ही है जैसे कि कांग्रेस में कोई अहिंसा को कट्टरता कह सकता है। बहुत से कहते भी हैं। यह और बात है कि गुरुकुल आर्यसमाज (वैदिक धर्म को मानने वाला समाज) की संस्था है और आर्यसमाज में जो अपने मत की कट्टरता कभी दूसरे मतों के साथ घृणा के रूप में, या अपनी सच्चाई के प्रचार का जोश कभी दूसरे मत वालों से संघर्ष के रूप में भी परिणत हो जाते हैं, तो आर्यसमाज का यह प्रभाव पड़ता है या पड़ सकता है। किन्तु यह आर्य समाज की स्वाभाविक अवस्था नहीं है, कभी-कभी होने वाला विकार है। यह ऐसे ही है जैसे कांग्रेस जब स्वाधीनता के लिए जोश उत्पन्न करती है तो वह जोश कभी-कभी हिंसा का रूप धारण कर लेता है, जो कांग्रेस के ध्येय के विपरीत है। पर जैसे यह कांग्रेस का विकार है, वैसे ही इस प्रकार की अनुचित साम्प्रदायिकता आर्यसमाज का विकार है। किन्तु आर्य समाज की साम्प्रदायिकता का भी गुरुकुल पर जो कि ऊँचे सार्वभौम आदर्श वाली एक शिक्षा संस्था है, कभी ही और बहुत ही कम असर पड़ता है। एक शिक्षा प्रणाली के तौर पर तो अन्य धर्म व सम्प्रदाय वाले भी गुरुकुल को अपना सकते हैं और अपनाते रहे हैं। यह सब बात मैंने गुरुकुल को असाम्प्रदायिक सिद्ध कर के लिए नहीं लिखी हैं किन्तु साफ तौर से यह बताने के लिए लिखी है कि गुरुकुल किन अर्थों में साम्प्रदायिक है, किन में नहीं जिससे कोई धोखा न रहे।

गुरुकुल कांगड़ी ने या गुरुकुल के ब्रह्मचारियों अध्यापकों ने या स्नातक-मण्डल ने राष्ट्रीय आन्दोलन में जो भाग बहादुरी के साथ लिया था और आत्म बलिदान किया था, वह कोई अपनी उपाधि स्वीकार कराने आदि के किसी प्रतिफल को पाने के लिए नहीं किया था। उसका इस प्रकरण में जिक्र आना, बल्कि स्मरण तक आना नितान्त ओछापन है। और गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक आदियों ने स्वाधीनता-संग्राम में जो थोड़ी बहुत आहुति दी है, वह यद्यपि सर्वथा कांग्रेस के संगठन में सम्मिलित होकर, कांग्रेस का अङ्ग बन कर ही (आर्य समाज के नाम से या कांग्रेस में ही आर्य समाजी–पार्टी के रूप में नहीं) दी है तो भी मैं कह सकता हूँ कि वह सब कार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने ऋषि दयानन्द के सार्वभौम सिद्धान्तों के अनुसार और गुरुकुल की ही उदार शिक्षा के स्वाभाविक परिणामस्वरूप किये थे। इसका यह मतलब है कि गुरुकुल हर प्रकार के स्वतन्त्रता युद्ध में या हमेशा ही कांग्रेस के साथ है यह बात नहीं। जैसे यदि यह युद्ध अधार्मिक हो, अत्याचार या शोषण के लिए हो या जैसे यदि कांग्रेस का वर्तमान ध्येय विपरीत रूप से बदल जाए, तब वह साथ नहीं होगा।

तात्पर्य यह है कि गुरुकुल को अपने लिए अपनी उपाधि सरकार से स्वीकार कराने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। गुरुकुल जिस लिए खोला गया है उसमें इस आवश्यकता के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि कोई सरकार हमारी उपाधि को स्वयं मान्य करना भी चाहे पर किसी शर्त के साथ—किसी अनुचित या अपमानजनक शर्त के साथ—मान्य करना चाहें तो उसे भी हमें स्वीकार नहीं करना चाहिये। अर्थात् हमें सरकार द्वारा अवसर दिये जाने पर भी इससे तभी लाभ उठाना चाहिये जब कि वह सरकार सचमुच हमारी सेवा चाहती हो और अतएव सम्मान पूर्वक अपनी इस अभिलाषा को हमारे सम्बन्ध में कार्य रूप में परिणत कर रही हो।

अंग्रेजी उपाधि का मोह*

गत सप्ताह मैं एक आयुर्वेदालङ्कार बन्धु का पत्र उद्धृत कर चुका हूँ जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'डाक्टरी ठाठ से रहने वाले स्नातकों को अपनी आयुर्वेदालङ्कार डिग्री को भी अपने अनुकूल डिग्री बनाना पड़ता है। O. M. Sc. (Kang), A.V.A. (Kang) आदि लिखना आम हो गया है।' इसी विषय में एक और आयुर्वेद के स्नातक लिखते हैं। मैं उनके पत्र को लगभग समूचा ही नीचे उद्धृत करता हूँ, क्योंकि इससे मेरा काम बहुत सा हल्का हो जाता है:—

"अभी कुछ दिन हुए गुरुकुल के एक स्नातक के साथ गुरुकुल की उपाधियों के बारे में मेरा पत्र व्यवहार हुआ था। वे एक वेदालङ्कार हैं परन्तु अपने नाम के साथ सदा विद्यालङ्कार लगाया करते हैं। मैंने उनसे पूछा था कि क्या यह उचित है? वे कहते हैं कि 'वेदालङ्कार' डिग्री को कोई नहीं जानता और विद्यालङ्कार काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी है, फिर वेदालङ्कार कहने से ऐसा लगता है कि मानों हमें वेद के सिवाय कुछ नहीं आता, हम पुराने पण्डितों जैसे तनीदार अङ्गरखे और पगड़ी वाले एक पण्डित होंगे, और विद्यालङ्कार कहने से कुछ दूसरी ही तरह का असर जमता है। मैंने उन्हें यह उत्तर दिया था कि जहाँ तक ख्याति का सम्बन्ध है विद्या-

*12 माघ शुक्रवार 1997 'गुरुकुल' में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लङ्कार डिग्री भी शुरू में उतनी ही नई और एक अजूबे की चीज रही होगी जैसी कि आपकी राय में वेदालङ्कार है। इस उपाधि विभूषित स्नातकों ने ही इसे प्रसिद्ध किया है तो क्या वेदालङ्कार उपाधि वाले स्नातक यदि योग्यता रखते होंगे तो अपनी उपाधि वैसा ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय न बना लेंगे ? और फिर मैं तो यह मानता हूँ कि गुरुकुल के स्नातक को अपने स्नातकपन अथवा अपनी उपाधि के सहारे खड़े होने की कोशिश ही न करनी चाहिये। मेरे ख्याल में उनका यह कर्त्तव्य है कि वे पहले अपने आप कुछ बन कर दिखाएं और फिर अपने बल पर गुरुकुल और उसकी दी हुई उपाधि का नाम उज्ज्वल करें।

(यहाँ प्रसिद्ध संगीतज्ञ ओंकारनाथ जी का एक दृष्टान्त देकर वे लिखते हैं)

"अस्तु, मैंने उन्हें लिखा कि आदर्श की बात भले ही जाने दीजिये, पर यदि आप वास्तव में यह अनुभव करते हों कि आपकी उपाधि वेदालङ्कार की जगह विद्यालङ्कार होनी चाहिए तो आपको चाहिए था कि शुरू से ही वेदमहाविद्यालय की जगह साधारण महाविद्यालय में प्रविष्ट होते और यदि स्नातक बनने के बाद आपको यह अनुभव हुआ हो तो आपको चाहिए कि आप अपनी सम्मति वाले स्नातकों के साथ मिल कर एक ही उपाधि कर देने का (क्योंकि पाठ्यक्रम साधारण तथा वेदमहाविद्यालय का लगभग एकसा ही है) आन्दोलन करें। परन्तु जब तक गुरुकुल आपकी उपाधि में परिवर्तन नहीं करता तब तक यदि आप अपनी उपाधि से भिन्न गुरुकुल की ही किसी अन्य उपाधि का उपयोग करते हैं तो यह अनुचित है।

"यह तो फिर भी कुछ कम है पर आयुर्वेद के स्नातक तो कमाल कर देते हैं। जनता की गुलामी की मनोवृत्ति के कारण संस्कृत शब्दों की अपेक्षा अंग्रेजी शब्दों का ज्यादा मान होता है अतः आयुर्वेद के स्नातक भी अपने आपको आयुर्वेदालङ्कार और वैद्य लिखने की जगह डाक्टर और O. M. Sc. अर्थात् आयुर्वेदालङ्कार का अंग्रेजी अनुवाद Ornament of medical science लिखते हैं। यह कैसी हास्यास्पद चीज है ! हां, कई लोग O. M. Sc. (Kang) लिखते हैं जिससे जनता पर यह प्रभाव पड़े कि शायद यह विदेश की कोई बड़ी भारी डिग्री लेकर आए हुए हैं। इसमें तो मुझे दासता की मनोवृत्ति और Inferiority Complex ही दिखाई देती है। पर क्या यह गुरुकुल की उपाधि का अपमान अथवा व्यङ्ग और जनता की कमजोरी से लाभ उठाने और उसे धोखा देने का प्रयत्न नहीं है ? यदि गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय से भी ABCD धारी डाक्टर ही निकलने हैं तो क्या अधिक अच्छा न होगा कि आयुर्वेद-महाविद्यालय को बन्द करके उससे कहीं अधिक समृद्ध और सुसम्पन्न लखनऊ, लाहौर अथवा बम्बई के मेडिकल कालिजों को ही अपनाया जाये और इस प्रकार शक्ति और धन का अपव्यय रोका जाये ? हां, इन लोगों की देखादेखी कुछ वेदालङ्कार और विद्यालङ्कार भी V. A. लगाने लग पड़े हैं पर उन्हें तो इतना ही बता देना काफी है कि पंजाब विश्वविद्यालय के सामने यह प्रस्ताव है कि लड़कियों को B. A. (Bachelor of Arts) की जगह V. A. (Virgin of Arts) उपाधि दी जाये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्या आप इस बारे में गुरुकुल पत्र द्वारा अपनी राय देना पसन्द करेंगे ?"

मैं इन भाई को यह बतला दूं कि आयुर्वेद वालों की देखादेखी नहीं, किन्तु जब आयुर्वेद की उपाधि देना शुरू भी नहीं हुआ था तभी कुछ (पर कुछ ही) विद्यालङ्कारों ने ही, यह दुःख की बात है, बी.ए. लिखना शुरू कर दिया था। निःसन्देह यह अंग्रेजी का मोह था, अंग्रेजियत की बैठी हुई धाक से लाभ उठाने की दासतापूर्ण मनोवृत्ति से ही प्रेरित था। दुःख की बात इसीलिए है क्योंकि ऐसी मनोवृत्ति को हटाना ही और इसकी जगह संस्कृत व राष्ट्रभाषा से प्रेम तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता का गौरव बैठाना और उसी में आत्म-सम्मान समझना गुरुकुल का एक मुख्य कार्य था। पर वह प्रवृत्ति बहुत नहीं बढ़ी। इसका कारण यही है कि सचमुच विद्यालङ्कारों ने अपनी आन्तरिक योग्यता के कारण इस संस्कृत की उपाधि की प्रतिष्ठा स्थापित कर दी। पर 'विद्यालङ्कार' इस संस्कृत या हिन्दी की उपाधि को अंग्रेजी में अंग्रेजी संक्षेप के ढङ्ग से लिखने के लिए V. A. लिख देना भी कुछ समझ में आ सकता है, जब अंग्रेजी में ही नाम आदि लिखना पड़े और विद्या अलङ्कार शब्द को भी रोमन लिपि में और साथ ही संक्षेप में लिखना जरूरी हो तो यह उचित भी कहा जा सकता है (यद्यपि प्रायः सदा ही V. A. लिखने का प्रेरक भाव अंग्रेजी के रोब में आना या उपाधि लिखने के इस पश्चिमी ढङ्ग से लाभ उठाना ही होता है), इसी तरह आयुर्वेदालङ्कार को A. V. A. लिखने के विषय में भी कहा जा सकता है, किन्तु आयुर्वेदालङ्कार को O. M. Sc. लिखने को तो मैं निरा कपट ही कह सकता हूँ, और कुछ नहीं। मुझे जो आयुर्वेद के स्नातक बन्धुओं के पत्र मिलते हैं, उनमें मैं देखता हूँ कि कुछ ने तो अपने चिट्ठी के कागजों पर बाकायदा O.M Sc. (Kang) ऐसा कुछ छपवा रखा है। यह तो कोई उपाधि नहीं है। कम से कम गुरुकुल से दी गई कोई उपाधि नहीं है। यह ऐसा है जैसे कोई गोपाल सेवक नाम वाला (जिसके माता पिता ने उसका यह नाम रखा हो) आदमी जहाँ के लोग गांधी जी को नहीं पहचानते वहाँ अपने को महात्मा गांधी बतला कर फायदा उठाये, और जब उससे पूछा जाये कि तुम तो गोपाल सेवक हो तुम गांधी जी कैसे बन गये तो कहे कि गोपाल का वही अर्थ है जो मोहन का और सेवक का अर्थ होता है दास, इस लिए मैं मोहनदास गांधी हूँ। यदि इस तरह उपाधियोंका भाषान्तर चलने लगे तब तो बड़ा अनर्थ हो जाये। तब तो आयुर्वेद भूषण उपाधि वाले अपने को बेखटके आयुर्वेदालङ्कार ही न लिखा करें, क्योंकि अलङ्कार और भूषण एक ही बात तो है और इसमें तो भाषान्तर भी नहीं है, एक ही भाषा के एक शब्द की जगह उसका दूसरा पर्यायवाची रख दिया गया है।

आशा है गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक बन्धु गुरुकुल की दी गयी उपाधि के ऐसे अनुचित रूप से दुरुपयोग किये जाने को अपने और इस कुल को कलंकित करने वाला कार्य अनुभव करेंगे और अंग्रेजी के मोह को छोड़ेंगे, बल्कि यह आत्मविश्वास रखेंगे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि (यदि गुरुकुल की प्रतिष्ठा बढ़ती गई और गुरुकुल से उच्च कोटि के स्नातक निकलते रहे तो) ऐसे समय शीघ्र आयेगा जब जिन्होंने कपट ही करना है वे अंग्रेजी अक्षरों की उपाधि की जगह हमारे अलंकार जैसा (गुरुकुल की उपाधि से मिलती-जुलती) उपाधि लगाने में अपना फायदा समझेंगे।

वेदालंकार की तरह सिद्धान्तालंकार की उपाधि को भी कई स्नातक पसन्द नहीं करते हैं (यद्यपि कई 'सिद्धान्तालंकार' को भी पूरे गौरव के साथ अपने नाम के पीछे लगाते हैं)। किसी उपाधि में यदि वस्तुत: कुछ दोष है तो उसे दूर करवाना चाहिए। जैसे, वेदालंकार उपाधि के पाठ्यक्रम को बदलने का एक प्रस्ताव मैंने ही शिक्षा-पटल में पेश कर रखा है। वेदालंकार उपाधि वाले तनीदार अङ्गरखा और पगड़ी वाले समझे जायेंगे, इसका तो मुझे कुछ डर नहीं है। यदि बहुत से हमारे स्नातक और विशेषत: वेदालंकार सचमुच ऐसा ही वेश अपना बनालें तो वे उस वेश में सजेंगे ही, इसमें कुछ बुराई नहीं है। पर साथ ही उनकी वेद सम्बन्धी योग्यता भी काफी होनी चाहिये। और वह योग्यता "पुराने अङ्गरखे वाले पण्डितों की कूप-मण्डूकता वाली" न हो, बल्कि पुराने असली पण्डित्य के साथ साथ नये ज्ञान वाले पुरुषों को भी प्रभावित कर सकने वाली हो। यह नहीं होना चाहिये कि न तो पुरानी पण्डिताई रहे और न नया ज्ञान। दोनों की अच्छाइयों का संग्रह होना चाहिये। अत: वेदालंकार उपाधि की शिकायत तो ठीक है कि उस उपाधि से वेद का विशेष ज्ञान जितना सूचित होता है उतना उनमें नहीं होता। इसलिये कुछ ऐसा विचार है कि एकादश द्वादश में तो एक सामान्य पढ़ाई हो। पिछले दो सालों में वेदालंकार होने वाले वेद सम्बन्धी ज्ञान को विशेष रूप से प्राप्त करें। इस विषय में जो स्नातक बन्धु और कुछ निर्देश या सुझाव भेजना चाहें, वे अवश्य भेजने की कृपा करें। पर जो यह शिकायत है कि वेदालंकार कोरे वेद के पण्डित (जिन्हें दुनिया का और कुछ पता नहीं) समझे जायेंगे, वह तो कुछ समय में अपने आप हट जायेगी, जैसे यह विद्यालंकार के सम्बन्ध में धीमे-धीमे हट चुकी है। बल्कि अलंकार सम्बन्धी कोई भी उपाधि (क्योंकि अलंकारान्त उपाधि गुरुकुल कांगड़ी जैसी एक उत्कृष्ट संस्था के स्नातकों की है यह लगभग प्रसिद्ध हो चुका है) हमारी प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली होगी। पर यह होगा तभी जबकि गुरुकुल कांगड़ी के उत्कृष्ट स्नातकों के निकलने की परम्परा जारी रहेगी, अर्थात् जब कि गुरुकुलीय स्नातक अपनी योग्यता, गुण और ज्ञान के बल पर ही अपने कुल के नाम और उपाधि को सुशोभित करने वाले बनने में अपने को गुरुकुल-ऋण से थोड़ा बहुत उऋण हुआ मानेंगे और इसके विपरीत जो गुरुकुल के नाम और उपाधि के बल से अपना काम चलाने की, अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कुल द्रोहिनी प्रवृत्ति की शुरुआत दीखने लगी है, वह एकदम बन्द हो जायेगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल-सेवा का संकल्प*

विद्या सभा ने फिर मुझे गुरुकुल की सेवा का अवसर प्रदान किया है। इस तरह मुझे इसलिए लिखना पड़ता है चूंकि गत बार जब मैंने गुरुकुल का त्याग किया तो वह इस भाव के साथ किया कि अब मुझे गुरुकुल से कुछ सम्बन्ध नहीं रखना, गुरुकुल को भूल जाना है। ऐसा भाव होने का एक मुख्य कारण यह था कि मैंने देख लिया था कि जिन परिस्थितियों में मेरी गुरुकुल सेवा कुछ लाभदायक हो सकती है, वे परिस्थितियां पैदा होना असम्भव सा है। पर घटना-चक्र बदला। मेरे गुरुकुलीय सेवा कर सकने की अनुकूल परिस्थितियों या शर्तों पर विचार करने के लिए जो उपसमिति स्थापित की गई थी, वह सफलता पूर्वक समाप्त हुई। उस समिति के सदस्यों का—विशेषत: श्री माननीय पं० विश्वम्भरनाथ जी का मैं इस प्रकरण में सार्वजनिक रूप से धन्यवाद किए बिना नहीं रह सकता कि उन्होंने मेरी बातों को ध्यान से, सहृदयता से और उदारता के साथ सुना और स्वीकार किया तथा मेरी सहायता करने का हार्दिक आश्वासन प्रदान किया। सामान्य रूप से विद्या सभा ने मेरे पाण्डीचेरी जाने की बात के बारे में जिस उदारवृति का परिचय दिया, उसके लिए वह भी विशेषत: धन्यवाद की पात्र है। विद्या सभा की उस वृत्ति का मुझ पर असर हुआ है और मैं आशा करता हूँ कि मैं उसके असली आशय को पूरा करने वाला साबित होऊंगा।

विद्या सभा का प्रस्ताव

इस सम्बन्ध में विद्या सभा ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है उसका सार्वजनिक रूप से उपयोगी भाग इस प्रकार है:—

(क) "स्वामी अभयदेव जी का गुरुकुल-संचालन-नीति सम्बन्धी पत्र ति० 27-2-39 पढ़ा गया, निश्चय हुआ कि गुरुकुल संचालन सम्बन्धी यह नीति ठीक है और गुरुकुल के आरम्भ से यही नीति रही है।

(ख) उक्त स्वामी जी का गुरुकुल में कार्य करने सम्बन्धी पत्र व्यवहार पेश हुआ और उनसे विचार विनिमय भी हुआ। स्वामी अभयदेव जी का विचार है, कि उक्त नीति को अधिक बलपूर्वक चलाया जावे, क्योंकि इस सभा को भी यही अभीष्ट है इसलिये यह सभा स्वामी जी से प्रार्थना करती है कि वे गुरुकुल के आचार्य पद को ग्रहण कर के गुरुकुल को अपने आदर्श तक पहुँचाने के लिए सभा की सहायता करें।

(ग) निश्चय हुआ कि यह सभा गुरुकुल के वर्तमान कार्यकर्त्ताओं से दृढ़ आशा रखती है कि वे उक्त नीति को कार्य रूप में परिणत किये जाने में अधिक से अधिक सहायक होंगे।" विद्या सभा के इस प्रस्ताव में गुरुकुल-संचालन सम्बन्धी जिस पत्र के

---

* 'गुरुकुल' के 31 मार्च 1939 के अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़े जाने का जिक्र है, जिस नीति को ठीक और (गुरुकुल के प्रारम्भ से चली आयी) कहा गया है तथा जिसे अधिक बल-पूर्वक चलाये जाने के मेरे विचार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यही सभा को अभीष्ट है, वह मेरा पत्र निम्नलिखित है:—

गुरुकुल संचालन की नीति

अन्तर्विकास करता हुआ गुरुकुल इस समय ऐसी अवस्था में आ गया है कि यदि अब गुरुकुलीय सेवा पद्धति में निम्न बातों पर जोर न दिया जाये तो गुरुकुल का आगे अग्रसर होना सम्भव नहीं।

[1] गुरुकुल के सब गुरु (अध्यापक और विशेषत: उपाध्याय) गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण ही होने चाहिये।

[2] अतएव यहाँ वेतन की अधिकता अब प्रतिष्ठा या उच्च पद का चिह्न नहीं समझा जाना चाहिये।

[3] यहाँ के गुरुओं का जीवन सादे से सादा होना चाहिये, उनकी भौतिक आवश्यकतायें कम से कम होनी चाहियें। अर्थात् वे अपरिग्रही होने चाहियें। अत: देश की स्थिति की दृष्टि से भी अब गुरुकुलीय अध्यापक उपाध्यायों (गुरुओं) का वेतन अधिक से अधिक 75 रुपये तथा विशेष अवस्था में 100 रुपये मासिक तक होना चाहिये।

[4] यह भी स्पष्ट है कि गुरुकुल में सेवा की स्थिरता करने वाला बन्धन अधिक रुपये नहीं किन्तु गुरुकुलीय आदर्शों से प्रेम होना चाहिए अर्थात् गुरुकुलीय सेवा करने वाला प्रत्येक सेवक ऐसा होना चाहिये जो न केवल आधक वेतन मिलता देखकर गुरुकुल की सेवा को छोड़ नहीं देगा किन्तु किसी समय भूखा रहकर भी गुरुकुल की सेवा में ही लगा रहेगा।

[5] यथा शक्ति यह यत्न किया जाये कि गुरुकुल का प्रत्येक सेवक स्थिर (आजीवन) सेवक हो। पर आजीवन सेवक बनने का हेतु उसका गुरुकुलीय आदर्शों से ज्ञानयुक्त और सक्रिय प्रेम ही हो, न कि आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्तता आदि कोई अन्य हेतु। अतएव आजीवन सदस्यता का निश्चय सेवक को कई वर्ष (साधारणतया 5 वर्ष) अच्छी तरह देख लेने के बाद ही होना चाहिये।

[6] (क) गुरुकुलीय आदर्शों से किसी का कितना प्रेम है इसका निश्चय किन्हीं भी बाह्य निश्चित चिह्नों से नहीं हो सकता। यद्यपि वे सन्ध्या व अग्निहोत्र करें, खादी ही पहिनें, उनका भोजनाच्छादन, रहन सहन सादा शुद्ध सुन्दर और संयत हों, वे अपने बालक गुरुकुल में ही पढ़ायें इत्यादि कुछ नियम बनाए जा सकते हैं पर ये सब कार्य बिना सच्ची भावना के भी किये जा सकते हैं। अतएव एकमात्र बाहरी चिह्नों पर भरोसा नहीं रक्खा जा सकता। किन्तु दूसरी तरफ यह भी ठीक है कि यह प्रेम छिपा भी नहीं रह सकता। अत: इतना कहा जा सकता है कि जो ऊँचे दर्जे के सदाचारी और ज्ञानी हों, जो गुरुकुल को सचमुच अपना परिवार समझें, जो ब्रह्मचर्य से रहते हों और जिनका जीवन वैदिक संस्कृति से स्वाभाविकतया रंगा हुआ हो,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे गुरुकुलीय आदर्शों से प्रेम रखने वाले माने जावेंगे। और उन्हीं के जिम्मे गुरुकुल में ब्रह्मचारियों के शिक्षण व अध्यापन का कार्य सौंपा जाना चाहिये और उन्हें ही गुरुकुल का सेवक स्वीकार करना चाहिये।

(ख) इस प्रकार सेवकों को स्थिर सदस्य बनाए जाने का अन्तिम निश्चय गुरुकुल के आचार्य अथवा उसकी सलाह से कुलपति या विद्या सभा के प्रधान या विद्या-सभा से नियुक्त कोई समिति करेगी (जैसा जिस समय उचित समझा जाय)।

(7) कुल भावना की दृष्टि से नकद रुपयों की अपेक्षा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में वेतन लिया जाना अधिक अच्छा समझा जाय। अर्थात् जो स्थिर सेवक निर्वाहमात्र लेवें उनको मुफ्त मकान और उनकी परिस्थित्यनुसार एक या दो बालकों का गुरुकुल में मुफ्त शिक्षण इत्यादि रूप में सहायता देना अधिक अच्छा समझा जायेगा। इससे गुरुकुल के साथ एकात्मता बढ़ती है।

(8) गुरुकुलीय शिक्षण पद्धति की एक बड़ी विशेषता यह है कि वहाँ बाहर के प्रतिकूल वायुमण्डल से बचा कर अपने बनाए शुद्ध वायुमण्डल में वह ब्रह्मचारियों का पालन पोषण करती है। अतः गुरुकुलीय वायुमण्डल की शुद्धता को निरन्तर कायम रखने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि किसी घटिया या अवांछनीय व्यक्ति को गुरुकुल में शिक्षक का स्थान न दिया जाय, इसके लिए चाहे कभी कुछ काल के लिए किसी खास विषय की पढ़ाई भी बन्द रखनी पड़े। क्योंकि गुरुकुलीय वायुमण्डल से तो ब्रह्मचारी का जीवन (श्वास प्रश्वास) चलता है, पढ़ना लिखना तो खाने पीने के समान है जिसे कुछ समय के लिए छोड़ा भी जा सकता है पर प्राण वायु को नहीं खराब किया जा सकता।

(9) जैसे कि अधिक से अधिक वेतन 75 रुपये है या (विशेष अवस्था में 100 रुपये तक) वैसे कम से कम वेतन की भी मर्यादा होनी चाहिए जिससे कि कम में मनुष्य अपना जीवन निर्वाह ठीक प्रकार नहीं कर सकता। वर्तमान स्थिति में गुरुकुलीय सेवकों के लिए यह मर्यादा बीस पच्चीस रुपये मासिक होनी चाहिए।

गुरुकुल संचालन सम्बन्धी मेरे इस पत्र पर विद्यासभा ने जो उपर्युक्त निश्चय किया है, उसके अनुसार मैंने यह संकल्प कर लिया है कि मैं प्रथम वैशाख (13 अप्रैल) के दिन गुरुकुल का कार्य भार ग्रहण कर लूंगा। इस दिन मैं व्रती होकर गुरुकुल को भगवान् के अर्पण करूंगा और गुरुकुल संचालन को भगवान् का काम समझ 'उसी की कृपा से यह सफल हो सकता है' यह जानते हुए इसी निरहंकार भाव से गुरुकुल सेवा करने का व्रत ग्रहण करूंगा। मैं चाहता हूँ कि इस भारी उत्तर-दातृत्व को लेते समय वैशाखी के पुण्य दिवस पर मुझे परमेश्वर का आशीर्वाद प्राप्त होवे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल में वैदिक वायुमण्डल*

हमारे यहाँ वैदिक वायुमण्डल हो—ऐसा प्रबल वैदिक वायुमण्डल हो जिससे कि गुरुकुल में आते ही किसी भी मनुष्य को इसका अनुभव हुए बिना न रहे। यह हम सब चाहते हैं, चाहना चाहिये। पर यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि वैदिक कर्म-काण्ड और वैदिक ज्ञान-चर्चा, ये दोनों ही सन्यता द्वारा, वास्तविकता द्वारा अनुप्राणित न हों। हम मुर्दा कर्मकाण्ड करते जायें और थोथी कर्मकाण्ड विषयक बातें करते रहें, इससे क्या होना है ? इन दोनों के विषय में तुम ब्रह्मचारियों को अब जो अगला कदम उठाना चाहिये, उसकी आज चर्चा करना चाहता हूँ।

कर्मकाण्ड में जीवन फूंकने की दृष्टि से मैं तुम्हें याद दिलाता हूँ कि मैं हाथ से काम करने के विषय में जो तीन उपदेश तीन दृष्टियों से दे चुका हूँ, उनका स्मरण करो तो यज्ञोपवीत बनाने का तो गुरुकुल में एक महकमा खुल जाना चाहिये। जैसे कई कार्यों को तुम ब्रह्मचारी स्वेच्छा से आयोजन करते हो वैसे जिन ब्रह्मचारियों को इस में श्रद्धा हो, वे एक को मुखिया मान कर इसे प्रारम्भ करें या चाहे एक ही ब्रह्मचारी इसे प्रारम्भ करे। सब के लिए तुम अपने हाथ से बना कर यज्ञोपवीत तैयार कर दो, यह सम्भव होना चाहिए। गुरुकुल में बाहर से यज्ञोपवीत मंगाना लज्जास्पद समझा जाना चाहिए। कपास चुनने से लेकर अन्तिम ग्रन्थि लगाने तक की सब क्रिया मन्त्रपाठ पूर्वक पवित्रता की भावना के साथ की जाय। क्रिया में किस-किस मंत्र का विधान है यह मैं बता दूंगा। मैं इसके लिए बहुत वर्षों से कोशिश कर रहा हूँ। सबसे पहले मैंने गुरुकुल रजत जयन्ती वाले वर्ष—आज से लगभग चौदह वर्ष पूर्व अपने एकान्त वास से नवीन स्नातकों के लिए अपने हाथ से यज्ञोपवीत बनाकर भेजे थे। इसी तरह महात्मा टेकचन्द जी के यज्ञ में सम्मिलित होने वाले व्रतियों के लिए ऐसे यज्ञोपवीत बनाकर भेजे हैं। कई स्नातकों, प्रेमी मित्रों को मुझ से यज्ञोपवीत मांगने की आदत हो गई है। अभी स्नातक अवनि मोहन जी ने अपने शुभ-विवाह के अवसर के लिए मुझसे यज्ञोपवीत मांगा था। मैंने यहाँ एक ब्रह्मचारी द्वारा शुद्ध-भाव से गायत्री मंत्र जपते हुए बारीक सम सूत कतवाया और इसी तरह त्रिवृत करवाया और अन्त में अपने हाथ से मंत्र पढ़ते हुए ग्रंथि लगाई और ऐसा यज्ञोपवीत उन्हें दिया। ऐसा यज्ञोपवीत पहनते हुए उन्हें कितना आनन्द आता होगा इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। उससे पहिले तो वे यज्ञोपवीत पहिनने में—अन्य बहुत से स्नातकों की तरह शिथिलता कर देते थे, पर वे कहते थे कि

---

* 'गुरुकुल' के 8 तथा 22 भाद्रपद 1997 अंकों में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब यह नहीं हो सकता। अब वैसा समय आ गया है जबकि गुरुकुल का तैयार किया हुआ-विधिपूर्वक तैयार किया हुआ ही-यज्ञोपवीत पहना जाय। मैं तो अब यहाँ तक कहूँगा कि दूसरी तरह के बाजारू यज्ञोपवीत पहनने की अपेक्षा तो यज्ञोपवीत न पहनना अच्छा है। मैं जानता हूँ तुम में से कई ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत पहनने में लापरवाही करते हैं। गुरुकुल के ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत न पहिने हुए देखे जाते हैं, ऐसी शिकायत आर्य भाइयों की तरफ से कई बार सुनाई गई है-मुझे कई आर्य महानुभावों ने इस बारे में कहा है। पर मेरी समझ में इस शिकायत का इलाज यज्ञोपवीत में फिरसे उसकी अपनी जान डाल देना है, यज्ञोपवीत को यज्ञोपवीत बनाना है, न कि जबरदस्ती यज्ञोपवीत पहिनाना और न पहिनने पर नाराज होना। गुरु (आचार्य) का संस्कार पूर्वक दिया हुआ, उस द्वारा गुरु मन्त्र (पवित्र सावित्री) के पाठ पूर्वक ग्रथित किया हुआ, गुरुकुल माता के पुत्रों (सहाध्यायियों) द्वारा कपास चुनने से लेकर त्रिवृत करने तक सब प्रक्रियायें विधिवत् पवित्र भाव से मंत्र पाठ पूर्वक करते हुए निर्मित किया हुआ, इस प्रकार गुरुकुल माता द्वारा दिया हुआ, दीक्षा के चिह्न-यज्ञ के चिह्न रूप इस यज्ञोपवीत को जब पहिना जाय तो यह एक ऐसी प्रेम की और पवित्रता की चीज होगी कि इसके साथ हलकेपन के साथ व्यवहार नहीं किया जा सकेगा। तभी यज्ञोपवीत पहिनना सार्थक होगा। यज्ञोपवीत भग्न हो जाने पर जब तक दूसरा अपने आचार्य जी से, आश्रमाध्यक्ष जी से न ले लो, तबतक चैन न मिलेगा। मैं आशा करता हूँ कि अब छोटे बड़े सब ब्रह्मचारिओं के यज्ञोपवीत बनाये जाने की व्यवस्था तुम बड़े ब्रह्मचारिओं में से कुछ ब्रह्मचारी ले लेंगे, बल्कि बाहर के जो भक्त लोग गुरूकुल से यज्ञोपवीत मंगवाना चाहें, उन्हें भी दिया जा सकेगा। इससे न केवल हम अपने कुल में यज्ञोपवीत के सत्य को पुनरुज्जीवि कर देंगे किन्तु आर्य (वैदिक) धर्म में (अतएव हिन्दू धर्म में) यज्ञोपवीत का जो पवित्र और उचित स्थान है, वह उसे पुनः प्राप्त करा देने में अग्रसर होंगे।

इसी प्रकार दैनिक अग्नि होत्र में हमारी पूरी तन्मयता प्रकट होनी चाहिये। हवनकुण्ड, हवन के सब यज्ञपात्र साफ सुथरे और ठीक ठीक होने चाहियें, यज्ञपात्रों को हम स्वयं मांजें और शुद्ध पवित्र रखें। समिदाहरण हम स्वयं करें या कम से कम यज्ञ के लिए समिधाओं को काट कर शुद्धता से तैयार कर ला कर रक्खें। हवन सामग्री की सब औषधियाँ शुद्धता से इकट्ठी करके स्वयं धार्मिक भाव से कूट कर तैयार की जायँ। तब हमारा दैनिक अग्निहोत्र कुछ और ही वस्तु हो जायेगी। और यज्ञ के लिए घृत! ब्रह्मचारियों को यज्ञघृत के लिए ही गोपालन करना चाहिए। यज्ञाग्नि में घृत डालने का यही मतलब है कि हम स्वयं घृत खाने से पहले सूक्ष्म रूप में वायुमण्डल में घृत फैलाकर अन्य सबको घृत खिलायें। पर आजकल घी कहाँ है? आजकल दूध देने वाली गौएं कहाँ हैं? स्वामी दयानन्द जी की 'गोकरण निधि' पढ़ो। गोवंश की रक्षा और पालन के बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता। गोपालन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बिना सच्चे अग्निहोत्र का ही प्रारम्भ नहीं हो सकता। गुरुकुल में अच्छी अच्छी गौएं हों, ब्रह्मचारियों को सेवा के लिए बांटी गई हों, ब्रह्मचारी कर्त्तव्य और धर्म समझ कर गोसेवा-सम्बन्धी सब श्रम करें, यज्ञ के लिए शुद्ध पवित्र गो घृत तैयार करें। गौओं का चराना, उनके लिए चारा सानी तैयार करना, उनको दोहना, दही-दूध, मक्खन घी बनाना, यह सब प्रेम पूर्ण परिश्रम के रूप में धार्मिक भाव से किया जाय तो यह वैदिक वायुमण्डल होगा। और यही वायुमण्डल है जिसमें तुम ब्रह्मचारी पालित पोषित होकर वह बन सकते हो जैसा बनने की आशा, न जानते हुए भी तुम्हारे माता पिता करते हैं। आओ यह वायुमण्डल पैदा करने का हम यत्न करें।

वैदिक वायुमण्डल के एक पार्श्व का कुछ दिग्दर्शनात्मक वर्णन मैंने किया। यह हुआ वैदिक वायुमण्डल का उसके कर्मकाण्ड की दृष्टि से, उसके बाह्य रूप व देह की दृष्टि से वर्णन। पर वैदिक वायुमण्डल का जो ज्ञान की दृष्टि से, उसके आन्तरिक रूप व आत्मा की दृष्टि से दूसरे पार्श्व का वर्णन है उसकी भी आवश्यकता है, उसका भी कुछ दिग्दर्शन कराने का यत्न किया जाय इसकी आवश्यकता है। नहीं तो गुरुकुल के वैदिक वायुमण्डल का वर्णन अधूरा रहेगा, बल्कि निर्जीव रहेगा। जैसे आत्मा के बिना देह निर्जीव (मृत) होता है वैसे वैदिक सत्यज्ञान, आत्मिक प्रकाश के बिना, (एक शब्द में वैदिक आध्यात्मिकता के बिना) वैदिक कर्मकाण्ड निर्जीव होगा। पर आध्यात्मिकता का वर्णन करना कठिन है। कर्मकाण्ड का तो कुछ वर्णन कर दिया, आध्यात्मिकता का कैसे वर्णन करूं? यह तो अनुभव का विषय है। इस विषय में बोलने से बहुत काम नहीं बनता।

एक महानुभाव प्रेम के साथ और सच्चे हृदय से मुझसे कहते थे 'आप पांडिचेरी रहकर आते हैं, उसका कुछ लाभ हमें भी पहुँचना चाहिये।' मैंने उन्हें कहा कि 'वह तो पहुँचता ही है।' विद्यासभा के सदस्य महानुभावों को तथा दूसरे गुरुकुल के प्रेमियों को जो मैं यह कहता हूँ कि श्री अरविन्दाश्रम में जाकर मेरा रह आना गुरुकुल के ही लाभ के लिए होता है सो यह बात सर्वथा ठीक है। पर यह मैं कैसे समझाऊं? बहुत से लोग मुझ से योग के बारे में पूछते हैं। वे समझते हैं कि मैं कुछ जानता हूँ पर बताता नहीं हूँ। पर ऐसी कुछ बात नहीं। योग तो मेरी समझ में आत्म विकास का नाम है, अन्दर से आत्मा के विकसित होने का नाम है। जैसे पृथ्वी में बोया हुआ बीज उगता है, स्वयं विकसित होता है, विकसित होना उसका स्वभावगत धर्म है, इसी तरह प्रत्येक मनुष्य के अन्दर अन्तरात्मा रूपी बीज विद्यमान है, जो भगवत्प्रेम (भगवान् के लिए प्रेम) के रूप में कुछ न कुछ अंश में सबको अनुभव भी होता है—क्योंकि असल में किसी का भी प्रेम छिपा हुआ अन्त में भगवत्प्रेम ही है—उसका स्वभावतः विकसित होना ही योग है। इसे ही आध्यात्मिक उन्नति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कहते हैं। यह बीज हरेक में किसी न किसी रूप में उग ही रहा है, उगने का यत्न कर ही रहा है। तो इसमें लेने, देने, बतलाने, सिखाने की कुछ ऐसी बात ही नहीं। यह (विकास) तो होता है; योग तो स्वयं होता है। और वह हो रहा है।

और मेरी आध्यात्मिक उन्नति हो और दूसरे की न हो, ऐसी कुछ बात की गुंजायश भी नहीं है। मेरी अपनी उन्नति तो कुछ चीज ही नहीं। मैं औरों से जुदा कुछ नहीं हूँ। अहंभाव में मुझ से देर तक नहीं रहा जाता, जब अहंभाव में आता हूँ तो दम घुटने सा लगता है और उससे निकलने के लिए व्याकुल हो जाता हूँ। अतः मेरी उन्नति तुमसे कुछ भिन्न नहीं है। विशेषतः जब कि मेरा अहंकार इस (मेरे) व्यक्ति से हटकर संपूर्ण गुरुकुल को स्पर्श करने वाले एक रूप में प्रायः रूपान्तरित हुआ रहता है, तो कम से कम तुम्हारी उन्नति के साथ—यदि सारे जगत् की उन्नति के साथ नहीं—मेरी उन्नति बंधी हुई है। अग्नि से प्रकाश और ताप आदि की किरणें स्वभावतः निकलती ही हैं और पास के लोगों को प्रभावित करती हैं, उसी तरह इस आधार में ('मुझ में' ऐसा न कहूँ तो ठीक है) जो आत्माग्नि जलती है उससे आध्यात्मिक समीपता रखने वाले सब व्यक्तियों को उसका ताप, आँच और प्रकाश पहुँचता ही है। उसमें 'मेरा' कुछ नहीं, मेरा परोपकार या सेवा कुछ नहीं। वह तो होता है। और तुम सभी में वह अग्नि अपने-अपने रूप में प्रकट हो रही है, प्रकाशित हो रही है और इस तरह हम सब में—विशेषतः जो हम सब परस्पर निकटता बल्कि अभेद का सम्बन्ध रखना चाहते हैं उन हम सब में—इन अग्नियों के परस्पर नाना तरह से सम्बन्ध होने का एक खेल चल रहा है। तो इसमें हमने करना धरना क्या है? हाँ, तुम शिष्य रूप से सुनने बैठे हो—और गुरुकुल गुरु शिष्य सम्बन्ध द्वारा परस्पर ज्ञान-दीप्त करने का ही तो साधन है—तो यह कहूँगा कि यदि तुम दो तीन बातों का ख्याल रखो तो शिष्य के रूप में गुरु के सम्बन्ध द्वारा जो आध्यात्मिकता तुम पा सकते हो, उसे अधिक से अधिक पा सकोगे। वैसे विकास तो तुम्हारा अपना ही होना है और स्वयं होना है, यह बातें उसमें केवल सहायता देने वाली होंगी—

(१) ऊपर उठने की सच्ची अभिकांक्षा, आंतरिक अभीप्सा होनी चाहिये। ऊपर जाने की जितनी ही प्रवृत्ति होगी, उतना ही अधिक लाभ होगा। ऊपर का जीवनदायी प्रकाश मिलेगा। तुम्हारे भगवत्प्रेम के बीज के पूरे रूप में उग सकने के लिए ही जहाँ स्वाभाविक ऊर्ध्वगति चाहिये, वह अन्धकारमय पृथ्वी को फोड़ कर ऊपर सूर्य के प्रकाश में आ निकले—अहंकार के पर्दे को फाड़ कर व्यापक प्रकाश में आजाय—यह चाहिये, वहाँ उसे और ऊपर बढ़ने के लिए भी सूर्य प्रकाश निरन्तर रूप से मिलते रहना चाहिये। इसके लिए और इधर उधर के आवरण हटा कर उसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान के दिव्य प्रकाश में खुला हुआ—बिलकुल खुला हुआ—रहना चाहिये। पौधे को असली जीवन सूर्य से ही मिलता है—सूर्य से उस बीज का ही कोई छिपा हुआ घनिष्ठ सम्बन्ध है जिस से वह पृथ्वी के अन्दर दबा पड़ा हुआ भी फूट कर ऊपर सूर्य की तरफ ही उगने लगता है। तो ऊर्ध्वगति और प्रकाश के प्रति अपने आपको सर्वथा खुला रखना यह पहली बात हुई।

(2) फिर इस भगवत्प्रेम के बीज को पौधे के रूप में सफलता पूर्वक उगाने के लिए यह भी आवश्यक है कि जो अन्य घास फूस उगा रहे हो, उसे लगातार उखाड़ कर फेंकने का काम-निलाई-जारी रहे। भगवत्प्रेम के प्रतिकूल और विरोधी जो भाव हैं—जैसे स्वार्थ, विषयों से प्रेम आदि-उनका दृढ़तापूर्वक त्याग आवश्यक है।

(3) और फिर तुम्हारे बीज का मजबूत होना सब से पहले जरूरी है। तुम्हारा आधार (मन प्राण और शरीर) इतना मजबूत होना चाहिये कि वह आध्यात्मिक शक्ति को धारण कर सके, सहन कर सके। सूर्य की किरणें भी जब सहन नहीं होतीं तो पौधे को जला देती हैं, सुखा देती हैं। पानी की सिंचाई भी, जो सहन न हो वह, पौधे को पुष्ट करने की जगह गला देती है। आध्यात्मिक शक्ति, योग की शक्ति बहुत भारी शक्ति है। उसे बरतना आसान नहीं है। वह कमजोरों के बस की नहीं। उसे सहन न कर सकने के कारण ही गड़बड़ी, उन्माद या अन्य योग बाधाएं होने का डर रहता है। अतः जल्दी बहुत सी शक्ति पाने के लोभ में पड़कर अति नहीं करनी चाहिये। जैसे कमजोर कील को दृढ़ दीवार में घुसाने के लालच में उसे अधिक ठोका जाता है तो वह अन्दर नहीं घुसती किन्तु मुड़ जाती है, शरीर सर्दी नहीं सह पाता तो सिकुड़ जाता, मुड़ जाता है, उसी तरह सब टेढ़ापन, कुटिलता, झूठ, असत्य कमजोरी के चिह्न हैं। जिसके अन्दर इतना बल नहीं है कि सचाई का मुकाबिला कर सके, कुटिल न हो जाय, सच्चा रह सके, उसे योग का नाम नहीं लेना चाहिए। वह यदि आध्यात्मिक शक्ति पाने का यत्न करेगा तो अवश्य विपत्ति में पड़ेगा। तुम में से बहुत से झूठ तभी बोलते हैं जब वे यहाँ के नियम का पालन नहीं कर सकते और फिर उसे छिपाना चाहते हैं। सत्यनिष्ठा योग के लिए पर्याप्त बलवान होने की सबसे पहिली पहिचान है।

तुम कहोगे कि फिर निर्बलता कैसे हटायें ? इसके लिए स्वाभाविक सहज उपाय है समर्पण। समर्पण के विषय में मैं पहले काफी कह चुका हूँ। समर्पण करने से शिष्य ने जिस शक्तिशाली महान (गुरु)—अन्त में वे परमेश्वर ही हैं—के प्रति जितना समर्पण किया है, उतना ही उससे उसमें शक्ति, बल प्राप्त होने लगती है। स्वभावतः उसका बल बढ़ने लगता है और वह परिपुष्ट होता जाता है। तुम तो अभी गुरुकुल के सामान्य नियमों को ही सच्चे भाव से पूरे हृदय से पालन करके देखो कि तुम्हारी शक्ति कितनी बढ़ती है। अस्तु।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय यह है कि तुम में आध्यात्मिक उन्नति पाने की चाह होनी चाहिये। गुरुकुल इसी काम के लिए है। यहाँ जो तुम वेद पढ़ते हो और वेदांग के रूप में अन्य बहुत कुछ पढ़ते हो, वह सब तुम्हारा आध्यात्मिक विकास करने के उद्देश्य से ही है। वेद आध्यात्मिक ज्ञान के पुस्तक हैं। वेदों का अन्तिम अर्थ आध्यात्मिक है। तो गुरुकुल में वैदिक वायुमण्डल होने का मतलब केवल कुछ वेदपाठ होना, अग्निहोत्र होना और वेदों के नाम से सब काम किये जाना नहीं है। किन्तु उस सबके मूल में सच्ची आध्यात्मिकता की भावना होना जरूरी है। यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति तो गुरुकुल में सच्चा वैदिक वायुमण्डल तब कहा जायगा जब कि यहाँ के सब गुरु आध्यात्मिकता को महत्व देते हों, आध्यात्मिक सम्पत्ति से सम्पन्न हों, यहाँ के सब ब्रह्मचारी आध्यात्मिकता के पिपासु हों और यहाँ के सब कर्मचारी भी भगवदर्पण बुद्धि से आध्यात्मिक कल्याण के लिए ही यहाँ सेवा कार्य करते हों।

गुरुकुल में नववर्षारम्भ की प्रार्थना

[प्रथम वैशाख को आचार्य अभयदेव जी ने गुरुकुल का कार्य भार सम्भालने का दिन कुछ विशेष प्रकार से मनाया। प्रातःकाल सब कुलवासियों का सम्मिलित यज्ञ हुआ जिसमें ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन के बाद यज्ञ किया गया। इस यज्ञ में मंत्र बोलने तथा यज्ञ के अन्त में प्रार्थना करने के अतिरिक्त शेष समय श्री आचार्य जी मौन रहे। इस यज्ञ के अतिरिक्त तीन बार और—प्रातः 9 बजे विद्यालय के ब्रह्मचारियों के अध्यापकों में आध घण्टा तक, दोपहर महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों में पौन घण्टा तक तथा रात को महाविद्यालय के उपाध्याय महोदयों में आध घण्टा तक—एवं तीन बार जो कुछ आवश्यक भाषण किया उसके अतिरिक्त उनका मौन रहा। अपने इन भाषणों को आन्तरिक बना सकने के लिए ही उनका वह मौन था। प्रातः के यज्ञ के उपरान्त सवा आठ बजे आध घण्टे तक इन्होंने जो नववर्षारम्भ की गुरुकुल के लिए प्रार्थना की, वह 'गुरुकुल' के पाठकों के लिए नीचे दी जाती है।

—सम्पादक]

भगवन्! आज नए सत्र का, नए वर्ष का हम प्रारम्भ करने लगे हैं, गुरुकुल आज एक नए वर्ष में प्रविष्ट हो रहा है, गुरुकुल ही क्या, यह भारत देश बल्कि सारा संसार नए सौर संवत् में पदार्पण कर रहा है। प्रथम वैशाख न केवल सौर संवत्सर का किन्तु इस चालू युग का प्रारम्भ दिवस माना जाता है। फिर से आये

* 'गुरुकुल' के 5 मई 1939 अंक में संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शुभ अवसर पर हम, हे भगवन् ! तुम्हारी शरण चाहते हैं, भक्ति भाव से तुम्हारे चरणों में पड़ते हैं। इस नए वर्ष में पैर रखने के लिए तुम्हारे आशीष मांगते हैं। जैसे नित्य प्रातःकाल जागने पर हम अपने को तरोताजा अनुभव करते हैं, नयी स्फूर्ति और नया जीवन पाते हैं और इस प्रकार नए दिन का उत्साह से प्रारम्भ करते हैं वैसे ही, हे कालदेव ! हम इस दिव्य दिन में, नए संवत्सर में, नए उत्साह, नए जीवन, नए प्रकाश के साथ प्रवेश करें। इसके लिए यह गुरुकुल, यह समस्त गुरुकुल—नवप्रविष्ट हुए अबोध बालक (जिन्हें कि पता भी नहीं है कि गुरुकुल क्या होता है) से लेकर बड़े से बड़े पण्डित ज्ञानी कहलाने वाले (जो गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का व्याख्यान कर सकते हैं) गुरुओं तक सब के सब—तुम्हारे चरणों में उपस्थित हैं, तुम्हारे अर्पण हैं। गुरु का छोटे से छोटा अवयव इसका प्रत्येक अंग इसका प्रत्येक पुर्जा, इसका जड़ और चेतन प्रत्येक भाग—तुम्हारे समर्पित है। यह सब तुम्हारा है और तुम हमारे हो। इसी सम्बन्ध से इस हवन की अग्नि को प्रदीप्त करके, वेद मन्त्र द्वारा तुम्हारी स्तुति उपासना करके तुमसे चाहते हैं कि तुम गुरुकुल के उच्च आदर्श रूपी अग्नि को इसी तरह आगामी वर्ष में बढ़ाते जाओ जैसी कि यह यज्ञ वेदी की पवित्र अग्नि हमारी घृत की आहुतियां पाकर समिद्ध होती गयी है। बिना आहुति डाले अग्नि प्रदीप्त नहीं होती, बिना आत्म बलिदान किए आदर्श की तरफ अग्रगति कायम कहीं रह सकती। अनादि काल से यही होता आया है कि जब-जब ऋषियों, महात्माओं को आगे बढ़ना कठिन हो गया, मार्ग में भारी बाधाएं उपस्थित हो गईं, तब-तब वे यज्ञ करके या भारी आत्म-बलिदान करके ही तुम्हारा नाम लेते हुए उन रुकावटों को दूर करते रहे हैं। तो आज हम भी अपने ध्येय की तरफ बढ़ने के लिए आत्मबलिदान कर सकने की, स्वार्थत्याग कर सकने की शक्ति तुमसे मांगते हैं। हम इस कुल में प्राचीन महान् गुरुओं का आदर्श सामने रखें, यहाँ सच्चा आन्तरिक गुरु शिष्य सम्बन्ध स्थापित हो, यहाँ ब्रह्मचर्य का प्रबल पुनीत वायुमण्डल बना हो तथा यह स्थान दुनियाँ के लिए वैदिक (भारतीय) संस्कृति का केन्द्र बन जाए -- इस आदर्श की तरफ जाने के लिए जिस किसी आत्मबलिदान या स्वार्थत्याग की जरूरत हो, उसे करने का एक संकल्प रखते हुए हम तुमसे नए वर्ष के मंगलमय होने की प्रार्थना करते हैं।

हे प्रभो ! तुम्हारी इच्छा के बिना, तुम्हारी करुणा और दया के बिना जगत् का तुच्छ से तुच्छ कार्य भी सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए हम तुम्हारा ही स्मरण करते हैं—तुम्हारे बिना किसी भी दूसरे का, अन्य वस्तु या अन्य शक्ति का भरोसा नहीं करते हैं। यह ठीक है कि तुम्हारे इस अनादि अनन्तकाल में (जिसमें कि हमारी अजर अमर जीवात्माएं असंख्य जन्मों में विहार करती रही हैं और करती रहेंगी) इस आने वाले नए एक वर्ष की क्या सत्ता है और तुम्हारे अनन्तों ब्रह्माण्डों में जिनके कि तुम संचालक और प्रभु हो, यह एक हमारा भूलोक और उसमें यह भारत देश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसमें भी यह गुरुकुल कितनी तुच्छातितुच्छ वस्तु है। तो इस तुच्छ प्रार्थना को स्वीकार करना तुम्हारे लिए क्या कठिन है? तुम्हारे लिए यह गुरुकुल (इसका आदर्श) और यह नया वर्ष चाहे कितना तुच्छ हो, पर हमारे लिए तो यही सब कुछ है। तुम्हारे सब ब्रह्माण्डों के चालक, सर्वकालव्यापी महान् स्वरूप को हम क्या जानें? उस अगम में हमारी कैसे गति हो, अत: हमतो तुम्हें भी उस दिव्य शक्ति के रूप में ही पहिचानते हैं जिसने गुरुकुल का विचार लोगों के मस्तिष्कों में दिया है और जो ही अकेली गुरुकुल के उस आदर्श तक हम गुरुकुल उपासकों को ले जा सकती है। हमतो तुम्हें भी उस ऊंचाई से उतार कर गुरुकुल को चलाने वाली उस दिव्य शक्ति के रूप में ही उपासते हैं जिसे कि हम बहुत बार अपने गीतों में 'गुरुकुल माता' के नाम से पुकारते हैं। वह गुरुकुल माता जो कि आज इस जमाने में जबकि प्राचीन गुरु पद्धति केवल मजाक उड़ाने की चीज रह गई है 'गुरुकुल' इस जादू भरे नाम से लोगों को आकृष्ट और संगठित कर रही है, वह गुरुकुल माता जो कि इस जमाने में जबकि भाई-भाई और पिता पुत्र में भी सिवाय पैसों के या अन्य भौतिक स्वार्थों के अन्य किसी सम्बन्ध में विश्वास नहीं रखता उस जमाने में भी 'गुरु शिष्य सम्बन्ध' का मधुर नाद कानों में गुंजा रही है, वह गुरुकुल माता जोकि इस जमाने में जबकि भोगविलास ही जीवन का ध्येय है और जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक इसी के साधन जुटाने में मनुष्य ग्रस्त रहता है, उस जमाने में ब्रह्मचर्य का झण्डा लिए खड़ी है, उसी गुरुकुल माता के रूप में हम तुझको पहिचानते हैं। तू वह शक्ति है जो भारत में भारतीय सभ्यता का पुनरुज्जीवन कर रही है। इसी रूप में हम तुझको भारत जननी भी कहते हैं और इस जगत् को तू जिस विशाल शक्ति के साथ विशाल क्षेत्र में इसी संस्कृत हुई सभ्यता के लिए जगत् को तैयार कर रही है, उस रूप में तुझे ही हम जगत्-जननी नाम से भी पुकारते हैं। इसलिए हे मातः! हे शक्ति! हमतो तुम्हें अपनी दृष्टि से ही देखते हैं और कहते हैं कि हमारे लिए गुरुकुल ही तू है। तेरे लिए हमारी मांग चाहे कितनी तुच्छ हो पर हम जिस स्थूल परिमित जगत् में रहते हैं, वहाँ तो हमारा यह कार्य हमें बड़ा ही कठिन लगता है। इसलिए हम याचना करते हैं कि हमें हमारे कठिन ध्येय में सफलता प्रदान करो—नये वर्ष को इस दृष्टि से मंगलमय करो।

जैसे कि कमल सूर्य के उदय होने पर खिल जाता है, वैसे ही इस नये वर्ष के प्रभात में यह गुरुकुल तुम्हारा स्पर्श अनुभव करके आज खिल रहा है, खुल रहा है। बिना खुले हम तुम्हारे शक्तिसंचार को अपने में कैसे प्राप्त कर सकते हैं? अत: यह गुरुकुल अपने प्रत्येक अंग अवयव में तुम्हारे सामने खुला रखा है, बिल्कुल खुल कर तुम्हारे लिए अर्पित है, तुम कृपा करो, इसे अपनी कृपा करुणा का पात्र बनाओ, इसे पूरी तरह अपनाओ, इसे अपने दिव्य प्रकाश, ज्ञान और शक्ति से भर दो।

मेरी यह प्रार्थना सुनी जायेगी कि नहीं यह तो भविष्य बतायेगा। पर हे करुणानिधान! इसमें शक नहीं है कि यह मेरी प्रार्थना सच्ची और आन्तरिक है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक मैं अपने को जान सकता हूं, यह मेरी प्रार्थना सच्ची और हार्दिक है। और सच्ची प्रार्थना तेरे दरबार में कभी निष्फल नहीं जा सकती है। फिर भी यदि यह जल्दी ही—कुछ महीनों या वर्ष भर में—सुनी न गई तो यही समझूंगा कि हमारे अर्पण में कुछ कमी है, अभी गुरुकुल पूरी तरह तुम्हारे अर्पित नहीं हुआ है या सब अंगों में पूरी तरह तुम्हारे प्रति खुला नहीं है। हमारा यत्न जारी रहेगा। इसमें जरा भी शंका, कभी भी शंका नहीं है कि चाहे कुछ देर भी लगे पर गुरुकुल की प्रार्थना—अपने आदर्श की प्राप्ति के लिए वेग से अग्रसर होने की प्रार्थना—स्वीकृत ही होनी है। यह तुम्हारा काम तुमने ही पूरा करना है।

मुझे ऐसा विचार रखने में बड़ा सुख मिलता है कि एक वैशाख के दिन गत वर्ष मेरा नया जन्म हुआ था, और आज मैं तेरे एक बालक की तरह दूसरे वर्ष में प्रविष्ट हो रहा हूँ—पर अब आज 'मैं' और 'मेरा' कहना मुझे पसन्द नहीं है। गुरुकुल के साथ एकात्मता करके मैं अपने 'अहं भाव' को इस नए प्रकार से खो देने के लिए आज उपस्थित हूँ। आज से मैं जो कुछ करूंगा वह गुरुकुल के लिए है। गुरुकुल माता और भारत माता के द्वारा, हे जगज्जननि ! तेरे लिए है। नित्य प्रातः की जाने वाली मेरी प्रार्थना का निम्नश्लोक अब इसी अर्थ में मुझसे बोला जायेगा—

"प्रातः प्रभृति सायान्तं सायाद्यं प्रातरेव च।
यत्करोमि जगन्मातःतत्सर्वं तव पूजनम्॥"

इस समय मैं जो यह मुंह से मौखिक प्रार्थना कर रहा हूं यह तो केवल उस प्रार्थना का प्रारम्भ है जो कि वर्ष भर अपने सब कर्मों द्वारा तेरा पूजन करते हुए निरन्तर चलेगी। इस समय से गुरुकुल की ही मुख्यतः सेवा में अपना सब शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, प्रयत्न करूंगा और चौबीसों घण्टों के अपने मन वाक् कार्य के कर्मों द्वारा तेरा पूजन करूंगा—इस तरह तेरी प्रार्थना, उपासना, क्रिया रूप से सतत करता रहूँगा।

इसलिए अन्त में एक बार फिर अपने को गुरुकुल से एक करके प्रार्थना करता हूँ कि यह नया वर्ष शुभ हो और तेरे पूजन के लिए की जाने वाली मेरी यह गुरुकुल सेवा सफल हो, तेरे आशीर्वाद से सम्यक्तया सिद्धिप्रदायिनी हो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल के सफाई करने वाले सेवक*

भंगी शब्द घृणा भाव का द्योतक हो चुका है, इसलिए अपने इन भाइयों को जिस शब्द से पुकारना चाहिए वह ठीक-ठीक है तो मेरी समझ में 'सफाई करने वाले सेवक' यह शब्द है। परन्तु इस शब्द के लम्बा होने के कारण मैं भी 'हरिजन' इस सुन्दर शब्द का ही प्राय: प्रयोग करूंगा जो कि कुछ वर्षों से दलित और अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों के लिए व्यवहार में आने लगा है।

अस्पृश्यता तो गुरुकुल में प्रारम्भ से ही नहीं रही है। इन सफाई करने वाले सेवकों को छूना तो मामूली बात है पर इनके साथ भोजन करना या इनका बनाया हुआ भोजन करना भी गुरुकुल में कुछ खास बात नहीं मानी जाती। हरिजन शुद्धता के साथ भोजनशाला में भी काम करते रहे हैं। तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि अस्पृश्यता की दृष्टि से न सही, अन्य किन्हीं दृष्टियों से इन्हें नीच नहीं समझा जाता, अथवा कुल के वास्तविक अंगभूत व्यक्तियों से जैसा व्यवहार किया जाना चाहिए वैसा व्यवहार इनसे होता है। इस दिशा में हमने गुरुकुल में आगे क्या किया है या क्या करना चाहते हैं, इसी का कुछ दिग्दर्शन इस लेख द्वारा करने का इरादा है।

गुरुकुलीय हरिजनों के साथ अधिक सम्पर्क में आने का अवसर मुझे कैसे मिला, इसकी कहानी भी कुछ सुनाने लायक है। गुरुकुल कांगड़ी की आर्यसमाज का प्रारम्भ से ही मैं निरन्तर चन्दा देने वाला आर्य सभासद् रहा हूँ। दो या तीन वर्ष हुए पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के निर्देशानुसार हमारी गुरुकुलीय आर्यसमाज ने यह नियम बनाया कि आर्यसमाज की सदस्यता कायम रखने के लिए आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में 25 प्रतिशत तक उपस्थित होना आवश्यक है। इससे पहले मैंने ब्रह्मचारियों के साप्ताहिक सत्संग में जाना अधिक आवश्यक समझ कर गुरुकुल आर्यसमाज के सत्संग में सदा जाने से छुट्टी ले रक्खी थी, और किसी विशेषाधिवेशन में ही मैं सम्मिलित हुआ करता था। पर इस नए नियम का पालन करने की दृष्टि से अब मैंने आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में भी निरन्तर जाना प्रारम्भ कर दिया। पर कुछ समय बाद मैंने देखा कि उस सत्संग में तो केवल 5, 7 सज्जन इकट्ठे होते हैं और सम्मिलित हवन तथा भजनगान आदि करते हैं, उस में बैठने से न तो मुझे कुछ विशेष लाभ होता है और न मुझ द्वारा उन सब का। और वे जब यह चाहते हैं कि उस सत्संग में मैं कुछ उपदेश करूं तो और भी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। उन थोड़े से पढ़े लिखे भक्तों को मैं क्या उपदेश करूं ? वे सब कुछ जानते हैं, बहुत उपदेश सुन चुके हैं और स्वयं उपदेश दे सकते हैं, इस तरह के

---

* 'गुरुकुल' के 30 आषाढ़ 1996 अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार मन में उठने लगते हैं। मैंने सोचा कि जब समाज में मुझे बोलने को ही कहा जाता है तो मैं क्यों न ऐसी समाज बनाऊं जहाँ कि मुझ द्वारा बोले जाने की वस्तुतः आवश्यकता है, जिससे मेरे समय का अधिक ठीक उपयोग हो। गुरुकुल के छोटे कर्मचारी इस समाज में नहीं आते थे और न आ सकते थे। और सब से ज्यादह छोटे समझे जाने वाले जिनकी कि सामाजिक दृष्टि से बिल्कुल उपेक्षा की जाती है, वे ये गुरुकुल की सफाई करने वाले सेवक ही हैं जोकि अधिवेशन के समय भी सफाई में लगे रहते हैं। और ये ही ऐसे हैं जो अज्ञान के कारण विशेषतया बहुत दुःख पाते हैं अतः उन्हें ज्ञानोपदेश दिया जा सके, इसका प्रबन्ध करना गुरुकुलीय आर्यसमाज की दृष्टि से हमारा सबसे पहिला कर्तव्य है। यह सोच कर मैंने गुरुकुलीय आर्य समाज के प्रधान जी से यह अनुमति माँगी कि मुझे रविवार को हरिजनों के मुहल्ले में ही रात को जब उन्हें फुर्सत होती है सामाजिक सत्संग लगाने की अनुमति देवे और इसे अपनी गुरुकुलीय आर्यसमाज की एक शाखा समझें; इस तरह मुझे आर्य-समाजिक सत्संग लगाने का जितना आत्मसंतोष प्राप्त होगा उतना अन्य प्रकार से नहीं हो सकता।

इस प्रकार मैंने कुछ सप्ताहों तक गुरुकुलीय सफाई करने वाले सेवकों के घरों के आंगन में जाकर बैठने का और उन भाइयों से अच्छी तरह बातचीत करने का अवसर प्राप्त किया, जो अब भी किसी रूप में जारी है। इन भाइयों को गुरुकुल में कुल के अंगभूत होकर ही रहना चाहिए, यह विचार तो मेरे अन्दर बहुत वर्षों से काम कर रहा था और इसके बिना कुल की दृष्टि से बहुत अपूर्णता रहती है यह भी मैं सतत अनुभव करता था, पर इनको गुरुकुल का अंग बना देना जितना आसान पहले मैं समझता था, वह इतना आसान नहीं है, यह इस प्रथम सम्पर्क से ही मुझे मालूम पड़ गया। यद्यपि वे गुरुकुल में रहते हैं परन्तु उनकी दुनियां हमसे बिलकुल भिन्न प्रकार की है, यह स्पष्ट मालूम हो गया। गुरुकुल क्या है यह भी वे नहीं समझते थे। अपने देश के बारे में, आर्य समाज के बारे में, देश में चलने वाले प्रगतिशील आन्दोलनों के बारे में, मनुष्य के रूप में उनके कर्तव्य या अधिकार के बारे में और हरिजन आन्दोलन के बारे में भी उनके विचार प्रायः गलत या अत्यन्त अधूरे और भ्रमपूर्ण थे। उन्हें समझाना बड़ा कठिन था। कुछ दिनों की बातचीत के बाद यह समझ में आया कि इन्हें अधिक समझा सकना शायद कठिन है जब तक कि इन्हें साक्षर न कर दिया जाए और इनकी पढ़ाई का बाकायदा प्रबन्ध न कर दिया जाए। हरिजनों के कुछ बालक पहले से भी ब्रह्मचारियों से कभी-कभी पढ़ते-सीखते थे, कुछ हरिजन भी पहले से साक्षर हो चुके थे पर यह सब अव्यवस्थित रूप से हुआ था अतः वे सब के सब पढ़ें, कोई निरक्षर न रहे और नियमपूर्वक पढ़ें, इसका सिलसिला चलाया। परन्तु उनकी कठिनाइयों और दुःखों को अधिक खोज करने पर उनकी आर्थिक जाँच की जाने की आवश्यकता इससे भी अधिक आवश्यक सी मालूम पड़ी। इस जांच से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता लगा कि सब हरिजनों पर बहुत-बहुत कर्ज (8 परिवारों पर लगभग दो हजार रुपया) है। जिस पर कि उन्हें दुअन्नी रुपए तक का सूद देना पड़ता है। वर्षों से सूद ही दे रहे हैं और असल उतारने का मौका ही नहीं आने पाता। कई उत्तमर्ण अपना कर्ज चुकाने के लिए इन्हें यहाँ पर खूब पीटते हैं, धमकी देते हैं और अपनी स्त्री को बेच कर कर्ज चुका दो ऐसी प्रेरणा तक करते हैं और बहुत बाधित करते हैं। इससे इनकी कई ऐसी सामाजिक कुरीतियों का पता लगा जिनकी तरफ पहले ध्यान न गया था। अस्तु। उनको साप्ताहिक सत्संग में जो शिक्षा दी जाती थी, वह मुख्यतया यह थी—

"तुम्हें लुक-छिप कर भी या अपने सम्बन्धियों के यहाँ जाने पर भी और विवाह शादी के मौके पर भी मांस-शराब आदि का सेवन नहीं करना चाहिये (गुरुकुल में रहते हुए तो मांस, शराब का सेवन शुरू से निषिद्ध रहा है, और ऐसा जुर्म किसी ने किया है तो पता लगने पर उसे निकाल दिया जाता रहा है)। तुम्हें साफ साफ रहना चाहिए, अपने घर और अड़ोस-पड़ोस को साफ रखना चाहिए, तुम सब गुरुकुल की सफाई के जिम्मेवार हो अतः तुम में सफाई की स्वाभाविक प्रवृत्ति और रुचि होनी चाहिए, गुरुकुल को अपना घर समझना चाहिए, अपनी बिरादरी के खराब रीति-रिवाजों को छोड़ कर, उनसे इस बारे में असम्बन्धित होकर गुरुकुल के सब सेवकों का जैसा रीतिरिवाज, रहन सहन है उससे अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। हुक्का पीना भी छोड़ना चाहिए। ब्याह शादी में बहुत खर्च नहीं करना चाहिए। अपना काम कर्तव्य बुद्धि से ईमानदारी के साथ ठीक-ठीक करना चाहिए। मिल कर ईश्वर-स्तुति के भजन गाने चाहिएं, पढ़ना चाहिए। संस्कार करने चाहिएं। अपने कर्तव्य और अधिकार समझने चाहिएँ। कोई भी मनुष्य जन्म से नीच नहीं है सब परमेश्वर के पुत्र हैं। यह अच्छी तरह से जान लेना चाहिए। अपने देश की हालत से परिचित होना चाहिए" इत्यादि।

यह जानते हुए भी कि उनको सुधारने के लिए ऐसे उपदेशों की अपेक्षा इनकी आर्थिक अवस्था सुधारना अधिक उचित उपाय है या कम से कम उपदेश के साथ-साथ ही उनकी आर्थिक अवस्था भी अवश्य सुधारनी चाहिए, मुझे उस समय यह हिम्मत तो नहीं हुई कि मैं उनका वेतन एकदम बढ़ाए जाने की सिफारिश करूँ और इसके लिए ऊपर यत्न करूं। परन्तु कर्ज के कारण जो उनकी करुणाजनक स्थिति थी उससे उन्हें मुक्त करने का कुछ उपाय किए बिना मुझे चैन नहीं आया। अतः गत वर्ष ग्रीष्म ऋतु में हरिजनों के उत्तमर्णों को बुला-बुला कर मैंने समझाना शुरू किया। इन्हीं दिनों युक्त प्रान्त में कर्जे स्थगित करने का कानून भी बन रहा था अतः समझाने में सहायता मिली। परिणामस्वरूप बहुत से उत्तमर्ण यह मान गए कि यदि उन्हें असल रुपये का $\frac{3}{4}$ एक दम मिल जाए तो वे शेष सूद को भी छोड़ देंगे और हमारे सेवकों को ऋण मुक्त कर देंगे। तब मैंने कुछ परोपकारी मित्रों से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना सूद रुपया लेकर अपने हरिजनों पर चढ़े हुए कुल 1996 रुपये ऋण में से 888 रुपये आठ आने इतना ऋण उतार दिया। अर्थात् 888 रुपये आठ आने बिना सूद का ऋण अपने ऊपर ले लिया। इससे अधिक रुपया उनका कर्ज उतारने को उस समय नहीं मिल सका। अब गुरुकुल में पुनः आने पर 150 रुपये वापिस हुए हरिजनों के रुपयों से तथा 196 रुपये और मित्रों से बिना सूद दिए रुपयों से उनका ऋण और उतार दिया। और हरिजनों पर किसी बाहर के आदमी का ऋण अब केवल ढाई सौ रुपये के लगभग रह गया है।

अस्तु। अब इस बार पुनः गुरुकुल में आने पर अपने इन सफाई करने वाले सेवकों की वेतन वृद्धि भी करने की तथा उन्हें सुधारते हुए शीघ्र से शीघ्र गुरुकुल के वास्तविक अंगभूत बनाने का यत्न करने की इच्छा से जो योजना मैंने बनाई है और जो कुछ थोड़ा सा काम शुरू किया है उसे अन्त में पाठकों की सेवा में उपस्थित करता हूं। सम्भव है इस दिशा में सेवा करने वाले अन्य कार्य कर्त्ताओं को इससे कुछ लाभ मिल सके।

1—किसी हरिजन का वेतन 1 रुपये से कम से नहीं शुरू होना चाहिए और 25 रुपये तक यदि वह ठीक काम करता रहे तो 1 रुपया या 2 रुपया प्रतिवर्ष वृद्धि करते हुए अवश्य पहुँचना चाहिए। लगभग 4 रुपये हरिजनों की पत्नियाँ परिवार गृहों में काम करके कमा लेती है, अतः ऐसा कहना चाहिए कि 11 रुपये कम से किसी हरिजन का वेतन नहीं शुरू होना चाहिए।

अर्थात् जिनका वेतन 11 रुपये से कम है उनका 11 रुपये कर देना चाहिए। गुरुकुल में इससे कम वेतन वाले आठ में से दो हरिजन थे। उनका वेतन बढ़ाया गया है।

2—हरिजनों के सब बालकों को दुपहर के समय एक दो घण्टा पढ़ाने का स्थिर प्रबन्ध किया गया है। जो दो हरिजन स्वयं भी निरक्षर हैं उन्हें भी दुपहर के समय पढ़ाने के लिए आना आवश्यक किया गया है।

3—जो हरिजन ईमानदारी से काम करें, ठीक काम करें, सफाई से रहें, हुक्का पीना छोड़ें तथा अन्य प्रकार से अपना व्यवहार ठीक रक्खें, उन्हें ही वेतन वृद्धि दी जायेगी, ऐसा बार-बार समझाया गया है।

4—यह व्यवस्था की गई है कि हरिजनों को साल में दो बार गुरुकुल की तरफ से वर्दियाँ दी जायें, जिन्हें कि वे काम करते समय पहनें। एक वर्दी दिवाली पर और दूसरी गुरुकुल के जन्मोत्सव के अवसर पर बांटी जाए। इससे वे गुरुकुलीय जीवन से अपने आपको अधिक सम्बद्ध समझने लगेंगे। और नकद रुपया देने की अपेक्षा वस्तुओं के रूप में देना वैसे भी अच्छा है।

5—गुरुकुल के हस्पताल में रात को एक-एक सप्ताह तक एक-एक हरिजन को सोने का व्रत पूरा करना होता है। जिसका जिस सप्ताह व्रत हो, उसको उस सप्ताह भोजन गुरुकुलीय भण्डार से मिल जाया करे, यह सुविधा दी गई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6—हरिजनों के रहने की जगह में जो टीन के मकान हैं उन्हें शीघ्र से शीघ्र ईंटों के बनवा दिए जाएं। यह निश्चय कर लिया गया है।

7—इनका कर्जा चुक जाने के बाद इनके वेतन में से कुछ प्रतिमास काट कर इनके लिए रुपया जमा रखा जाये कि वह या उसका कुछ अंश इन्हें खास आवश्यकता के समय में एकदम दिया जा सके।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली क्या सिखाती है *

मैं इस लेख में यह बतलाने का प्रयत्न करूंगा कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में कांग्रेसी सरकार अपने प्रान्त की शिक्षा पद्धति में क्या बातें अभी ग्रहण कर सकती है। यह बतलाने के लिए मुझे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के मौलिक आधारभूत तत्वों का वर्णन करना भी आवश्यक होगा, जिन तत्वों का गुरुकुल कभी (अपनी पदवी का सरकार से स्वीकार कराने के लिए अथवा किसी भी प्रयोजन के लिए) छोड़ नहीं सकता, जिन को छोड़ना गुरुकुल प्रणाली को छोड़ देना होगा। उन तत्वों का वर्णन करते हुए मैं प्रकट करता जाऊंगा कि अमुक-अमुक बात इस मूल तत्व में है जिसे कि आज की वर्तमान अवस्थाओं में भी भारत के स्वायत्त शासन प्राप्त प्रान्त इतने अंश में स्वीकार कर सकते हैं।

संसार में समय-समय पर अनेक प्रकार की शिक्षा प्रणालियाँ प्रादुर्भूत होती रही हैं तथा प्रचलित होती रही हैं। उनमें से प्रभावशाली प्रणालियों में (न केवल भारत में किन्तु जगत में) गुरुकुल प्रणाली शायद प्राचीनतम है (यह वैदिक काल जितनी पुरानी है) परन्तु यह पीछे से विकृत होती गयी तथा शनैः शनैः लुप्त हो गयी। इस बीसवीं शताब्दी में जब महात्मा मुन्शीराम जी ने (निस्सन्देह ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से उद्बोधित होकर) इस शिक्षा के पुनरुद्धार करने का परम आवश्यकता का दर्शन किया तब से इस शिक्षा प्रणाली की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा। जो कोई भी गम्भीर विचारक पुरुष भारत से आता था वह गुरुकुल को अवश्य देखता था। बहुतों ने (एक दो जगह मुसलमानों ने भी), इस का अनुकरण करना उत्तम समझा और अन्य देशों ने (जैसे इटली, जापान, या अफ्रीका में) भी इसको अपनी अवस्थानुसार अनुकरण करने की आवश्यकता समझी। परन्तु हम जानते हैं कि हम इसे अभी तक दुनिया के सामने ठीक तरह स्थापित भी नहीं कर

* 'गुरुकुल' के 15 अक्तूबर 1937 अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके हैं। इसका मुख्य कारण यह हुआ कि यद्यपि इस शिक्षा प्रणाली को संसार में स्थापित करने का कार्य इस भारतवर्ष में प्रारम्भ हुआ जो कि पुराने संस्कार आदि की अन्य सब दृष्टियों से सर्वथा अनुकूल था तो भी भारत देश के गुलाम होने से (न केवल राजनैतिक दृष्टि से अपितु मानसिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी गुलामी में पड़ा होने से) यहाँ यह शिक्षा प्रणाली अभी तक पनप न सकी। अभी तक हमने जो कुछ किया है वह इस शिक्षा प्रणाली की ज्योति को इस अन्धकार में जगाये रखने का काम किया है। चारों तरफ के गुलामी के प्रबल वायु मण्डल में हम गुरुकुल को एक चमकती हुई सर्वग्रासी अग्नि के रूप में अभी तक न ला सके। प्रारम्भ में गुरुकुल की बात सुनते ही लोगों ने इसे असम्भव कहा। कुछ और आगे बढ़े तो बहुतों ने इस प्रयोजन के लिए दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज बना लेना काफी समझा। जिन्होंने गुरुकुल के साथ अपने को जोड़े रखा उनमें से भी कई पग पग पर यही सोचते रहे कि जब तक गुरुकुल का सरकारी यूनिवर्सिटियों से सम्बन्ध न होगा तब तक इसका जिन्दा रहना कठिन है। कारण—कि गुरुकुल के ऊंचे आदर्श को इस धुन्धमय वायु मण्डल के अन्दर ठीक प्रकार लगातार देखते रहना, इसे आँखों से ओझल न होने देना, सब के बस की बात न थी। फिर भी परमेश्वर की इच्छा से यह ज्योति अब तक जगती रही। बस इतना ही हुआ कि यह बुझाई नहीं जा सकी। पर इस ज्योति को जगते रखा गया वह भी एक बड़ा भारी कार्य हुआ और इन गत तीस चालीस वर्षों में इस ज्योति के जलते रहने से इसका जो भारत पर (और संसार पर) एक अदृश्य प्रभाव पड़ा, वह भी थोड़ा नहीं है। पर अब तो मालूम पड़ता है कि इस ज्योति के फैलाने का समय आ गया है। यह अब बुझाई तो नहीं जा सकती, यह इस अवस्था में पहुँच चुकी है। अब तो शायद इसका नाम स्थान आदि बाह्य बातें बदलना भी आसानी से नहीं हो सकता, इसका आन्तरिक रूप तो स्थिर हो चुका है।

यह भी ठीक है कि अभी तक लोग अपनी रुचि के अनुसार गुरुकुल पद्धति के भिन्न-भिन्न रूप पर जोर देते रहे हैं। जिसे गुरुकुल की जो बात अच्छी लगी, उसने गुरुकुल की पद्धति को तद्रूप ही समझा। इतना ही नहीं, गुरुकुल प्रणाली की जो सामयिक अस्थायी विशेषतायें थीं उन्हें ही कई लोगों ने सब कुछ समझा। जैसे राष्ट्रीयता या हिन्दी भाषा का माध्यम हो। ये गुरुकुल की विशेषताएं इस लिये थीं चूंकि अन्य सब शिक्षा अराष्ट्रीय थी, मातृभाषा का तिरस्कार करने वाली थी। नहीं तो वास्तव में गुरुकुल की मौलिक विशेषतायें न थीं। चार वर्ष पूर्व भी जब मैंने (जब मुझे बहुत से आर्यसमाजी भाई भयंकर राष्ट्रीय आदमी मान कर समझते थे कि मैं गुरुकुल को राष्ट्रीयता की आग में डाल कर सदा के लिए जला दूंगा) गुरुकुल के स्वरूप की चर्चा करते हुए लिखा था कि "राष्ट्रीयता तभी तक गुरुकुल में खास तौर से दिखायी देती है (असल में यह इसकी विशेषता नहीं है) जब तक कि स्वराज्य नहीं हो जाता और सारी शिक्षा राष्ट्रीय नहीं हो जाती। पीछे से तो गुरुकुल राष्ट्रीयता का नहीं किन्तु शायद अन्तर्राष्ट्रीयता का केन्द्र दीखने लगेगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो वह समय अब आ गया प्रतीत होता है। अब जब कि चारों तरफ राष्ट्रीयता की हरियाली दीखने लगी है तो अब सब लोगों का गुरुकुल की उस हरियाली की तरफ ध्यान नहीं खिचेगा, अब जब कि मातृभाषा में ही शिक्षा देने की बातें प्रान्तीय धारासभाओं में स्वीकृत हो रही हैं, गुरुकुल की मातृभाषा में ही सम्पूर्ण शिक्षा देने की बातें कुछ नई नहीं रहेगी। अब गुरुकुल पद्धति अपने असली मौलिक रंगों में दिखाई देने लगेगी। गुरुकुल की ये मौलिक विशेषतायें चार हैं—

(1) गुरु का केन्द्रीभूत होना
(2) कुल बनाकर रहना
(3) ब्रह्मचर्य
(4) वैदिक संस्कृति

इन में से प्रथम तीन बातें तो ऐसी हैं जो कि शिक्षा पद्धति के तौर पर महत्त्व रखती हैं अत: उन्हें सभी शिक्षा-संस्थायें अपने उद्देश्यों के अनुसार थोड़ा या बहुत अपना सकती हैं। चौथी बात ऐसी है जो कि पद्धति से उतना सम्बन्ध नहीं रखती जितना सम्बन्ध उद्देश्य से रखती है। इस में ही उचित प्रकार की साम्प्रदायिकता भी है। अतः आर्यसमाज ने (वैदिक धर्म का प्रचार करने वाली एक संस्था ने) गुरुकुलों का प्रारम्भ किया है। यद्यपि यह ठीक है कि पद्धति के तौर पर (पहली तीन बातों को लेकर) गैर-आर्यसमाजी संस्थाएं भी गुरुकुल चला सकती हैं, चला रही हैं और चलाना चाहिए। पर इस चौथी बात का भी एक सामान्य रूप है जो कि कम से कम भारत देश में सबको स्वीकार्य हो सकता है और उसे साम्प्रदायिक माना नहीं जायेगा। वह है 'भारतीयता'। वैदिक संस्कृति को यदि वर्तमान रूप दे दिया जायेगा तो उसे हम 'भारतीय संस्कृति' कह सकते हैं। यद्यपि भारतीय संस्कृति और वैदिक संस्कृति में बहुत से से लोग भेद करना चाहेंगे तो भी इसमें दो मत न होंगे कि भारतीय संस्कृति का आधार वैदिक संस्कृति ही है। अस्तु। अब मैं इन चारों मूल तत्त्वों को (चौथे मूल तत्त्व का नाम वैदिक संस्कृति की जगह भारतीय संस्कृति कर के) लेकर विचार करूंगा कि इन में से किस-किस बात को किस-किस रूप में स्वराज्य सरकार की शिक्षा पद्धति ने अपनाया जा सकता है—

गुरु का केन्द्रभूत होना

हम गुरुकुल कहते हैं शिष्यकुल नहीं। किसी प्रकार का (विशेषत: आध्यात्मिक) भारी प्रभावशाली ज्ञान रखने वाले (अतएव गुरु) से वह ज्ञान पाने के लिए उसके इर्द गिर्द बहुत से शिष्य एकत्रित होते थे। तब गुरुकुल बनता था। तो इस शिक्षा-प्रणाली में "गुरु" की मुख्यता है। जैसा गुरु होगा वैसा ही विद्यार्थी बनेगा।

(1) अत: पहिली बात यह है कि हमारे देश की शिक्षा पद्धति में शिक्षक बहुत सच्चरित्र और योग्य होने चाहिएँ। इसका जितना ध्यान रखा जाय उतना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा है। इस दिशा में गुरुकुल प्रणाली का तात्पर्य (Spirit) यहाँ तक है कि ठीक प्रकार के शिक्षक न मिले तो बालकों को बेशक अशिक्षित रखा जाय, यह हजार दर्जे उत्तम होगा पर खराब तथा अयोग्य शिक्षक के नीचे पढ़ने देना बहुत बुरा है।

(2) गुरु के केन्द्र होने में दूसरा भाव अपनी रुचि के अनुकूल गुरु को चुनना है। यह बात हमारे यहाँ पहिले चातुर्वण्य के अनुसार होती थी। आजकल यह कहाँ तक हो सकता है यह एक लम्बा विषय है जिस पर कि अन्त में गुरुकुल प्रणाली पर सामूहिक रूप से विचार करते हुए कुछ निवेदन करूँगा। परन्तु बालक को गुणकर्मानुसार शिक्षा देना यह भी गुरुकुल पद्धति का एक तत्त्व है। जिस पर कुछ न कुछ अमल अब भी किया जा सकता है। विद्यार्थी शिक्षा-काल में कौनसा उद्योग सीखे, इसके निश्चय में उसके गुण-कर्म प्रवृत्ति पर ध्यान देना यह तो किया ही जा सकता है।

(3) यह पद्धति प्रत्येक शिष्य पर वैयक्तिक ध्यान (individual Attention) देने की पद्धति है। अत: इसमें गुरु अपने चारों तरफ उतने ही शिष्यों को इकट्ठा करता है जितने वह सम्भाल सकता है। अत: यदि हम इस तत्त्व पर ध्यान देवें तो हमारी पाठशालाओं में एक शिक्षक के पास परिमित ही विद्यार्थी होने चाहियें। मेरे विचार में एक शिक्षक के पास बीस से अधिक विद्यार्थी नहीं होने चाहियें।

कुल बना कर रहना

गुरुकुल में गुरु और शिष्य पिता और पुत्र के से अत्यन्त निकट सम्बन्ध से रहते हैं। ज्ञान द्वारा दूसरा जन्म देने वाला (पिता) गुरु होता है। अतः गुरुकुलवास उस पिता के कुल-कुटुम्ब में रहना है। इस तत्त्व को सार्वजनिक शिक्षा में निम्न प्रकार लाया जा सकता हैं—

(1) शिक्षक और विद्यार्थी यथाशक्ति अधिक से अधिक देर साथ रह सकें। छात्रावास में विद्यार्थियों को रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। इतना ही काफी नहीं, किन्तु विद्यार्थी के सारे जीवन में सोना, उठना, हाथ का काम, भोजन, व्यायाम, परिश्रम सब में वह अपने शिक्षक के सम्पर्क में रह कर शिक्षित हो सकें, इसका प्रबन्ध होना चाहिये। विद्यार्थी जो कुछ भी घर में या ग्राम में करता है वह सब शिक्षक के पथ-प्रदर्शन में पाठशाला में कर सके, तभी गुरु-सम्पर्क का पूरा लाभ मिल सकता है। प्रारम्भ में यदि विद्यार्थियों के दिन रात पाठशाला में रह सकने की व्यवस्था न हो सके, तो वे अधिक से अधिक देर रहें, केवल भोजन शयन के लिए घर जावें या कभी भोजन भी पाठशाला में ही करें, और कभी-कभी छुट्टी का दिन भी मिलकर पाठशाला में ही बितायें, इसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

(2) जब शिक्षक का पिता का सा यह सम्बन्ध विद्यार्थियों से होना अभीष्ट है तो अब हमारी पाठशालाओं में भय, आतंक, हकूमत के वायुमण्डल की जगह प्रेम, सहानुभूति तथा सहयोग का वायुमण्डल हो जाना चाहिये। बाहरी दण्ड का स्थान कम से कम रह जाना चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण में शिक्षक का यह अधिक से अधिक सम्पर्क बहुत अधिक सहायक होता है अतः शिक्षक के इस विद्यार्थी सम्पर्क में यह दृष्टि सदा रहनी चाहिये।

(4) जैसे कि घर 'कुल' कुटुम्ब अपने आप में परिपूर्ण होता है, वैसे ही पाठशालारूपी कुटुम्ब को भी जीवन दृष्टि से परिपूर्ण होने का अर्थात् विद्यार्थियों को जीवन की सब अवस्थायें यहीं मिल जायें इसका यत्न करना चाहिये। अतः पाठशाला भोजन वस्त्र आदि निर्वाह की दृष्टि से आवश्यक बातों में स्वावलम्बी बन सके इसका प्रयत्न करना चाहिये। पाठशाला के साथ कुछ भूमि हो, जिसमें विद्यार्थी खेती कर सकें, कपास को कात बुन सकें, तथा गोपालन आदि दैनिक जीवन के अन्य आवश्यक कार्य कर सकें तो ये कुटुम्ब भावना के आदर्श को पूरा करने वाली बातें होंगी और सच्ची शिक्षा देने वाली होंगी।

(5) भौतिक जीवन देने वाले मातापिता के घर की अपेक्षा इस अधिक बड़े घर को, ग्रामरूपी घर को (जिसमें पिता शिक्षक हैं) अनुभव कराना इस बात को द्वार बनाना चाहिये कि विद्यार्थी में ऐसी भावना उत्पन्न हो जाय कि वह राष्ट्र को अपना घर समझने लगें और अपने को राष्ट्र का पुत्र समझें। केवल मातापिता का पुत्र नहीं। विद्यार्थी अपने पाठशाला के सब काम राष्ट्र रूपी कुटुम्ब के लिये करें निज के लिए या निजी कुटुम्ब के लिए नहीं। उनका शिक्षक भी उनके लिए राष्ट्र का ही प्रतीक है, यह वे समझने लगें।

(6) यह कहने की जरूरत नहीं कि इस कुटुम्ब भावना को रखने वाले नये प्रकार के शिक्षक बहुत वेतन लेने वाले Teacher नहीं रहेंगे। जो आसपास के जीवन से भिन्न जीवन बिताने में अपना बड़प्पन समझें और रोब जमावें। गुरु बड़े योग्य होंगे, ज्ञानी होंगे, ग्राम के बालकों के ही नहीं किन्तु सब ग्रामवासियों के गुरु होंगे, पूजा के पात्र होंगे, रुपया जमा करने वाले न होंगे। तब हम उस अवस्था के समीप पहुँच जायेंगे जिसमें ग्राम-शिक्षक गांव वालों से प्रेम-पूर्वक मिलने वाली अन्न वस्त्रादि आवश्यक वस्तुओं की भिक्षा पर ही निर्भर रहने वाला सचमुच पूजनीय ब्राह्मण होगा।

ब्रह्मचर्य

वैदिक ऋषियों का विश्वास था कि ब्रह्मचर्य के बिना सच्चा ज्ञान नहीं मिल सकता, जो कि शिक्षा का उद्देश्य है। अतः उन्होंने विद्याध्ययन काल को ब्रह्मचर्य काल बना दिया था। विद्याध्ययन काल में शिष्य पूरी तरह वीर्य संरक्षण कर सकें, इसकी व्यवस्था की गयी थी। चरित्र निर्माण के लिए जो कई प्रकार के संयम नियम चाहियें उनका आधार भी ब्रह्मचर्य ही है। अतः गुरुकुल पद्धति का सबसे बड़ा लाभ जो चरित्र निर्माण है, इसका रहस्य भी उसके ब्रह्मचर्य व्रत में है। बचपन से गुरुकुल के गुरुओं को सौंपा जाना और तपस्या उसके साधन हैं। इस ब्रह्मचर्य व्रत के लिए हमारे शिक्षणालयों में जितना किया जाय वह थोड़ा है। कुछ निर्देश निम्न हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1) शिक्षा समाप्ति तक अविवाहित रहना और सगाई तक न होना अनिवार्य कर दिया जाय।

(2) विद्यार्थियों को विषय सम्बन्धी इन्द्रियाकर्षक प्रलोभन के वायुमण्डल से पृथक् रखने की व्यवस्था की जाए। जैसे आजकल के थियेटर सिनेमा इत्यादि विद्यार्थी के लिए वर्ज्य कर दिये जांय।

(3) हमारे पाठ्यक्रम की पुस्तकों का कोई भाग अश्लील न रहे। इसकी शीघ्र जांच की जाए और उसे हटा दिया जाय। बल्कि तपस्या संयम के सच्चे भाव को हृदयांकित करने वाले विचार उस उमर के बालकों के समझाने योग्य ढंग से पाठ्य पुस्तकों में आवें, इसका आयोजन किया जाय।

(4) सादे शुद्ध अनुत्तेजक पोषक भोजन के लिए तथा ठीक प्रकार व्यायाम आदि के लिए विद्यार्थियों में प्रीति उत्पन्न की जाय।

(5) कष्ट सहन, तपस्या, परिश्रम, कभी खाली न होना, निरालस्यता, सैनिकभाव, निरन्तर देर तक निरुत्साहित हुए बिना कार्य करते जाना, इस प्रकार के जीवन का अभ्यासी बनाया जाय।

(6) शिक्षक के साथ मिलकर खेती, गोपालन, भोजन पकाना, कताई, बुनाई, बढ़ई का काम इत्यादि किन्हीं जीवनोपयोगी कार्य में लगे रहने में उच्चतर आनन्द व तृप्ति पाने का अभ्यासी बनाया जाय।

(7) सबसे बड़ी बात यह है कि चुने हुए लोगों को शिक्षक बनने देना जो ब्रह्मचर्य में किसी प्रकार ढीले न हों, ब्रह्मचर्य की महानता पर विश्वास रखने वाले हों तथा ब्रह्मचर्य का वातावरण बनाने में समर्थ हों।

भारतीय संस्कृति

वैसे तो ब्रह्मचर्य शब्द में ही भारतीय संस्कृति आ जाती है पर आजकल साधारणतया ब्रह्मचर्य से वीर्यरक्षा ही लिया जाता है अतः मैं दूसरे शब्दों में कहूँगा। चूंकि भारतीय संस्कृति का लक्ष्य ब्रह्म की प्राप्ति है (जिसके लिए ब्रह्मचर्य किया जाता है) अतएव इस संस्कृति में सादे रहन सहन का महत्त्व है तथा इस संस्कृति का उद्गम जिस भाषा द्वारा हुआ है वह संस्कृत भाषा है इस लिए (यदि हम अपनी शिक्षा द्वारा भारत की आत्मा को ही नष्ट नहीं कर देना चाहते तो) हमें अपनी शिक्षा में निम्न बातों का समावेश अवश्य करना चाहिये—

(1) सब विद्यार्थी किसी न किसी समय शिक्षकों सहित सम्मिलित ईश्वरोपासना अवश्य करें। आस्तिकता, परमेश्वर पर निर्भरता यह जरूर सीखें।

(2) अतएव हमारे विद्यार्थियों और शिक्षकों का रहन सहन सादा हो। प्राकृतिक वस्तुओं का अवलम्बन ज्ञानपूर्वक जितना कम हो सके, उतना कम किया जाय। हमारे जीवन में परिश्रमी लोगों की तरह जटिलता न आने पावे। "सादा रहन-सहन तथा उच्च विचार" शब्द हमारी सभ्यता के सूत्रभूत शब्द ठीक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका कारण यह है कि हमारी सभ्यता परमेश्वरोन्मुखी है। हमारा रहना सहना, हमारा सब जीवन-संघर्ष भी अन्त में परमेश्वर प्राप्ति के लिए है।

(3) हमारी शिक्षा में, कम से कम प्रत्येक हिन्दु विद्यार्थी के लिए संस्कृत भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान कराना आवश्यक होना चाहिए। इसके लिए सरल मातृ-भाषा में लिखी हुई संस्कृत पाठमालाओं का सावधानतापूर्वक निर्माण किया जाना चाहिए और इसका स्थान प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में लगभग तीन वर्ष के लिए (सम्भवतः तीसरी कक्षा से पाँचवी कक्षा तक) अवश्य होना चाहिये।

गुरुकुल-प्रणाली का भविष्य*

शायद बहुत से लोग अब यह सोचने लगें कि जब सम्पूर्ण राजकीय शिक्षा ही राष्ट्रीय तथा अन्य सब दृष्टियों से भी उपयोगी हो रही है तो अब गुरुकुलों की जुदा क्या आवश्यकता रही, पर सत्य यह है कि अभी तो हमें बहुत थोड़े राजनैतिक अधिकार मिले हैं, यदि आज ही सचमुच पूर्ण स्वाधीनता मिल जाय तो भी देश की राष्ट्रीय सरकार अपनी वर्तमान काल की मर्यादाओं के कारण अपनी शिक्षा को गुरुकुलीय ढंग की नहीं बना सकती या गुरुकुल की सब विशेषताओं को अत्युत्तम समझती हुई भी उन्हें क्रियान्वित नहीं कर सकती, इसका मतलब यह है कि अभी जमाना (युग) ही तैयार नहीं है कि ऐसे ऊँचे प्रकार की शिक्षाप्रणाली को पूरी तरह स्वीकार कर सके। इसलिये अब भी गुरुकुलों की आवश्यकता है यह तो ठीक है ही। बल्कि अब वह समय भी आ गया है जब कि गुरुकुल शिक्षाप्रणाली दुनिया को अपनी वास्तविक विशेषता और उत्कृष्टता दिखला सके। अभी तो हम (जैसा कि मैं कहता रहा हूँ) इसकी ज्योति को भी मुश्किल से जगाते रख सके हैं, इसका फैलाना तो दूर ही रहा। पर अब राजकीय सत्ता की अनुकूलता के कारण वह अवसर आ गया है जब गुरुकुल प्रणाली न केवल जीवित रहे किन्तु अपना विस्तार तथा पूर्ण विकास कर सके। इसलिए इस समय हम लोगों का, महान् वैदिक धर्म में अतएव गुरुकुल शिक्षाप्रणाली में विश्वास रखने वाले हम लोगों का कर्त्तव्य है कि हम इस अवसर का लाभ उठाकर गुरुकुल प्रणाली को ऐसा दृढ़ और विस्तृत करें जिससे वह युग शीघ्र आ जावे, जब सारे देश में (बल्कि सारे जगत् में) गुरुकुल प्रणाली स्थापित हुई हो और अपने मधुर फल से जगत् को संतृप्त कर रही हो। और इस कार्य को सफल या असफल करने में हम गुरुकुलीय शिक्षा पाये हुओं की कितनी भारी जिम्मेवारी है

*'गुरुकल' के 7 जनवरी 1938 अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे कहने की जरूरत नहीं। मैं तो यहाँ केवल वह चित्र खींचने का यत्न करूंगा जो कि उस समय दृश्यमान होगा जब कि सर्वत्र गुरुकुल शिक्षाप्रणाली चल रही होगी और उस अवस्था तक पहुँचने के लिए हमें जिन दो क्रमों में से गुजरना होगा उनका अपनी समझ के अनुसार वर्णन करूंगा, जिससे यदि वे उचित लगें तो उनके अनुसार अग्रसर हुआ जाय।

उस समय भारत के प्रत्येक ग्राम में एक प्रारम्भिक गुरुकुल होगा जिसमें एक आस पास का ही रहने वाला सच्चरित्र ज्ञानी पुरूष गुरु होगा। वह साधारणतया सारे ग्राम का ही प्रत्येक दिशा में गुरु व नेता होगा। अत: प्रत्येक माता पिता अपने पुत्र पुत्रियों को उस गुरु परिवार को सौंप दिया करेंगे। वह बचपन से इन बच्चों को माता पिता के से प्रेम द्वारा और उनसे भी अधिक ज्ञान और हितैषिता द्वारा ब्रह्म-चर्य की आदतें, उनके शरीर, हृदय और मन की पवित्रता तथा उनके अन्दर से स्वभावतः ज्ञान को निकालते और विकसित करते हुए उन्हें उनके शरीर, वाणी, इन्द्रिय, आत्मा, मन आदि का सदुपयोग करना सिखलाने का यत्न करेगा। जन्म-काल से ही इन बच्चों को देखते रहने और इस प्रकार अति निकटतया उनसे परिचित होते जाने से वह प्रत्येक विद्यार्थी की प्रवृत्ति और प्रकृति को अच्छी तरह समझने वाला होगा। अत: वह किन्हीं को इस प्रारम्भिक शिक्षा के काल में ही स्पष्टतया ब्राह्मण व क्षत्रियवृत्ति को पाकर दीक्षित व उपवीत कर देगा और किन्हीं को इस काल के बाद इन्हें जिले के गुरुकुल में भेजता हुआ इनकी वृत्ति (गुण कर्म की प्रवृत्ति) की सूचना देगा और वे उस ब्राह्मण व क्षत्रिय गुरुकुल में पहुँचकर दीक्षित होंगे— जहाँ उनके इन गुण, कर्मों के विकास का विशेष प्रबन्ध होगा। शेष सब (शूद्रों को छोड़कर जो इस प्रारम्भिक शिक्षा से आगे चलने योग्य नहीं होंगे) जिले के सामान्य गुरुकुल (वैश्य गुरुकुल) में भेजे जाएंगे। फिर कई जिलों से बने प्रत्येक प्रान्त में एक बड़ा त्रिविध गुरुकुल होगा या तीन प्रकार के गुरुकुल होंगे जिनमें विशेष ज्ञान-शक्ति रखने वाले ब्राह्मण ब्रह्मचारी, विशेष पराक्रम रखने वाले क्षत्रिय ब्रह्मचारी तथा विशेष कौशल रखने वाले वैश्य ब्रह्मचारी तीनों प्रकार का उच्च अध्ययन, शिक्षा तथा निपुणता प्राप्त कर सकेंगे। कुछ और भी ऊंचे, प्राचीन ढंग के ऋषियों के से गुरूकुल होंगे जहाँ विशेष लम्बी साधना करने की आन्तरिक प्रेरणा पाये हुए नैष्ठिक लोग आकर्षित होकर किसी बड़े ऋषि के चरणों में आया करेंगे और विशेष तपस्या द्वारा संसार के किसी बड़े कल्याण के लिए तैय्यार हुआ करेंगे, वे ऊंचे प्रकार के ब्राह्मण होंगे, बल्कि यह कहना अधिक ठीक होगा कि वे चातुर्वर्ण्य से भी ऊपर होंगे, क्योंकि कोई भी बाहिरी नियमोपनियम इनके लिए नहीं बताये जा सकेंगे, उन्हें बांधने वाले और ही कोई आन्तरिक (और अधिक कठिन) बन्धन होंगे जिनका मनुष्यों की अन्त-रात्मा से सीधा सम्बन्ध होता है। अस्तु। यह तो एक दूर का अधूरा सा स्वप्न है, दूर का है अतएव अभी से साफ नहीं दिखायी देता है, परन्तु वहाँ तक पहुँचने के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए हमें गुरुकुल को इसकी वर्तमान अवस्था से उठा कर जिस अवस्था में या जिन अवस्थाओं में लाना है, उनका देखना मुझे इतना कठिन नहीं लगता।

मेरी समझ में इस समय तक जितने गुरुकुल खुले हुए हैं, उनमें से कोई भी बन्द तो होना ही नहीं चाहिये किन्तु (दशम श्रेणी तक के) गुरुकुल विद्यालय और भी खुल जायें तो अच्छा हो, जिससे कम से कम प्रत्येक प्रान्त में एक गुरुकुल विद्यालय अवश्य हो जाय। और इस समय इन गुरुकुल विद्यालयों को देश की नयी शिक्षापद्धति के लिए योग्य अध्यापक, शिक्षक तैय्यार करने में मुख्यतया लग जाना चाहिये। इस समय देश में अनिवार्य शिक्षा हो जाने पर प्रत्येक ग्राम के लिए अध्यापक की आवश्यकता होगी। वैसे तो सरकार अपने अध्यापनकला के (training) स्कूल कालेज खोलेगी ही। पर मेरी समझ में यह कार्य गुरुकुल जितनी अच्छाई से और जितनी आसानी से कर सकते हैं, उतना और कोई संस्था नहीं कर सकती। इस कार्य में यदि हम सफल हों तो सारी देश की शिक्षा गुरुकुल प्रणाली से सीखे हुओं के हाथ में आ सकती है और आ जानी चाहिये। यह गुरुकुल प्रणाली को व्यापक करने का एक अच्छा अवसर है। पर इसके लिए हमें वर्त्तमान गुरुकुलीय शिक्षाविधि में एकदम कुछ परिवर्तन करने आवश्यक होंगे। जैसे, प्रत्येक विद्यार्थी को अध्यापक बनने के लिए जो एक आध उद्योग सीखना आवश्यक होगा वह गुरुकुलों में सबके लिए अनिवार्य कर दिया जाय तथा उद्योग के लिए समय निकालने के प्रयोजन से किन्हीं बौद्धिक विषयों की पढ़ाई संक्षिप्त कर दी जाय। गुरुकुल शिक्षापद्धति के विस्तार के लिए इस समय इन गुरुकुल विद्यालयों को बढ़ाने की दृष्टि से मुझे तो यह भी प्रिय लगता है कि अब हम गुरुकुल पद्धति को केवल आर्यसमाज तक परिमित न रक्खें अर्थात् आर्यसमाज ही नहीं किन्तु हिन्दुमात्र (जैसे ऋषिकुल है या जैसे गुरुकुल है) बल्कि यदि चाहे तो मुसलमान और ईसाई भी या यदि चाहें तो सरकार भी गुरुकुल (गुरु शिष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध, ब्रह्मचर्य आदि गुरुकुल के आवश्यक तत्त्वों के आधार पर) चलावे। इस बात के लिए हमें सब को प्रेरणा करनी चाहिये, उत्साहित करना चाहिये और मदद देनी चाहिये। यदि ऐसा हो तो इन सब गुरुकुल विद्यालयों को संगठित करने वाली संस्था भी केवल आर्यसामाजिक न रह कर इस प्रणाली में विश्वास रखने वाले सभी लोगों से बनी हो जावे तो यह भी किसी प्रकार हानिकर नहीं है। या केन्द्रीय बड़ा गुरुकुल (जिसका मैं आगे वर्णन कर रहा हूँ) उससे ही इन सब गुरुकुल विद्यालयों का सम्बन्ध हो, सांप्रदायिक तौर से आर्य-समाज से सम्बन्ध न हो। दूसरे शब्दों में तब इन गुरुकुल विद्यालयों पर सीधा आर्यसमाज का स्वामित्व न रहकर उसका नैतिक स्वामित्व रह जायगा। मतलब यह है कि यदि हम एक शिक्षापद्धति के तौर पर गुरुकुल पद्धति को फैलाना चाहेंगे जैसा कि हमें करना चाहिये, तो हमें इस आर्यसमाज की साम्प्रदायिकता से जुदा रख कर देखने का अभ्यासी होना होगा। अस्तु।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ हमें इन छोटे (दशम श्रेणी तक के) गुरुकुलों का विस्तार करना चाहिये और इसके लिए इन में ढील भी कर देनी चाहिये वहाँ हमें अपने केन्द्रीय गुरुकुल को उतना ही अधिक मजबूत और कसा हुआ बना लेना आवश्यक है। नहीं तो यह विस्तार निरर्थक होगा। हमारा एक ऐसा केन्द्रीय गुरुकुल हो जिसमें इन छोटे-छोटे गुरुकुल विद्यालयों से तथा अन्य जगह से भी चुनकर विशेष विशेष गुरुकुल के योग्य होनहार विद्यार्थी ही लिये जांय। यही असली गुरुकुल हो। इसका सरकार से—स्वराज्य सरकार से भी—सम्बन्ध न हो। इसका उद्देश्य गुरुकुल प्रणाली का विस्तार में फैलना नहीं किन्तु गहराई में उन्नति करना हो। यह शेष सब गुरुकुल विद्यालयों में निरन्तर प्राण फूंकने का काम भी बिना जाने करेगा। इसमें पूरी तरह उदार वैदिक धर्म का ही वायुमण्डल हो, जैसा हम आज भी गुरुकुलों से आशा करते हैं, उससे भी बहुत अधिक पवित्र और ऊंचा वायुमण्डल हो। गुरुकुलीय साम्प्रदायिकता (अच्छे अर्थों में) भी हो। अर्थात् इसमें महान् वैदिक धर्म में आन्तरिक विश्वास रखने वाले ही अध्यापक, उपाध्याय हों, रोजगारी पाने के लिए आया हुआ कोई न हो; गुरू शिष्य सम्बन्ध या कुल भावना ऐसी दृढ़ हो उसमें आजकल के स्कूल कालिजों की तरह हड़तालें आदि हो सकना असंभव बात हो; ब्रह्मचर्य वहाँ सब में गुरु और शिष्यों में—स्वेच्छा से परमावश्यक समझ कर पाला जाता हो; वेद के अध्ययन पठन पाठन तथा वैदिक जीवन का पूरा वायुमण्डल हो। यह केन्द्रीय गुरुकुल आकार में या आबादी में बेशक विशाल या बड़ा नहीं होगा, और इसे इस तरह बड़ा बनाने की चेष्टा भी नहीं करनी चाहिये। परन्तु इसमें आन्तरिक त्रुटि जरा सी भी असह्य होनी चाहिये। यह आन्तरिक असली शक्ति का केन्द्र होना चाहिये। इस तरह गुरुकुल शिक्षाप्रणाली इस एक केन्द्र में जम कर अपना विस्तार चारों तरफ शुरू करे। यह ध्यान रहे कि उपर्युक्त विस्तार तभी उचित है, सम्भव है जब कि यह केन्द्र सुदृढ़ और सच्चा हो।

फिर अगला क्रम तब आयगा जब देश भर में शिक्षकों के रूप में फैले हुए गुरुकुलीय शिक्षा प्राप्त लोग अपनी सच्चरित्रता तथा योग्यता का प्रभाव उत्पन्न करने लगेंगे। तब देश में भी शिक्षा अधिक महत्त्व की वस्तु बन चुकी होगी, उस पर अधिक ध्यान दिया जा सकेगा और वह अधिक विविधता को सम्भाल सकेगी। उस समय बालकों की प्रवृत्ति, गुण, कर्म आदि के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य (चाहे उनके ये नाम न हों, पर स्वरूप तथा कार्य में उनका इसी प्रकार होना आवश्यक है; और नाम पर हमें भी आग्रह नहीं करना चाहिये) भेद से शिक्षा की विविधता होगी जिसका हमें वर्णधर्म के पुनः संस्थापन में उपयोग करना चाहिये। दूसरी तरफ वह केन्द्रीय गुरुकुल तब तक अन्तर्निहित शक्ति में बहुत बढ़ा चढ़ा हो जाना चाहिये, उसमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों के तीन महाविद्यालय अथवा तीन व तीन से अधिक भिन्न भिन्न गुरुकुल (इन्हीं नाम से) उत्पन्न और विकसित हुए होने चाहियें और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह गुरुकुल संस्था अपने इस अन्तर्बल के प्रभाव से (किसी इश्तिहारबाजी द्वारा नहीं) जगत् में ऐसी जानी हुई वस्तु हो जानी चाहिये कि इसे देखने, अध्ययन करने, इसका लाभ उठाने देश के ही नहीं किन्तु संसार भर के पुरुष आने लगें। उस समय गुरुकुल अपनी उन चारों विशेषताओं में सचमुच नमूना हो जाना चाहिये अर्थात् [1] यहाँ के गुरु व आचार्य अपना एक विकसित ज्वलन्त व्यक्तित्व रखने वाले होंगे जिससे कि खिचकर पतङ्गों की तरह उस ज्ञान के जिज्ञासु उनके पास आना और रहना चाहेंगे [2] गुरुकुल में कुलभाव सहज स्वाभाविक होगा, परस्पर गुरु और शिष्य का सम्बन्ध उनकी अन्तरात्माओं का अच्छेद्य सम्बन्ध होगा [3] गुरुकुल में ब्रह्मचर्य का वातावरण ऐसा बन चुका होगा कि बाहर से आने वाले व्यक्तियों को यहाँ आते ही पवित्रता, शान्ति और संयम का महान आनन्द अनुभूत हुआ करेगा, यहाँ दूसरे प्रकार की वृत्ति जगना दुष्कर होगा, [4] तथा वैदिक साहित्य के विषय में ऐसी कोई शंका न होगी जिसका यहाँ आकर समाधान न हो सके, वैदिक जीवन के सम्बन्ध में कोई तात्विक उलझन ऐसी न होगी जो यहाँ सुलझ न सके, इस प्रकार पूर्ण निष्ठा से वैदिक कार्य की साधना यहाँ की जा चुकी होगी। तब फिर वह तीसरा क्रम आयेगा जब कि इस केन्द्रीय साधना के बल पर चारों तरफ धीरे-धीरे विजय पाती हुई, फैलती हुई गुरुकुल शिक्षा प्रणाली एक आम शिक्षा प्रणाली हो जायेगी।

आचार्य जी का अन्तिम भाषण*

बहुत सम्भव है कि अब मुझे तुम से सामूहिक रूप से मिलने का अन्य कोई अवसर न मिले, अतः कुल मन्त्री के विशेष आग्रह के अनुसार मैं जाते समय कुछ तुम्हें कह जाने के लिये खड़ा हुआ हूँ। कुछ भी कृत्रिम कार्य करना मुझे बहुत नापसन्द है अतः यह सोचने पर कि जाते समय तुम्हें क्या कह जाना चाहिये मेरे अन्दर से स्वभावतः जो कुछ निकला है वह ये दो वाक्य हैं जो कि मैं लिख कर लाया हूँ। पर इन दो पंक्तियों के पढ़ देने मात्र से कुल मंत्री को और तुम्हें सन्तोष नहीं होगा और मुझे फिर दिक किया जाएगा इसका मुझे पूरा डर है। इस लिये मैंने सोचा है कि

* 'गुरुकुल' के के 3 जून 1938 अंक में प्रकाशित। पृष्ठ के बीच में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के नाम उनका संदेश भी छपा है—"यदि तुमने मुझ से कभी कुछ पाया है तो उसे कायम रखना, सच्ची कोशिश करके उसे कायम रखना। परमात्मा तुम्हें पथ भ्रष्ट होने से बचाते रहें।"

अभय
20-5-38"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने इस अति संक्षिप्त वक्तव्य की भूमिका के तौर पर मैं कुछ अधिक बात बोल दूं जिससे कि तुम समझो कि मैंने कुछ बोला है।

कुल मंत्री ने मुझे बार-बार कहा है कि ब्रह्मचारी मुझे अभिनन्दन पत्र देना चाहते हैं। हर बार ही मैंने उन्हें मना किया है। जो कुछ मैंने उन्हें कहा है वही जरा व्याख्या सहित तुम सबको बता देता हूँ। गुरुकुल में गत 17 वर्षों से आचार्य, उपाचार्य या सहायक आचार्य आदि रूप से सम्बन्धित रहा हूँ पर इन 17 वर्षों में मैंने कई बार गुरुकुल छोड़ा है। और फिर गुरुकुल लौट आया हूँ। एक बार योग की धुन सवार हुई थी इस लिये एक साल की अवैतनिक छुट्टी लेकर अज्ञातवास किया, पर उसके बाद वहाँ जाकर त्याग पत्र दे दिया और एक साल और बाहर रहा। दूसरी बार सत्याग्रह में जेल गया और लौटने के बाद गांधी सेवाश्रम की स्थापना कर ग्राम सेवा कार्य करने लगा। फिर बाकायदा आचार्य पद से त्याग पत्र भी दे दिया और डेढ़ वर्ष बाद फिर आ गया इस लिये इस बार भी यद्यपि यह ठीक है कि मैंने दिसम्बर से त्याग पत्र दे रखा है और 8 मई को वह स्वीकृत भी हो चुका है तो भी 'जाट मरा जब जानिये जब तेरही हो जाये'।

मुझे लगता है कि तुम अभिनन्दन पत्र दे कर मेरी तेरही कर डालने की जल्दी कर रहे हो। और यह तो तुम देखते ही हो कि कल तक और आज शाम तक भी मैं कइयों को दण्ड देता रहा हूँ, तुम्हारी कई इच्छाओं का प्रति घात कर अपनी चलाता रहा—डांटता फटकारता रहा हूँ—मानों मैंने अनन्त काल तक इसी तरह तुम्हारा आचार्यत्व करते रहना है। तो ऐसे जीते जागते आदमी को और ऐसे खराब आदमी को अभिनन्दन पत्र देने की हिम्मत भी तुम कैसे कर सकते हो, मुझे यह समझ में नहीं आता।

खैर, यह तो मोटी भाषा में समझना हुआ—यदि मैं ऐसे न समझाऊं तो तुम में से बहुतों को वस्तुतः बतला न सकूं कि मैंने अभिनन्दन पत्र लेना क्यों नहीं माना। पर सात्विक शब्दों में कहूँ तो इसका कारण यह है कि मेरा गुरुकुल के साथ ऐसा घनिष्ट, स्वाभाविक पवित्र सम्बन्ध है कि उसमें अभिनन्दन पत्र की चर्चा उठाना तक अशोभायमान लगता है। यह कार्य इतना कृत्रिम लगता है जैसे सुन्दर रेशमी कपड़े में एक टाट का पैवन्द लगाया जा रहा हो। इसी स्वाभाविक सम्बन्ध के कारण गतबार जब मैंने गुरुकुल छोड़ा था तो मुझे अभिनन्दन पत्र के लिये कुछ विशेष आग्रह नहीं किया गया था। इस बार के पुनः पुनः आग्रह से तो मुझे कुछ ऐसा लगा मानो गुरुकुल से मेरा सम्बन्ध कुछ विगड़ गया है। अस्तु। और मैं आध्यात्मिक दृष्टि से कहूँ तो इतना ही है कि यह कार्य अन्दर से स्वीकृत नहीं होता। आध्यात्मिक दृष्टि में पाप पुण्य, अच्छा बुरा यह कुछ भी नहीं कहा जाता, तो प्रत्येक बात पर अन्दर की आत्मा बिना तर्कना या युक्ति के सहज भाव से हाँ या ना करती जाती है। अतः उस दृष्टि से मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि यह कार्य मुझे ठीक नहीं लगता, हाँ नहीं होती। उपर्युक्त तर्कना तो मैं पीछे करता हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, यदि तुम यह जानना चाहो कि मेरे अभिनन्दन करने का सच्चा तरीका क्या है तो तुम ऐसे अवसर पर गत बार कहे मेरे भाषण को अब भी याद कर सकते हो, पढ़ सकते हो उसे दोहराने का अवसर नहीं है। मुझे अपना वह कथन अब भी तुम्हारे लिये वैसा ही ताजा लगता है, कई ग्रीष्म ऋतुएं बीत जाने पर भी वह अब भी वैसा ही हरा भरा दीखता है। जब मेरा वह भाषण अलंकार में (तथा कहीं अन्यत्र भी) छपा था तो उसे पढ़कर एक स्नातक ने मुझे लिखा कि मैं अपने को काफी कड़े दिल का समझता हूँ—पर उस भाषण को पढ़ कर न जाने क्यों मेरे भी अश्रु आ गए। शायद उसका कारण यह था कि उस भाषण को मुझ से करवाने वाली मेरे अन्दर से उस भाषण को निकलवाने वाली, एक या कई ब्रह्मचारियों की सच्ची, अश्रुपूर्ण हार्दिक प्रार्थना थी जो बिना दिखावे के एकान्त में की गई थी। आज कोई ऐसी चीज मेरे अन्दर से नहीं उठ रही और न वैसी परिस्थिति ही है।

अन्त में मैं तुम्हें यह कह देना चाहता हूँ कि मेरे गुरुकुल से जाने का कारण शुद्ध आध्यात्मिक है, आध्यात्मिक मांग हुई है जिसे पूरा करने के लिए मुझे जाना पड़ता है। तुम ब्रह्मचारियों की तरफ से ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण मैंने गुरुकुल छोड़ने का निश्चय किया हो। यह तो तुम जानते ही हो कि मैं घबराने वाला आदमी नहीं हूँ, तङ्ग हो जाने वाला भी नहीं हूँ। तुम्हारी खराबियाँ अच्छी तरह से जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम में सुधार की बहुत अधिक आवश्यकता है। गुरुकुलीय आदर्श की दृष्टि से देखूं तो तुम्हारा बहुत ही बुरा हाल है। यह नहीं कि मैं तुम्हारे गुण नहीं जानता। मैं तुम्हारे गुण भी जानता हूँ इसी लिये तुम्हारी खराबियां भी ठीक ठीक जानता हूँ। पर इस सब से मैं जरा भी निराश नहीं हूँ। मैं इसे ठीक करना कुछ कठिन नहीं समझता। यहाँ के वायु मण्डल को बदल देना भी कुछ मुश्किल नहीं दीखता और परमेश्वर की कृपा से तो कुछ भी असम्भव सम्भव हो सकता है। मतलब यह है कि गुरुकुल छोड़ने का यदि मेरा कोई आन्तरिक (गुरुकुलीय) कारण है तो वह कुछ और है, तुमसे वह सम्बन्ध नहीं रखता।

ऐसा कहते हुए मैं जहाँ तुम्हें एक प्रकार का अभिनन्दन पत्र दे रहा हूँ—और अपने आपको भी अभिनन्दन पत्र दे रहा हूँ। वहाँ साथ ही अपने को निन्दा पत्र भी दे रहा हूँ। गांधी जी के हरिजन दौरे में जब उन्हें देहली में अभिनन्दन पत्र दिये जा रहे थे तो मैंने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की तरफ से एक निन्दा पत्र दिया था। वैसे ही भाव में आज मैं यह निन्दा पत्र भी स्वेच्छा से ले रहा हूँ। अस्तु, मैं यह कह चुका हूँ कि मेरा इस समय गुरुकुल छोड़ने का अन्तिम और मूल कारण आध्यात्मिक है। अतः मेरे इस छोड़ने से किसी का भी अकल्याण होगा, यह सोचा भी नहीं जा सकता। कल मान्य उपाध्याय पं० धर्मदत्त जी मुझ से कह रहे थे कि आप अपने लाभ के लिये गुरुकुल छोड़ रहे हैं सो आपके लिये ठीक है। इस पर जो कुछ उन्हें मैंने कहा, वही तुम्हें कहता हूं कि मेरा कोई जुदा लाभ नहीं है। किसी भी शुद्ध आध्यात्मिक प्रवृत्ति से सभी का एक प्रकार का भला होता है। नम्रता से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह सकता हूँ कि 'मैं' और 'मेरे' का ख्याल मुझ में नहीं रहा है—नहीं के बराबर रहता है इसलिये असंदिग्ध मन से मैं कह रहा हूं कि जिसमें मेरा निश्चित भला है उसमें सबका भला है।

हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह और कांग्रेस*

आर्य समाज की इस सत्याग्रह (शान्तिमय लड़ाई) के बारे में मैं अभी तक चुप रहा हूँ। कई बार चुप रहना बोलने की अपेक्षा अधिक सेवाकारक होता है। चुप रहने का एक स्वाभाविक कारण यह था कि जब तक सब स्थिति को अच्छी तरह अध्ययन न कर लिया जाये पूरी तरह समझ न लिया जाये तब तक कुछ बोल पड़ना अनुचित होता है। अब ऐसी अवस्था हो गई है कि मैं समझता हूँ कि मैं बोलने द्वारा भी कुछ सेवा कर सकता हूँ अतः इस सत्याग्रह के संचालकों की सम्मति से इस प्रथम लेख द्वारा कुछ लिखना प्रारम्भ किया है।

इस बार 'यह सत्याग्रह और कांग्रेस' इसी विषय तक अपने को परिमित रखूँगा। दुःख है कि आर्य समाज के कुछ उपदेशक और कुछ पत्र भी इस विषय में कांग्रेस को बुरा भला कहने पर उतर आते हैं। कई वक्ता और लेखक तो कांग्रेस को और गांधी जी को तथा अन्य कांग्रेस नेताओं को (मुसलमानों को तो कहना ही क्या) बिना कोसे अपना पक्ष पोषण ही नहीं कर सकते हैं—ऐसा होता है। इस बारे में मैं तो अभी इतना ही कह सकता हूँ कि इस प्रकार के असंयम से पवित्र उद्देश्य के लिए प्रारम्भ की गई यह धार्मिक लड़ाई उस हद तक कलुषित हो जाती है, लाभ कुछ भी नहीं होता। ऐसा करने वाले आर्य समाज के उत्तरदायी नेता लोग हैं या अनुत्तरदायी और उत्तरदायी हैं तो किस हद तक उत्तरदायी हैं—इस विवाद में इस समय न पड़ कर इतना ही निश्चित रूप से कहा जाना उचित है कि कम से कम यह सार्वदेशिक सभा की नीति नहीं है। अतः यदि हम चाहते हैं कि यह लड़ाई कलुषित न हो, पवित्र बनी रहे तो इस सम्बन्ध में व्याख्याताओं और लेखकों को सार्वदेशिक सभा की नीति का ही कठोरता के साथ पालन करना चाहिए—दूसरे शब्दों में श्री पूज्य स्वा० सत्यानन्द जी महाराज या श्री प्रो० सुधाकर जी (मंत्री सार्वदेशिक सभा) ला० देशबन्धु जी, म० कृष्ण जी आदि अपने मान्य नेताओं के दिये भाषणों और लेखों का अनुगमन करना चाहिये। यदि कोई उनका अनुगमन करने में असमर्थ हो तो उसे चुप रहना चाहिये। इस प्रकार के अनुशासन या आत्मनियंत्रण के बिना कोई लड़ाई

* 'गुरुकुल' के 18 चैत्र शुक्रवार 1995 के अंक में प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं लड़ी जा सकती, धार्मिक लड़ाई तो कभी भी नहीं। अस्तु, यह तो एक प्रारम्भिक बात हुई जिसके बिना मैं 'कांग्रेस और अपना सत्याग्रह' इस विषय पर ही नहीं आ सकता था।

यह ठीक है कि महात्मा गाँधी तथा कांग्रेस के नेता इस सत्याग्रह के बारे में लगभग चुप हैं। इसी से ही खीझकर लोगों को उन्हें और कांग्रेस को बुरा भला कहने की उकसाहट होती है। पर यदि हमारा पक्ष सत्य है और हमारी माँग तथा उसे पूरा कराने के उपाय धार्मिक तथा उचित हैं तो हमें इसकी क्यों चिन्ता होनी चाहिये कि कांग्रेस वाले या कोई और हमारे पक्ष का समर्थन क्यों नहीं करते। कांग्रेस राजनैतिक संस्था है, हमारा सत्याग्रह धार्मिक है। धार्मिक पुरुष तो परमेश्वर के सिवाय और किसी भी अन्य की सहायता पर भरोसा नहीं रखता है। कांग्रेस के जी में आवे तो वह हमारी सहायता या समर्थन करे, पर यदि वह नहीं करती है तो उससे हमें क्या? इस पर हमारा क्रुद्ध होना किसी तरह समझ में आने लायक बात नहीं है। लाला नारायण दत्त जी ने यह ज़िकर करते हुए कि आज वे महात्मा गांधी से मिलकर और सत्याग्रह के बारे में बातें करके आये हैं और अनुभव करते हैं कि सत्याग्रह कितनी पवित्र और ऊँची वस्तु है, सत्याग्रहियों को संबोधित करते हुए कहा "तुम्हें पूर्ण-शुद्ध धार्मिक भाव से, तपस्या के लिए ही हैदराबाद जाना चाहिए। सत्याग्रह के दिव्य हथियार को संसार को देने वाले महात्मा गांधी ही हैं, अतः सत्याग्रह करते हुए हमें उन्हीं सत्य अहिंसा के आदर्शों का पालन करने का प्रयत्न अपनी शक्ति भर करना चाहिये जिन्हें कि महात्मा गांधी ने प्रतिपादन किया है। अन्य बहुतों की तरह मैं भी पहिले यह मानता था कि कांग्रेस ने हैदराबाद में जो अपना सत्याग्रह बन्द कर दिया वह उसने बुरा किया। मैं उनके इस कृत्य से अप्रसन्न था। पर अब मैं मानता हूँ कि उन्होंने यह बिल्कुल ठीक किया। मैं तो समझता हूँ कि हमने कांग्रेस से सहायता माँगने में भी गलती की। किसी भी राजनैतिक संस्था से-बल्कि परमेश्वर के सिवाय किसी भी अन्य से-सहायता मांगना अनुचित था। कांग्रेस का राजनैतिक सत्याग्रह चलता रहता तो हमारे धार्मिक सत्याग्रह की शुद्धता कायम नहीं रह सकती थी। वैसा होना बहुत बुरा होता। मैं शोलापुर में भी किसी कांग्रेस आदि की सहायता माँगने के विरुद्ध था। मेरा यह विचार गांधी जो से मिलने से और पुष्ट हो गया है।" अन्त में फिर सत्याग्रहियों के लिये सत्य, धार्मिकता अहिंसा पर पूर्ण बल देने की चर्चा करके भाषण समाप्त किया।

आर्यसमाज के इस आन्दोलन पर महात्मा गांधी का चुप रहना (अतएव अन्य कांग्रेस नेताओं का भी चुप रहना) बुरा नहीं है, यह सप्रयोजन है। मैं तो यह भी कह सकता हूँ कि यही हैदराबाद सत्याग्रह के संचालकों के लिए अधिक अनुकूल है। अतः गांधी जी आदि के मौन को—इस दृष्टि से भी—बुरा नहीं किन्तु अच्छा माना जा सकता है किन्तु कई लोग कहेंगे कि गांधी जी ने और जवाहरलाल जी ने इसे साम्प्रदायिक बता दिया है—यह बात है जो बुरी है और इस पर उन्हें क्रोध

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता है। पर गांधी जी ने तो आर्यसत्याग्रह को शुद्ध धार्मिक कहा है, पर हिन्दु सभा के साथ के कारण इसमें साम्प्रदायिक रंग चढ़ गया है ऐसा बतलाया है। जवाहरलाल जी ने भी आर्यसमाज की मांग को सर्वथा उचित बताया तथा हैदराबाद रियासत के रवैय्ये की निन्दा की है। फिर भी जो इन्होंने साम्प्रदायिक रंग आ जाने की चर्चा की है उसका स्पष्ट इतना ही मतलब है कि यह ख़तरा है कि यह आन्दोलन हिन्दु-मुस्लिम दंगे का रूप धारण न कर ले जिसे कि शायद कोई भी आर्यनेता नहीं चाहता। इसीलिये सार्वदेशिक सभा तथा आर्यनेता यह कहते हैं कि हमारी यह लड़ाई हिन्दु और मुसलमानों की लड़ाई नहीं है किन्तु एक रियासत में (वह इस समय दुर्भाग्य से मुसलमानी रियासत है) अपने धार्मिक अधिकारों के प्राप्त करने की लड़ाई है। अतः यदि अपनी लड़ाई को साम्प्रदायिक द्वेषभाव से सर्वथा जुदा रखकर सावधानता और कुशलता के साथ इस तरह चलाये कि यह हिन्दु-मुसलमानों की लड़ाई का साम्प्रदायिक रूप न धारण कर ले (और मेरी समझ में असली धार्मिक सत्याग्रह में इस संभावना की गुंजायश भी नहीं होनी चाहिये) तो जवाहरलाल जी और गांधी जी को प्रसन्नता ही होगी। उन्होंने तो केवल एक आशंका प्रकट की है जिसकी सम्भावना हो सकती है क्योंकि उन्हें सारे देश कीदृष्टि से देखना होता है। तो इसमें गांधी जी या जवाहरलाल जी से नाराज होने की क्या बात है?

असली बात यह है कि कांग्रेस का एक भी नेता ऐसा नहीं है जो आर्यसमाज की माँगों को सर्वथा उचित न समझता हो और जो आर्यसमाज की सफलता न चाहता हो। आप किसी भी नेता से बात करके देख लीजिये। कांग्रेस के तत्कालीन जनरल सेक्रेटरी श्री कृपलानी जी ने इस पर जो अपनी सम्मति लिखी है, उसके होते हुए कांग्रेस से नाराज़गी की क्या बात रहती है यह समझ में नहीं आता है। यदि किन्हीं आर्यसमाजियों ने श्री कृपलानी जी का वह पत्र नहीं पढ़ा है तो वे पढ़ लें। राजेन्द्रबाबू जी से जब पूछा गया तो उन्होंने भी वही जबाब दिया। वह भी अखबारों में छप चुका है। अतः अन्य नेताओं से पूछा जायगा तो वे भी वैसा ही जबाब देंगे। तो फिर हम कांग्रेस के नेताओं से और क्या चाहते हैं? यदि कोई आर्यसमाजी गांधी जी द्वारा दी गई इस सहायता की कद्र करना चाहे तो मैं उन्हें यह भी सूचित करना चाहता हूँ कि महात्मा नारायण स्वामी जी के पैरों का कैदियों का कड़ा उतारा जाना तथा उनके भोजन में सुधार किया जाना यह गांधी जी के द्वारा किये गये प्रयत्न का ही फल है।

मेरी स्वास्थ्य-साधना*

(गत दो-तीन सप्ताह से श्री आचार्य अभयदेव जी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में

---

* 'गुरुकुल' में प्रकाशित। अंक का विवरण नहीं मिल सका। आचार्य जी के पत्र के नीचे 23-1-41 तिथि अवश्य अंकित है। प्रारम्भ में संपादकीय टिप्पणीहै।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकारी प्राप्त करने के लिए जनता के नाना प्रकार के पत्र गुरुकुल में आ रहे हैं। श्री आचार्य जी के अनेक सहयोगियों, भक्तों व प्रेमियों ने सीधे आचार्यजी के पास भी उनके स्वास्थ्य के विषय में चिन्ता प्रकट करते हुए अपने पत्रों में यहाँ तक लिखा है कि "यदि आपकी आज्ञा हो तो हम वहीं (मालावार में) आकर आपकी सेवा में तत्पर हों।"

किन्तु अभी हाल में ही श्री आचार्य जी का जो स्वहस्तलिखित पत्र हमारे नाम आया है, उससे पता लगता है कि वे अच्छी हालत में हैं। जनता को उससे सुविदित कराने के लिए हम उस पत्र को अविकल रूप से नीचे देते हैं)–सम्पादक

श्री सम्पादक जी,

नमस्ते। मैं यह दूसरा पत्र आपको अपनी बीमारी के बारे में लिख रहा हूँ क्योंकि मेरे इलाज के लिए इधर आने की बात फैल गयी है, और बहुत से सज्जनों के पत्र हाल जानने को आ रहे हैं। आश्चर्य और चिन्ता प्रकट की जा रही है। आश्चर्य की बात तो जरूर है क्योंकि लगभग 20 वर्ष से मैं बीमारी से प्रायः अछूता रहा हूँ—बीमारी की आदत तो बिल्कुल नहीं रही है। पर चिन्ता की कुछ बात नहीं है। और असल में आश्चर्य की भी कुछ बात नहीं है, क्योंकि मेरे शरीर में कुछ भी नयी बात अब नहीं हो गई है। जिसका इलाज करा रहा हूँ वह एक ऐसी त्रुटि है जो कि शरीर में बहुत पहिले से है, बचपन से है। नयी बात केवल यह हुई है कि अब यह परिज्ञान हुवा है कि इसको तुरन्त ठीक करना चाहिये नहीं तो ख़तरा है। अभी तक इतने वर्षों तक मैं इसे सहता रहा, इसकी उपेक्षा करता रहा। आसनों की व्यायाम करते रहने तथा स्वास्थ्य के नियमों के स्वाभाविक पालन के कारण यह विकार बढ़ने नहीं पाया, अभी तक कोई उपद्रव पैदा न करने पाया। लगभग पिछले एक वर्षों से अन्तरात्मा निरन्तर शरीर की इस त्रुटि पर ही अंगुलि रख रहा था, कहता था कि इसे ठीक किये बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकते, अब उसके कथन का उल्लंघन करना असम्भव हो गया है। यह तो अन्दर की दृष्टि से हुआ, बाहर से भी पता लगा कि यदि इस अवस्था में यह विकार ठीक न किया गया तो आगे हमेशा के लिये बिगाड़ हो जायगा। बस, इसीलिये मैं पहिले जैसा अच्छा भला दीखता हुआ भी बीमार बन गया हूँ।

कहने को बीमारी इतनी ही है कि मेरे शरीर का वाम भाग विकृत रचना युक्त, सूखा, कठोर और आकुंचित सा है। और यह बचपन से है। एवं इस विकार के बहुत पुराना हो जाने के कारण यह किसी जबरदस्त इलाज के बिना ठीक भी नहीं किया जा सकता। तो भी चिन्ता की बात इसलिए नहीं है चूंकि इसका ठीक हो जाना सम्भव है, यह मुझे स्पष्ट हो गया है।

शरीर की इस गम्भीर त्रुटि की तरफ सबसे पहिले मेरा ध्यान तब गया था जब कि मैं 16, 17 वर्ष का हो चुका था, गुरुकुल में शायद अष्टम या नवम श्रेणी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पढ़ता था। तब योग की तरफ रुचि होने के कारण 'स्वरोदय' का ज्ञान होने पर मैंने आश्चर्य से देखा कि मेरे अन्दर इडानाड़ी अर्थात् बांयी नासिका का स्वर नहीं चलता है। पिंगला या सुषुम्ना ही चलती थी। यह जान कर और भी घबराहट हुई कि छह महीने तक किसी का एक स्वर न चले तो वह मर जायगा। क्योंकि स्वरोदय की पुस्तक में ऐसा भी लिखा था। मैं दायीं करवट लेट-लेटकर वामस्वर चलाने का यत्न किया करता था। पर स्वयं स्वभावतः बायां स्वर नहीं चलता था। धीरे-धीरे आसन प्राणायाम करने से कुछ थोड़ा सा लाभ हुआ, और वामस्वर न चलने पर भी अन्य कुछ विशेष हानि होती न देखकर मैंने इसकी उपेक्षा करनी शुरू कर दी। पर कुछ समय बाद आसन प्राणायामों से ही मुझे यह भी साफ दीखने लगा कि मेरा वाम स्वर नहीं चलता, इतना ही नहीं किन्तु मेरा सम्पूर्णवाम भाग (वाम पैर, हाथ, पार्श्व और सिर) सूखा और सिकुड़ा हुआ है, उसमें प्राणरस का ठीक तरह संचार नहीं हो रहा है।

अब कुछ महीने हुए शरीर की इस विकृत रचना, विकार का एक कारण की समझ में आया है वह है कि जब मैं 6, 7 वर्ष का बच्चा था तो मेरे सिर के दायें भाग में ईंट घुस गयी थी और हरदोई के चिकित्सालय में शल्पक्रिया भी करनी पड़ी थी, उसके गहरे चिह्न अभी तक मेरे सिर के दायें भाग में विद्यमान हैं। कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि उस बचपन की चोट से स्नाय्वीय आघात पहुँच जाने से वाम पार्श्व की पुष्टि रुक गयी। स्नायुओं ने कुछ नयी रचना भी बना ली है जिनका कि बदलना अब इस 43, 44 वर्ष की आयु में कठिन है। अतः कुछ डाक्टरों की राय में—एक दो प्रसिद्ध डाक्टरों को दिखाया है—उनके पास इसका कोई इलाज नहीं है। अस्तु, मेरे रोग को जानने की उत्सुकता निवारण करने के लिए इतना विवरण काफी होगा।

जब और कहीं इसका कुछ इलाज होता दीखता नहीं था तो एक दो मान्य मित्रों ने मालाबार में प्रचलित यहाँ की निराली मालिश की पद्धति को आजमा लेने को कहा। इस पद्धति का कुछ हाल सुन और पढ़कर मुझे भी विश्वास हो गया कि वहाँ मेरा यह विकार ठीक हो सकता है। इसलिये मैं यहाँ आ गया हूँ।

यहाँ की मालिश की पद्धतियों के विषय में तो मैं अगले पत्र में लिखूँगा। कई स्नातक बन्धुओं ने तथा मित्रों ने सेवा के लिए यहाँ आने की तथा अन्य प्रकार की चिन्ता प्रकट की है। उनके उस प्रेम और कृपा के लिए हार्दिक धन्यवाद करता हुआ यह पत्र समाप्त करता हूँ। यहाँ मुझे किसी ऐसी सहायता की ज़रूरत नहीं है। परमेश्वर की दया से यहाँ का काम अभी तक ठीक चल रहा है।

आप सबकी कुशलता चाहता हुआ—
आपका बन्धु—
अभय
आर्य वैद्यशाला
कोट्टकल, दक्षिणी-मालाबार।
23–1–41

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशिता का मूल सिद्धान्त*

यह हमारे देश के लिए शुभ लक्षण है कि आजकल हमारा ध्यान कुछ असली स्वदेशिता की तरफ आकर्षित हुआ है। यह सर्वथा सत्य है और इसे हर एक विचारक अनुभव करता है कि भारतवर्ष को अपनी जीवन-रक्षा और जीवन-वृद्धि के लिए स्वदेशिता के प्राकृतिक नियम के अवलम्बन करने की बहुत ही गहरी आवश्यकता है—यही उसका प्राण है किन्तु साधारणतया लोग इसका गम्भीर तात्पर्य नहीं समझते। 'भारत की आर्थिक उन्नति के लिए स्वदेशी सामान खरीदना' यही स्वदेशी का अर्थ समझा जाता है जबकि वस्तुतः इसका क्षेत्र और महत्त्व इससे कहीं बहुत अधिक बढ़कर है। हमें स्वदेशी सामान की आवश्यकता नहीं है किन्तु अत्यधिक आवश्यकता हमें स्वदेशी शासन, स्वदेशी शिक्षण, स्वदेशी चालढाल, स्वदेशी इच्छाओं (मनोवृत्तियों) और विचार शैली आदि की है। इस बात को समझने के लिए स्वदेशिता पर गहरा विचार करना चाहिए—इसके आधारभूत महान् सिद्धान्त को देखना चाहिए। इस मूल सिद्धान्त के जानने और समझने पर न केवल हमें इस नियम का ठीक-ठीक प्रयोजन समझ में आ जायेगा किन्तु इस सम्बन्ध में जो प्रायः शंकाएं उत्पन्न होती हैं या प्रयोग में संदिग्ध अवसर उपस्थित होते हैं, वे भी स्वयमेव व्यवस्थित हो जायेंगे। आज हमें इस मूल सिद्धान्त को दिखलाने का यत्न करते हुए ही कुछ शब्द लिखने हैं।

जीवन-धारण के लिए किसी वस्तु के उपादान तथा तदितर के त्याग की आवश्यकता होती है। यही जीवन का प्रधान चिह्न जीवन शास्त्रज्ञ बताते हैं किन्तु यह उपर्युक्त उपादान व ग्रहण किस वस्तु का किया जाये? इस स्थान पर हमें एक सिद्धान्त द्वारा ज्ञान होता है कि संजातीय (अनुकूल) वस्तु को ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उसी के ग्रहण से जीवन प्राप्त किया जा सकता है। समझने के लिए शारीरिक जीवन का साधारण उदाहरण ले लीजिये। शरीर को अपने जीवन के लिए किसी वस्तु के उपादान की जरूरत है किन्तु यह वस्तु जो भी कोई नहीं हो सकती। शरीर के संजातीय (सदृश) वनस्पत्यादिक के ही ग्रहण से शरीर पोषण प्राप्त कर सकता है, डले ईंट पत्थर आदि विसदृश वस्तुओं से नहीं। इसी स्थल पर हमें एक

*यह हस्तलिखित लेख आचार्यजी के कागजों में मिला है। लेखन–तिथि अंकित नहीं है। सम्भवतः यह यहाँ प्रथम बार छप रहा है। इसके उत्तरार्ध का अंश नहीं मिला अतः यह अधूरा ही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अधिक आवश्यक ज्ञान प्राप्त होता है । यह ठीक है कि वनस्पत्यादिक (भोजन) का ही ग्रहण उचित है किन्तु यह ग्रहण किस प्रकार हो ? हम जानते हैं कि यह ग्रहण भोजन के शरीर पर चिपका लेने, बांध लेने या किसी बाह्य क्रिया द्वारा नहीं हो सकता । इसका वास्तविक ग्रहण (अतएव जीवन लाभ) तब तक नहीं हो सकता जब तक कि शरीर के अपने अवयवों (मुख, आमाशय, आंतें आदि) द्वारा यह गृहीत और जीर्ण होकर तथा रस, रुधिर बनकर शरीर का अंग नहीं बन जाता। इसी प्रक्रिया द्वारा यह गृहीत वस्तु सर्वथा संजातीय व सदृश बन जाती है और इसी लिए शरीर की वृद्धि (पुष्टि) होती है । इस प्रक्रिया के बिना वनस्पत्यादिक भोजन भी ईंट पत्थर की तरह शरीर के लिए समानतया अग्राह्य है । हमारे सामने चाहे कोई वस्तु लाई जावे, वह हमारे अनुकूल भी हो किन्तु जब तक शरीर के अपने अगों द्वारा गृहीत होकर वह बस्तु तदाकार (Assimilated) नहीं हो सकती (अर्थात् किसी भी कारण से तदाकार होने के अयोग्य है) तो उसका ग्रहण व्यर्थ ही नहीं है किन्तु बहुत हानि-कारक है । बस यही स्वदेशिता का मूलभूत सिद्धान्त है ।

अब सहज में समझा जा सकता है कि किसी राष्ट्र को अपनी भाषा, अपने न्यायालय, अपनी सेवा, अपना व्यापार, सब विभागों में अपना नियन्त्रण और शासन की क्यों आवश्यकता है ? क्योंकि ये ही उसके स्वाभाविक अंग हैं जिनसे कि वह जीवनप्रद भोजन ग्रहण कर सकता है । इसके विपरीत विदेशी भाषा आदि का होना अपने अगों को काट अंगहीन होना है । फिर किसी राष्ट्र को अपनी भूमि पर उत्पन्न हुए अन्न औषधि जल खनिज पदार्थों की, अपने साथियों से स्वदेश में बनायी गई व्यवहार्य वस्तुओं की, अपने देशानुकूल शिक्षण की, अपने स्वाभाविक पहरावे की क्यों आवश्यकता है ? क्योंकि ये ही सजातीय (अनुकूल) होने से सुगृहीत होकर राष्ट्र का रस रुधिर बन सकती हैं और राष्ट्र-देह की तथा राष्ट्र-देह के एक-एक अवयव को (एक-एक व्यक्ति को) जीवन प्रदान कर सकती हैं । जो वस्तुएँ किसी राष्ट्र के प्राचीन इतिहास तथा उसमें परिपक्व हुए भाषा, धर्म, जीवन शैली तथा सत्प्रथा आदि से मिलान नहीं खाती, वे कैसे उस राष्ट्र का अग बन सकती हैं, या जीवनप्रद हो सकती हैं ? ऐसी वस्तुएँ ग्रहण की हुई या तो अन्दर बहने वाले रस से अस्पृष्ट रहकर बाहर ही सड़ जाती हैं और सड़ांध फैलाती हैं अथवा बलात् अन्दर भी पहुँचा ली गईं तो रुधिर को दूषित और विषाक्त कर राष्ट्र को नाना व्याधियों से पीड़ित कर देती हैं और बहुत अवस्थाओं में उसकी मृत्यु का कारण होती हैं। इसके विपरीत स्वदेशी—वास्तविक स्वदेशी (स्वदेशानुकूल)—वस्तुओं का स्वास्थ्यप्रद सेवन है। इनका सतत ग्रहण करने वाला राष्ट्र नित्य पुष्टि पाकर अपना बलकांतियुक्त स्वस्थता में पूर्ण आयु भोगता है । हम 'वास्तविक स्वदेशी' क्यों कहते है ? यह वास्तविक-अवास्तविक का भेद भी इस आधार सिद्धान्त की दृष्टि से देखते हुए स्पष्ट हो जाएगा। यदि एक मद्रास-निवासी मद्रासी कारखाने में बनी हुई चाय वहीं के बने प्याले चम्मच के साथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी चीनी डालकर पीवे तो भी हम कहेंगे कि वह स्वदेशिता के विरुद्ध आचरण करता है। यूरोप के शीत प्रदेशों में चाय का सेवन शायद लाभकारी हो सके किन्तु भारतीय देह के लिए इससे केवल हानि ही है। इसी प्रकार गर्मी के समय में कोट बास्कट पतलून कसकर मोजा बूट में पैरों को बांधकर दफ्तर में बैठना, चाहे अन्दर दुर्गन्धित पसीने से तर हो रहे हों, स्वाभाविक नहीं है। अतएव चाहे ये सब वस्त्र भारत के ही बने हों, यह पहरावा स्वदेशी नहीं कहा जा सकता। इसी तरह स्वदेशी सामान के साथ विदेशी ढंग पर अस्वाभाविक शिक्षा देना आदि बहुत से स्वदेशी के नाम से विदेशी (अवास्तविक स्वदेशी) कार्य किये जाते हैं। और इसके विपरीत यदि एक भारतीय सन्यासी अमेरिका में बर्फ पर चलने के समय केवल पैरों में वहीं का विदेशी जूता पहन लेता है या अंगरेज बंगाल में रहते समय धोती-कुर्ता धारण करता है तो वह स्वदेशी कार्य करता है। स्वदेशिता का नियम देश की केवल आर्थिक उन्नति के लिए नहीं है किन्तु उसके जीवन के सभी विभागों में उन्नति के लिए इसका अवलम्बन परम आवश्यक है अतः इन अवास्तविक स्वदेशिता के उदाहरणों में वे वस्तुएँ इस अंश में यद्यपि स्वदेशी हैं और देश को कुछ (आर्थिक) अंश में लाभ भी देती हैं किन्तु शेष अधिकांश में व्यक्ति को तथा उसके राष्ट्र को हानि ही पहुँचाती हैं क्योंकि उस सब अंश में वे सर्वथा विसदृश (विदेशी) हैं।

यह तो हुआ राष्ट्र के विषय में, क्योंकि 'स्वदेशी' शब्द का प्रयोग राष्ट्र व देश के ही सम्बन्ध में होता है किन्तु स्वदेशिता का आधारभूत महान सिद्धान्त जैसे राष्ट्रीय जीवन में लगता है, वैसे संसार के सब प्रकार के जीवनों में कार्य करता हुआ व्याप्त हो रहा है। एक वृक्ष के अति सुन्दर फूलों को तोड़कर अपने बाग के एक पौधे पर या अपने गले में माला के रूप में लटका दो। वे यहाँ अधिक देर शोभित नहीं रह सकते। ज्योंही उनका रस (जो कि उस पेड़ से उन्हें प्राप्त था जिसमें कि वे पैदा हुए थे) सूख जाएगा, वे म्लान होकर झड़ जायेंगे। क्यों? हम कहेंगे कि वे 'स्वदेशी' नहीं थे, उस दूसरे पौधे या हमारे गले में बहने वाले रस से उनका सम्बन्ध नहीं था, उसके वे अंग नहीं थे। पाठशाला में पढ़ते हुए हमने एक कौए की कहानी पढ़ी थी जो कि शौकीनी के मारे एक बार अपने परों में मोर के पंख खोंस लाया था किन्तु उसके साथियों ने उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करने के स्थान पर उसका बुरी तरह तिरस्कार किया। ऐसा क्यों हुआ? क्या मोर के पंख सुन्दर नहीं होते? इसलिए कि वे पंख उसके अपने देह से पैदा नहीं हुए थे—स्वदेशी नहीं थे – उसके अपने नहीं थे। इसीलिए वे उसकी देह पर शोभित भी नहीं हो सकते थे।

स्वामी रामतीर्थ ने इंगलैंड में हिमालय से लाकर लगाये हुए फुलवाड़ी के पौधों को देखा था किन्तु सुमेरु यात्रा में जब उन्हें वे ही फूल स्वयं हिमालय पर दृष्टिगोचर हुए तो उन्होंने बड़े आश्चर्य से देखा कि वे अपूर्व सुगन्ध से दिगन्तों को सुरभित कर रहे है। इंगलैंड में लाने से यद्यपि उनका रूप-रंग वही बना रहा पर वह सुगन्ध क्यों जाती रही? क्योंकि वह स्वदेशी भूमि से पृथक् हो गये थे। सुगन्ध से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदृश्यता (सजातीयता) हिमालय की भूमि में ही थी, इग्लैंड की भूमि में नहीं।

इससे स्पष्ट परिणाम निकलता है कि स्वदेशी वस्तु स्वाभाविक सहज (साथ पैदा हुई) होती है। यही स्वदेशी वस्तु की पहचान है। जहाँ सांप बहुत होते हैं, वहीं उनका विष हरने वाली जड़ी स्वयं बहुतायत से पैदा होती है। जहाँ एक बूटी की गन्ध से मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है, उसी के साथ लगी हुई वह बूटी होती है जिससे कि मूर्च्छा से चैतन्य प्राप्त होता है। प्रकृति में जिस स्थान पर एक गुण का पदार्थ रहता है, वहीं उसी वस्तु के दूसरे अंग में या उसके समीप ही उससे विपरीत गुण प्रादूर्भूत हुआ हुआ विद्यमान है। जहाँ एक स्वाभाविक व्याधि उत्पन्न होती है, प्रकृति माता ने वहीं उसका इलाज रखा हुआ है, सात समुद्र पार से उसके लाये जाने की आवश्यकता नहीं है। इस आधार सिद्धान्त के साथ देखते हुए स्वदेशी का नियम बिल्कुल प्राकृतिक नियम है, यह स्वयं प्रवृत्त हो रहा है। प्राकृतिक वस्तुओं का अध्ययन इस नियम के उदाहरणों से सब तरफ भरा हुआ है।

भारतवर्ष की जल-चिकित्सा*

भारत की दशा पर विचार करते हुए बहुधा चित्त में आया करता है किय इस व्याधिपीड़ित देश की जल-चिकित्सा होनी चाहिए। इसी चिकित्सा से नानाविध क्लेशदायक व्याधियों से इसका छुटकारा हो सकता है। हमने अपने पिछले लेख में स्वदेशिता की बड़ी आवश्यकता बतलाई थी और उसके मूल सिद्धान्त का कुछ वर्णन किया था। इस 'जल-चिकित्सा' का उस ही से कुछ सम्बन्ध है।

जल-चिकित्सा के मुख्य सिद्धान्त ये हैं—

1. सब रोग देह में विजातीय द्रव्य (Foreign Matter) के होने के कारण उत्पन्न होते हैं अतः उसके निकल जाने से शरीर स्वस्थ हो जाता है।

2. विजातीय द्रव्य (अज्ञान व असंयम के कारण) मुख्यतया भोजनपान (मुख) तथा सांस (नासिका) के साथ शरीर में प्रविष्ट होता है।

3. उदर स्नान आदि चार प्रकार के मुख्य स्नानों द्वारा आये हुए विजाती द्रव्य को निकालना चाहिए और 'स्वाभाविक' जीवन व्यतीत करने द्वारा इसका आगे के लिए आना तथा शरीर में एकत्रित होना बन्द कर देना चाहिए।

इन तीनों बातों को क्रमशः भारत में घटाकर देखते जाइये।

---

*यह लेख' आचार्य जी के कागजों में हस्तलिखित मिला है। संभवतः यह यहाँ पहली बार प्रकाशित हो रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. भारत के सब रोगों का कारण भारत देह में विजातीय द्रव्य का विद्यमान होना है और इसके निकल जाने से ही भारत स्वस्थता को प्राप्त कर सकता है। भारत में विजातीय द्रव्य क्या वस्तु है ? इस बात को वे लोग ठीक-ठीक समझ जायेंगे जिन्होंने कि हमारा पहला लेख ध्यान से पढ़ा है, नहीं तो यहाँ पर भ्रम होने की सम्भावना है। अर्थात् 'विजातीय' (Foreign) पद का पारिभाषिक अर्थ न जानते हुए यह न समझना चाहिए कि भारत में भारत भिन्न जातियों के लोग बसते हैं या आते रहते हैं, वे ही भारत में रोगोत्पादक वस्तुएँ हैं (बल्कि ससार की अन्य सब जातियों से सम्पर्क रखना तो राष्ट्र की स्वास्थ्यवृद्धि का एक आवश्यक अंग है)। जल-चिकित्सा शास्त्र में भी (और हमारे गत लेख में वर्णित सिद्धान्तानुसार भी) वही द्रव्य विजातीय होता (कहाता) है जो कि शरीर में आया हुआ—रहता हुआ—भी शरीर का अंग नहीं बनता। यही विजातीय द्रव्य का ठीक लक्षण है। इस प्रकार यदि हम मनुष्यरूप में ही विजातीय द्रव्य देखना चाहें तो भारत में विजातीय द्रव्य वे मनुष्य हैं जो भारत में रहते हुए भी (यहाँ का अन्न खाते हुए भी) भारत के अंगभूत नहीं होते—भारतीयता में नहीं बंधते—जिनके स्वार्थ भारत के स्वार्थ नहीं होते बल्कि भारत की बुराई में जिनका भला होता है। ऐसे मनुष्य भारत के या विदेश के दोनों हो सकते हैं यद्यपि साधारणतया यही आशा की जाती है—और जैसा कि एक स्वस्थ राष्ट्र में अवश्य होता है—कि उसका मनुष्य उसका अंग होगा और स्वदेशज की अपेक्षा विदेशज का अंग होना कठिन होता है। कौन है जोकि महाशय एँड्र्यूज, हौनीमैन, देवी बीसेन्ट आदि को भारत का विजातीय द्रव्य कह सकता है ? और इसके विपरीत आज भारत में भारतवर्षोत्पन्न स्वदेशीय जनों का एक बड़ा समुदाय विद्यमान है जो कि विजातीय द्रव्य बना हुआ है, जिसमें कि भारतदेह में बहने वाले रुधिर और प्राण का संचार नहीं होने पाता और वह मुर्दा अंग के रूप में पड़ा हुआ भारत को अर्धांगग्रस्त कर रहा है या कहीं कहीं प्रबल होकर भारत का विपरीताचरण करता है।

किन्तु वास्तव में मनुष्यों को विजातीय द्रव्य कहना उचित नहीं है। असली विजातीय द्रव्य तो वे सब बातें (मनुष्य नहीं) होती हैं जिन्हें कि कोई राष्ट्र अपने अवयवभूत व्यक्तियों द्वारा बाहर से किसी कारण से ग्रहण कर लेता है किन्तु वे उसके अनुकूल न होने के कारण हजम (अपना रूप छोड़कर तदाकार परिणत) नहीं हो सकतीं ओर इसलिए अन्दर दोषों को कुपित करके व्याधियाँ खड़ी करती है। ये बातें ही असली विजातीय द्रव्य होती हैं। जब हम किन्हीं मनुष्यों को विजातीय द्रव्य कहते हैं तो उन्हें ही कहते हैं जो कि इन विजातीय द्रव्यों से पूरी तरह ग्रस्त होते हैं और अतः विजातीय द्रव्य का काम करते हैं किन्तु यदि वे किसी कठिन उपाय से इन विजातीय द्रव्यों से रहित किये जा सकें तो वे फिर राष्ट्र के अंग बनाये जा सकते हैं। अस्तु, वे बातें भारत में कौन सी हैं ? वर्तमान भारत में सब प्रकार का विदेशी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान, भारत के अनुकूल विदेशी रीतियों, आचारों, व्यसनों, ढंगों की नकल, पराई भाषा में भावों का प्रकाशन, हमारे मस्तिष्कों का पराया हो जाना, विदेशियों द्वारा विशेष प्रयोजन से घड़ी गई शिक्षा-पद्धति, विदेशियों द्वारा सब राजप्रबन्ध, बाहर से ली हुई धर्महीन नई सभ्यता, भय, द्वेष, सब प्रकार का असंयम, असत्य आदि सब भारत राष्ट्र में विजातीय द्रव्य हैं जिनसे कि भारत का कलेवर भरा पड़ा है जो कि भारत के जीवत्शरीर का भाग नहीं बन सकती किन्तु अन्दर पड़ी हुई देह के रुधिर संचार में स्थान-स्थान पर बाधक हो रही है और इस प्रकार रुधिर-संचार की मन्दता बढ़ाई हुई दिनों-दिन भारत को निर्जीव करती जा रही है और जो कि समय-समय पर नाना प्रकार के रोगों के रूप में फूट-फूटकर निकलती है तथा भारत को दुख-दर्द ज्वर प्रकोप आदि से सदा बेचैन बनाये रखती है। इनको बिना शरीर से निकाले भारत स्वस्थ नहीं हो सकता।

2. यह विजातीय द्रव्य शरीर में कैसे आ जाता है? यह तो सब जानते हैं कि यह आने के द्वार से ही आएगा, खानपान (स्थूल भोजन) तथा श्वास (सूक्ष्म भोजन) के साथ घुस आएगा। राष्ट्र का स्थूल भोजन उसके वासियों की शारीरिक मोटी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुएँ तथा सूक्ष्म भोजन उनके लिए मानसिक वस्तुएँ होती हैं। किन्तु जिस बात पर हमें ध्यान देना है, वह है कि यह क्योंकर शरीर के द्वारों में प्रवेश पा जाता है? अज्ञान के कारण और असंयम के कारण।

ज्ञान न होने के कारण अनजाने से बहुत सा विजातीय द्रव्य मनुष्य व राष्ट्र पुरुष में घुस आता है। उस अबोध के सामने जो भोजन बहुतायत से उपस्थित कर दिया जाता है और देखने-सूंघने में भी ज़रा भला लगता है वह उसे ही ग्रहण कर लेता है क्योंकि उसे यह तो कुछ विचार है ही नहीं कि यह विजातीय द्रव्य पूर्ण भोजन है जोकि उसे पीछे बड़ी हानि पहुँचायेगा। भारत में बहुत सा विजातीय द्रव्य ऐसी ही अबोधता के कारण गृहीत हो रहा है।

किन्तु बहुत बार ऐसा ज्ञान होने पर भी कि प्रस्तुत भोजन विजातीय द्रव्य वाला है, मनुष्य इसे असंयम के कारण छोड़ नहीं सकता। उसका स्वाद और मजा उसे ले डूबते हैं। घोर बुराई जानता हुआ भी उसे त्याग नहीं सकता और इन विजातीय द्रव्यों के मारे ज्यों-ज्यों रोग और निर्बलता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों संयम करना और भी कठिन होता जाता है तथा संयम के खंडित होने की देर है कि विजातीय द्रव्य सहस्रों खुले द्वारों से उसमें भरने लगता है और हालत पल पल में बिगड़ती जाती है। भारत की ऐसी ही दशा हो रही है। बाहर से आई चमकीली भड़कीली चीजें भारत के उदर में निष्प्रतिबन्ध खपती जा रही हैं। इसके अवयव-अवयव में विजातीय द्रव्य अपनी रोगों की सेना के साथ फैला हुआ है। अब संयम कहाँ पर हो? किस प्रकार हो? जैसे कि एक जल-चिकित्सा करने वाले को सूखी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोटी, सर्वथा मसाले रहित शाक, दलिया खाते देखकर आसपास वे सब लोग हँसते हैं जोकि डॉक्टरी दवाइयों पर भरोसा रखते हुए नित्य पक्वान्न, मिष्टान्न, मद्य मांस, चटपटे अचार मसाले मजे से खा रहे हैं, वैसे ही आज भारत में जिसके कि देह के प्रायः सभी कोष्ठ (Cells) विजातीय द्रव्य से भर रहे हैं, किसी एक कोष्ठ का सबके विरोध में स्वस्थावस्था में संयत रहना बड़ा कठिन हो गया है। आज इस देश में जो मनुष्य विदेशी कपड़े के कोट पैंट के स्थान पर गाढ़े का धोती-कुरता पहनता है, जो अंग्रेजी का विद्वान होता हुआ भी देसी भाषा में सब व्यवहार करता है, जो कि शिवाजी को डाकू-लुटेरे के स्थान पर एक उत्कृष्ट शासक तथा महात्मा देखता है, जो स्पेन्सर और मिल के स्थान पर उपनिषदों और मनु को उद्धृत करता है, जो दिखावटी-बनावटी जीवन के आडम्बरों के स्थान पर सरल निष्कपट जीवन व्यतीत करता है, उसे सब लोग वहमी समझते तथा तिरस्कार करते हैं। यह शोचनीय दशा रोग की गहराई को प्रकट करती है। यहाँ अधिक लिखने का अवकाश नहीं। बस इतना कह देना पर्याप्त होगा कि भारत को ज्ञान और संयम की अत्यन्त अनिवार्य आवश्यकता है, इन्हीं से वह बच सकता है। ज्ञान और संयम ही रोगमात्र की असली चिकित्सा है क्योंकि संयमसहित ज्ञान के आ जाने पर रोगी स्वाभाविक जीवन बिताने लगता है अर्थात् केवल अनुकूल भोजन ही ग्रहण करता है और शुद्ध वायु प्रकाश आदि तथा सत्य, निर्भयता, अहिंसा आदि प्राकृतिक जीवन-तत्वों का सेवन करने लगता है तो विजातीय द्रव्य उसके देह में नहीं आ सकते और वहाँ एकत्रित होकर रोग नहीं पैदा कर सकते। इस प्रकार यहाँ पर तीसरे सिद्धान्त के द्वितीय खण्ड की (अर्थात् "और स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने द्वारा उसका आगे के लिए आना तथा शरीर में एकत्रित होना बन्द कर देना चाहिए।") भी व्याख्या हो गई समझनी चाहिए।

3. अब हम अन्तिम विषय (चिकित्सा विधि) पर पहुचते हैं। यहाँ जल-चिकित्सा ने कुछ स्नान-विधान किये हैं जिनसे कि विजातीय द्रव्य स्वाभाविकतया शरीर से बाहर निकलने लगता है। इस उत्तम चिकित्सा से सर्वथा उल्टी आजकल की प्रचलित डॉक्टरी है जिसमें कि रोग का इलाज या तो प्रायः एक नये प्रकार का विजातीय द्रव्य शरीर में डाल देना होता है या जरा सी बात पर (अर्थात् बिल्कुल अनावश्यक अवस्था में भी) नश्तर मारकर लहू बहा देना होता है। भारतवर्ष की ऐसी चिकित्सा करने वाले या तो इग्लैंड से पढ़कर आये हुए डॉक्टर हैं जो कि विदेशी (विजातीय द्रव्य वाली) वस्तुएँ (बातें) ग्रहण कराकर विदेशी ढंग से भारत का इलाज करना चाहते हैं या वे नश्तरबाज हैं जोकि बम के गोले मारकर भारत का विजातीय द्रव्य निकालना चाहते हैं किन्तु वास्तव में बहुत से भारत के स्वस्थ अंश के नाश के कारण होते हैं।*

---

*इसके बाद का एक हस्तलिखित पृष्ठ कागजों में नहीं मिला जिसमें प्रथम स्नान की विधि बतलाई गई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद दूसरा स्नान 'मेहन स्नान' हैं। इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया पहले स्नान के समान है। भेद केवल इतना है कि इसमें पेडू के स्थान पर मेहनांग की ऊपरी त्वचा को, जहाँ पर कि सूक्ष्म नाड़ियों का केन्द्र स्थल है, जल से शीतल किया जाता है—राष्ट्रीय 'ज्ञान-शक्ति' को जलीय सौम्य गुणों से स्फुरित किया जाता है, जिससे कि प्राणवहा नाडियों (Nerves) का— राष्ट्र में ज्ञान विस्तारक सूक्ष्म अंगों का विजातीय द्रव्य बाहर निकलता है। इसके बाद भी वैसे ही खूब व्यायाम (कर्मण्यता) का होना अत्यावश्यक है।

ये दो स्नान सीधा विजातीय द्रव्य को निकालने के लिए हैं किन्तु शेष दो स्नान (वाष्प स्नान और सूर्य स्नान) शरीर में दबे और चिमटे पड़े हुए विजातीय द्रव्य को उखाड़ने के लिए उपयुक्त होते हैं क्योंकि बहुत सा विजातीय द्रव्य जो कि देह में बहुत श्लिष्ट होकर घुसा रहता है, इन साधारण उपायों से शीघ्र नहीं निकल सकता और नीरोगता पाने में देर लगती है। वाष्पस्नान में पानी की भाप द्वारा और सूर्यस्नान में सूर्य की किरणों द्वारा अर्थात् प्राकृतिक सहायता से शरीर में एक प्रकार हलचल पैदा कराकर यह कार्य किया जाता है। इसी प्रकार राष्ट्र में भी किन्हीं प्राकृतिक (अथवा ईश्वरीय कहना अधिक उचित होगा) नियमों का अवलम्बन कर राष्ट्रदेह में आन्दोलन उत्पन्न करना चाहिए कि वाष्पताप और सूर्यातप के समान तप (कष्ट सहना) और सत्यव्रतता आदि ईश्वरीय (प्राकृतिक) नियमानुसार ही आन्दोलन उत्पन्न करने से राष्ट्रदेह के सार अंश से विजातीय द्रव्य रूप असार अंश पृथक् किया जा सकता है, यूं ही अन्धाधुंध या उल्टे आन्दोलनों से नहीं। अस्तु, इन स्नानों में शेष नियम यह हैं कि इनके अनन्तर इनसे उखड़े हुए विजातीय द्रव्य को निकालने के लिए पहले दो स्नानों में से कोई एक करना चाहिए तथा इन स्नानों को नित्य नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से व्यर्थ निर्बलता होगी।

इस प्रकार इन चारों स्नानों के प्रयोग से ज्यों-ज्यों मनुष्य व राष्ट्र का विजातीय द्रव्य निकलता जाता है त्यों-त्यों शरीर में इसके निकालने की शक्ति बढ़ती जाती है और फिर बड़ी शीघ्रता से विजातीय द्रव्य बाहर होने लगता है। इस चिकित्सा के करते हुए बीच में कभी-कभी उखड़ता हुआ विजातीय द्रव्य बड़े जोर से भड़क उठता है और शरीर में उपद्रव पैदा करता है क्योंकि डाक्टरी दवाइयों से दबाये हुए पुराने रोग वास्तविक चिकित्सा होने पर एकदम उभड़ते हैं किन्तु उस अवस्था में घबराना नहीं चाहिए और घबराकर चिकित्सा न छोड़ देनी चाहिए। यह बड़ी मूर्खता होगी क्योंकि इस स्वाभाविक चिकित्सा के छोड़ने से थोड़ी ही देर बाद ऐसे रोगोत्पात स्वयमेव शमन हो जाते हैं और विजातीय द्रव्य अपने राह पर आकर चुपचाप बाहर निकल जाता है। यह भी न भूलना चाहिए कि शरीरस्थ विजातीय द्रव्य के एकदम बाहर निकल जाने से प्रारम्भ में इस चिकित्सा द्वारा देह में अवश्य बड़ी निर्बलता आ जाती है किन्तु यह निर्बलता बुरी नहीं है। इसे शुभ समझना चाहिए और जी को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्साह से ऊँचा उठाये रखना चाहिए। विजातीय द्रव्यों से प्राप्त बल से यह निर्बलता हजार दर्जे अच्छी है। शीघ्र ही निर्मल हुए (तपः शुद्ध) देह में खूब भूख बढ़ने लगती है और विजातीय द्रव्य रहित उत्तम स्वाभाविक भोजन लेने से नित्य नवीन शुद्ध रुधिर उत्पन्न होकर देह में दिनोंदिन नूतन जीवन-बल भरता जाता है तथा शुद्ध प्राण और वीर्य का सर्वत्र संचार होने से तेजस्वी, ओजस्वी, दिव्य होकर शरीर आनन्द से निरन्तर पूर्ण स्वस्थता का उपभोग करता है। क्या यह चिकित्सा भारत को अनुकूल न होगी ?

वैश्य के गुण–कर्म*

वैश्य जिस शक्ति का व्यवहार करता है, जिससे संचालित होता है और जिसे संचालित करता है, उस धनशक्ति का कुछ विस्तृत विवेचन कर लेने के बाद अब यह आसान है कि वैश्य के गुण-कर्म स्पष्टतया समझ लिये जा सकें।

गीता में वैश्य का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

कृषि गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभाजम् (गीता 18–44)

अभी तक वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय) का गुण, वृत्ति, स्वभाव बतलाने के लिए गीता का उद्धरण देता रहा हूँ और कर्म (कार्य) या पेशा बताने को मनुस्मृति का उद्धरण। परन्तु इस गीता के श्लोक में तुम देखोगे कि वैश्य के गुणों-स्वभावों का वर्णन न करके वैश्य के कर्म (कार्य) बता दिये दीखते हैं। असल में बात यह है कि जैसा कि मैं प्रारम्भ में कह चुका हूं, वैश्य वह है जो साधारण प्रजाजन है, जो ब्राह्मण व क्षत्रिय की तरह किसी विशेष ऊँचे भाव (ज्ञान या शौर्य) से नहीं किन्तु साधारण ऊँचे भाव (सेवा) से प्रेरित होता है अतएव सामान्य जीवन बिताने को उसे कुछ पेशा करना होता है। किसी विशेष ऊँची अवस्था या भाव में तृप्ति या जीवन न पाकर अतएव किसी ऊँची शक्ति (ज्ञान व विशालता) का सहारा लेकर न साधारण धनशक्ति का सहारा लेता है, धनार्जन करना चाहता है। इसे ही गीता में इस प्रकार कहा है कि वैश्य वह है जिसमें स्वभावतः कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि कुछ पेशा करने की प्रवृत्ति होती है। प्राचीन काल में पेशे ये कृषि आदि ही थे जिनसे धनार्जन (वस्तुतः धनोत्पत्ति) होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय तो इस अर्थ में कोई पेशा नहीं करते थे।

---

* यह लेख आचार्य की के कागजों में हस्तलिखित मिला है। यह किसी पत्रिका में था छपा या नहीं, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है क्योंकि मुद्रित लेख उपलब्ध नहीं हो सका।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हम कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य पर जोर न दें, इसका मतलब केवल इतना लें कि यह पेशा (उचित और सच्चा पेशा) है, जोर 'स्वभावजम्' पर दें तो इसका भाव स्पष्ट हो जाएगा कि वैश्य वह है जिसके लिए कृषि आदि कर्म (पेशा) करना स्वभावज होता है, जिससे धनार्जन करने के लिए, सामान्य जीवन बिताने के लिए, कुछ रोजगार करने की प्रवृत्ति होती है।

साथ ही इस गीता–श्लोक में यह भी प्रकट हो गया कि वैश्य के लिए शुद्ध और ठीक पेशे कौन से है ? मनुस्मृति में वैश्य के कार्य (पेशे) बताते हुए लगभग यही कहा है—

पशूनां रक्षणं दानं
इज्याध्ययनमेव च
वणिक् पथं कुसीदं च
वैश्यस्य कृषिरेव च (मनुस्मृति 1–89)

कृषि तो स्पष्ट कहा ही है, गोरक्षा की जगह 'पशूनां रक्षणम्' कहा है जिससे गौ के अतिरिक्त अन्य पशुओं की रक्षा और सदुपयोग भी इसमें आ गया, वाणिज्य की जगह 'वणिक् पथं कुसीदं च' कहकर वाणिज्य के भाव को कुछ विस्तार से कह दिया है। अर्थात् कृषि, पशु-पालन आदि द्वारा भोजन-वस्त्र आदि जीवन की आवश्यक वस्तुओं को उत्पादन करने के पेशे, इन उत्पन्न वस्तुओं को लोगों तक पहुँचाने के सब पेशे—ये सब वैश्य के कार्य, कर्तव्य हैं, वैश्य के विशेष कर्तव्य हैं। दान, इज्या (यज्ञ) और अध्ययन भी वैश्य के कर्तव्य-कर्म हैं, ये तो क्षत्रिय के लिए भी थे और उसी तरह ब्राह्मण के लिए भी। वैश्य के लिए विशेष नहीं है। ये तीनों कर्तव्य तीनों वर्णों के लिए हैं, दीक्षित होने वाले, यज्ञ करने वाले तीनों वर्णों के लिए हैं। ये शूद्र से इन तीनों का भेद करने के लिए हैं। शूद्र तो स्वयं दान का पात्र है, उसे दूसरों को देना कर्तव्य नहीं है, वह अभी उतना विकसित नहीं हुआ अतः उस पर यज्ञ चलाते रखने की जिम्मेवारी नहीं, यज्ञ करने की पाबन्दी नहीं। और इसी कारण दीक्षित होने और दीक्षित होकर पढ़ने का—अध्ययन का—भी भार उस पर नहीं। अक्षर ज्ञान वाली पढ़ाई या जिसे आजकल बुनियादी तालीम कहते हैं बल्कि भाषा-पुस्तक सम्बन्धी सब पढ़ाई जिसे आजकल पढ़ाई समझा जाता है, उसे तो शूद्र भी पायेंगे। पर वैश्य को उसके अतिरिक्त दीक्षित होकर व्रत ग्रहण कर अध्ययन करना और ज्ञान पाना है। अपने पेशे, कर्म, कर्तव्य, धर्म को पालन करने के लिए अध्ययन वैश्य के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि क्षत्रिय के लिए और ब्राह्मण के लिए। इसी तरह यज्ञ उसके लिए आवश्यक है। पंचयज्ञ उसे ब्राह्मण क्षत्रिय की तरह सदा करने हैं। पंचयज्ञ का असली अर्थ समझना जरूरी है (जो कि अपनी यज्ञ-संस्था पुस्तक में बता चुका हूं)। बाह्य कर्मकांड की जगह यज्ञ की भावना असली चीज है। उसे अपना पेशा, कृषि-व्यापार आदि यज्ञ-भावना से करना है। अतएव धन-शक्ति के प्रकरण में यज्ञ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना पर बहुत जोर दे चुका हूँ। वैश्य भी अपने धर्म के लिए मर मिटे, प्राणपन से अपने धर्म का पालन करे।

इसी तरह दान वैश्य लिए जरूरी है। एक तरह से यह वैश्य के लिए बहुत जरूरी है क्योंकि आम तौर से दान धन का या भौतिक वस्तु का ही समझा जाता है। वह तो वैश्य ने ही करना है। वैश्य ने ही धन व भौतिक सम्पत्ति का अर्जन करना है और उसका शेष तीनों वर्णों को दान करना है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तो धन व भौतिक सम्पत्ति का अपने लिए संग्रह नहीं करेंगे। उनके पास जो होगा, उसे भी वे दे देंगे, दान उनका भी कर्तव्य है पर असल में तो वे अपनी सम्पत्ति का ही दान करेंगे। ब्राह्मण ज्ञान-दान देगा, क्षत्रिय बल से सहायता प्रदान करेगा। अतः इस अर्थ में दान देना वैश्य का ही भाग है। वैश्य ने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय का और शूद्र का भी भौतिक रूप से भरण-पोषण करना है।

आगे चलने से पहले वैश्य-कार्य का क्षत्रिय-कार्य से जो भेद है, उसकी तरफ भी ध्यान खींचना जरूरी समझता हूँ। इसके लिए क्षत्रिय-कार्य का वर्णन करने वाले मनु के श्लोक को एक बार फिर देखिये और वैश्य-कार्य के अभी ऊपर उद्धृत श्लोक से इसका मिलान कीजिये—

प्रजानां रक्षणं दानं
इज्याध्ययन मेव
विषये एव प्रसक्ति
क्षत्रियस्य समासतः ।

इन दोनों श्लोकों के पूर्वार्धों में केवल इतना ही भेद है कि क्षत्रिय का कार्य प्रजा का रक्षण करना है तो वैश्य का काम पशुओं की रक्षा करना है। प्रजा और पशु का ही केवल भेद है। और यही मुख्य भेद है। यदि इस भेद को हम समझ लें तो जो भेद है कि क्षत्रिय को विषयों में प्रवृत्त होने से रोका गया है और वैश्य को वाणिज्य व्यवहार और कृषि करने को कहा है, वह भी स्पष्ट हो जाएगा। क्षत्रिय का काम प्रजा-रक्षण और वैश्य का काम पशु-रक्षण यही मुख्य भेद है। वेद में भी 'प्रजा' और 'पशु' बहुत जगह साथ-साथ आते हैं। प्रजा, मनुष्य, जनता, मनुष्य-समाज, मनुष्य-संतति, आने वाला मनुष्य-समाज—इसकी रक्षा क्षत्रिय ने अपने शौर्य, तेज से करनी है। यह बराबर वालों की बराबर वालों से रक्षा है अतः इसके लिए विशेष बल चाहिए जो कि विषयों में आसक्त होने वाले के अन्दर नहीं हो सकता। पशुओं की रक्षा अपने से छोटों की रक्षा है (पशु मनुष्य से छोटे दर्जे के प्राणी हैं बल्कि वृक्ष-वनस्पति उनसे भी छोटे प्राणी हैं और उनकी रक्षा-कृषि—भी इसी में आ गयी) जो कि सेवा से होती है और इसी 'पशु-रक्षा' के कार्य के विस्तार में ही वाणिज्य-व्यापार की आवश्यकता आ पड़ती है अतः वह भी वैश्य करता है। अतः एक शब्द में वैश्य का काम पशु-रक्षण है अर्थात् अपने से छोटों की रक्षा, उनसे ठीक सम्बन्ध, उनसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञिय सम्बन्ध स्थापित रखना । यज्ञ द्वारा उन्नति चाहने वाले आम आदमी का यही मार्ग है । यही वैश्य मार्ग है ।

+ + + +

वैश्य धर्म का पालन करने वालों को कौन-कौन से पेशे स्वीकार करने चाहिएँ, यह मैं बता चुका हूं । कृषि हमारे यहाँ का स्वाभाविक पेशा है । इसमें विशेषतया उन्नति करनी चाहिए । फलों और सब्जी की खेती पर विशेषतया ध्यान देना चाहिए । इसके साथ में जुड़ा हुआ हुआ गौ-पालन का कार्य है जिसकी तरफ और भी ध्यान देने की आवश्यकता है । अपने देश की गौओं की हालत देखकर रोना आता है । गौ की पूजा करते हैं, उसको माता मानते हैं, तब हमारा यह हाल है । पश्चिम के देशों में गौ का कुछ भी धार्मिक महत्त्व नहीं पर वहाँ दूध और मक्खन की नदियाँ बहती हैं, ऐसा कहा जा सकता है । कहते हैं कि आस्ट्रेलिया में चालीस सेर से कम दूध देने वाली गौएं मुश्किल से मिलती हैं । तो हमारे लिए गौ-पालन के कार्य में लगना कितना उत्तम है !

इस प्रकार भोजन-सामग्री के उत्पन्न करने के बाद वस्त्रों की (खादी की) उत्पत्ति करने में लगना अत्यावश्यक श्रेष्ठ पेशा है । उसके बाद दर्जी, बढ़ई, लुहार तथा चमड़े का काम करने के उत्तम पेशे हैं । ये सब आवश्यक वस्तुओं को उत्पन्न करने के पेशे हैं । ये सब कृषि, गौ-रक्षण कहने में आ जाते हैं ।

इसके बाद वाणिज्य का, जो वैश्य का धर्म बतलाया है, अभिप्राय है जीवनोपयोगी वस्तुओं का लेन-देन करना, व्यापार करना, इनकी दुकान करना, इनको लोगों तक पहुँचाना और ठीक विभाजन करना ।

रोजी चलाने के, धनार्जन करने के तरीके तो बहुत से हैं, पेशे बहुत से हैं पर गुरुकुल के स्नातक जिस किसी तरीके से अपनी रोजी नहीं कर सकते । देशद्रोह या अधर्म का पेशा नहीं कर सकते । वे गुलामी की जंजीरों में बांधने वाली सरकारी नौकरियां लेकर अपना पेट पालन नहीं कर सकते । इन प्रलोभनों से हम शुरू से अलग रखे गये हैं । इसी तरह देश को हानि पहुँचाने वाले व्यापार (जैसे विदेशी वस्तुओं का व्यापार) से धनार्जन नहीं कर सकते । एवं अन्य पाप या अधर्म को उत्तेजन देने से जो कमाई होती है, उनमें नहीं पड़ सकते ।

पर इसका यह मतलब नहीं कि हमारे लिए वैश्य धर्म का पालन करते हुए धनार्जन करने के द्वारा बंद हुए हुए हैं । हम सीधे सादे और लोगों को लाभ पहुँचाने वाले बहुत से पेशे कर सकते हैं और उनसे धन भी कमा सकते हैं । गुरुकुल से दशम श्रेणी तक पढ़कर गये हुए एक विद्यार्थी ने मामूली साबुन बनाने और बेचने का व्यवसाय शुरू किया और उसने पंजाब में अपने कार्य का इतना विस्तार किया है कि वह इतना धन कमा रहा है कि वह आज सरकार को छह हजार रुपये आयकर दे रहा है । एक स्नातक हैं जिन्हें गुरुकुल में रहते हुए कुछ कला-कौशल का शौक था, वह यांत्रिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्जीनियरिंग के द्वारा बहुत धन पैदा कर रहे हैं। एक स्नातक हैं जिन्हें हंसी में लोहालंकार कहते हैं, लोहे की दुकान का काम कर रहे हैं और काफी धन कमा रहे हैं। इस तरह के और बीसियों दृष्टान्त सुना सकता हूँ। इसलिए वैश्य के तौर पर धनार्जन के द्वार तो हमारे लिए बन्द नहीं हैं बल्कि हमारी ईमानदारी और शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता आदि कारणों से हमारे लिए यह मार्ग अधिक खुले हैं और दिनोंदिन अधिक खुलने वाले हैं पर असल में जो बाधाएँ हैं, वे और हैं। मैं आज उन्हीं का वर्णन करना चाहता हूँ।

दो बाधाएँ हैं—एक, हाथ से काम करने के बहुत से पेशों को नीचा पेशा समझा जाना। दो, आत्मविश्वास की कमी।

यह पहली बात विशेषतया हमारी आधुनिक बुरी शिक्षा के कारण आ जाती है। जो थोड़ा सा भी पढ़-लिख जाता है, वह दस रुपये या पन्द्रह रुपये की क्लर्की करना पसन्द करता है पर हाथ का, शिल्प का काम करके अपनी रोजी चलाने के लिए तैयार नहीं होता। शहरों में बढ़ई, लुहार, दर्जी, नाई और चमड़े का काम करने वाले लोग क्लर्कों की अपेक्षा बहुत अधिक कमाई करते हैं पर हमारी शिक्षा ने हमें ऐसा सिखा दिया है कि ये काम छोटे हैं, नीच या अनपढ़ लोगों के करने के हैं। यहीं हमारी बेकारी का कारण हो गया है। गुरुकुल के विद्यार्थियों के अन्दर भी हाथ के कामों के प्रति यथेष्ट कदर पैदा नहीं हो पाती है। मैंने बचपन में गुरुकुल में पढ़ते हुए स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक की अमेरिका सम्बन्धी किताबें पढ़ी थीं। तभी से हृदय पर यह अंकित हुआ है कि अमेरिका जैसे स्वाधीन देशों में कोई भी उपयोगी काम छोटा काम नहीं समझा जाता। वहाँ हाथ के कामों की कितनी कदर है। युनिवर्सिटियों में पढ़ने वाले विद्यार्थी जूठे बर्तन मांजकर, सफाई करके अपने शुल्क के लिए पैसे पैदा करते हैं और सबके साथ मिलकर पढ़ाई के समय में पढ़ते हैं। वहाँ यह बुरा नहीं समझा जाता बल्कि स्वावलंबन के भाव से अच्छा समझा जाता है। हमारे अन्दर से जब तक छोटे समझे जाने वाले उपयोगी कार्यों के विषय में घृणा या छोटेपन की भावना नहीं हट जाएगी, तब तक हमारे अनगिनत कार्य होते हुए भी हम बेकार रहेंगे। इसलिए पहली बात तो यह है कि हममें हर प्रकार के हाथ के कामों को करने के लिए तैयारी और क्षमता होनी चाहिए।

दूसरी बाधा आत्मविश्वास की कमी की है। कई स्नातक होते हैं जिनके कि अन्दर योग्यता भी होती है, क्षमता भी होती है परन्तु साहस नहीं होता, आत्मविश्वास नहीं होता इसलिए वे कई पेशों को ग्रहण नहीं करते या थोड़ा सा शुरू करके घबराकर छोड़ देते हैं। इसे भी मैं शिक्षा का दोष समझता हूँ। यदि स्नातक होने तक इतना आत्मविश्वास पैदा नहीं हुआ कि स्नातक यह समझे कि यह सब जगत् परमेश्वर का है अतः इस मनुष्य-समाज में कार्य के लिए जो मेरा उचित स्थान है, उसे मैं अवश्य पा लूंगा और वहाँ मैं अवश्य सफल हूँगा तो वह क्या स्नातक होगा!

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी सम्मति में तो जिनमें इस प्रकार का आत्मविश्वास पैदा नहीं हो पाता, उन्होंने चाहे बौद्धिक परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ली हों तो भी उन्हें स्नातक नहीं बनाना चाहिए। उन्हें गुरुकुल में और रखना चाहिए और उनसे कई प्रकार के सार्वजनिक काम करवा-कर इसी दिशा में शिक्षित करना चाहिए। अस्तु।

धन कमाने में सफल होने के लिए बहुत सी तरकीबें बताई जाती हैं। तुम भी आपस में इस विषयक बातें कभी-कभी करते रहते हो। कई पुराने स्नातक या और तुम्हारे साथी और हितैषी कार्य में आर्थिक दृष्टि से सफलना पाने के लिए अपने अनुभव से या दूसरे की सुनी हुई बातें तुम्हें सुनाया करते है। कई धन कमाने के नुस्खे बताये जाते हैं जैसे, जहाँ बहुत परिचित हों, वहाँ दुकान नहीं करनी चाहिए, शहर अमुक प्रकार का ढूंढना चाहिए, अमुक प्रकार के वेष में रहना चाहिए इत्यादि। परन्तु जिन बातों का अधार्मिक न होते हुए धनार्जन करने में सच्चा सम्बन्ध है और जो आर्थिक सफलता प्राप्त कराने के वास्तविक साधन हैं, वे मेरी समझ में केवल तीन हैं। और कुछ बातें यदि इसमें सहायक होती हों तो वे बहुत गौण हैं या अस्थायी हैं। इसलिए यदि तुम वैश्य धर्म का पालन करते हुए अधिक से अधिक धन प्राप्त करना चाहते हो (और वैश्य को इसके लिए यत्न करना चाहिए) तो तुम्हें अपने अन्दर निम्नलिखित तीन गुण जहाँ तक हो सके, वहाँ तक धारण करने चाहिएँ—

1. सच्चाई, ईमानदारी
2. परिश्रम, लगन
3. मधुर स्वभाव, सद्व्यवहार

व्यापार में ईमानदारी या सच्चाई आर्थिक दृष्टि से भी बहुत लाभ पहुँचाने वाली होती है। हम तो सच्चाई को धार्मिक रूप से भी बहुत महत्त्व देते हैं पर पश्चिम के बहुत से लोग 'Honesty is the best policy' (ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है) के अनुसार नीति के तौर पर ही सच्चाई को बरतते हैं पर वे नीति के तौर पर भी सच्चाई, ईमानदारी का जितना अच्छी तरह पालन करते हैं और उस अंश में पूरी ईमानदारी बरतते हैं, उतना हम हिन्दुस्तानी सच्चाई को नहीं बरतते। विदेशी लोग जो अपनी नानाविध चीजें यहाँ भेजते हैं, वे सदा एक जैसी प्रामाणिक, ठीक नमूने की, ईमानदारी के साथ भेजते हैं तथा ठीक तरह सुरक्षित तौर पर पूरे बन्दो-बस्त के साथ भेजने की चिन्ता करते हैं जिससे कि ग्राहक के पास बिल्कुल ठीक सुरक्षित अवस्था में पहुँचें चाहे ऐसा करने में उनको और अधिक व्यय क्यों न करना पड़े पर वे ग्राहक को एक बार भी धोखा न होने पाये, इसकी पूरी फिक्र करते हैं। यह सब सच्चाई व ईमानदारी वे बेशक अपने आर्थिक लाभ के लिए ही करते हैं और वे आर्थिक लाभ को निस्संदेह पाते भी हैं। पश्चिम के लोगों ने हमारे देश में तथा अन्यत्र अपना बहुत व्यापार फैलाया हैं और अपार धन कमा रहे हैं, उसके कारणभूत जहाँ और कई बातें हैं, वहाँ एक उनका यह ईमानदारी और सच्चाई का बर्ताव भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मैंने भारत के कई व्यापारियों को विदेशियों की इस प्रकार की सच्चाई और ईमानदारी की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते सुना है तो हम जो सच्चाई को धर्म और पुण्य समझते हैं, सहजभाव से व्यापार में भी पूरी सच्चाई बरतनी चाहिए। पर हमने अभी सच्चाई को उस तल तक पहुँचाने का यत्न नहीं किया है।

हम गुरुकुल के स्नातकों से तो सभी लोग पूरी ईमानदारी की आशा करते हैं यही हमारी खास विशेषता है और होनी चाहिए। कन्या गुरुकुल के सुचेता कृपलानी द्वारा दिये गये गत दीक्षान्त भाषण के बाद बोलते हुए श्री महावीर त्यागी जी ने गुरुकुल के बारे में बहुत ही प्रशंसासूचक बात कही थी, वह कहाँ तक सच है या रहेगी यह तो ईश्वर जाने पर उन्होंने निस्संकोच भाव से कहा था कि पिछले दिनों जब कि युक्त प्रान्त में कांग्रेस सरकार थी, तब हमारे लिए यह मुश्किल आई कि हमें ईमानदार विश्वस्त आदमी कार्य के लिए नहीं मिलते थे। कई जिनको ऐसा समझा गया, भरोसा किया गया, वे भी रिश्वत लेने वाले निकले। तब जब हम सोचते थे कि सरकार के लिए सच्चे विश्वसनीय आदमी कैसे मिलें कहाँ से मिलें तो अनेकों सरकारी, राष्ट्रीय भी संस्थाओं में से केवल एक संस्था थी जिसकी तरफ कि हमारी नजर जाती थी और वह गुरुकुल संस्था थी। इस प्रकार श्री महावीर त्यागी ने गुरुकुल के विषय में कहा। ऐसा गुरुकुल के स्नातकों के विषय में मुक्तकंठ से कहा जा सके तो क्या ही अच्छा हो! परन्तु मुझे दुःख से ऐसा कहना पड़ता है कि हमारे ऐसे स्नातक भी हैं जिन्होंने दूसरे साथी स्नातक को या गुरुकुल को धोखा दिया। उनकी संख्या चाहे कितनी थोड़ी हो पर गुरुकुल की प्रतिष्ठा को कलंकित करने के लिए एक भी काफी है पर मैं तुम्हें उन बहुत से स्नातकों की तरफ देखने को कहूँगा जिन्होंने गुरुकुल की इस प्रतिष्ठा को फैलाया है, दृढ़ किया है। एक स्नातक ने अपने पिताजी के गुजरने पर, सब जायदाद-सम्पत्ति के अपने हाथ में आ जाने पर सबसे पहला काम यह किया कि अपनी जायदाद व सम्पत्ति अपने अन्य भाईयों में भी बांट दी जिन्हें कि पिता नाराजगी के कारण वंचित कर गये थे। एक स्नातक को व्यवहार में एक बार दूसरे आदमी से गलती से एक सौ रुपये ज्यादा आ गये। गलती करने वाले को यह पता नहीं था कि एक सौ रुपये अधिक चले गये। पर उन स्नातक ने वे अधिक आये एक सौ रुपये तुरन्त लौटा दिये। इससे उस आदमी के मन में गुरुकुल के स्नातकों की ईमानदारी के विषयों में पहले से विद्यमान प्रतिष्ठा का भार और भी पुष्ट हो गया है। इस तरह स्नातकों की ईमानदारी, सच्चाई व खरेपन के और बहुत से दृष्टान्त बताये जा सकते हैं। एक स्नातक ने मुझे बताया था कि मुझे व्यापार के लिये पूँजी के तौर पर रुपयों की आवश्यकता थी तो उन्हें पीछे से बिना सूद के तथा बिना किसी प्रकार की लिखत-पढ़त किये रुपया मिल गया—केवल इस कारण कि वे गुरुकुल के स्नातक थे। एक भाई के विषय में, जो सर्राफ का काम करते हैं, कहा जाता है कि इतने ईमानदार प्रसिद्ध हैं कि उन्हें लोग सोना बिना तोले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे देते हैं। सोना जो कि पाव-पाव रत्ती भी तोला जाता है—उसके विषय में इतना विश्वसनीय समझा जाना कितने गौरव की बात है। असल में तो विश्वसनीयता ही सबसे बड़ी पूँजी है। वह हम गुरुकुल के स्नातकों के पास है और होनी चाहिए। क्योंकि हम ईमानदारी को केवल सहज नीति के तौर पर नहीं किन्तु सहज धर्म के तौर पर स्वीकार करते हैं और अपने चरित्र का उसे एक स्वाभाविक अंग बना लेते है। इसलिए यदि इस प्रकार की ईमानदारी हमारे पास है तो हमारे पास सब कुछ है।

अमेरिका के एक प्रेसीडेन्ट अब्राहम लिंकन के विषय में कहा जाता है कि यद्यपि वे एक मोची का काम करते थे पर इतने सच्चे और सद्गुणी प्रसिद्ध थे कि जब वे प्रेसीडेन्ट चुने गये तो एक आदमी ने मजाक के तौर पर उनको याद दिलाया कि क्या यही अब्राहम लिंकन है जो हमारी जूती गांठते थे ? इसके उत्तर में लिंकन ने कहा था कि "हाँ, मैं वही लिंकन हूँ पर मैं कह सकता हूँ कि मैंने जिस किसी के जूते को दुरुस्त किया, गांठा है, वह इतनी अच्छी तरह ईमानदारी से और ठीक-ठीक किया है कि वह दूसरी बार किसी और मोची के पास नहीं गया, सदा मेरे पास ही आया है। जैसी सच्चाई, ईमानदारी, लगन और कर्तव्यपरायणता के साथ मैं जूती गांठने का काम करता रहा हूँ, उसी तरह अमेरिका के शासन-सूत्र चलाने का भी काम करूँगा।" यह सच है कि जो मनुष्य छोटे से छोटे काम को ईमानदारी और तत्परता के साथ कर सकता है, करने का अभ्यासी होता है, वही बड़े से बड़े काम को भी संभाल सकता है और ईमानदारी से उसका संचालन कर सकता है।

जिसे प्रचार या प्रोपेगेन्डा कहते हैं, वह सच्चाई का स्वयमेव होता है। उसके लिए किसी कृत्रिम प्रचार की आवश्यकता नहीं होती। लाहौर में एक सूखी मेवा बेचने वाले की दुकान है। वह अन्दर गलियों में है। उसके ऊपर कोई किसी प्रकार का साइनबोर्ड नहीं लगा हुआ पर आसपास सब जगह मशहूर है। हर कोई उसी के यहां से मेवा खरीदने की सिफारिश करता है क्योंकि वह ईमानदार प्रसिद्ध है। छोटा बच्चा या अजनबी वहाँ जाएगा, उसे भी ठीक-ठीक और खरा माल ही वहाँ से मिलेगा। धोखा होने की संभावना नहीं है। इसी तरह प्रायः हर शहर में कुछ दुकानदार खरा माल देने ठीक-ठीक काम करने और ईमानदारी के लिए मशहूर होते हैं। लोग कहते हैं कि दूध फलानी दुकान से लेना, वहाँ का दूध बिना मिलावट तथा बहुत अच्छा होता है। अपनी घड़ी अमुक दुकान से सुधरवाना क्योंकि वहां काम टिकाऊ व अच्छा होता है, कामचलाऊ नहीं होता या रद्दी पुर्जे नहीं लगा दिये जाते।

इस तरह ईमानदारी हमेशा फलती-फूलती है और सच्ची सफलता को प्राप्त कराती है। धोखा देकर कुछ समय तक काम चलाया जा सकता है, नये-नये आदमियों को धोखा दिया जा सकता है। ऐसे आदमी भी बहुत मिल सकते हैं जो कि धोखे में आयें। बहुत से इश्तिहारबाज लोग इसी तरह धन कमा रहे हैं और बहुत से इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार से धन कमा चुके हैं पर उस तरफ तुम्हारी दृष्टि अनुकरण के लिए नहीं जानी चाहिए किन्तु केवल तिरस्करण के लिए जानी चाहिए। बहुत देर तक धोखा चल भी नहीं सकता। सब लोग धोखे में आने वाले भी नहीं होते। धोखे की कमाई लानतभरी होती है। उससे सुख नहीं मिल सकता पर असली बात तो यह है कि धोखा देना अपना नाश करना है, अपने आपको धोखा देना है।

दूसरा गुण है परिश्रम व लगन। अन्य सफलताओं की तरह आर्थिक सफलता भी परिश्रम और लगन से अवश्य प्राप्त होती है। परिश्रम से उल्टा है आलस्य और लगन से उल्टी बेदिली और कम हिम्मती। आलसी और कमहिम्मत मनुष्य सदा विफलता को निमंत्रित करते रहते हैं। मैंने एक स्नातक की दूकान देखी थी जिसमें कि चीज़ें अस्तव्यस्त पड़ी थीं। दूकान में सफाई भी अच्छी तरह से हुई मालूम नहीं पड़ती थी। दूकान की ऐसी अवस्था आलस्य का ही परिणाम होती है। ऐसी दूकान में ग्राहक आना-जाना पसन्द नहीं करते। कम से कम आकृष्ट तो होते ही नहीं। सफाई की, परिश्रम की आदतें हो जाती हैं जिन्हें कि तुम्हें अभी यहीं से डालना चाहिए। आलस्य की, सफाई न रखने की तथा बेतरतीबी की आदतों को छोड़ना चाहिए। दूसरी तरफ युक्त प्रान्त के एक शहर में एक स्नातक की आयुर्वेद की दूकान मैंने देखी थी। उसे देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। दुकान साफ-सुथरी, सजी हुई और व्यवस्थित थी। वहाँ बैठने और ठहरने को जी करता था। ऐसी दूकान वाले को क्यों न सफलता मिलेगी? ऐसे ही पंजाब के एक स्नातक की दूकान याद आती है जोकि बिना कोई जुदा नौकर रखे हो परिश्रमपूर्वक साफ़ स्वच्छ रखी जाती थी। निरालस्य होने की पहली पहचान उसके इर्द-गिर्द के स्वच्छ व साफ होने से हो जाती है। जो आलसी होगा, वह दूकान के लिए तथा ग्राहकों के लिए अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में भी ढीला-ढाला और अव्यवस्थित होगा। इसलिए परिश्रमी, मेहनत करने वाला, निरालस्य, जी न चुराने वाला, लगन वाला मनुष्य सदैव सफलता पर सफलता पाता जाता है, सामने आने वाली प्रतिदिन की कठिनाइयों पर विजय पाता जाता है।

जिसमें लगन है, वह छोटी मोटी कठिनाइयों से घबराता नहीं है, धैर्य से अपने कार्य को चलाता जाता है। उत्साह-भंग होकर बीच में काम को नहीं छोड़ देता। सब बड़े-बड़े धनी पुरुष, जिन्होंने अपने जीवन में धन कमाया है, उन सबने अपना प्रारम्भ थोड़ी मात्रा में ही किया था। महाशय कृष्ण जी जो कि 'प्रताप' और 'प्रकाश' के मालिक हैं, आर्थिक दृष्टि से भी जिनकी लाहौर में अच्छी स्थिति है, उनकी अपनी कोठी है—प्रारम्भ में एक छोटे से मकान में रहते थे। श्रीमान पंडित विश्वंभर नाथ जी सुनाते थे कि प्रारम्भ में 'प्रकाश' अखबार को लपेटना, टिकट लगाना, डाकखाने में डालना—ये सब काम हम अपने हाथ से किया करते थे। इन कार्यों के लिए नौकर रखने की सामर्थ्य नहीं थी। कानपुर के दैनिक हिन्दी 'प्रताप' अखबार का भी प्रारम्भ श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी द्वारा कितने क्षुद्र रूप में हुआ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, यह मैंने स्वयं देखा है। लाहौर के एक मित्र सुनाते थे कि लक्ष्मणदास मेहरचन्द नाम की लाहौर में पुस्तकों की जो प्रसिद्ध दूकान है, उसको प्रारम्भ करने वाले ब्राह्मण केवल एक लुटिया लेकर के मारवाड की तरफ से लाहौर आये थे। प्रारम्भ में दो-चार किताबें लेकर अपना कार्य प्रारम्भ किया था। यह उनके परिश्रम, लगन तथा अन्य गुणों का फल है कि आज उनकी बहुत बड़ी प्रख्यात दूकान है। जहाँ बहुत से नौकर चाकर काम करते हैं तथा दिन में भी बिजली जलती रहती है। गढ़वाल के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता और वकील स्वर्गीय ताराचन्द जी गैरोला मुझे सुनाते थे कि उनके पिता ने उन्हें केवल दस-बीस रुपये देकर बाहर भेज दिया था तथा एम. ए. पास करके और वकील बनकर कठिनाई और परिश्रम के साथ अपनी इस आर्थिक उन्नति की अवस्था पर पहुँचे हैं। वे अपने पीछे जगह-जगह बहुत सी जायदाद छोड़ गये हैं। ऐसे बहुत से दृष्टान्त तुम जानते होगे, सुनते होगे जहाँ कि बहुत थोड़े प्रारम्भ से लोग अपने परिश्रम के द्वारा आर्थिक स्थिति की उन्नत अवस्था को पहुँचे होगे। जो लोग अपने ही जीवन में निर्धन अवस्था से धनी हुए हैं (उनकी बात छोड़ दो जोकि धनी घर में पैदा होने के कारण धनी हैं) उनकी जीवन-कथा सुनने लायक होती है। उन सबमें परिश्रमशीलता और लगन अर्थात् बिना घबराये देर तक विघ्न बाधाओं को सहते हुए भी अपने काम में लगे रहना—यह बात अवश्य मिलेगी। जो लोग काम को प्रारम्भ करके थोड़ी-सी असुविधाएँ देखकर, हिम्मत हारकर अपने काम बदलते रहते हैं या एक जगह छोड़कर दूसरी जगह जाते रहते हैं, उनके लिए सफलता प्राप्त करना भाग्य से ही हो सकता है। उनका निश्चित परिणाम तो विफलता ही है।

तीसरा गुण है सद्व्यवहार और मिलनसारता। जो लोग ग्राहकों से तथा अपने सम्पर्क में आने वाले अन्य सब लोगों से अच्छा बर्ताव करते हैं, अच्छा व्यवहार करते हैं, प्रेम से बरतते हैं, शिष्टाचार रखते हैं, मधुर वाणी बोलते हैं, वे अवश्य सफल होते हैं। कई दूकानदारों का बर्ताव इतना अच्छा होता है— केवल बातचीत में ही नहीं किन्तु अन्य सब प्रकार से भी वे ग्राहक की सहूलियतों का इतना ध्यान रखते हैं कि ग्राहक दुबारा वहीं आना चाहता है या दूसरों को उसकी ही दूकान पर जाने की सलाह देता है। व्यापार करने वाले को दूसरे से कैसा व्यवहार करना चाहिए, कैसे चिट्ठी-पत्री करनी चाहिए—इन पर तो बहुत सी किताबें लिखी हुई हैं। चिठ्ठी-पत्री करते हुए जो थोड़े से प्रेम के और सभ्यता के अतिरिक्त शब्द लिख दिये जाते हैं, उन्हीं से बहुत-सा फर्क पड़ जाता है। एक ही बात को दो पंक्तियों में बेढंगी या फौजी सी भाषा में लिखा जा सकता है पर उसे ही चार पंक्तियों में शिष्टता, सभ्यता और प्रेम-प्रदर्शन करते हुए लिखा जा सकता है। इसी तरह प्रत्येक व्यवहार में सुन्दरता, शिष्टता तथा मनोमोहकता लाई जा सकती है पर इन सब कृत्रिम उपायों के मूल में जो प्राणभूत वस्तु होती है, वह है ग्राहक का वास्तविक हित करने की इच्छा और उसके प्रति प्रेम। यह भाव होगा तो बाह्य व्यवहार में सभ्यता, मधुरता,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दरता व आकर्षण का आ जाना कुछ कठिन नहीं रहता। पंडित ठाकुरदत्त जी (अमृत धारा) आदि सज्जनों के आर्थिक सफलता पाने के जहाँ अन्य कई कारण हैं, वहाँ उनके स्वभाव की मधुरता भी एक मुख्य कारण है।

तो ये तीन गुण हैं—सच्चाई, लगन और सद्व्यवहार जो कि वैश्य धर्म का यथावत् पालन करने के लिए अपने में अवश्य धारण करने चाहिएं। तुम और सब बातों को छोड़कर इन तीन को अपने जीवन का अंग बना सकोगे तो तुम्हें आर्थिक व भौतिक सफलता भी ढूंढती हुई आयेगी और तुम्हें कृतार्थ कर देगी।

इस प्रकरण को समाप्त करता हुआ मैं अन्त में उन दो बुराइयों की तरफ तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूँ जिनसे कि वैश्य के रूप में सेवा करने वाले स्नातकों को अवश्य बरी होना चाहिए और जो हमारे बाजार में बहुत बुरी तरह घुसी हुई हैं और हमें हानि पहुँचा रही हैं। पहली बात है दुकानदारी में दिन-रात लगे रहना और इस तरह समय का अपव्यय करना। हमारे देश के दूकानदार एक कहावत बोला करते हैं कि 'मौत का और ग्राहक का कोई समय नहीं—वे न जाने कब आ जायें।' इसलिए सुबह से लेकर रात के ग्यारह-बारह बजे तक दूकान खुली रखकर बैठे रहना जरूरी समझते हैं। इसमें समय का कितना अपव्यय होता है! अन्य देशों में दूकानों और बाजारों के खुलने के एक नियत समय होते हैं इसलिए दूकानदार को ग्राहक के आने की आशा में दिन-रात बैठे रहने की जरूरत नहीं होती। यहाँ यदि कोई अपनी दूकान छह या आठ घण्टे नियत समय से खोलना चाहता है तो उसे डर लगता है कि उससे भिन्न समय में ग्राहक दूसरों की दूकान से चीजें खरीद लेंगे। इसलिए यह बात चलने नहीं पाती। यहाँ सप्ताह में एक दिन दुकानदार छुट्टी नहीं मना सकता। अब कुछ बड़े शहरों में सप्ताह में एक दिन सभी लोग दूकान बन्द रखें, ऐसी व्यवस्था की जा रही है। लाहौर के एक घड़ियों का काम करने वाले मेरे मित्र कहते थे कि दूकानदारों की समिति में यह विषय कई बार पेश हुआ कि रविवार को सब दूकानें बन्द रखी जायें पर जहाँ अन्य कई बातों को बहुत महत्त्व दिया गया, वहाँ इस अत्यन्त आवश्यक बात की तरफ कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता था। अब जाकर लाहौर में यह नियम बना है कि भोजन आदि की दूकान के अतिरिक्त अन्य सब दूकानें रविवार को बन्द रहा करेंगी। भला जब ग्राहकों को यह पता है कि दूकानें अमुक-अमुक समय पर ही खुलती हैं तब वे भी खुलने के समय में ही आने के अभ्यासी होवेंगे। इससे दुकानदारी को भी कोई हानि नहीं होगी और साथ ही दूकानदारों का निरर्थक जाने वाला समय बचेगा।

दूसरी तरफ, बहुत दिन हुए मैंने सुना था कि लाहौर में एक राष्ट्रीय विचारों वाले एक सज्जन हैं जो कि दर्जी का काम करके अपनी रोज़ी कमाते हैं। वे अपनी दूकान दिन में केवल तीन घण्टे के लिए खोलते थे पर ग्राहक लोग उनकी दूकान खुलने के समय से पहले से ही वहाँ पर जमा रहते थे, यह इसलिए कि लोग जानते थे कि वह काम बड़ा अच्छा करते है। कपड़े के चुराये जाने या खराब होने का डर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नही रहता है इसलिए लोग उन्हीं के पास जाना चाहते थे। वह तीन घण्टा काम करके ही अपने गुजारे लायक और शायद अन्य दर्जियों से अधिक नहीं तो उनके बराबर कमाई कर लेते थे और बाकी समय को सेवाकार्य में लगाते थे। इसी तरह देहरादून के एक भक्त सज्जन के विषय में मुझे पता है कि वह भी अपने साहूकारे की दूकान दिन में कुछ घण्टों के लिए खोलते थे और उससे अपनी रोजी बहुत अच्छी तरह से चला लेते थे। प्रातः स्वयं घण्टों ईश्वर-भजन करते थे और दिन में काफी समय स्वाध्याय को देते थे।

तो गुरुकुल के स्नातक जब दूकानदारी में पड़ें तो उन्हें पहली बात तो यही चलानी चाहिए कि दूकान का समय नियत हो। वे जिस जगह अपना काम करें, वहाँ के लोगों से मिलकर वहाँ किसी ऐसे नियम को अवश्य जारी करा देवें। इससे हमारे देश का अमूल्य समय और दूकानदारों मे निहित राष्ट्रीय शक्ति बचेगी, उसका अपव्यय होने से रुकेगा।

दूसरी बुराई है एक दाम का न होना। इससे भी बहुत सी शक्ति का अपव्यय होता है। विदेशों में हमारी तरह यह बुराई नहीं है। वहाँ प्रायः चीजों के दाम निश्चित होते हैं। भावताव करने की जरूरत नही होती। हमारे यहाँ तो इस विषय में बहुत सा समय व्यर्थ जाता है। जब मैं विद्यार्थी-काल में पहले पहल पहाड़ पर गया था तो जो पहाड़ी वहाँ लकड़ी बेचने आते थे, उनकी लकड़ी खरीदने के लिए मुझे यह सिखाया गया था कि वे अपने बोझ की जो कीमत बतायें, उससे आधी कीमत मुझे बोलनी चाहिए। वे आठ आने कहें तो मुझे तीन आने बोलने चाहिएँ। वे भी अन्त में चार आना या तीन आना में दे जाते थे। मुझे देखकर आश्चर्य होता था कि वह भी जानता है कि आठ आने में मेरा बोझ नहीं बिकेगा, हम भी जानते हैं कि हम जब कम करके बोल रहे हैं तो उतने कम में भी भाव नहीं बनेगा तब क्यों निरर्थक झगड़ेबाजी की जाये? परन्तु फिर भी प्रायः इस आशा से कि कोई धोखे में आ जाएगा और अधिक दाम दे देगा या कोई बेचने वाला इतना भोला और जरूरत मन्द होगा कि वह थोड़ी कीमत में ही अपना सामान दे जाएगा—हम यह भावताव करते रहते हैं। जिस अन्याय की इच्छा से ऐसा करते हैं वह इच्छा भी कभी ही पूरी होती है पर व्यर्थ कष्ट और झंझट हम रोज उठाते रहते हैं बल्कि झझट में हमें आनन्द आता है। महात्मा मुंशीराम जी ने (स्वामी श्रद्धानन्द) अपनें जीवन की एक घटना सुनाई थी और शायद वह अपनी जीवनी में लिखी भी है कि जालन्धर शहर के पास के गांव का एक आदमी अपने बुने हुए पट्टू पेंठ बेचने के दिन जालन्धर आया करता था। वह अपने पट्टू बेचने के बारे में बहुत झगड़ा किया करता था। बहुत देर के झगड़े के बाद ही वह अपने पट्टू को बेच पाता था। एक बार एक ऐसा ग्राहक आया जिसने उसकी कही कीमत एकदम स्वीकार कर ली और उससे पट्टू ले लिया। इस घटना से उस बेचने वालों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, वह चकित और हक्का-बक्का रह गया। इसके आगे महात्मा जी सुनाते थे कि उसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावताव करने के विषय में झगड़ा करने की इतनी आदत थी कि अपनी उस आदत को पूरा करने के लिए वह अपने आप ही कुछ देर तक भाव सम्बन्धी बातें बकता और चिल्लाता रहा । इसकी कीमत तो इतनी है, इतने में तो इसकी लागत भी पूरी नहीं होती इत्यादि वाक्य हमेशा की तरह जब तक उसने बोल न लिये, तब तक उसे चैन नहीं पडी । यह बुरी आदत हमारे अन्दर कितनी बैठ गई है, इसको नमूने के तौर पर प्रकट करने के लिए उपर्युक्त उदाहरण बहुत काफी है । सब गुरुकुल के स्नातकों को अपनी दूकानदारी में से इस बुराई को सर्वथा निकाल देना चाहिए बल्कि वे जिस बाजार में काम करें, उस बाजार से ही निकाल देना चाहिए । सब वस्तुओं का एक ठीक नियत दाम हो चाहे एक बच्चा खरीदने आये या कोई बेजानकार खरीदने वाला आये । सबके लिए एक ही निश्चित दाम हो । मैंने तो देखा है कि कई दुकानदार पश्चिम के अनुकरण में अपनी दूकान पर लिख रखते हैं Fixed Price (एक दाम) पर वहाँ भी असल में एक दाम नहीं होते, ऐसा एक दो अवसरों पर मैंने पाया है । इसका मतलब हुआ कि एक दाम लिखना भी ठगने के लिए है । यह तो और भी बुरी बात है । हमारे बाजार की इस बुराई के कारण बहुत से भले लोग स्वयं सौदा खरीदने जाना ही पसन्द नहीं करते । वे दूसरे आदमी से सौदा मंगाना पसन्द करते हैं । वे सोचते है कि क्यों शक्ति व्यर्थ नष्ट की जाये ? आशा है कि सभ्य समाज के अनुकूल एक दाम का रिवाज़ अपने देश में प्रचलित करने में हमारे स्नातक अग्रसर होंगे ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्यात्रा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

18 दिसम्बर 37

कल मार्गशीर्ष पूर्णिमा को गुरुकुल आदि छोड़ साधना में ही लगने का निश्चय लिखा। कल घी, समिधा सब खत्म हुई। नया घी भरा, समिधा आश्रम से पुराणी जी से ली।

आज उत्तर आया जिससे यह अनुमति मिली और पता लगा कि अब मेरे गुरुकुलादि का कार्य या आश्रम से बाहर रहकर साधना करना ठीक नहीं रहा।

ध्यान में अजरोस्मि, अमरोस्मि, अभयोस्मि, अभयदेव, देवोस्मि। यह खूब बार-बार देर तक गाया। बाहर की अग्नि को अन्दर स्थापित करने का यत्न शुरू। आज बहुत देर तक उस आन्तर अग्नि को अनुभव सा किया। इस अजरोस्मि आदि जप से यह स्थिर हुआ।

23 दिसम्बर 37

सूर्योपासना करते समय। माता की पुकार आ गई है। बच्चा अभी तक खेल में मस्त था, अपने मनोविनोद के खेल कर रहा था। माता की आवाज कान में आते ही इधर दौड़ पड़ा, माता ने मैले कपड़े जरा झाड़कर, नाक पोंछ कर गोद में बिठा लिया। आज से शाम 4 से 5 काम भी शुरू किया।

आजकल परिक्रमा करते हुए—

गुरुं वन्दे गुरुं वन्दे भवसागर तारणम् (ऊपर)
दुःख व्याधि जरा मृत्योः सर्वांशेन निवारणम् (हृदय में)

भवसागर तारणम्

अखण्ड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः

(यह दर्शन, ऊपर का तो श्रीनगर में किया था जब Essays on the Gita पढ़ रहा था)

और 'दुःख व्याधि जरा मृत्योः सर्वांशेन निवारणम्'

अजरं अभयं रूपं अमृतं सशरीरकम्
तत्पदं प्रापितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः

यह प्रापण का वचन (नीचे, हृदय, शरीर का) पहली बार यहाँ आने पर Mother पुस्तक पढ़कर समाप्त करने पर दिया।

तेरा एक एक अणु, एक एक परमाणु अजर अमर अभय हो जाएगा—यह परमपिता परमेश्वर का आशीर्वाद है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24 दिसम्बर 37

श्रद्धानन्द दिवस । श्रद्धानन्द जी से आज्ञा मांगकर त्यागपत्र दिया ।

25 दिसम्बर 37

शाम के ध्यान के बाद आते हुए गाया गया—

जाग उठी रणचंडी अब भैरव नृत्य चलेगा ।

9 जनवरी 38

खेल कर रहा था । उसे छोड़ माता के पास नये कपड़े पहनने आया हूँ । नये कपड़े पहन कुछ नये तरह से खेलूंगा ।

26 जनवरी 38

आज स्वतंत्रता दिवस का ध्यान आता रहा । मृदु द्वारा माता जी का प्रसाद लेकर खाया । माता जी का भारत मातृत्व । मेरी आत्मिक स्वाधीनता में ही भारत की स्वाधीनता है । भू शैया जारी ।

27 जनवरी 38

वामांग से से ही काम करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और हृदय में ध्यान करने से एक वृक्ष, कभी कभी चमकीला, कभी कुछ नहीं या काला अंधेरा, कभी दृढ़ता—मानों दृढ़ता से किसी ने उस स्थान पर मुझे पकड़ रखा है । अग्नि या दीपशिखा का स्पष्ट अनुभव अभी तक नहीं ।

6 फरवरी 38

कुछ दिन हुए एक सायंकाल गाया था—

दिन रात अखंड जगे यह ज्वाला
लेती सब हवियों की माला
होता शाश्वत यज्ञ निराला
शाश्वत जिसका करने वाला

17 फरवरी 38

शाम को हृदय में लाल रंग दीखा । शायद विश्वव्यापी रूप में अपने को रखकर हृदय में से अन्तरात्मा को देखने का यह परिणाम है या कुछ और ?

प्रातः परिक्रमा में अपने को समिधा मान लेना जो नीचे (हृदय की तरफ से ऊपर को जल रही है) और ऊपर (सिर पर नीचे की तरफ) दोनों जगह से जल रही है, बड़ा आनन्ददायक है ।

गुरु अग्नि में रखी यह शाश्वत समिधा । यही आन्तर यज्ञ का (समिधा धान का) रूप है । अन्दर हृदय में (हृदय हवनकुन्ड है) सब कुछ—सब शारीरिक चेष्टा, सब प्राणिक कार्य, सब मानसिकचिन्तन अर्पित करते जाना, दिन रात प्रतिक्षण करते जाना । यही आन्तर अर्पित हवन है । इसी Self offering से Psychic सामने आया रहता है । उस हृदय में कुछ भी दिखाई दे—वही तद्रूप अग्नि है—वह विभिन्न रूपवाली है । बाह्य अग्नि की तरह एकरूप ही नहीं है । वैसे तो वह भी (बाह्य अग्नि) एकरूप नहीं होती ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21 फरवरी 38

दर्शन के बाद अपने कमरे में आते हुए सिर के ऊपर का ज्वलन्त प्रकाश देर तक अनुभव होता रहा। शाम को भी कुछ रहा।

प्रातः ध्यानशाला में बैठकर ध्यान करते समय हृदय में खिला हुआ गुलाब का फूल अन्दर से बाहर आकर हृदय के सामने खड़ा दीखता रहा।

23 फरवरी 38

आज सायं ध्यान में अहंकार का स्थान किसी अन्य वस्तु ने ले लिया, ऐसा अनुभव कर बड़ा सुख पाया। Ego Centric की जगह हृदयस्थ एक अन्य केन्द्र वाला हो गया। मानों पुराना देव शर्मा मर गया, New Birth हो गया। New Birth की माला लेकर ही दर्शनार्थ गया था।

28 फरवरी 38

शाम ध्यान में सुना—'54 वर्ष तक वहाँ नहीं रहना है।' मैंने इसका अर्थ यह लगाया है कि 54 की आयु तक अर्थात् अब से 12 वर्ष बाद तक गुरुकुल नहीं रहना है। अगले कुंभ तक यह मतलब हुआ।

13 अप्रैल 38

1 वैशाख को (13 अप्रैल) संन्यास लिया। वह वस्तुतः नया जन्म था। नया जन्म ब्राह्मण के घर (स्वामी सत्यानन्द जी ब्राह्मण हैं) होना था सो हो गया। अब इस युग की प्रथम तिथि मेरा जन्मदिन है।

22 जुलाई 38

शुक्रवार प्रातः ध्यान में बहुत भारी शांति Peace in Vital अनुभव की।

15 अगस्त 38

दर्शन दिवस। प्रातः ध्यानशाला में ध्यान करने बैठा। आँख मींचकर ध्यान करने की जरा भी इच्छा नहीं हुई। आनन्द का (निष्कारण आनन्द का) उस समय औरो दिन भर अनुभव होता रहा। चार-पांच दिन से एक प्रकार की मुक्तता का अनुभव ह रहा है। इसका प्रारम्भ एक दिन—शायद 11 या 12 अगस्त से—रात के घर के ध्यान में हुआ। अब मैं घर पर एक घंटा चांदनी में बैठकर रोज ध्यान करता हूँ। शुक्ल पक्ष में 8 से 9 तथा कृष्ण पक्ष में रात 3-30 या 4 से 5 तक–यह क्रम बनाया है। इस मुक्तता के अनुभव में अपने सिर के ऊपर आत्मा को जो कि एक पग हृदय में धरे हुए हैं और इस द्वारा देह को धारे हुए है, शरीर से जुदा सदा मुक्त नित्य अविनाशी अनुभव करना मुख्य बात है। अतः शरीर की तरफ से बेफिकरी, निर्भयता रहती है। यह शायद अन्तरात्मा के 'अभय' नाम ले लेने से है, यह भी लगता है। देवशर्मा मर गया, उसकी जगह 'अभय' का जन्म हो गया।

20 अगस्त 38

सायं धारोष्ण दूध छोड़ने का—उबला दूध पीने का—माता जी का सन्देश मिला।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायं ध्यान में पहले गहरा गुलाबी रंग का फूल पीछे से नाना रंग के बड़े सुन्दर-सुन्दर फूलों की प्रदर्शनी सी होती रही।

एक दिन शाम के ध्यान में सिर के ऊपर सफेद कमल देखा।

3 सितम्बर 38

प्रातः के ध्यान में—अन्त में—तिरंगा झण्डा दीखता रहा। कुछ दिनों से नीले फूलों से आकर्षण—उन्हें देखने की इच्छा। फूल लाता हूँ। उनके अर्थ प्रायः श्रीकृष्ण या राधा से सम्बन्ध रखते हैं। उधर Radha's Prayer का अनुवाद भी किया है।

14 सितम्बर 38

जाने से पहले माता जी से भेंट। भेंट में माता जी ने मेरे ध्यान में फूल दीखने पर कुछ ऐसा-सा कहा—"तुम्हारा ध्यान Universal Plant world में चला जाता है। फूल इस Plant World का Psychic Being है।" Psychic Fire (अग्नि) और Transformation के फूल माता जी ने जाते समय दिये।

20 नवम्बर 38

15 नवम्बर को प्रातः की गाड़ी से आ गया था। आकर भी प्रथम प्रणाम मे Transformation का ही पुष्प मिला।

आज से वायुमंडल में श्री अरविन्द के बाहर आने का प्रभाव अनुभव होने लगा। सायं घूमते हुए विशालता—भारी विशालता—का अनुभव और उसमें आनन्द।

21 नवम्बर 38

सायं ध्यान में आत्माग्नि का प्रबल रूप में पर थोड़ी देर को अनुभव।

22 नवम्बर 38

प्रातः सूर्य-दर्शन सहित सन्ध्या में आत्माग्नि का अधिक स्पष्ट विचार स्फुरित हुआ। आत्माग्नि हृदय में सुप्रतिष्ठित है, दिनों दिन बढ़ रही है। उसकी किरणें, ज्वाला, शक्ति चारों तरफ निकल रही हैं और बाहर से आने वाली बाधाओं को दूर कर रही, भगा रही हैं। मनसा परिक्रमा मन्त्रों से छहों दिशाओं से (बाहर से) जो भी आक्रमण होते हैं, उन्हें यह आन्तर अग्नि ही—प्रचण्ड शक्तिशाली अग्नि ही (अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु, बृहस्पति बनकर) परास्त कर अपना आधिपत्य स्थापित कर रही है। मन की एक एक चिन्तना, प्राण की प्रत्येक छोटी से छोटी भावना, शरीर की एक-एक हरकत इस अग्नि द्वारा संचालित ही होनी चाहिए। बाहर से आने वाली लहरों से प्रभावित होकर कुछ न होना चाहिए।

23 नवम्बर 38

शाम को ध्यान में ऐसा सा अनुभव हुआ कि मेरे शरीर के चारों तरफ शरीर को ढके हुए चार पांच इंच तक एक घेरा बना हुआ है। फिर ऐसा मान हुआ कि यह मेरी रक्षा करने के लिए है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24 नवम्बर 38

प्रातः उठने पर मुँह में बांयीं तरफ दर्द था —मसूढे पर भी । दुःख हुआ कि 'आत्मन् ! तू इस दर्द को भी हटा नहीं सकता, हटा ।' आश्रम जाने पर पता लगा कि आज दर्शन नहीं होगा । श्री अरविन्द बीमार हो गये—दांयें घुटने की हड्डी टूट गयी ।

27 नवम्बर 38

आज भी शाम के ध्यान में वह रक्षक घेरा अनुभव किया । यह भी पता लगा कि माता जी की रक्षा में श्री अरविन्द थे, उन्हें रक्षण से घेर रखा था । उन पर आक्रमण का डर था । वृहस्पतिवार को प्रणाम जो रोक दिया गया था वह इसीलिए था क्योंकि माता जी पर आक्रमण हुआ था—-उनके मुँह में सूजन व दर्द हो गया था ।

18 दिसम्बर 38

आज ब्रह्मचर्य शक्ति का, पूर्ण ब्रह्मचर्य की अवस्था का शांतिदायक और बड़ा उदात्त अनुभव हुआ । बाह्य कारण तीन समझ में आये—(1) आजकल Bases में ब्रह्मचर्य का प्रकरण चल रहा था । अपने केश शृंगार सम्बन्धी वृत्ति के विषय में एक समय एकदम स्फुरित हुआ कि और सब ठीक है पर उसे प्राणिक (Vital) अनुमति देना एकदम बन्द कर दो । इसका एकदम असर हुआ और शांति व राहत का अनुभव हुआ । (2) उसी दिन जगन्नाथ को मुलतान गुरुकुल पत्र लिखा । वह उसके ब्रह्मचर्य से सम्बन्ध रखता था । उस समय न जाने कैसे बड़ी ऊँची ब्रह्मचर्य की अवस्था में स्थित था । (3) उसी दिन लाहौर में विद्या सभा में मेरे पुनः आचार्य बनने की चर्चा हो रही है, यह ध्यान भी मुझे ऊँची ब्रह्मचर्यावस्था मे ले गया हो कि इस अवस्था में मुझे गुरुकुल को स्थापित करना है ।

31 दिसम्बर 38

अर्धरात्रि का प्रणाम तो नहीं हुआ किन्तु आज ही माता जी की तरफ से नये वर्ष की प्रार्थना (परम पवित्रीकरण तथा निरहंकारता की) तथा चादर मिल चुकी थी अतः रात को बारह बजे उठने का संकल्प करके सो गया । ठीक 12 बजे उठ बैठा । उस समय ऐसा स्वप्न देख रहा था कि हम बहुत से लोग ध्यान में (या संध्या हवन में) बैठने के लिए चटाइयां बिछा रहे हैं । ठीक समय पर मिलकर ज्योंही प्रार्थना आरम्भ हुई त्योंही मैं उठ बैठा । जो कुछ संस्कृत में बोला जाने को था, उसी को हिन्दी में गाया जाता हुआ—'क्रोध न होना चाहिए······न होना चाहिए ।' इस प्रकार सुनता हुआ उठा । यह आवाज चन्द्र त्यागी जी की थी, ऐसा याद आया । इकट्ठे लोगों में एक मास्टर विश्वंभर सहाय थे—और किसी का नाम याद नहीं रहा ।

फिर एक बजे तक घंटा भर बैठकर माता जी द्वारा मिली प्रार्थना के आशय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रार्थना की। अन्त करते समय किसी ने आशीर्वाद भी दिया—शायद स्वामी सत्यानन्द जी ने—चूंकि उस समय सहसा उनका ध्यान आया।

2 जनवरी 39

प्रात: अपनी (निरन्तर जन्म जन्मान्तर में रही और आगे सदा रहने वाली) नित्यता का अनुभव हुआ।

अन्दर अन्दर कुछ ज्वर जसा होने को था। कल सायंकाल के (माताजी के सामने के) ध्यान में हट जाने की प्रार्थना संकल्प से सर्वथा जाता रहा।

3 जनवरी 39

प्रात: चलते-फिरते अनुभव हुआ अपने एक-एक अंग को लक्ष्य करके कि 'यह हाथ है जिसने सैकड़ों वर्षों तक इसी तरह कार्यक्षम बने रहना है। यह पैर है जिसने सैकड़ों वर्षों तक इसी तरह फुर्ती से चलते-फिरते रहना है। यह तेरी आँख है जिसने इसी तरह निर्विकार रहकर सैकड़ों वर्षों तक देखते (पढ़ने लिखने का काम करते) रहना है।' इसी तरह कान आदि भी।

5 जनवरी 39

कल सायं ध्यान भोजन के बाद (कुछ कुछ ध्यान के समय से ही) अनुभव हुआ कि शक्ति की बाढ़ सी आ रही है। अकेले गाने बोलने में बड़ी गम्भीर वीरता के तथा काली रूप माता के वचन निकले। मैं केवल द्रष्टा था। माता अद्भुत चेष्टाएँ कर रही थी।

6 जनवरी 39

शाम को घूमते हुए एक बड़ी विशालता का—मैं आकाश तक ऊँचा विशाल हूँ—ऐसा अनुभव हुआ। देर तक रहा। क्या यह **Wideness** का अवतरण कहा जा सकता है?

आज रमण महर्षि का जन्मदिन भी गणपतराम जी के यहाँ मनाया। 'उपदेश सारम्' की कथा मैंने की।

23 जनवरी 39

प्रात: परिक्रमा के प्रारम्भ में ही हृदय की अग्नि का विचार आया तो एक यज्ञिय, पवित्र, अत्यन्त पवित्र आत्माग्नि का अनुभव हुआ। पवित्रता का ऐसा विशद और प्रबल अनुभव यह पहली बार हुआ। ऐसी पवित्रता—परम परम पवित्रता जिसके संस्पर्श से सब कुछ, कोई भी वस्तु, सारा जहान पवित्र हो सकता है—वह पवित्रीकरण अग्नि में हृदय में देदीप्यमान है। यह अनुभव करते हुए बड़ा आनन्द पाया।

5 फरवरी 39

आज प्रात: 10 बजे के करीब बांयीं भुजा लगातार देर तक फरकती रही। इसका फल यही प्रतीत हुआ कि शाम को तबीयत खराब हो गई। ध्यान के समय भी बेहद बेचैनी थी। ध्यान से उठ आने की भी कई बार प्रबल इच्छा हुई पर जबरदस्ती जैसे तैसे बैठा रहा। सिर में दर्द भी था। भोजन छोड़ सो गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20 फरवरी 39

कुछ दिनों से भगवत्सम्बन्ध के एक नये स्वरूप का अनुभव हो रहा है। मैं उससे केवल ऊपर से जुड़ा हूँ। ऊपर से आने वाली उसकी अनन्त शक्ति मुझे मेरे हृदय द्वारा हिला रही है। इतना ही नहीं किन्तु मेरे चारों तरफ जो कुछ हो रहा है, जिन सब चेतन-अचेतन वस्तुओं से मेरा प्रतिक्षण सम्बन्ध हो रहा है, आदान-प्रदान हो रहा है, उन सबमें भी निरन्तर भगवान् का ही जीता-जागता हाथ काम कर रहा है। उस सबका भी मेरे हृदयान्तरात्मा से सम्बन्ध है। अर्थात् भगवान् मेरे लिए (मेरे उद्देश्य—इस केन्द्र के उद्देश्य की पूर्ति के लिए) केवल इस मेरे हृदय द्वारा ही नहीं काम कर रहे हैं किन्तु मेरे चारों तरफ के जगत् की प्रत्येक वस्तु के द्वारा भी उतनी ही आत्मीयता—उतने ही अपनेपन—के साथ काम कर रहे हैं जितने कि हृदय द्वारा। हृदय में आया भगवान् ही मैं नहीं हूँ—चारों तरफ का भगवान् भी मैं हूँ। इसलिए कहीं भी कुछ भी बाधा नहीं है, भ्रम की गुंजाइश ही नहीं है। सब कुछ अपने आप निश्चित किया हुआ ही पूरा होता जाता है। मेरा सर्वव्यापक आत्मा और मेरा हृदयस्थ आत्मा दोनों मिलकर एक ही लीला कर रहे हैं, एक ही उद्देश्य साध रहे हैं।

21 फरवरी 39

बांयें अंग की तरफ ध्यान बढ़ता जा रहा है। वह स्पष्ट जुदा और दुर्बल अनुभूत होता है।

इस दिन भी दर्शन नहीं हुआ। माताजी को प्रणाम हुआ।

सिर में से फाड़कर मानों कोई चीज़ मेरे अन्दर घुसती है। पेट तक तो उसका असर मालूम हो होता है। क्षण भर को मैं सुन्न रहता हूँ—होश हवास ठीक नहीं रहते। पहले पहल यह अनुभव ध्यानशाला में ध्यान करते हुए ही हुआ था जबकि मैं सन् 37 की नवम्बर में यहाँ रहने आया था और कुछ दिनों बाद यहीं रहने का विचार निश्चित कर लिया था। पर पीछे तो चलते-फिरते भी, गुरुकुल में भी कई बार, भोजन खाते भी और सोते हुए भी रेल में भी होने लगा। वह अभी तक जारी है। वह क्या होता है, अभी तक ठीक समझ में नहीं आता।

15 अगस्त 39

आज दर्शन के बाद से उत्तेजना खत्म हो गई—एकदम। मैं आशा करता था कि कुछ दिनों में हटेगी पर हट जाएगी। इस बार दर्शन दूर से हुआ।

22 अगस्त 39

ऊपर (21-2-39 में) जिस अवस्था का वर्णन किया है, वह अब जाती रही है। न गुरुकुल में रहते हुए हुई है और न अब तक यहाँ।

कल हृदय में कुछ बल आता अनुभव हुआ।

सीधा—मेरुदंड सीधा रखकर—बैठने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ-कुछ 'इच्छा बाहर से आती है'—इसका अनुभव होता समझ में आता है। अपने को अहंशून्य जगत् व्यापक अनुभव करने पर इस आधार में अन्तरात्मा की शांत स्वाभाविक क्रिया के अतिरिक्त और जो कुछ होता है, वह बाहर के प्रभाव से (या निम्न प्रकृति के प्रभाव से) होता है। यह कुछ-कुछ समझ में आता दीखता है।

20 सितम्बर 39

कुछ दिनों से विशालता का बहुत अनुभव होता है। तब आनन्द में मस्त होकर घूमता हूँ। क्षणभर के लिए मानों भौतिक शक्ति भी शरीर में बेहद आ गई है। 'कुवित् सोमस्य अभाम इति' का अनुभव सा होता है। इस पृथ्वी को कहाँ उठाकर रख दूँ ?

कल **Secret of the Veda** पढ़कर समाप्त किया है।

28 सितम्बर 39

Play—लीला-खेल का भाव आजकल बहुत स्पष्ट हो रहा है। **Thoughts and Glimpses** का अनुवाद देख रहा हूँ। इस नये ज्ञानानुभव से बड़ी शांति मिलती है, नया प्रकाश मिला दीखता है।

9 अक्टूबर 39

सब जगत् में मैं ही काम कर रहा हूँ, यह अनुभव आजकज कभी कभी झांकी के रूप में हुआ। तब लगा कि गांधी भी मैं हूँ, हिटलर भी मैं, चेम्बरलेन और स्टालिन भी। गुरुकुल में काम करने वाला अभय भी, मैं और अज्ञानी संसारग्रस्त पांडिचेरी की गलियों में फिरने वाला कोई व्यक्ति भी गांवों में दुःखी आपद्ग्रस्त ग्रामीण भी मैं। यह सब मिलकर जो खेल हो रहा है उसका कर्त्ता मैं और इनमें से प्रत्येक भी मैं। निरहंकारता, निरहंकारता।

23 नवम्बर 39

छह बजे सायं माता जी को प्रणाम। उस समय विशालता और विजय का सा अनुभव।

29 नवम्बर 39

विशेष घनिष्ठ तह तक पहुँची शांति का भान दो तीन दिन से दबा हुआ सा अनुभव कर रहा था। अब वह दबाव हटने पर मालूम हुआ है कि मैं बुरी तरह दबा हुआ था। **Peace in Vital** का अनुभव। नीचे प्राण में गम्भीर और स्थिर शांति, जानने वाली, ज्ञान प्रकाश सहित शांति चाहिए—यह दीखता है। तभी किसी प्रकार की भी थोड़ी सी भी उत्तेजना न हो सके, यह सम्भव है। राग आदि अज्ञान से ही होते हैं, यह स्पष्ट होता है अतएव ज्ञान-प्रकाश-पूर्वक शांति ही शांति है।

30 नवम्बर 39

अन्तरात्मा का शरीर, प्राण, मन पर प्रभाव स्थिर हो, इसका मतलब कुछ समझ में आता है। जब शरीर ठीक, प्राण में अविचल शांति (उत्तेजना के वे ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण उपस्थित होने पर भी शांति और ज्ञान बना रहता है) मन मस्त मगन शान्त वाही रहता है, उस समय अन्तरात्मा का प्रभाव पड़ रहा होता है, अन्तरात्मा का राज्य रहता है । अन्य समय बाहर के आक्रमण (सफल या असफल) होते रहते हैं

8 दिसम्बर 39

इस दिन शुक्रवार से तबियत विशेष खराब रही । आक्रमण हुआ । पता लगा इस रात से आचार्य रामदेव जी बेहोश रहे, प्रातः शनिवार देहान्त हुआ । मेरे यहाँ यह हुआ कि शुक्रवार सायं छह बजे से जो सूत अटेरने लगा तो सूत उलझता गया । बड़े धैर्य से सुलझाने की कोशिश की पर कुछ न बना । तंग आकर उलझा हुआ हिस्सा तोड़कर फेंका । फिर-फिर तोड़ा तो भी सुलझा नहीं । ध्यान भोजन के बाद फिर शुरू किया । रात 10–11 बजे कोशिश की अन्त में हार मान कर छोड़ दिया कि यह सुलभ नहीं हो सकता । अगले दिन (शनिवार) प्रातः झाड़ू लगाते हुए आचार्य रामदेव जी के विषय में ध्यान आया कि ऐसे जीने से तो मरना अच्छा । मैं उनकी जगह होता तो मर जाना पसन्द करता । पर इसका भान हुआ कि वे मर गये हों । रात तक यह भी विचार था कि सूत को फिर सुलझाने का यत्न दिन में करूंगा (नहीं आगे कात न सकूंगा) पर प्रातः से ही उसके सुलझाने का विचार भी छोड़ दिया, तकली कातने का विचार रखा । मंगल तक चार दिन तकली ही काती । चार दिन फिर उस सूत को उठाया तो जरा सा खराब हुआ, तोड़ना कहीं-कहीं पड़ा और सब सुलझ गया ।

14 दिसम्बर 39

कुछ तबियत कई दिन से खराब सी थी, किन्तु काम चलता था । कल जरा सा सिरदर्द तथा शरीर में अकड़न मालूम हुई थी । पर आज रात जब मैं बीच में 2–3 बजे के लगभग उठा तो उस समय सिर में दर्द और कमजोरी और भारीपन देखकर आश्चर्य हुआ । पिछली रात अपने रोग के बारे में डा० रामकृष्ण जी से बात हुई थी कि मुझे रोग आता है तो जरा सा आराम और भजन में बैठना मिले तो जरूर मिट जाता है । सोने से पहले श्री अरविन्द की 'स्वप्न' नामक कहानी की कथा सुनी थी, वह बड़ी अच्छी लगी थी । उसमें श्री कृष्ण जी का दुख सुख दोनों का खेल करने का भाव विशेष प्रिय लगा था । ऐसा स्पष्ट रोग का आक्रमण था । दिन भर प्रायः लेटा रहा, कुछ भी खाया नहीं । केवल एक घन्टा चिट्ठी लिखना और शाम को एक घन्टा अनुवाद–कार्य किया । शाम को तबियत कुछ ठीक थी । शाम को ध्यान और भोजन भी किया ।

इस रात को ऐसा भान हुआ कि मानों किसी का रोग मुझ पर आया था । उसी का मुझ पर यह असर था । 'अ' की माता जी बीमार हैं, यह सुनकर मैं तैयार भोजन छोड़कर उन्हें देखने चला गया, ऐसा सा इस रात स्वप्न में देखा । कहीं 'अ' की माता जी की बीमारी तो नहीं थी यह ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17 दिसम्बर 39

आज रात माता जी को प्रणाम कर प्रस्थान। तीन-चार दिन से जो मुख्य भावना है, वह है कि खेल में हूँ। श्रीकृष्ण जी चाहते हैं कि मुझे मेरे साथ खेलने वाले मिलें। जो मिलता है, वह कुछ मांगता है। लीला का भाव स्वाभाविक हो जाना चाहिए। मैंने करना है, मेरी जिम्मेददारी है – भ्रम बिल्कुल हट जाना चाहिए। जो कुछ करना है, वह माता ने करना है—तू केवल खेलता जा।

28 जनवरी 40

कभी-कभी ध्यान में बहुत बहुत ऊपर वृत्ति जाती है और वहाँ मैं हूँ, वहाँ कोई है जो असली मैं हूँ और उससे मैं एक सूक्ष्म अभौतिक तार से जुड़ा हुआ हूँ। मैं वहाँ का हूँ। यहाँ भी इस मिट्टी के शरीर में उतरा हुआ हूं।

इस बार 'योग और उसके उद्देश्य' का अनुवाद देखता रहा। यह 15-2-40 को पूरा किया। इस बार Secret of Veda छुआ भी नहीं। अब Conversations of the mother का अनुवाद देख रहा हूँ। यही मुख्य काम है। इन दोनों का विशेष अध्ययन मेरा हो, इसी लिए यह काम आया है।

10 से 13 फरवरी तक Delight of the Work का अनुवाद किया है। इस लेख का मुझ पर बड़ा असर है। अब और हुआ है। अपना सर्वव्यापी मैं तथा अन्दर का (अन्तरात्मा का) मैं की तरफ और ध्यान खिचा है।

अन्तरात्मा शान्त वस्तु है, हमारे मन प्राण शरीर पर प्रेमपूर्वक दिव्य प्रभाव डालती है, इसके अनुभव में माता जी के लेख Central Thought ने भी प्रभाव डाला है।

16 फरवरी 40

आज 'सर्वोदय' में यह पढ़कर कि गुरु बृहस्पति का वर्ष 12 वर्ष का होता है अर्थात् वह 12 वर्ष सूर्य के चारों तरफ परिक्रमा पूरी करता है, अपनी इस ग्रह से और भी एकता का ख्याल बना। मुझमें 12 वर्ष बाद नया क्रम करने की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उस पर ध्यान गया। बारह साल की तपस्या करने की (श्रीनगर में) इच्छा। उस घटना के 12 साल बाद संन्यास की घटना। कुम्भ का बारहवें वर्ष होना, वैसाखी का अपना नया जन्म मानना इत्यादि।

2 जुलाई 40

श्री दीपनारायण जी से जो महामुद्रा सीखी थी, उसका बाकायदा अभ्यास गत शनिवार (29 जून) से शुरू किया और आज मंगलवार (मेरा भौतिक शारीरिक जन्मदिन) तक इस प्रारंभ को चलाया। आज इसके लिए माता जी का आशीर्वादात्मक तार मंगाया। आज प्रातः यह श्लोक गाया गया —

महामुद्रा मया प्राप्ता जरा मृत्यु विनाशिनी
प्रसादात्तव हे मातः क्षेममस्तु दिनं दिनम्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिशूल देने वाले स्वामी नर्मदानन्द जी से रात आठ बजे बातचीत की। पिछले चार महीनों में जो एक नया स्पष्ट अनुभव हुआ, वह है अन्दर और बाहर की एकता।

'यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्' का नया अर्थ भासित हुआ।

जो मेरे अन्दर मेरी रक्षा करने वाला है, वही मेरे बाहर सर्वत्र है। बाहर सब कुछ उससे भिन्न नहीं है जो अन्दर अनुभव होता है। अतः बाहर से किसी भी दिशा से आने वाला कोई डर नहीं रहा। माता जी के शब्द भी स्पष्ट हो गये— **Within and therefore without.**

21 नवम्बर 43

पिछले 15–20 दिनों से तीन अनुभवों पर जोर हो रहा है—

(1) विशालता—एक दिन भोजनालय जाते हुए सड़क पर अपने विशाल रूप का दर्शन हुआ। मेरा सिर बादलों तक पहुँचता है। मेरे बाहु दोनों तरफ दिशाओं में दूर तक फैले हुए अनुभव हुए।

(2) मन का छोटी लहरों में विचार करना छोड़ना, क्षुद्र विचार-त्याग।

(3) अहंभाव का कर्म में त्याग। मैं नहीं कर रहा—जगत् व्यापक शक्ति कर रही है।

ये तीनों मिलते से, मिलकर एक होने वाले हैं, ऐसा लगता है। कभी कभी एक हो भी जाते हैं।

20 मई 46

अभीष्ट आनन्द का रूप 'शान्त, पवित्र आनन्द' ऐसा करके कहना ठीक ठीक लगता था। पर अब उसमें निर्लिप्त, अनासक्त ऐसा एक और विशेषण जोड़ना ठीक लग रहा है—'शान्त, पवित्र और निर्लिप्त, अनासक्त आनन्द।'

25 मई 51

काम-वासना सम्बन्धी भावनाएँ जो आजकल बनी हुई हैं। मैं वह ब्रह्मचारी हूँ जिसका वेद में वर्णन 'ब्रह्मचारीष्णन् चरति रोदसि उभे।' जहाँ कामवासना के अड्डे हैं, वहाँ पर भी मेरी समीपता का प्रभाव यह पड़े कि वहाँ सुख के मूल में जाने की प्रवृत्ति हो। असली सुख का मूल ऊपर है। ऊपर जाने की प्रवृत्ति हो। मेरा स्मरण करने से लोगों की कामवासना हट जावें—जादू की तरह हट जावें। मेरा स्मरण करने से मेरे प्राण के साथ उनका सम्पर्क हो—उस प्राण के साथ जो बड़ा विशाल है जिसमें क्षुद्र कामवासना, यह क्षुद्र सुख पाने की इच्छा कभी उत्पन्न ही नहीं होती। उनका सम्पर्क मेरे उस मन के साथ होवे जिसमें काम सुख अति घृणित नीचे दर्जे का सुख अनुभव होता है—इतने नीचे दर्जे का सुख लगता है जैसे कि उसके लेने के लिये नीचे बहुत सी सीढ़ियां उतरकर जाना पड़ता है और जिसे नीचे उतरना बड़ा अखरता है। काम का भीएक सुख तो है पर वह इतने नीचे दर्जे का और इतना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थूल और गंदा है। मेरा स्मरण करने से जादू की तरह कामवासना इसलिए हट जाये कि उनके आत्मा के साथ सम्पर्क हो जाये। दर्शन करके लौटते समय जैसे एक परम तृप्ति, शान्त अवस्था होती थी, वैसी ही अवस्था आ जाया करे। अन्दर शान्त सुख, सात्त्विक सुख इतना भरा हो कि उसके वायुमंडल में आने पर उत्तेजना का कोई सुख पाने की इच्छा ही न रहे, इच्छा ही न जाग सके, वैसी प्रवृत्ति न हो सके।

भय नहीं है, कहीं भी भय नहीं है तो क्यों सिकुड़े पड़े हुए हो? खुलकर, निर्भय होकर, अणु अणु से अभय होकर खड़े हो जाओ।

तेरा एक एक अणु, एक एक परमाणु अभय हो रहा है, अभय हो रहा है। कल से आज अभय है, कल और अभय होगा, परसों और अभय होगा। दिनोंदिन अभय अभय होता जा रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

97301

98304

GURUKUL KANGRI LIBRARY

Accession 15-6-90
Class on
Cat on
Tag etc
Checked
Any Other

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

Recommended By........

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य अभयदेव की अन्य कृतियाँ

1. ब्राह्मण की गौ
2. यज्ञ और योग
3. वैदिक विनय
4. तरंगित हृदय

आशिर प्रकाशन
रामजीवन नगर,
सहारनपुर-247 001

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशिर प्रकाशन, सहारनपुर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar